

राजस्थानी साहित्य के सन्दर्भ सहित
श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी
राजस्थानी काव्य

लेखक

डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया
एम० ए० [पी एच० डी०], साहित्य रत्न

मंगल प्रकाशन

गोविन्द राजियो का रास्ता

जयपुर

प्रकाशक
उमरावमिह मगल
सचालक
मगल प्रकाशन
गाविन्द राजियो का रास्ता जयपुर

कावी राइट
लेखकाधीन

प्रथम संस्करण १९६६ ई०

मूल्य
रु० २५-०० [पच्चीस रुपए मात्र]

मुद्रक
मगल प्रेस जयपुर

समर्पण

परम पूजनीया माताजी
श्रीमती अ० सौ० हगामी देवी जी मेनारिया

और

परम पूजनीय पिताजी
श्रीमान् मगनीराम जी मेनारिया की
पवित्र सेवा में
विनम्र भेंट

संकेत तालिका

प्र०	प्र०
प्र०	अध्याय
अनु० स०	अनुच्छेद संख्या
अ० जै० प्र० वी०	अभय जैन प्रयालय, बीकानेर
अ० म० नाहटा	अगरवन्द भवरलान नाहटा
ई० स०, ई०	ईस्वी सन् ईस्वी
का० ना० प्र० स०, ना० प्र० स०	काशी नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
ख०	खण्ड
गा०	गाथा
गी० स०	गीत संग्रह
छ० स०	छन्द संख्या
ज० का०	जन्म काल
डा०	डाक्टर
डा० ओ० रा० इ०	डाक्टर ओम्भा बा राजपूताने का इतिहास
डा० मा० प्र० गु०	डाक्टर माताप्रसाद गुप्त
दो० स०	दोहा संख्या
न०	नम्बर
ना० प्र० प०	नागरी प्रचारणी पत्रिका
प०	पण्डित
पु० प्र० स०	पुरातन प्रबंध संग्रह
पृ०	पृष्ठ
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो
प्रका०	प्रकाशक
प्रा० गु० का० स०	प्राचीन गुजराती काव्य संग्रह
भा०	भाग
भू०	भूमिका
मृ० स०	मृत्यु संबन्ध
मो० र० दसाई	मोहनलाल दलीचन्द देसाई
र० का०	रचना काल
रा० ना० ला० इलाहाबाद	रामनारायणलाल इलाहाबाद

रा० भा० रू०
 रा० भा० सा०
 रा० रि० सो० व०
 रा० सा० आ०
 रा० सा० रू०
 रा० शो० म०
 ले० का०
 वि० स०
 वो०
 शा० रि० इ०
 शो० प०
 स०
 सस्क०, सं०
 सम्पा०
 हृ० प्र०
 हि० सा० आ० इ०
 हि० सा० आ०
 हि० का० धा०
 हि० सा० वृ० इ०
 हि० सा० स०
 हि० प० प्र०

राजस्थानी भाषा की रूपरेखा
 राजस्थानी भाषा और साहित्य
 राजस्थान रिमर्च सोसायटी बसकत्ता
 राजस्थानी साहित्य का आदिवालय
 राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा
 राजस्थानी शोध संस्थान
 लेखन काल
 विक्रमी संवत्
 बाल्युम
 शारूँल राजस्थानी रिमर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर
 शोध पत्रिका
 सख्या
 संस्करण
 सम्पादक
 हस्तलिखित प्रति
 हि दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
 हि नी साहित्य का आदिवालय, हजारो प्रसाद द्विवेदी
 हि दी काव्य धारा राहुल साठ्यायन
 हि दी साहित्य का बृहन् इतिहास, ना० प्र० स०
 हि नी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
 हि नी परिपद प्रयाग

प्रस्तावना

प्रस्तुत विषय के महत्त्व की घोर लेखक का ध्यान सर्व प्रथम महाराज पृथ्वीराज का 'क्रिस्तन रविमणी री बेनी' का अध्ययन करते समय प्राकृतित हुआ। तदुपरांत भक्तवर भाषा जो भूषा कृत 'रविमणी-हरण' के सम्पादन का सुमत्सर प्राप्त हुआ तो इस विषय पर ध्यासा सुदृढ हो गई। जोधपुर में विश्वविद्यालय का समारम्भ होने पर गुरुजना न भी विषय को महत्त्वपूर्ण समझते हुए शोध कार्य की प्रेरणा प्रदान की तो पत्राकरण सम्बन्धी कार्यवाही करते हुए तत्काल सम्बन्धित सामग्री के एकत्रीकरण और अध्ययन का कार्य विधिवत् आरम्भ किया गया।

महाकवि तुलसी ने जानकी भगन और पावती मंगल तथा विश्वानुदास, सूरदास और नन्ददास आदि के अजभाषा में लिखित "रविमणी मंगल" सनन का पो से प्रकट होना है कि हमारे साहित्य में विवाह-विषयक काव्या को "मंगल" नाम देने की प्रवृत्ति रही है। रविवर पृथ्वीराज राठोड न भी 'अपनी 'बेली का अपर नाम "रविमणी मंगल" लिखा है।^१ प्रस्तुत प्रबंध से प्रकट है कि हिन्दी एक राजस्थानी में १८७ मंगल-नाम्य उपलब्ध बात है किन्तु यह विषय अद्यावधि हमारे साहित्यक इतिहास ग्रन्थों में उपेक्षित रहा है और हिन्दी साहित्य कोष" में "मंगल-नाम्य रूप" के विषय में विचार तक नहीं किया गया है।

प्रबंध-लेखन में नवीन शैली को अपनाते हुए भी अनेक गायितिक और सावतिक अटिलताओं को दूर रखा गया है। प्रस्तुत प्रबंध का विश्वविद्यालय के सम्बन्धित नियम सं० २२ के अनुसार "कुलस्वेष" आकार में टाइप किये हुए ३५० पृष्ठों तक सीमित रखा गया है। जोधपुर में नवीनतम विकसित गैली का नागरी-टंकण यंत्र प्राप्त कर प्रबंध को सुदृढ रूप में टंकित करवाना एक समस्या रही है। टंकित प्रतियां में सावधाना पूर्वक सुधार किये गये हैं और लेखक इस विषय में क्षमा प्रार्थी है। विषयगत सामग्री के अन्वेषण में कई कठिनाईयों का सामना करना पडा है किन्तु अनेक स्वामी की यात्राओं में सम्बद्ध ग्रन्थपाला और ग्रन्थ स्वामियों ने उदारता पूर्वक सहयोग दिया है। आदरणीय श्री मगरचन्द्रा नाहटा द्वारा अपेक्षित विशेष सामग्री प्राप्त हुई, तदर्थ आपको अनेक धन्यवाद है।

१ - प्रकाशित राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, प्रकांक ७४।

२ - क - "मन सुद्धि जवता रविमणी-मंगल, निधि सपति थाइ कुशल नित।"

— सहा २८६।

ख - "मुख कहि कृपन रविमणी-मंगल, काई र मन कलपति कृपणा।"

— सहा २८६।

परम श्रेष्ठ श्रीमान् प० लक्ष्मीलालजी जोशी ने समय-समय पर सम्बन्धित साहित्यिक सामग्री का प्रत्यक्ष निरीक्षण करते हुए प्रोत्साहन प्रदान किया, तदर्थ लेखक विशेष आभारी है।

श्री उमरावसिंह मंगल, सचालक, मंगल प्रकाशन, जयपुर ने इस गोप्य प्रबंध का तत्परतापूर्वक प्रकाशित करने का उपक्रम किया, तदर्थ इन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

गत दो वर्षों में प्रबंध सम्बन्धी कार्यों में मेरे अनेक मित्रों और पारिवारिक जना का सहयोग रहा है। प्रिय मित्र श्री गोविन्ददासजी वमा ने लेखक की अनेक विधय सहायता की है, जिसके लिए लेखक आभारी है।

गुरुजनो का मेरे लिए सदा ही अपार स्नेह और प्रोत्साहन रहा है। परम श्रेष्ठ आचार्यद्वय डा० रमाशंकर जी शुक्ल "रसाल" और डा० मोतीलालजी गुप्त के स्नेहयुक्त मार्गदर्शन और प्रोत्साहन का ही सुपरिणाम है कि प्रबंध को प्रस्तुत रूप मिल सका है। आचार्यों के प्रति आभार की अपने गणदो में यत्न करना कठिन है अतएव "मानस" के गणदो में ही निवेदन है—

बदल गुरूपर कज, कृपा सिंधु नर रूप हरि ।

महा माह तम पुज, जासु बचन रवि कर निकर ॥

—पुरुषोत्तम लाल मनारिया

राजस्थान साहित्य अकादमी (सगम)

जयपुर

गणतंत्र दिवस, १९६६

विषय तालिका

मकेत तालिका	५-६
प्रस्तावना	७-८
शुद्धि पत्र	११

प्रथम अध्याय राजस्थानी साहित्य की भूमिका ३-३०

१ राजस्थान का नामकरण प्राचीन उल्लेख (८ १ - ८ १)	४-६
२ जन जीवन और राजस्थानी साहित्य (९ १ - १५ १)	६-७
३ राजस्थानी भाषा (१६ १ - ४८ १)	७-२१
क विस्तार क्षेत्र (१६ १ - १७ १)	७-८
ख सीमाएँ (१८ १)	८
ग वर्गीकरण (१९ १ - २० १)	९
घ नामकरण (२१ १ - २२ १)	९-१०
ङ राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति (२३ १ - २९ १)	१०-१४
च राजस्थानी भाषा का विकास (३० १ - ४८ १)	१४-२५
घ राजस्थानी भाषा का प्रस्तावना-काल (३१ १ - ४१ १)	१४-१६
भा प्राचीन राजस्थानी भाषा काल (४१ १ - ४९ १)	१६-१९
ब मध्यकालीन राजस्थानी भाषा-काल (४९ १ - ४५ १)	१९-२३
ई आधुनिक राजस्थानी भाषा काल (४५ १ - ४८ १)	२३-२५
४ ललित कलाएँ और राजस्थानी साहित्य (४९ १ - ६७ १)	२५-३०
क सगीत (५० १ - ५६ १)	२६-२८
ख चित्रकला (५७ १ - ६२ १)	२८-२९
ग नृत्य (६३ १ - ६७ १)	२९-३०

द्वितीय अध्याय राजस्थानी साहित्य ३३-१४१

१ प्रारम्भिक परिचय (१ २ - ४ २)	३३-३४
२ राजस्थानी साहित्य की परिभाषा (५ २)	३४
३ राजस्थानी साहित्य का काल विभाजन विभिन्न मत (६ २ - ८ २)	३४-३७

१ डॉ० एन० पी० तस्सोतोरि	२ ए० मीतीलान जी मनारिया
३ ए० नरोत्तमदास जी स्वामी	४ डॉ० हीरानान जी मा०श्वरी
५ श्री सीतारामजी लालस	६ श्री गजराज घोषा
७ पुरुषोत्तमदास स्वामी	८ डॉ० जगन्नाथ प्रसाद
९ डा० उष्यमिह भटनागर	१० उक्त मता की समीक्षा और लेखक का मत

४ प्रारम्भ काल (६ २-४६ २) ३७-५३

(क) प्रारम्भिक परिचय (६ २-१५ २) ३७-३९

(ख) प्रारम्भ काल के कवि क्रोडि और कृतियाँ (१६ २-४६ २) ४०-५३

१ स्वयंभू कवि	(१६ २-१८ २)	४०-४१
२ महाकवि पुष्पत	(१६ २-२१ २)	४१-४२
३ योगी दु	(२२ २)	४२-४३
४ प्राचार्य हरिभद्र सूरि	(२३ २-२४ २)	४३
५ हेमचन्द्र सूरि	(२५ २-३० २)	४४-४५
६ दोला माह रा दूहा	(३१ २-३५ २)	४५-४७
७ जजली जेठवा रा दूहा	(३६ २-३७ २)	४७-४८
८ बीसन दे रास	(३८ २-४६ २)	४७-५२
९ प्रारम्भिक काल के प्रथम कवि-क्रोडि		५१-५३

५ वीरगाथा काल (४७ २-६५ २) ५३-८०

(क) सामान्य परिचय (४७ २-४९ २) ५३-५४

(ख) वीरगाथा-काल के प्रधान कवि और कृतियाँ (५० २-६५ २) ५४-८०

१ गानिम सूरि	(५० २-५१ २)	५४-५५
२ गान्धधर	(५२ २)	५५-५६
३ बालू जी मोगा	(५३ २)	५६
४ श्रीधर ध्याम	(५४ २)	५६-५७
५ तिवनाथ गाडण	(५५ २)	५७-५८
६ बान्तर डांडी	(५६ २-६० २)	५८-६९
७ पधनाम	(६१ २-६६ २)	५९-६१
८ पुरबीराज रासो	(६७ २-६४ २)	६१-७६
९ वीरगाथा काल के प्रधान कवि (६५ २)		७६-८०

६ भक्ति काल (६६ २-१०२ २) ८०-११३

(क) सामान्य परिचय (६६ २-१०३ २) ८०-८२

(ख) भक्ति काल के प्रधान कवि (१०४ २-१३४ २) ८३-९५

१ मीरी बाई	(१०४ २-११२ २)	८३-८६
२ दुस्माया भाड़ा	(११३ २-१२० २)	८६-८९

३	भक्त कवि ईसर दास जी (१२१ २-१२५ २)	८६-६१
४	महाराज पृथ्वीराज राठीड (१२६ २-१२७ २)	६१-६३
५	सार्पाजी भूजा (१२८ २-१३० २)	६३
६	कविराज वांकीदास (१३१ २-१३६ २)	६३-६४
ग	राजस्थान के सत-सम्प्रदाय (१३५ २-१८२ २)	६५-१०८
म	सामान्य परिचय (१३५ २-१४२ २)	६५-६८
मा	सत कवि (१४३ २-१८१ २)	६८-१०८
१	सत दासूग्यालजा (१४३ २-१४७ २)	६८-१००
२	सत नजबजी (१४८ २-१५० २)	१००
३	स्वामी लाखणमजी (१४९ २)	१००
४	सत मावजी (१५२ २-१५३ २)	१००-१०१
५	स्वामी चरणदासजी (१५४ २-१५७ २)	१०१
६	श्री जसनाथजी (१५८ २-१६१ २)	१०२-१०३
७	रामरत्नेश्री सम्प्रदाय के कवि (१६२ २-१६६ २)	१०३
८	जामोजी (१६५ २-१६६ २)	१०४
९	जन सत कवि (१६७ २-१८१ २)	१०४-१०८
१०	भक्ति काल के कतिपय फुडकर कवि (१८२ २)	१०८-११३
७	प्रागुनिक काल (१८३ २-२०५ २)	११३-१२६
(क)	प्रारम्भिक परिचय (१८३ २-१९० २)	११३-११६
(ख)	प्रागुनिक काल के कतिपय प्रधान कवि (१९१ २-२०१ २)	११६-१२२
१	महाकवि सूर्यमल (१९१ २-१९६ २)	११६-११६
२	चारण कवि केसरीसिंहजी (१९७ २)	११६-१२०
३	महाराज चतुर्दशसिंहजी (१९८ २-२०० २)	१२०-१२२
४	राघुदासजी महियारिया (२०१ २)	१२२
(ग)	कतिपय अन्य उल्लेखनीय कवि (२०२ २-२०४ २)	१२३-१२५
(घ)	प्रागुनिक काव्य की प्रधान प्रवृत्तिया (२०५ २)	१२५-१२६
८	राजस्थानी गद्य साहित्य (२०६ २-२४४ २)	१२६-१४१
(क)	१ धार्मिक गद्य (२०७ २-२१७ २)	१२७-१३०
म	जन गद्य के रूप (२०९ २-२१६ २)	१२७-१३०
मा	जैनतर धार्मिक गद्य (२१७ २)	१३०
२	ऐतिहासिक गद्य (२१८ २-२२४ २)	१३०-१३४
३	मनारजनात्मक गद्य (२२५ २)	१३४-१३६
४	प्रभिलेखों का गद्य (२२६ २-२२८ २)	१३६-१३७
५	याकरण बहक, ज्यातिप टाका मादि विषयक गद्य (२२८-२३६)	१३८-१३९
(ख)	नवीन राजस्थानी गद्य (२३७-२४४ २)	१३९-१४१

२ क मराठी मगल काव्य	१८१-१८३
ख कन्नड मगल काव्य	१८३-१८५
ग तैलगु मगल काव्य	१८५
घ धा द्र मगल काव्य	१८६
ङ गुजराती मगल काव्य	१६६-१८८
च हिंदा मगल काव्य	१८८-२०२
छ राजस्थानी मगल काव्य	२०२-२१०

चतुर्थ अध्याय श्रीकृष्ण चरित्र और श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-

विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों के प्रेरणा स्रोत २१३-१५४

१ श्रीकृष्ण चरित्र (१ ४-१३ ४) २१३-२१७

२ श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी काव्यों के प्रेरणा स्रोत
(१४ ४-१३४ ४) २११-२५४

(क) भीमदमावत का श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह वर्णन
(१४ ४-३१ ४) २१७-२२१

(ख) विष्णु पुराण और हरिवंश पुराण का श्रीकृष्ण रुक्मिणी
विवाह वर्णन (३२ ४-३५ ४) २२१-२२३

(ग) श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी संस्कृत रचनाएँ (३६ ४) २२३-२२५

(घ) श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी अथर्व श और जन
रचनाएँ (३७ ४-३९ ४) २२५-२२६

(ङ) श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह विषयक द्रज भाषा की रचनाएँ
(४० ४-१२४ ४) २२६-२५१

१ विष्णुदास कृत रुक्मिणी मगल (४१ ३-५१ ४) २२६-२३१

२ महाकवि सूरदास कृत रुक्मिणी मगल (५२ ४-६७ ४) २३१-२३४

३ नविकर नरनाम कृत रुक्मिणी मगल (६८ ४-८१ ४) २३४-२३७

४ नरहरि महापात्र कृत रुक्मिणी मगल (८२ ४-९६ ४) २३१-२३९

५ रघुनाथसिंह कृत रुक्मिणी मगल (९२ ४-९६ ४) २४०-२४४

६ श्री कृष्णानन्ददास कृत सगीत रुक्मिणी मगल
(९७ ४-११२ ४) २४४-२४८

७ प्रभुदास कृत रुक्मिणी मगल (११३ ४-१२४ ४) २४८-२५१

(व) कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी
काव्यों की प्रेरक परिस्थिति (१२५ ४-१३४ ४) २५१-२५४

पंचम अध्याय श्रीकृष्ण-रविमणी विवाह-सम्बन्धी-राजस्थानी

चारण्य काव्य (२०५ - १४७ : ५) २५७-३००

१ कर्मसी सागला वृत्त वलि श्रीकृष्ण जी री (४५-११५) २१७-२६३
२ महाराज पृथ्वीराज वृत्त वलि विमल रविमणी री

(१६५-८२५) २६३-२८६

[क] वषा समीक्षा (१७ : ५ - ४० ५) २६४-२६६

[ख] रचना कात (४१ ५ - ४८ ५) २६४-२६६

[ग] रस व्यञ्जना (४६ ५ - ५२ ५) २७१-२७३

[घ] भाषा गती (५३ ५) २७३-२७३

[ङ] वस्तु वणम् (५४ ५) २७४ २७५

[च] घलकार सौन्दर्य (५४ ५ - ५६ ५) २७५-२७६

[छ] छन्द प्रयोग (५७ ५ - ६२ ५) २७६-२८०

[ज] वेत्ति का काव्य रूप (६० ५ - ६६ ५) २८१-२८२

[झ] पृथ्वीराज रचित वेत्ति और कर्मसिंह रचित वलि
(६७ ५) २८२-२८३

[ञ] विमल रविमणी री वलि की टीकाए (६८ ५-६६ ५) २८३-२८४

३ सायाजी भूला वृत्त रविमणी हरण (८३ ५ - १०४ ५) २६६-३०७

४ नूर वृत्त रविमणी हरण (१०५ ५ - ११६ ५) ३०८-३१२

५ मुरारीदान बारहठ वृत्त विजय विवाह (११७ ५-१३० ५) ३१२-३१६

६ विठ्ठलदास वृत्त रविमणी हरण (१३१ ५ - १४० ५) ३१७-३१८

७ किशन विलाल (१४१ ५ - १४७ ५) ३१६-३२२

षष्ठ अध्याय श्रीकृष्ण-रविमणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी

चारण्येतर काव्य(१६-११३.६) ३२५-३४८

प्रारंभिक परिचय (१ ६) ३२५

१ पद्मदास वृत्त रविमणी मगल (२ ६ - २६ ६) ३२५-३३१

२ रत्नोराम पुजारी वृत्त रविमणी वारा मासा (२७ ६-३० ६) ३३२-३३३

३ करुणा रविमणी जी (३१ ६) ३३३

४ बसीधर शर्मा वृत्त ख्याल रविमणी मगल (३२ ६-५४ ६) ३३३-३३७

५ श्रीकृष्णजी रा विवाहला (५५ ६ - ६३ ६) ३३७-३३८

६ कवि नन्दलाल वृत्त रविमणी रास (६४ ६ - ८६ ६) ३३८-३४४

७ रुक्मिणी हरण [बडा]	(६० ६ - १०० ६)	३४४-३४६
८ रुक्मिणी हरण [छोटा]	(१०१ ६ - १०३ ६)	३४६
९ रुक्मिणी विवाहलो	(१०४ ६ - १०६ ६)	३४७
१० काहोजी विवाहला	(११० ६ - ११२ ६)	३४८
मसम अध्याय	उपमहार	३४९-३५६
परिशिष्ट		३५७-३६३
लेखक परिचय		३६५-३६८

शुद्धि पत्र

पृष्ठ संख्या	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
१	यत्	व्य
१	रुद्रधर	रुद्रधर
११	गोडो सैहना ।	गोडहेहयगाम्नालाण्डु यकीतनमिहना
१५	७६	७६०
४३	जसहरचरिउ धोर नेमानाहवरिउ	धोर जसहरचरिउ
६६	स० १७४७	स० १७०७
७६	स० १२५०	स० १३६०
"	स० १२५०	स० १३२७ नगमग
७७	गजधर	गणधर
"	बुद्धचरित्र	प्रत्येक बुद्ध चरित्र
"	हेमभूषण मणि	हेमभूषण गणि
"	(१) क्षत्रपाल (२) द्विपदिका	(१) क्षत्रपाल द्विपदिका
७८	स्युनिमद्र राम	स्युलिमद्र फागु
"	राजेश्वर सूरि	राजशेखर सूरि
"	स० १४१३	स० १४१३ [१]
"	कण्ठावर्षी	कण्ठर्षी गच्छीय
"	चम्पा	चम्प
७९	रणकपुर	राणकपुर
"	सप्ततिका	सप्ततिका
"	महवि	श्वपि
१०८	सहज समुद्र	सहज सुन्दर
११०	विनोदास	विनोदस
"	साईदास	साईदान
"	स० १७०६	स० १८६१

प्रथम अध्याय

राजस्थानी साहित्य की भूमिका

१. 'राजस्थान' का नामकरण • प्राचीन उल्लेख

२. जन-जीवन और राजस्थानी साहित्य

३. राजस्थानी भाषा

क विस्तार क्षेत्र

ख सीमाएँ

ग वर्गीकरण

घ नामकरण

ङ राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति

च राजस्थानी भाषा का विकास

[अ] राजस्थानी भाषा का प्रस्तावना-काल

[आ] प्राचीन राजस्थानी भाषा काल

[इ] मध्यकालीन राजस्थानी भाषा काल

[ई] आधुनिक राजस्थानी भाषा-काल

४. ललित कलाएँ और राजस्थानी साहित्य

क संगीत

ख चित्रकला

ग नृत्य

प्रथम अध्याय

राजस्थानी साहित्य की भूमिका



११। किसी भी साहित्य के परिचय हेतु सम्बद्ध प्रदेश का अध्ययन आवश्यक होता है क्योंकि देश की भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, प्रायिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियाँ के सबथा अनुकूल ही साहित्य की रचना होती है। साहित्यकार अपने उपादान स्वीकृति, विरोध अथवा पलायन की स्थिति में सम्बद्ध समाज में ही प्राप्त करता है। साहित्यकार समाज की देन होता है और साहित्य पर साहित्यकार के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का प्रभाव होता है। इस प्रकार साहित्य, साहित्यकार, समाज और सम्बन्धित प्रदेश चारों का परस्पर घनिष्ठ तथा अयो-याश्रित सम्बन्ध होता है।

२१। "सहितस्य भाव साहित्यम्" के अनुसार "साहित्य" का अर्थ मिलन, मेलन अथवा हितकर है। "साहित्य" शब्द की व्याख्या—साथ, सयोग, मेल, वाक्य में पदों का सापेक्ष सम्बन्ध, गद्यात्मक अथवा पद्यात्मक रचनाएँ, लिपिवद्ध विचार और नान, ग्रन्थ समूह, वाङ्मय, काव्यशास्त्र तथा हितयुक्त लिखने हुए की गई है।^१

सामाजिक आलोचना और व्याख्या के रूप में भाषा के माध्यम से हुई साहित्यकार की अभिव्यक्ति अथवा साहित्यकार के विचारों और भावों की समष्टि ही साहित्य है। 'साहित्य' शब्द का व्युत्पत्ति 'सहित' शब्द से 'यत्' प्रत्यय लग कर हुई है। 'सहित' का अर्थ 'हित सहित' 'हितेन सह सहित' और 'साथ होना', मिलन अथवा मेलन है। तदनुसार साहित्य के माध्यम से विविध भावों, विचारों, देशों और मनुष्यों के मिलन का महान् कार्य सम्पादित होता है। रुद्रधर ने भाषा विनोद के विविध प्रकार के विषयों पर लिखित ग्रन्थ समूह को 'साहित्य' कहा है^२ और यही मूल कवि किल्हण ने भी प्रकट किया है।^३

१ - क - ज्ञान शब्द कोष, ज्ञानमण्डल, वाराणसी, वि० सं० २०१३, पृ० ८४२।

ख - वाचस्पत्यम्, शौलभ्मा सस्कृत सिरीज, वाराणसी, पृ० ५२६०।

२ - आर्यविशेष, शौलभ्मा सस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी, पृ० १८।

३ - विक्रमाङ्कदेवचरित, १।११।

रवी द्रनाथ ठाकुर ने इस विषय में लिखा है — “सहित शब्द से साहित्य की उत्पत्ति हुई है अतएव धानुगत अर्थ करने पर साहित्य शब्द में मिलन का एक भाव दृष्टिगोचर होता है। वह केवल भाव का भाव के साथ, भाषा का भाषा के साथ, ग्रन्थ का ग्रन्थ के साथ ही मिलन नहीं है, बल्कि यह बतलाता है कि मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का मिलन कैसा होता है ?”^१ इस प्रकार साहित्य में समत्व और असमत्व के सामंजस्य की शक्ति भी निहित है। साहित्य विरोधी तत्वा का पारस्परिक विरोध दूर कर उह एकता के सूत्र में आबद्ध करने में भी विशेष महायत्न हाता है।

३१। एक ही समाज और युग से प्रभावित साहित्यकारों एक साहित्य में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है, जिसका मुख्य कारण समाज में अनेक इकाइयाँ और वर्गों की सहति है। समाज में अनेक दृष्टिकोणों और प्रवृत्तियों का समावेश हाता है, जिनका सघात साहित्यकारों पर विभिन्न प्रभावों की विचार धाराओं और अभिप्रेरणा शक्तियों के रूप में होता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिये यह पारिवारिक राजनतिक ऐतिहासिक, धार्मिक, भौगोलिक तथा आर्थिक मर्यादाओं में ग्रन्थ मनुष्या से सम्बद्ध हाता है। व्यक्तित्वों की भिन्नता ही साहित्यिक भिन्नता के रूप में प्रकट होती है।

१ राजस्थान का नामकरण : प्राचीन उल्लेख

४१। ‘राजस्थान’ शब्द का प्राचीनतम प्रयोग—‘राजस्थानीयादित्य’ वि० सं० ६८२ में उत्कीर्ण बसंतगड (सिरोही) के शिलालेख में उपलब्ध हुआ है।^२ मुहम्मद नएसी (वि० सं० १६६७—१७२७) की ख्यात में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है—

“समत् १६७२। राणा अमरसिंह साहजाद खुरम सू मिलिया। तठा पछ राणा अमरसिंह उदैपुर आयो। तठा पछे ‘राजस्थान’ उदैपुर हूयो।^३

चारण कवि वारभाण कृत ‘राजरूपक (वि० सं० १७८८) नामक महाकाव्य में ‘राजस्थान’ शब्द का प्रयोग इस प्रकार हुआ है—

१ - साहित्य, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर काशीलय बम्बई, पृ० ८।

२ - राजस्थान मुरातत्व सप्रहालय अजमेर में सुरक्षित और महाकवि माधव उनका जीवन और कृतियाँ, डा० मदनमोहन माल गोर्गा नवयुग प्रकाशन, दिल्ली में प्रकाशित, पृ० ४।

३ - राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की उदैपुर गाला में सुरक्षित ‘सरस्वती भण्डार पुस्तकालय’ की हस्तलिखित प्रति पत्र सं० २७। “राजस्थान के साहित्यिक ग्रन्थों में राजस्थान सम्बन्धी प्राचीनतम यही उल्लेख दिया गया है।” — राजस्थान का विगत साहित्य, द्वितीय पुस्तक भण्डार, उदैपुर,

छद्म गाथा

सप्त पुरी सिरताज कत अपवर्ग हूँत समकारण ।
 उत्तम धाम अजोब्धा, ओपै नाम ग्राम पुर ऊपर ॥२५॥
 धिर ते 'राजस्थान महि इक् छत्र भोम सामर्थ ।
 एके आण अलड, खडण माण प्राण नदम्बण्ड ॥२६॥'

इस प्रकार प्रकट होता है कि 'राजस्थान शब्द' के प्राचीन प्रयोग मुख्यतः राज का स्थान' अर्थात् राजधानी' के अर्थ में किये गये हैं। मध्यकाल में यह प्रदेश अनेक राजाओं और सामन्तों के अधिकार में था एवं राजा और सामन्त अनेक राजस्थानों के लिये 'राजस्थान' अथवा राजवाण 'राजवाण और 'राजस्थान' शब्दों का प्रयोग करते थे।

५१। ब्रिटिश शासकों ने इस प्रदेश का नाम तलगाना गाडवाना और उडियाणा आदि के अनुकरण में 'राजपूताना' दिया था। प्रदेश-सूचक 'राजपूताना' शब्द का प्रथम लिखित प्रयोग १६ वीं शती के प्रारम्भ में जाज टामस कृत माना जाता है।^२

६१। प्रगापन कार्यों में प्रदेश सूचक 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग भारतीय स्वाधीनता (१९४८ ई०) के पश्चात् विभिन्न रियासतों के एकीकरण के साथ ही प्रारम्भ हुआ है।^३

७१। प्रदेश विशेष के लिये 'राजस्थान' शब्द प्रयुक्त करने का प्रधान ध्येय कर्नल जेम्स टाड नामक सुप्रसिद्ध इतिहासकार को है, जिसने एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ 'राजस्थान' नामक ग्रन्थ लिखा है।^४ इस विषय में डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का मत है —

"प्रान्त वाचक 'राजस्थान' नाम एक विशेष मर्यादा के साथ हम सब काई स्मरण करते हैं साथ करके हिन्दुओं में, और शिक्षित लोगों में। मुख्यतया एक विदेशी की राजस्थान

- १ - सम्पादक- ५० रामकरण आसीपा, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम प्रकाश पृ० १०-११।
- २ - मिलिट्री ममोग्रस आफ मिस्टर जाज टॉमस, विलियम प्रेब्लिन, लंदन (१८७५ ई०) पृ० ३४७।
- ३ - बसिक स्टैटिस्टिक ऑफ राजस्थान, जन-सम्पर्क कार्यालय, जयपुर (१९५७ ई०) पृ० १।
- ४ - विलियम ब्रुकस, लंदन (१८२६ ई०)। (हिंदी संस्करण टाड कृत राजस्थान भाग १ खण्ड १ "राजपूत कुलों का इतिहास" मूल प्रकाशन, जयपुर, पृ० १३।)

पर प्रौढ़ि के कारण ऐसा हो पारा। निकलने हो इध्र ग्रन्थ ने भारत के हिन्दू साहित्य में और पुनर्जागृति के क्षेत्र में अमरता निराना स्थान बना लिया।^१

८१। प्राचीन काल में यह प्रदेश और इसके भू-खण्ड विभिन्न नामों से प्रसिद्ध रहे हैं। जैसे राजस्थान के उत्तरी भाग का नाम 'जाङ्गल', पूर्वी भाग का नाम 'मत्स्य', दक्षिणी-पूर्वी भाग का नाम 'गिरी', दक्षिणी भाग का नाम मेदपा^२ वाण्ड प्राग्वाट मालव और गुर्जरना, पश्चिमी भाग के नाम महवातार माड श्रवणो और मध्य भाग के नाम अर्बुद तथा सनादनभ प्रचलित रहे हैं।^३ सात्व नामक जनपद^४ और परियात्र मण्डल भी इसी प्रदेश के अंतर्गत माने गये हैं।^५ राजस्थान का महत्त्वपूर्ण भाग मारवाड के नाम से प्रसिद्ध रहा है। अतः पूर्व जाधपुर रियासत का जिनका अधिकांश भाग महत्त्व है, "राज मारवाड" भी कहा गया है।

२. जन-जीवन और राजस्थानी साहित्य

९१। राजस्थान में प्राचीन काल से अनेक जातियाँ का निवास रहा है और अनेक नवीन जातियाँ का आगमन भी होता रहा है। नृपग-शास्त्र की दृष्टि से राजस्थान में मुख्यतः ११ प्रकार की जातियाँ हैं — प्रायः और द्रविड। प्रायों में — ब्राह्मणों, राजपूतों और बंसवा आदि का तथा द्रविडों में भालो और मोला आदि की गणना होती है।

१०१। प्राचीन काल में राजपूत जाति का राजस्थान में विगम प्रभुत्व रहा और इसी कारण राजस्थान को 'राजपूताना' भी कहा गया। राजपूत जाति अपनी वीरता के लिये समस्त विश्व में विख्यात रही है तथा साहित्य, संगीत चित्र और शिल्प-स्थापत्य के क्षेत्र में राजपूतों की विगम देन मानी जाती है।

१११। राजस्थान के वैश्य अपने व्यापार-व्यवसाय और उद्योग प्रियता के कारण समस्त देश में प्रभुत्व स्थान बनाये हुए हैं तथा देश के औद्योगिक विकास में विगम योग प्रदान कर रहे हैं। अनेक वैश्यों ने साहित्यकारों का प्रोत्साहित किया और स्वयं भी साहित्य का निर्माण किया।

१ - राजस्थानी भाषा, राजस्थान विश्व विद्यापीठ गीष्-संस्थान, उदयपुर, पृ० २, (१९४८ ई०)।

२ - राजपूताने का इतिहास, डा० गीरीशंकर होरावर श्रीमा, भाग १, पृ० २।

३ - राजस्थान भारत, भाग ३, पृ० ३-४ (गाडूल राजस्थानी रिक्त इस्ट्रीटपूट बोर्डनेर) में प्रकाशित डा० वासुदेवराज अग्रवाल का निबन्ध।

४ - हमारा राजस्थान पृथ्वीनिह महता, पृ० २०-२२, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, १९५० ई०।

१२ १। राजस्थान में ब्राह्मणों ने विद्या एवं साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है। राजपूत शासकों द्वारा ब्राह्मणों का विषय सम्मान होता रहा, जिससे प्रोत्साहित हो कर ब्राह्मणों ने मौलिक और अनुवादित साहित्य की सृष्टि की।

१३ १। राजस्थान की आदिवासी जातियाँ में भील, मराठिया और भीरा मुख्य हैं। इन जातियों का निवास मुख्यतः राजस्थान के पश्चिमी प्रदेशों में है। राजस्थान में आदिवासी राजपूत राजाओं ने भीलों और भीरा से इस राज्य प्राप्त किये। आदिवासी भील और भीरा कलाओं के विषय प्रमी हात हैं।^१

१४ १। बालदिया, दणजारा और गाहूँया लूहार आदि घुमवक्त्र जातियाँ का सम्बन्ध भी राजस्थान से माना जाता है। प्राचीन काल में बालदियों और दणजारों द्वारा बैलों की सहायता से माल लाद कर सुदूर प्रदेशों तक पहुँचाया जाता था। गाहूँया लोहार बैलों द्वारा खींची जाने वाली गाड़ियों में ही अपनी निर्वाह के लिए दूध, दूध, दूध और दूध जनों की सम्बद्ध आवश्यकता पूर्ति में योग देते हैं। राजस्थान की उच्च घुमवक्त्र जातियों से सम्बद्ध साहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है।

१५ १। १९६१ ई० की जनगणना के अनुसार राजस्थान की जन संख्या २०१ करोड़ आकी गई है। उक्त जन संख्या में ८४ प्रतिशत की आजीविका कृषि और पशुपालन पर निर्भर है। इस प्रकार स्पष्ट है कि राजस्थानी जन जीवन में कृषक और पशुपालकों का विशेष स्थान है। तदनुसार राजस्थानी साहित्य में भी पशुपालन और कृषक जीवन का विस्तृत चित्रण उपलब्ध होता है। बलि जिसन रुध्रमणी रो' का युद्ध कृषि रूप में उक्त कथन का एक उत्तम उदाहरण है।^२

३ राजस्थानी भाषा

क. विस्तार - क्षेत्र

१६ १। राजस्थानी समस्त राजस्थान क्षेत्र की भाषा है। राजस्थान क्षेत्र के प्रन्तगत भूमि, भाषा, रहन सहन, विचार, व्यवहार और इतिहास आदि की दृष्टि से पश्चिमी भारत के उत्तर में सरस्वती अथवा हावड़ा नदी के सूखे थाले से दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत के

१ - भारतीय लोक कला प्र यादवी-१ राजस्थानी लोक संगीत और २ राजस्थानी लोक नृत्य, लेखक - श्री दबीलाल सामर, स० पुस्तकालय मेनारिया, भारतीय लोक-कला-मण्डल उदयपुर, प्रकाश ५० ६७-७२ और ४१-४६।

२ - पृथ्वीराज राठौर कृत, प्रकाशक स० ११७-१२८।

ढानो एव ताप्ती नदी तक और पूर्व में बेटवा नदी की ऊपरी धारा से पश्चिम में उमरकाट सहित सिंध नदी की पूर्वी धारा तक समस्त भाग को लिया जाना चाहिये।^१ वर्तमान राजस्थान राज्य की सीमाएँ वास्तव में अशोक शासक द्वारा उनकी सुविधा के लिए निर्धारित राजतूताने की साम्राज्य में सामान्य परिवर्तन कर निर्धारित की गई हैं।

१७१। राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत वर्तमान राजस्थान राज्य की बोलियों (धौलपुर और करौली की 'ब्रज' के अतिरिक्त) के साथ ही मध्यप्रदेश के अन्तर्गत मालवी, पहाड़ी प्रदेश की भीली, पंजाब और काश्मीर की गूजरी और बणजारी तथा बानदिया आदि घुमक्कड़ जातियों की समस्त बोलियाँ मानी जाती हैं।^२ राजस्थान के मारवाड़ी व्यापारियों के साथ राजस्थानी भाषा का प्रवेश भारत के अनेक भू-भाग में हो चुका है।^३ इस प्रकार राजस्थानी भाषा भाषियों की संख्या दो करोड़ आकी गई है।^४

ख सीमाएँ

१८१ राजस्थानी भाषा की सीमाएँ निम्नलिखित भाषाओं से मिलती हैं और राजस्थानी भाषा क्रमशः अपना प्रभाव छोड़ती हुई निम्नलिखित भाषाओं में विलीन हो जाती है—

- (१) उत्तर-पंजाबी,
- (२) पश्चिमात्तर- हिंदकी या पश्चिमी पंजाबी,
- (३) पश्चिम- सिंधी, लहदा और पंजाबी,
- (४) दक्षिण-पश्चिम- गुजराती,
- (५) दक्षिण- गुजराती और मराठी,
- (६) दक्षिण पूर्व- मराठी और बुंदेली,
- (७) पूर्व- बुंदेली और ब्रज, और
- (८) उत्तर पूर्व- वागड़।

१ - हमारा राजस्थान, पृथ्वीसिंह मेहता, पृ० २।

२ - राजस्थानी भाषा, डा० मुनीतिकुमार घाटुर्ज्या, पृ० ५ और ६।

३ - लिंक्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया जाज प्रिन्सल खण्ड १, पृ० १५७।

४ - राजस्थानी भाषा की रूपरेखा से० पुरुषोत्तमलाल मेतारिया, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, वाराणसी १९५३ ई०, पृ० २।

ग. वर्गीकरण

१६१ राजस्थानी भाषा की विभिन्न बोलियाँ का वर्गीकरण निम्न रूप में किया जा सकता है —

- (१) पश्चिमी राजस्थानी — मारवाड़ी मेवाड़ी जिसमें धाटणी, थली, बीरानेरी, शेखावाटी, गोडवाड़ी आदि का समावेश होता है।
- (२) उत्तर पूर्वी राजस्थानी — अहीरवाटी आर मेवाती।
- (३) मध्यपूर्वी राजस्थानी — डूँडाड़ी-हाडौती जिनमें तोरावाटी, जैपुरी, काठेडा, राजावाटी, अजमेरी, नागरचाल आदि का समावेश होता है।
- (४) दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी राजस्थानी — निमाड़ी और मालवी।
- (५) पहाड़ी राजस्थानी — भीली।

२० १। डा० जाज प्रियर्सन ने भीली बोलियाँ का राजस्थानी के अंतर्गत नहीं माना है^१ किन्तु डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने भीली बोलियाँ को राजस्थानी भाषा के अंतर्गत ही माना है।^२ प्राचीन काल में राजस्थान के अधिकांश भू भागों में भीला का शासन था। कानान्तर में भीला को पहाड़ी भाग में जाना पड़ा। राजस्थान में भासी का प्रमुख पेश बागड़ और भीली बोली बागड़ी का नाम से प्रसिद्ध है। साथ ही भीली बोली में राजस्थानी भाषा की विशेषताएँ प्राप्त होती हैं इसलिए भीली का राजस्थानी भाषा के अंतर्गत मानना ही आवश्यक होगा।^३

घ. नामकरण

२१ १। राजस्थानी भाषा का नामकरण अनेक प्राच्यनिक भाषाओं के नामकरण की भाँति आधुनिक विद्वानों की देन है और इसका आधार 'राजस्थान' है। 'राजस्थान' की भाँति "राजस्थानी भाषा" नाम भी देश विदेश में प्रचलित एक माय है।

२२ १। राजस्थानी भाषा का प्राचीन काल में मरुभूमि भाषा^४ माहभाषा^५,

१ — लिग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, खण्ड ६, भाग २, पृ० १।

२ — राजस्थानी भाषा पृ० ५, ६।

३ — राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० २-५।

४ — 'मरुभूमि भाषा तस्यो मारग रम आद्यी रीत सु' रघुनाथ रूपक गीता रो, कवि मछ
; कृत नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

५ — 'कर आणदक बेस बहुण मार भाषा' बडो पावू प्रकाश, मोडजी।

मरुदेशीया भाषा^१ और मरुवाणो^२ भादि नामा स अभिहित किया गया है। राजस्थानी का साहित्यिक रूप मुख्यतः पश्चिमी राजस्थानी अर्थात् मारवाडी रहा है और इस रूप में साहित्य भी प्रबुर परिमाण में प्राप्त होता है। मारवाड़ राजस्थान का विनैय भू भाग है और मारवाड़ा विस्तारमैत्र, जनसरया एव साहित्य की दृष्टि स अनेक भारतीय भाषामा से बढकर है। राजस्थानी भाषा का समस्त राजस्थान में प्रचलित एक विंगय शैली 'डिगल' भी मुख्यतः मारवाडी पर ही आधारित है। उक्त कारणो स मारवाडी को राजस्थानी भाषा का साहित्यिक रूप माना गया है।

ड राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति

२३ १। भाषागत और जातिगत विशेषतामा क आधार पर सत्तर की भाषाएँ १४ परिवारा में विभक्त की गई है जिनमें 'भारत जर्मनिक' अथवा 'भारत युरोपीय' परिवार भी है।^३ इस भाषा परिवार में समस्त उत्तरी भारत की भाषाएँ ईरान अफगानिस्तान और पाकिस्तान की भाषाएँ तथा समस्त युरोपीय भाषाओं का समावेश होता है। भारत 'जर्मनिक' कहने से भारत और जर्मनी की भाषामा का ही बोध हाता है तथा भारत युरोपीय कहने से भारत और युरोप का ही बोध होता है और इस भाषा-परिवार से सम्बद्ध अय प्रदेश छूट जाते हैं। दक्षिण भारत की भाषामा द्रविड परिवार की हैं जिनका समावेश इस परिवार में नहीं किया जा सकता। अस्तित्व उक्त दाना ही नाम भ्रुटिपूर्ण हैं। इस परिवार से सम्बद्ध देशो क निवासी मूलतः आर्य माने गये हैं इसलिये इसका नाम 'आर्य भाषा परिवार' सवया उपयुक्त है।^४

२४ १। आर्य-भाषा परिवार की भारतीय शाखा में सवप्रथम ऋग्वेदिक भाषा के रूप प्राप्त हाने है। ऋग्वेद का समय १५०० ई पू० माना गया है। वैदिक भाषा में सम्बद्ध जनता द्वारा धारे धीरे परिवर्तन होने लगे अस्तित्व बयाकरण न नियमा-उपनियमा द्वारा इसको 'संस्कृत' करने का प्रयत्न किया। अततागत्वा पाणिनि (५०० ई० पू०) ने अपन ब्याकरणगत नियमो स इस भाषा का 'संस्कृत' रूप में सदा क लिये सुरक्षित कर दिया। इस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा का उत्त विकास काल १५०० ई० पू० तक माना गया है।

२५ १। भाषा का स कृत रूप स्थिर हा जान पर भा लौकिक भाषा में परिवर्तन हाते रहे। कानातर म यह नव-व्यक्तित भाषा साहित्य सम्प न भी हो गई। मुख्यतः बौद्ध

१ - प्रायो मरुदेशीया प्राकृत मिश्रित भाषा वगमास्कर महाकवि सूर्यमल मिश्रण।

२ - डिगल उपनामक कृक मरुवाणोड्ड विधेय वगभास्कर, महाकवि सूर्यमल मिश्रण।

३ - भाषा-विज्ञान डा० भोलानाथ तिवारी, किताब महल इलाहाबाद (१९६१) पृ० ९०।

४ - राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० ७।

श्रीर जैनों ने इस भाषा में साहित्य रचना की। इस भाषा को 'प्राकृत' कहा गया। प्रारम्भिक रूप का "पाली-प्राकृत" श्रीर "अद्धमागधी" कहा गया। कालांतर में मागधी गौरसेनी श्रीर महाराष्ट्री प्राकृता में भा साहित्य रचना हुई। 'प्राकृत' भी व्याकरण के नियमों से बढ़ ही गई ता जनता द्वारा एक नवीन भाषा का विकास हुआ जिसका, 'अपभ्रंश' कहा गया। भरत मुनि के नाम्यशास्त्रानुसार अपभ्रंश नाम देग-भाषा के रूप में दूसरी तीसरी सदी ई० में प्राप्त हान लगता है। आचार्य मान्ण्डेय के मतानुसार अपभ्रंश के मुख्यत तीन रूप माने गये हैं— १ नागर २ ब्राह्मण और ३ उपनागर।^१ स्थान-भेद के अनुसार अपभ्रंश के उपभेदों की सह्या प्राकृत चन्द्रिका में सप्तार्धस बताई गई हैं—

ब्राह्मणो लाटवैदभविपुनागरनागरी ।
 वार्धरावत्यपाचालटाक्कमालवकैकया ॥
 गौडोढहैवपाश्चात्यपाण्ड्यकौतल सेंहला ।
 कालिङ्गप्रार्च्यकणाटकाञ्चयद्राविडगौर्जरा ॥
 आभीरो मध्यदेशीय सूक्ष्मभेदव्यवस्थिता ।
 सप्तविंशत्यभ्रंशा वैतालादिप्रभेदत ॥

२६ १। नागर अपभ्रंश उक्त अपभ्रंश रूपों में मुख्य माना गया है। नागर अपभ्रंश राजस्थान की घरना भाषा थी और अपभ्रंश समय की प्रधान साहित्य सम्पन्न भाषा भी थी। नागर अपभ्रंश का प्रसार सम्पूर्ण राजस्थान के साथ अधिकांश उत्तर भारत में था। नागर अपभ्रंश का व्याकरण हेमचन्द्राचार्य ने लिखा। इसी नागर अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति हुई।

२७ १। राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति 'नागर अपभ्रंश' से होने में सन्देह प्रकट करते हुए कतिपय विद्वानों ने 'नागर अपभ्रंश' के स्थान पर भिन्न नाम प्रस्तुत किये हैं। उदाहरण स्वरूप रिचाड विशल^२ और डा० एल० पी० तेस्सोतोरी^३ ने 'गौरसेनी अपभ्रंश' से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति मानी है। यहाँ ध्यान में रखने योग्य बात है कि 'गौरसेनी अपभ्रंश' जसा नाम हमारे प्राचीन साहित्य में प्रतिष्ठित नहीं है तो अब इसकी कल्पना कर "राजस्थानी" जसी साहित्य सम्पन्न भाषा की उत्पत्ति 'गौरसेनी अपभ्रंश' से कैसे मानी जा सकती है? श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुनी^४, पुरातत्वाचार्य मुनि श्री जिनविजयजी^५

१ - प्राकृतसवस्व अ० ७ ।

२ - प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, अनु० डा० हेमचन्द्र जोशी, पृ० ६-७ ।

३ - पुरानी राजस्थानी अनु० डा० नामवरसिंह, भूमिका, पृ० १ ।

४ - अ० मा० हिंदी साहित्य सम्मेलन, समापति का भाषण, ३३ वा उदयपुर अधिवेशन का विवरण १ पृ० ६ ।

५ - काहड़दे प्रबंध, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, प्रास्ताविक बखर्क पृ० ५ ।

घोर भा. १०. ४० 'निवेदना' में 'नागर प्रभंग' के स्थान पर 'गुरंगी प्रभंग' नाम
 [] है। इस नाम के विषय में भी वह 'का नामों वाली है जिसका उद्गम गोरगरी
 प्रभंग के सम्बन्ध में किया गया है। साथ ही 'गुरंगी' का शेष गुजरात ही हो सकता है।
 डा० मुनीलकुमार चाटुर्जा १ रा० भा० भा० उदात्त 'गोरा' प्रभंग : 'ग' बनाई ?^१
 जिसके विषय में भी उक्त कहा जाता है। गोरा ; का शेष भी बहुत संभाव्य है। राजस्थानी
 भाषा का उद्गम नागर प्रभंग में भाषा में यह जाति उठाई गई है कि नागर प्रभंग
 से नागर जाति को प्रभंग में संशय है अपना नागरिका का प्रभंग में ?^२ वास्तव में
 नागर प्रभंग में भाषा नागर जाति अपना नागर का सम्बन्ध बनाता हुआ नष्ट
 मान है। नागर प्रभंग का प्रचलित धर्म राजस्थान घोर गुजरात में प्रचलित
 साहित्य प्रभंग है। नागर प्रभंग के स्थान पर कोई दूसरा प्रयोग हो करना है तो
 हमारे मत में 'गुरंगी प्रभंग' संभव उपयुक्त होगा। परन्तु राजस्थान घोर
 गुजरात की भाषा का साहित्य सभी तब डा० एम० पी० तन्नातारी^३ घोर डा० जार्ज
 रिचमन्ड^४ ने ए० ही माना है। डा० तन्नातारी १ गुजरात की उदात्त भा. इति प्राचा
 परिभा. राजस्थानी में विभक्त जाय पदतान के परिणाम-रूप बनाई है।^५ डा०
 मुनीलकुमार चाटुर्जा १ रसोकार किया है कि यह प्राचीन पश्चिमी राजस्थान गोरगरी
 प्रभंग मध्य-गोम प्राकृत से भिन्न या घोर राजस्थानी गुजराती का मेल परन्तु-नजाबी
 से तथा कुछ कुछ विधा में है किन्तु मध्य-ग की बानी से नहीं है। साथ ही डा० चाटुर्जा
 ने यह भी प्रकट किया है कि राजस्थान में जो धर्म भाषा आई वह मध्य-ग का धार से
 नहीं आई घोर सम्भव है कि वह हिमालय की घाटी प्रभंग उदयपुर की राह से आई
 है।^६ इस प्रकार स्पष्ट होता है कि गोरगरी प्रभंग से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति
 न हो कर राजस्थान में प्रचलित नागर प्रभंग से ही हुई है।

२८१। प्रभंग घोर राजस्थानी भाषा के बीच सीमा रेखा निर्दिष्ट करना एक
 कठिन कार्य माना गया है। राजस्थानी भाषा के प्राचीनतम रूप विजयपुर के वी. शताब्दी से

१ - गुजराती लॅंग्वेज एण्ड लिटरेचर, भा० २ पृ० ६।

२ - राजस्थानी भाषा पृ० ४५।

३ - प० मोतीलाल जी मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य
 सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ३।

४ - पुरानी राजस्थानी अनु० नामवरसिंह काशी नागरी प्रचारिणी सभा, धाराणसी,
 भूमिका पृ० १०।

५ - लिन्ग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया खण्ड ६, भाग ६, पृ० १५।

६ - पुरानी राजस्थानी, अनु० नामवरसिंह, काशी नागरी प्रचारिणी सभा धाराणसी,
 और 'श्रीरोजिन एण्ड डेवलपमेंट आफ बंगाली लॅंग्वेज', डा० मुनीलकुमार
 चाटुर्जा, भाग १, पृ० ६।

७ - राजस्थानी भाषा, राजस्थान विद्यापीठ, शोध संस्थान, उदयपुर, पृ० ४५, ४७।

प्राप्त होते हैं।^१ शालिभद्र सूरि रचित “भरतवर बाहुवली राम” का रचनाकाल वि० स० १२४१ है।^२ १३वीं सदी की अथ राजस्थानी भाषा की रचनाओं में “जबूस्वामी चरित”^३ ‘स्यूनिमद्र रास’^४, रजतगिरि रास’^५ ‘ग्रावू रास’^६ और चन्दनबाला रास’^७ आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन रचनाओं से प्रकट है कि १३वीं सदी वि० में राजस्थानी भाषा में विकसित हो कर साहित्यिक स्वरूप प्राप्त कर लिया था। किसी भाषा को बोल-चाल के स्तर से विकसित हो कर साहित्यिक स्वरूप प्राप्त करने में कुछ गताव्यों का समय अवश्य लगता है।

२६१। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उद्भवकाल महापण्डित राहुल साह्यायन ने ‘सिद्ध सामंत युग’ के रूप में ७६० ई० निर्धारित करते हुए इस युग के साहित्य का समस्त भारतीय आर्य भाषाओं की सम्मिलित निधि घोषित किया है।^८ डा० रामकुमार चमन इस युग का ‘अधिकाल’ की सना दत्त हुए उसका प्रारम्भ स० ७२० वि० माना है।^९ राजस्थानी भाषा और साहित्य का प्रारम्भकाल प० मोतीलाल जी मनारियाँ १०४५ वि० स० से^{१०}, श्री नरोत्तमदास जी स्वामी स० ११५० वि० से^{११} और श्री उत्पलसिंह भटनागर वि० स० ७०० (६४३ ई०) से^{१२} मानते हैं। इस विषय में उल्लेखनीय

१ - राजस्थानी गद्द कोष, श्री सीताराम लालस, राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर, भूमिका पृ० ८८ ।

२ - क - भारतीय विद्या, स० मुनि जिनविजय जी, भाग २, अंक १ पृ० ११६ ।
ख - हिंदी काव्यधारा राहुल साह्यायन पृ० ३६८-४०८ ।

३, ४, ५ - जन गुजर कविश्री, मोहनलाल दत्तीचंद देसाई, भाग १, पृ० १४ और भाग ३ पृ० ३६५-३६७ ।

६ - राजस्थानी ग्रामासिक, कलकत्ता, भाग ३, अंक १ ।

७ - राजस्थान भारती, बीकानेर भाग ३, अंक ३४ ।

८ - हिंदी काव्य धारा किताबमहल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, (१९४५ ई०), भूमिका पृ० १२ ।

९ - हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायण लाल प्रयाग, चौथा संस्करण (१९५८ ई०), पृ० ५० ।

१० - राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ७७ ।

११ - राजस्थानी साहित्य एक परिचय नवयुग ग्रंथ बुटोर, बीकानेर, पृ० २२ ।

१२ - राजस्थानी साहित्य विषयक निबंध, हिंदी साहित्य, द्वितीय खण्ड, स०— डा० धीरे द्र वर्मा (प्रधान) और ब्रजेश्वर वर्मा (सहकारी), भारतीय हिंदी परिषद्, प्रयाग, (१९५६ ई०) पृ० ५१६ ।

है कि मरु भाषा का प्राचीनतम लिखित प्रमाण सं० ८३५ वि० का प्रा० ११ गुप्त है।^१ किसी भाषा धरणा बोली को विकसित होकर धरणा नाम प्राप्त करने में कम से कम सौ सवा सौ वर्षों का समय धरणा लग जाता है। गांध जी राजस्थानी के पूर्वी कि० वि० सं० ७०० (११^२ ई०)^२ देवगिरा कृत चतुर्थांग भाषा वि० सं० ६०० (८४३ ई०)^३, गोरखनाथ कृत गोरखनाथो वि० सं० ६०० (ई० ८४३)^४, गुमाग कृत गुमाग रावो वि० सं० ६०० (ई० ८४३)^५ और देवगिरा वि० सं० ६६० (ई० ६३३) कृत नायकधम्म दोहा पार दर्शनमार^६ को उपनिधि भी शामिल है। इगोवए राजस्थानी भाषा के उदयति काल को ८ वा सौ विक्रमी का प्रथम चरण मानना उचित होगा।

च. राजस्थानी भाषा का विकास

३०१। राजस्थानी भाषा के विकास काल को छोटे रूप में निम्नलिखित चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(अ) प्रस्तावना काल— वि० सं० ८०७ (७१० ई०) से वि० सं० १०५७ (१००० ई०)

(आ) प्राचीन राजस्थानी भाषा काल— वि० सं० १०५८ (१००१ ई०) से वि० सं० १५१७ (१५०० ई०)

(इ) मध्यकालीन राजस्थानी भाषा काल— वि० सं० १५५८ (१५०१ ई०) से वि० सं० १६०७ (१८५० ई०)

(ई) आधुनिक राजस्थानी भाषा काल— वि० सं० १६०८ (१८५१ ई०) से प्रारम्भ।

अ. राजस्थानी भाषा का प्रस्तावना काल —

३११। राजस्थानी भाषा के प्रस्तावनाकालीन रूप प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं होते जिसका मुख्य कारण यह है कि इस काल का अधिकांश साहित्य श्रुतिनिष्ठ था। श्री विशारसिंह बार्हस्पत्य ने ६वें सदी के इस राजस्थानी नायको और जोगियों का बरण

१ — मुनि उद्योतन सूरि रचित कुवलय माला राजस्थानी शब्द कोष, पृ० ८८।

२, ३, ४, ५, ६ — राजस्थानी साहित्य विषयक निबंध, लेखक — प्रो० उदयसिंह भटनागर, हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड, सम्पादक — डा० धारेंद्र वर्मा (प्रधान) और जगज्ज्वर वर्मा (सहकारी), भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग (१९५६ ई०)।

क्रिया है जिनका मुख्य कार्य पूवजा द्वारा सुनार्द्र हुई रचनाओं का कण्ठस्थ रख कर जनता को सुनाना था।^१ भाषा विशेष में प्रारम्भिक साहित्य प्रायः मौखिक होता है। उदाहरण स्वरूप— वेद पुराण, उपनिषद् आदि को लिया जा सकता है जो प्रारम्भ में मौखिक थे और मात्रांतर में लिपिवद्ध किये गये। आधुनिक काल में मौखिक रूप में प्रचलित लोकसाहित्य का मूल इसी कारण वेग में प्राप्त होता है।^२

३२१। नागर अपभ्रंश का प्रभाव समस्त उत्तरी भारत में था अतएव नागर अपभ्रंश से विकसित होने वाली प्राचीन राजस्थानी का प्रभाव भी अधिकांश उत्तरी भारत में रहा। राजस्थानी भाषा का प्रभाव कभी पूर्व में काशी तक था यह कबोर का रचनाओं और भाषा से प्रमाणित हो चुका है।^३

३३१। राजस्थानी भाषा के प्रस्तावना काल में भारत पर मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ हो चुके थे इसलिए परम्परागत शांति रस मयी अपभ्रंश का यधारा में परिवर्तन होकर वीर रस मयी राजस्थानी काय धारा का विकास प्रारम्भ हुआ।

३४१। प्रस्तावनाकालीन राजस्थानी का कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं—

गुरु उवण से अमिय रसु, धाव न पोअउ जेहि ।
बहु सत्यत्य मरुत्थलहि तिसिण मरिअउ तेहि ॥
चित्ताचिति पि परिहरहु, तिम अन्धहु जिम बालु ।
गुरु वअणे दिठ मति करु, होइजई सहज उलालु ॥ — सरहृषा (७६ ई०)^४

कसिण कमल दल लायण चल रे हत ओ ।
पीण पिथुल थण कडियल भार किलत ओ ॥
ताण चलिर बाळियावलि कळयळ सह ओ ।
रास रम्मिजइ लढभइ जुबई सत्य ओ ॥ — उद्योतन सूरि (७७२ ई०)^५

१ - "डिगल भाषा और उसका साहित्य" सौरभ भालावाड, भाग १, सहा १ ।

२ - क - रेवरेड सर जो० डब्ल्यू० कावस, दी माइयोलोजी आफ दी आर्यन नेशंस, प्रथम अध्याय ।

ख - शोध पत्रिका, उदयपुर, वय २, अंक १ में प्रकाशित सम्पादकीय, लेखक पुरुषोत्तमलाल मेनारिया ।

३ - डोला माट रा डूहा (सूयकरण पारोक, रामसिंह और नरोत्तमदास द्वारा सम्पादित) काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रस्तावना, पृ० १६७ १७८ ।

४ - हिंदी काय धारा राहुल सांकृत्यायन पृ० ८ १० ।

५ - राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीताराम लालस, राजस्थानी शोध-संस्थान, जोधपुर, भूमिका पृ० ८८ ।

(२) अपभ्रंश के दो स्वर-समूहों 'अइ' और 'अउ' के उद्भूत रूप अर्थात् इनमें से प्रत्येक समूह के दो स्वर दो अक्षर माने जाते थे। जैसे- अच्चइ (अप०), अच्चउ (प्रा० रा०)। अपभ्रंश 'अइ' और 'अउ' संकुचित होकर क्रमशः गुजराती में 'ए' और 'ओ' तथा आधुनिक राजस्थानी में 'ऐ' और 'औ' हो जाते हैं।^१

३६१। प्राचीन राजस्थानी भाषा में मुख्यतः जैन आचार्यों, साधु साधवियों तथा, चारणा और कविरावों ने अपनी विभिन्न विषयक रचनाएँ प्रस्तुत कीं। प्राचीन राजस्थानी भाषा की एक प्रधान विशेषता यह है कि इसमें पद्य के साथ गद्य भी प्राचीन है। प्राचीन राजस्थानी भाषा के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं —

सदेसडउ सवित्थरउ, पर मह कहण न जाई ।
जो कारणगुलि मूदडउ सो बाहडी समाई ॥
सुनारइ जिम यह हिइउ, पिय उवकखि करेई ।
विरह हुयासी दहेवि करि, आसाजलि सिचेई ॥

—अदुरहमान (१०१० ई०)^२

गयण मग-सलग लोल कलोल परपरु ।
निक्करणुक्कउ नक्क चक चकमण दुहकरु ॥
उच्चलत-गुरू-पुच्छ मच्छ रिछीलिनिरतरु ।
विलसमाण जालाजडाल रडुवानल दुतरु ॥
आवत्त मयायनु जलहि लहु गोपउ जिवते नित्थरहि ।
नीसेस वसण-गण निटठवणु पासनाहु जे समराहु ॥

—सोमप्रभु सूरी (वि० सं० १२४१)^३

एक्कणि वनि बसतटा एउड अतर काइ ।
सोह कबडडो ना लहइ गेवर लक्ख विकाइ ॥
गेवर गले गळयोयी, जह खचै तह जाइ ।
सोह गळध्यण जे सहे तो दह लक्ख विकाइ ॥

—सिद्धदास चारण (वि० सं० १४८५)^४

१ - पुरानी राजस्थानी, डा० एल० पी० तेस्सीतोरी, डा० नामवरसिंह कृत हिन्दी अनुवाद, पृ० ७८ ।

२ - सदेस रासक सिधो जैन धम्म-माला सं० मुनि श्री जिनविजयजी भारतीय विद्या भवन बम्बई ।

३ - कुमारपान प्रनिबोध र० का० वि० सं० १२४१ ।

४ - बचनदास लोको रो बचनिका सं० डा० एल० पी० तेस्सीतोरी, एंग्लो-एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई ।

किलकिलती वन विचगती, वेली वर वोसास ।
 सधि सामी साहस कीउ, है एकली निरास ॥
 भणिए असाइत भव अतरि, समरि सामणिए कत ।
 हसाउलि धरतो ढली, पिउ पिउ मुक्कि भणति ॥

— असाइत, २० का० वि०स० १४२७ ।^१

हय खुरतल रेणइ रवि छाहिउ, समुहर भरि ईडरवइ आइउ ।
 खान खवास खेलि वलि धायु, ईडर अडर दुग्गतल गाह्यु ।
 दमदमकार दमाम दमककइ, डमडम डमडम डोल डमककइ ।
 तरवर तववर वेस पहुटटइ, तरतर तुरक पडइ तलहटटइ ।

— धीघर, वि०स० १४२७ ।^२

राजा अनइ महामात्यु वे जणा अशवापहारइ तउ अटवी माहि गया । भूखिया
 ह्या । बणफल खाधा । नगरि आबिया । राजा सूपकार तेडी करी कहइ । जिवे
 भक्ष्यभेद सभवह ति सगलाई करउ । सूपकारे कीधा । राजा आगइ आणिया ।
 राजेद्वि चीतविउ । मधुर मोदक पूयकादिक भक्ष्य भेद पाछेई भाविसिई । इणिए कारणिए
 पहिलउ बाकुल डोकलादिक भक्ष्य भेद भखी करी पाछइ मधुराहार भक्षणु कीघउ ।
 —तल्लप्रभ सूरि (१३५४ ई०)

इ मध्यकालीन राजस्थानी भाषा-काल—

४० १ । मध्यकालीन राजस्थानी भाषा का समय १५०१ ई० से १८५० ई० है ।
 सोलहवीं सदी ईस्वी के प्रारम्भ में गुजरात पर पूणत मुस्लिम शासकों का प्राधिपत्य स्थापित
 हो जाता है । इसी समय गुजराती का विकास एक स्वतंत्र भाषा के रूप में होने लगता है और
 राजस्थानी से इसमें भिन्नता प्रतिगाचर होने लगती है । राजस्थान और गुजरात के चारण
 साहित्यकार तथा जन साधु एवं साध्विया अथवा ही राजस्थान गुजरात की सांस्कृतिक एकता
 बनाये रखने का प्रयत्न करत हैं । इस काल की अनेक चारण और जैन रचनाएँ राजस्थान
 और गुजरात में समान रूप में लोकप्रिय रही । राजस्थानी भाषा और साहित्य से गुजराती
 भाषा और साहित्य उसकी सत्तान के रूप में पापण शक्ति सन् प्राप्त करते रहे ।

४१ १ । मध्यकालीन राजस्थानी भाषा काय की एक प्रधान शैली 'डिंगल' के नाम
 से प्रतिष्ठ हुई । डिंगल का मुख्य आधार भारवाडी बोली है, जिसको चारण कवियों ने अधिक
 प्रयत्नाया । डिंगल शैली का प्रचलन राजस्थान के सभी भागों में हुआ । साथ ही मध्यप्रदेश
 और गुजरात के चारण कवियों तथा उनके अनुयायियों ने भी इसी शैली का प्रयोग किया ।

१ व २ — प्राचीन राजस्थानी गीत भाग ६, स डा० गोबधन शर्मा 'असाइत' पृ० १४ २५,
 'धीघर' पृ० ३६ ५२, राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य सस्थान उदयपुर ।

४२ १ । शब्दा मे "घड" के स्थान पर 'ऐ' और "घउ" क स्थान पर "घी" रूप प्रचलित होने लगे थे । कतिपय शब्दा क उदाहरण निम्नलिखित है—

'घड' के स्थान पर ए— उहाले (उहालइ), सियाने (मियालइ), जागिये (जागियइ)

'घउ' के स्थान पर घी— उनमिघी (उनमिघउ), जागियो (जागियउ)

द्वित्वएण— कडवक, फडवक, उठठ, उडिडय लंगिय, मंगिय आदि ।

४३ १ । राजस्थानी साहित्य की एक शास्त्रीय शैली क रूप में द्विगल स्थिर शैली हो गई और राजस्थान के प्राय सभी भागा क साहित्यकार, मुख्यत चारण कविया ने इसमें विविध विषयक रचनाए प्रस्तुत की । मध्यकालीन राजस्थानी म "गीत" और "दूहा" नामक छंदा का प्राधाय रहा ।

मध्यकालीन राजस्थानी की लौकिक शैली का दक्षन— मीरा, चन्द्रमयी दयाबाई, दादू और अनक जैन कविया की रचनामा म होता है । मध्यकालीन राजस्थानी की लौकिक शैली के अतमत पिंगल भी प्रचलित हुई जिस पर ब्रज भाषा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।

४४ १ । मध्यकालीन राजस्थानी म विविध गलियों और विषया क पद्य क साथ ही गद्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया । मध्यकालीन राजस्थानी गद्य की विविध विधाया क रूप में द्यात वात वसावली, क्या हाल, हकीकत विगत, पीढी, याद आदि लिख गय तथा संस्कृत और फारसी शब्दों के अनुवाद भी किये गये । टीका तथा शिलालेखा और पट्टा परवाना क रूप म भी पर्याप्त राजस्थानी गद्य उपलब्ध हाता है ।^१

४५ १ । मध्यकालीन राजस्थानी भाषा मे श्रेष्ठ शब्दों के साथ ही संस्कृत तुर्की, अरबी और फारसी क तत्सम तथा तद्भव शब्द भी प्रचुर मात्रा मे सम्मिलित हो गये । मध्यकालीन राजस्थानी भाषा क कतिपय उदाहरण निम्नलिखित है -

रसि राउत बावरइ कटारी, लोह कटाकडि ऊडइ ।
 तुरक तणा पाखरिया तेजी, ते तरुआरे गूडइ ॥
 माल तणो परि बाधे आवइ, प्राणइ बिलगइ भूटइ ।
 गुडरा पाटू नोट बजावइ भिडइ प्रहार मोटइ ॥
 ऊपरिया पू नार बिडुटइ भूतलि जाजइ पाउ ।
 बाढा सूडि ढालीइ ढाचा, धरणि बलइ नीहाउ ॥

१ - क - राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीताराम जी लालस सम्पादकीय प्रस्तावना ।

ख - राजस्थानी भाषा और साहित्य, डा० हीरालाल माहेश्वरी, राजस्थानी गद्य ।

भाजइ कव पडइ रिण माया, धगड तणा घड धाड ।
माहो माहि मारेवा लाग़ा विगति किसी न कहाइ ॥ १

— पचनाभ कृत काहडदे प्रबध (२० का० वि० स० १५१२)

* 'ते घोडा गगोदकि स्नान कराव्या । तेह तणि सिरि श्री कमलि पूजा कीधी ।
तेह तणि पूठि बावनो चदन तणा हाथी दीधा । तेही तणि पूठि पच वर्ण पखर
ढाली । किसी पखर— रणपखर, जीणपखर, गुडिपखर, लोटपखर, कातलीयाली
पखर ।

— पचनाभ कृत काहडदे प्रबध (२० का० वि० स० १५१२)^२

फागुण केरा फणगरा, फिरि फिरि गाई फाग ।
चग बजावइ चग परि, आलवइ पचम राग ॥
केलि कुसु मा केरडा, वेसर सुर-तरह सोय ।
माधव कीजइ छाटना, अमर आश्चयइ जोइ ॥

— गणपति कृत मापवानल कामकदला, (२० का० वि० स० १५७४)^३

स्याम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊ वाटडिया ।
दरस बिना मोहि कड्डु न सुहावै, जक न पडत है आखडिया ।
तळफत तळफत बहु दिन धीता, पडी विरह की पासडिया ।
अब तो बेगि दया करि साहिव, मै तो तुमरी दासडिया ।
नेण दुखी दरसणकू तरसे, नाभि न वैठे सासडिया ॥
राति दिवस यह आरति मेरे, कब हरि राखे पासडिया ।
लगो लगन छूटण की नाही, अब क्यू कीजे आटडिया ।
मीरा के प्रभू कब रे मिलोगे, पूरो मन की आसडिया ॥

— मीराबाई (वि० स० १५५५-१६०३)

ऊठि अचू का बोलणा, नारी पयपै नाह । घोण पाखर घमघमी सीधू राग हुवाह ॥
हुवो अति सीधवो राग बागी हका । थाट आया पिसण घाट लागै थका ॥
अखाडा जोति खग अरि घडा खोलणा । ऊठि हरघवल सुत अचू का बोलणा ॥

— ईसरदास बारहठ (वि० स० १५६५-१६७५)^४

१ - स० श्री के० बी० ध्यास, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

२ - वही ।

३ - प्रका० गायकवाड ओरिएण्टल सिरोज, विश्व विद्यालय, बडोदा ।

४ - हालां भाला रा कुण्डलिया, स० प० मोतीलालजी मेनारिया, पृ० ५, द्वितीय
पुस्तक भण्डार, उदयपुर ।

सागो धरम महाय बाबर सू भिडियो बिहस ।
अकर कदमा आय, पडे न राण प्रतापसी ॥
अकर घोर अघार, ऊघाणा हि दू अवर ।
जागै जगदातार पोहरे राण प्रतापसी ॥

— दूरसाजी बादा (वि० सं० १५६२ १७१२)^१
पहिलो मुल राग प्रगट यियो प्राची अरुण कि अरुणोदय अमबर ।
पैले किरि जागिया पयोहर, सभया बदण रिखेसर ॥

— महाराज पुम्बोरान राठोड (वि० सं० १६०६-१६५७)^२
दाडू इण ससार सो, निमख न कीजो नेह ।
जामण मरण आवटण, छिन छिन दाभे देह ॥
दाडू सब जग निरधना धनवता नहि कोइ ।
सो धनवता जाणिए, जाक राम पदारथ होइ ॥

— बाबूवयालजी (वि० सं० १६०१ १६६०)^३
सखि आयउ सावण मास पिउ नही माहरइ पासि ।
कत बिना हू करतार, कीधी कि सामणी नारि ॥
भाद्रबइ बरसइ मेह बिरहण धूजइ दह ।
गयउ नेमि गढ गिरनारि निरवही न सकी नारि ॥

— समयसुंदर (वि० सं० १६२० १७०२)^४
सुणि रामो सबळ रो एम बालिया अडोखभ ।
विडग आरि दळ विलद जवन खग हणू रूप जम ॥
धण भलू खग घाव, साम निज काम सुधारू ।
सिर समपू सकर नू रभ चौसरि गळ धारू ॥
जग तणी माह माया तजू जिम गोपीचंद भरघरो ।
चरि रयां अमरपुर मफि चहू, अमर कौत सज आपरो ॥

— कविया करणोदान (२० का० वि० सं० १७८७)^५

१ - बिहद दिहसरी, प्रताप लभा उदयपुर ।

२ - बेलि किसान हकमणो री धद सं० १६ ।

३ - बाबूवाणी ।

४ - बापूमासा समय-सुंदर कृत कुमुमांजवी, सं० श्री अमरचंद नाट्या और श्री अंबर
सात नाट्या, अमय जन प्रचालय, बीकानेर ।

५ - सूरप्रकाश, सं० श्री सोनाराम सातस, राजस्थान प्रायविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

साचो मित्र सचेत, कही काम न करे किसी ।
हर भरजण रे हेत, रय कर हाक्या राजिया ॥
मलयगिरि मभार, हर कोइ तरु चदण हुवै ।
सगत लहै सुधार, रूखा ने ही राजिया ॥

—कपाराम लिडिया (१६ वीं सदी वि०)।

इं आधुनिक राजस्थानी भाषा-काल—

४६ १। आधुनिक राजस्थानी भाषा-काल का प्रारम्भ सन् १८५१ ई० से होता है । आधुनिक राजस्थानी भाषा की प्रधान विशेषता यह है कि इसका "डिगल" के विविध बंधनों से मुक्ति मिल गई है, जिनके परिणाम स्वरूप राजस्थानी का रूप जनता के लिए सव्या निक्ट एव बोधगम्य हो गया है । उदाहरण के लिए बसरीसिंह बारहठ, कोटा (१८७३ १६४२ ई०) ऊमरदान लालस (ज० स० १९०८), नाथूदान महियारिया (ज० १८६२ ई०) और गतिदान कविया (ज० १९४० ई०) आदि की सरल सरस रचनाओं को देखा जा सकता है ।

राजस्थानी भाषा की लौकिक गैली भी आधुनिक काल में विकसित होती रही । भीरा और दादू आदि सत्ता की लौकिक गैली में ही आधुनिक काल में महाराज बतुरसिंहजी ने विविध विषयों पर सरल और पद्यमयी रचनाएँ लिखी जिनका जनता में विशेष प्रचार हुआ ।

४७ १। पश्चिमी भाषा-साहित्य का प्रभाव भी आधुनिक राजस्थानी भाषा पर दृष्टिगत होता है । उदाहरण स्वरूप यूरोपीय भाषाओं के अनेक शब्द आधुनिक राजस्थानी भाषा में सम्मिलित हो गये हैं । यथा —

‘मफसर, भरदली, भलमारी, अस्पताल, इंजण, इस्कूल, इस्टेसण, मोफिम, एडवोकेट, कडक्टर, कप कम्पाडर कालर किनास, कुली, गारड गिलास चाक्लेट, चक, चयरमन, टिकट, टेम, टेलीफोन, टेसण, दर्राज, माटिस, डाक्टर, डिपनी नेकलेस, पिन पेनसिज, फाइल, फुटबोल, फुन, बटण चाइसिकल, बुरन चूट, बैक, बार्ड, मनीषाडर, मास्टर, मिलेट्री, मोटर, रूल, रेल, रेल्वे, वाट, साइकल, सिगल, सैंडल, सोडा, हाल्डर ।’ आदि ।

४८ १। आधुनिक राजस्थानी भाषा के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं —

रहट फरे चरख्यो फरे, पण फरबा में फेर ।
धो तो बाड हरयो करे, वो छू ता रा डेर ॥

बारड तो कहतो फरे, हर कीने हकनाक ।

जा री व्हे व्हीने कहै, हिये लिफाफो राख ॥

—महाराज चतुरसिंह (वि०स० १९३३ १९८६)^१

सत ऊजळ सदेस, उदयराज ऊजळ अखै ।

दोपै वारो देस ज्यारो साहित जगमगे ॥

रटा वीर रजधान रा, साचो मत्र सदीव ।

जीवै देस समाज वै, साहित जिका सजीव ॥

—श्री उदयराज उज्ज्वल (जम वि० स० १९४२, वतमान)^२

‘राजस्थानी साहित्य मे जको तेज पैली हो वो ही आज भी है, कठे हो गयो कोनी । राजस्थान रे आज रे कवि म भी वाही प्रतिभा, वाही देशप्रेम, वाही आत्माभिमान वो ही तेज और वा ही आग भरी है । गाव गाव म आज भी इसा कवि बैठा है । पण वे प्रकाश म कोनी आवे । राजस्थानी रो आ नवा साहित्य प्रकाश म आवसो जके दिन ससार देखसी के राजस्थानी साहित्य रो तेज काई भाव घटयो कोनी ।

—ठाकुर रामसिंह (जम स० १९५६, वतमान)^३

पसवाडो मत फेर निदालू, जागण रो वेळा आई ।

दिन उगयो चिडकोली बोली, आभै में लाली छाई ।

माटी मुळकी, बीज पमीज्या, कू पल पर जोवण छायो

फल पातडी विद्धिया बण गी धरती रा मन अगढायो ।

योडी सी जे आख माज ली, निजर घणो ही आवेलो ।

जे देखी अण देखी कर दी, बिना मोत मर जावेलो ॥

—श्री मेघराज मुकुत (जम स० १९८० वतमान)^४

गिरह

श्रीरे प्रखर प्रीत रा भूलणा,

घां फलिया जोवण मद उभले ।

अभाव री अमली पोड

परतण रा छिण अणमणा

उर पतडा उतरै ।

१ - राजस्थानी भाषा और साहित्य, प० मोतीलाल जी मेनारिया, पृ० २१६ ।

२ - राजस्थान की रतघारा पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० २६, २७ ।

३ - राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० २२ ।

४ - राजस्थान के कवि, भाग २, गणपतश्री श्री रावत सारस्वत राजस्थान साहित्य एजेंसी जयपुर, पृ० ११६ ।

था सो बोभाळ न हरगिर आदम्बो,
था सो खरो न वासग जैर ।
पल पल कळप कलपना रो ।

— श्री नारायण सिंह भाटी (वर्तमान)^१

अडवो ऊम्पो खेत मे,
सोनो निपजे रेत में,
खबरदार । हरियाळी खेती रे कुण नजर लगावै,
रात अघेरी वाड तोड श्रो कुण छाने सी आवे ?
ऊजड चाले रे,
हरी भरी खेती धूमर घाले रे ।

— श्री गजानन वर्मा (वर्तमान)^२

रगभीने परभात, पवन रो मुघरो हेलो ।
चहके बैठी छान, कहेयो वो अलबेलो ।
कुकड रो कुरळाट, सिकारी सीगी चाला ।
पण पोडया घर सेज, पुरस नी जागरण बाला ॥
वा पोडणिया काज, हम नी तपणी जगसी ।
साभ समै घरनार, सजोरे फेर न लगसी ।
बाबल आता पेख, बालिया हुडी न करसी ।
वाला होडाहोड, फेर नी कडिया चढसी ॥

— रामस घे की "एलीजी" का राजस्थानी पद्यानुवाद

— श्री गक्तिदान कविया (वर्तमान)^३

४ ललित कलाएं और राजस्थानी साहित्य

४६ १ । राजस्थान प्रदेश की महानता और विविधता के अनुरूप ही यहां की ललित कलाएं महान हैं । राजस्थान के प्राकृतिक वातावरण में मरुस्थलीय टीला, भरी-हरी पर्वत श्रेणियों, उपजाऊ घाटियों, कल-वन निनादिनि मरिताओं और सुविस्तृत सरोवरों का अपूर्व सामंजस्य हुआ है । राजस्थान के प्राकृतिक वातावरण की विविधताओं से प्रेरित राजस्थानी

१ - राजस्थान के कवि, भाग २, पृ० ७७ ।

२ - सोनो निपजे रेत मे ।

३ - चाणो, मासिक, सं० श्री विजयदान देवा रूपायन प्रकाशन, बोहरदा (जोधपुर), अंक १ ।

बलाभा में भी माह्व विविधताभा का धरूठा सामंजस्य हुआ है ; राजस्थानी साहित्य का संगीत चित्र और नृत्य से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है इसलिये सम्बन्धित बलाभा पर दृष्टिपाठ करने पर सर्वथा प्रासंगिक हुआ ।

क. मगीत

५० १ । भारतीय सस्कृति का एक शीतम्पन्न मन्त्र होने से राजस्थान में भी भारतीय संगीत का विकास हुआ । राजस्थान का राजपूत नरेशा और सामन्तो ने न केवल संगीतभोग को प्रथम तथा प्रोत्साहन दिया वरन् अपने-आप स्वयं भी संगीत के उत्थान में सक्रिय भाग लिया । राजस्थान के विविध तीर्थों और मठों आदि धार्मिक क्षेत्रों में भी संगीत का प्रोत्साहन प्राप्त हुआ । राजस्थान के अनेक भक्त कवियों ने संगीत की विविध राग रागिनियों का अनुसार गैय पदों की रचना कर संगीत और साहित्य की एकता को प्रतिष्ठित किया । साथ ही मुगल साम्राज्य के पतन के समय अनेक प्रमुख भारतीय संगीतज्ञ और उनके घरानों का राजस्थान का राज-दरबारा में प्रथम प्राप्त हुआ ।

५१ १ । महाराणा कुम्भा (वि० सं० १५६०-१५२५) स्वयं संगीतशास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान् थे जिन्होंने संगीत विषयक तीन ग्रन्थों की रचना की — संगीतराज संगीतमीमासा और सूडप्रबन्ध ।^१ इनमें से संगीत राज मुख्य है जिसकी रचना १६००० श्लोकों में की गई थी ।^२ इस बुहद् ग्रन्थ के कतिपय भाग प्रकाशित भी हो चुके हैं ।^३

५२ १ । भक्त कवियत्री मीराबाई ने संगीत के विकास में विशेष योग दिया जिनके भक्ति विषयक पदा को सपूर्ण देश में भावपूर्वक विभिन्न राग रागिनियों में गाया जाता है । भारतीय मगीत की रागों में 'मीराबाई की मलार' भी प्रसिद्ध है । राजस्थान में प्रचलित रागों में 'मिधु' और 'माड' भी भारतीय मगीत में विषय स्थान रखते हैं । 'मिधु राग' की रचना सर्वथा उपयुक्त माना गया है जिसका उत्पन्न राजस्थान के अनेक वाग-ग्रन्थों में हुआ है—

हूकले सीधवो वीर कलहल हुवे । वरण कजि अपधरा सूरिया सह बुवे ॥

— हातां भातां रा कुण्डलिया, ईसरदास (वि० सं० १५६५-१६०६)^४

१ — महाराणा कुम्भा, डा० हरविलास शारदा, पृ० १६६ ।

२ — डा० भोभा, रा० ६० जिल्द १ पृ० ३२ ।

३ — क — नृत्यरत्नकोश, स० रसिकलाल परीख और डा० प्रियबाला गाहू, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

ख — संगीत राज स० सी० कृष्ण राजा, अनुप संस्कृत पुस्तकालय, बोकारो ।

४ — स० प० मोनालालजी मेनारिया, हितपी पुस्तक भण्डार, उदयपुर ।

गाज ब्रवाल पड रोल गेणाइया । सालुले सिंधुये राग सरणाइया ॥

— कलमणी-हरण, सार्याजी भूला (वि०स० १६३२ १७०३) १

ग्राघा पडवा श्रीलगण, जागड जीमणजाग । रण भडतां भड दूर को, सुणसी सीधुराग ॥

— वीर सतसई, सूर्यमल जी (वि० स० १८७२ १६२५) २

५३ १। 'माड राग' का भी राजस्थानी काय एव संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। माड राग की उत्पत्ति जैसलमेर प्रदेश में मानी गई है।^३ माड राग मुख्यतः शृ गार रस के लिये प्रयुक्त होता है। राजस्थानी "दूहा" छन्दो को माड राग में अधिक गाया जाता है।

५४ १। बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह (वि०स० १७२६ ५३) के शासनकाल में संगीत विषयक कतिपय महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गये जिनमें प० भाव भट्ट कृत सगात अनूपा-कुश, अनूप संगीत विलास और अनूप संगीत रत्नाकर विशेष उल्लेखनीय हैं।^४ महाराजा प्रतापसिंह, जयपुर (स० १८२१ ६०) ने भी राधागोविन्द संगीत सार, राग रत्नाकर और स्वरसागर नामक संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों के निर्माण में योग दिया।^५

५५ १। राजस्थानी लोकगीता, पवाडो और ख्याला (राजस्थानी नाटका) आदि में भी भारतीय संगीत की अनेक राग रागिनिया और धुनें सुरक्षित हैं।^६ राजस्थानी लोक-संगीत की कतिपय स्वरलिपिया भी तयार की गई हैं, जिनमें भारतीय संगीत के अध्ययन में विशेष सहायता प्राप्त होती है।^७

५६ १। राजस्थान के अनेक कविया और कवियित्रियों ने संगीत की विविध राग-रागिनिया में गेय पदों का निर्माण कर संगीत के प्रचार प्रसार में योग दिया है जिनमें

१ - स० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ० ४७ ।

२ - सम्पादक प्रो० कहेयालालजी सहल, पतरामजी गौड और डा० ईश्वरीदानजी भाशिवा, बंगाल हिन्दी मण्डल, ८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता, छ स० ११३, पृ० स० ६३ ।

३ - राजपूताने का इतिहास, श्रीभा जिल्द १, पृ० ३१ ।

४ - बीकानेर राज्य का इतिहास, श्रीभा, पृ० २८६ ।

५ - अजनिधि प्रयावती स० हरिनारायणजी पुरोहित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, मुंबिका पृ० ४८ ।

६ - क - राजस्थान का लोक संगीत, श्री देवीलाल सामर, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर ।

ख - राजस्थानी लोक नाटक, श्री देवीलाल सामर, भारतीय लोक-कला मण्डल, उदयपुर ।

७ - राजस्थान स्वर सहरी, भाग १ और २, श्री देवीलाल सामर और पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर ।

मीराबाई (सं० १५५५ १६०३ वि०) व साप ही चन्द्रसखी (सं० १८८०), दादू (सं० १६०१ १६६०), रज्जब (सं० १६२४ १७४६), सुन्दरदास (सं० १६५३ १७४६) महाराजा प्रतापसिंह (सं० १८२१ १८६० वि०) महाराणा जवानसिंह (सं० १८५७ १८६५ वि०) महाराणा सज्जनसिंह (वि० सं० १९३५) महाराजा चतुरसिंह (सं० १९३३ १९८६) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

४. चित्रकला

५७ १। हमारे देश की प्राचीनतम चित्रकला के उदाहरण गुहा चित्रों के रूप में उपलब्ध होते हैं। कानांतर में हमारे देश में चित्रकला की विशेष उन्नति हुई। भजता गुहा चित्रों के उदाहरण भारतीय चित्रकला के रूप में उल्लेख्य सिद्ध हुए हैं। १२ वीं सदी ईस्वी के पश्चात् के चित्र हमारे देश में वाष्ट-पट्टिकाभा, ताडपत्रा और कागज पर भी मिलने लगते हैं। जैसलमेर में प्राप्त वाष्ट पट्टिकाभा और ताडपत्रा पर अंकित चित्र हमारे देश की मूल्यवान् सम्पत्ति हैं। धीरे धीरे राजस्थान के राजपूत राजाओं के आश्रय में भारतीय चित्रकला ने विशेष उन्नति की और यह "राजपूत चित्रशैली" अथवा "राजस्थानी चित्रशैली" के रूप में प्रसिद्ध हुई।

५८ १। राजस्थानी चित्रशैली की स्थानीय प्रभाव के कारण विभिन्न उप-प्रकार प्रचलित हुईं जिनके नाम इस प्रकार हैं -

५९ १। उदयपुर कलम, जैसलमेर कलम, बीकानेर कलम, जयपुर कलम, मलमेर कलम, बुंदी कलम, नाथद्वारा कलम, जोधपुर कलम, कोटा कलम और भजमेर कलम। मातवा, कागडा और बसोली की चित्रशैलियाँ भी राजस्थानी चित्रशैली से विकसित मानी जाती हैं।

६० १। भारतीय धार्मिक और राजपूती जीवन सम्बन्धी विषय रंगों का चटनीला पन, भावा की गहराई और रेशाओं की मान्यी राजस्थानी चित्रशैली की प्रधान विशेषताएँ हैं। राजस्थानी चित्रशैली के विभिन्न उल्लेख्य उदाहरण श्री कृष्ण चरित्र बारहमासा राम रागिनी, राजपूत राजाओं के दरबार, गिबार, रामायण महाभारत श्रीमद्भागवत गीता पंचतंत्र, कल्पसूत्र दशकालिक-सूत्र तथा राजस्थानी साहित्य का विभिन्न रचनाएँ जैसे पूर्वराज रासो, ^१ डोना माऊ रा दुहा ^२ मूरजप्रमाण, ^३ मधुमालता ^४ जतान-दुबना, ^५ हृदयकलस आर्वालिगा री बाठा, ^६ आदि पर आधारित प्राप्त होत हैं।

१ - सरस्वती भण्डार मण्डल राजस्थान प्रायश्चित्त प्रतिष्ठान गाजा, उदयपुर।

२ - पुस्तक प्रकाश, उम्मेद भवन जोधपुर।

३ - वही।

४ से ६ - राजस्थान प्रायश्चित्त प्रतिष्ठान राष्ट्रीय पुस्तकालय, जोधपुर।

६११। राजस्थानी चित्रशैली के अनेक नमूने युरोप और अमेरिका के प्रमुख संग्रहालयों में, कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई और राजस्थान के राजकीय संग्रहालयों में तथा देश-विदेश के अनेक व्यक्तियुक्त संग्रहों में प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं।

६२१। भारतीय संस्कृति की जितनी गहरी छाप राजस्थानी चित्रशैली पर अंकित है, उतनी किसी अन्य प्रकार के चित्रों पर नहीं। यही कारण है कि राजस्थानी चित्र भारतीय सांस्कृतिक अध्ययन के विशेष माध्यम बन गये हैं।

ग नृत्य

६३१। नृत्य का उद्भव मानव जीवन में हर्षातिरेक के अवसरों में हुआ। ऋतु परिवर्तन, देव-पूजा, फसल-पकना, विवाह, सन्तानोत्पत्ति, प्रिय मिलन आदि अवसरों पर मानवों में नाच गान की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। सिंधु घाटी में 'हरप्पा' और 'मुईन जो-दरा' नामक प्राचीन स्थलों के उत्खनन में नृत्य-मुद्राओं से युक्त एक प्राचीन कांस्य मूर्ति प्राप्त हुई है। इस कांस्य मूर्ति के आधार पर भारतवर्ष में नृत्य का प्रारम्भ ३५०० ई० पू० में सिद्ध हो जाता है।

६४१। नृत्य के दो प्रधान रूप हैं— (१) लोक नृत्य और (२) शास्त्रीय नृत्य। भारतवर्ष में अनेक प्रकार के लोकनृत्य प्रचलित हैं, जिनमें नृत्य की प्रारम्भिक सरलता और सादगी है। भारतवर्ष की ग्राम्य जनता लोक-नृत्यों को जीवन के आवश्यक तत्व के रूप में घपनाये हुए है। लोक-नृत्य हमारे धार्मिक, सामाजिक और मनोरंजनात्मक प्रसंगा से सम्बद्ध हो चुके हैं और अनेक अवसरों पर लोक-नृत्य अनिवार्य माने जाते हैं।

६५१। लोकनृत्य बहुधा सामूहिक होते हैं और स्त्री-पुरुष इनमें सम्मिलित रूप में भयवा अलग अलग भाग लेते हैं। अधिकांश लोक नृत्य वृत्त-नृत्य अथवा प्रद्वैत नृत्य होते हैं। भारतीय लोक-नृत्यों में पंजाब का 'भगड़ा' और 'गिद्धा', गुजरात का 'गर्बा' तथा राजस्थान की 'धूमर' और 'तेर' विशेष प्रसिद्ध हैं। अधिकांश लोक-नृत्य कथागायना अथवा नाट्यों पर आधारित होते हैं इसलिये लोक नृत्य का साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। भारत के शास्त्रीय नृत्य—कम्पक, मणिपुरी, कथाकली और भरतनाट्यम् भी कान्य अथवा कथा पर आधारित होते हैं।

६६१। राजस्थानी लोक-नृत्य लोक-गीता लोक कथाओं अथवा नाट्यों पर आधारित होते हैं। राजस्थानी लोक नृत्य का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जाना चाहिये—

(१) भौगोलिक आधार पर

मारवाड़ के लोक नृत्य, पूर्वी राजस्थान के लोकनृत्य, हाडीती लोक नृत्य, मेवाड़ के लोक नृत्य और भील प्रदेश के लोक नृत्य।

(२) साहित्यिक आधार पर

लोक गीत-सम्बन्धी, लोक-कथा सम्बन्धी, लोक नाटक, ख्याल-सम्बन्धी और लौकिक-काव्य-सम्बन्धी ।

(३) उद्देश्य के आधार पर

धार्मिक और मनोरजनात्मक ।

(४) अवस्था और स्त्री पुरुष के आधार पर

पुरुष नृत्य, स्त्री-नृत्य बाल नृत्य और सब के सम्मिलित रूप में आयोजित किये जाने वाले नृत्य ।

६७ १ । नृत्य का, चाहे वह शास्त्रीय हो अथवा लोक नृत्य, साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है । साहित्यिक बोला के आधार पर ही नृत्य-सम्बन्धी अथ संचालन और हाव भाव का नियमन होता है । नृत्य में सम्बन्धित भावा को स्पष्ट रूपेण व्यक्त करने में साहित्य और संगीत का समान रूप में महत्त्व हाता है । राजस्थानी अर्थात् जयपुर शैली का कथक नृत्य विभिन्न प्रकार के काव्यात्मक छंदा के आधार पर आयोजित किया जाता है और मंच पर छन्दोच्चारण के साथ ही नृत्य का प्रदर्शन होता है । राजस्थानी लोक नृत्य भी गीतों के साथ आयोजित होते हैं ।



द्वितीय अध्याय

राजस्थानी साहित्य

१ प्रारम्भिक परिचय

२. राजस्थानी साहित्य की परिभाषा

३ राजस्थानी साहित्य का काल विभाजन : विभिन्न मत

- | | |
|---------------------------------|---|
| (१) डा० एल० पी० तेस्तीतोरि | (२) प० मोतीलालजी मेनारिया |
| (३) नरोत्तमदासजी स्वामी | (४) डा० हीरालालजी माहेश्वरी |
| (५) श्री सीतारामजी लालस | (६) श्री गजराज भोभा |
| (७) श्री पुरुषोत्तमदामजी स्वामी | (८) डा० जगदीशप्रसाद |
| (९) श्री उदयसिंहजी भटनागर | (१०) उक्त मतों की समीक्षा और लेखक का मत |

४. प्रारम्भ-काल

क प्रारम्भिक परिचय

ख प्रारम्भ काल के कवि कोविद और कृतिया

- | | |
|------------------------------------|----------------------------|
| (१) स्वयम्भू कवि' | (२) महाकवि पुष्पदन्त |
| (३) योगीन्दु | (४) भास्वार्थ हरिभद्र सूरि |
| (५) हेमचन्द्र सूरि | (६) डोला मारू रा दूहा |
| (७) रजली जेठवे रा दूहा | (८) वीसल दे रास |
| (९) प्रारम्भ-काल के अन्य कवि कोविद | |

५ वीरगाथा काल

क प्रारम्भिक परिचय

ख वीरगाथा काल के प्रधान कवि और कृतिया

- | | |
|--------------------|--------------------------------------|
| (१) शालिभद्र सूरि | (२) गार्ङ्गधर |
| (३) प्रसादस | (४) बारूजी सौदा |
| (५) श्रीधर व्यास | (६) सिवदास गाडण |
| (७) बादर ढाडी | (८) पद्मनाभ |
| (९) पृथ्वीराज रासो | (१०) वीरगाथा काल के कश्चित् अन्य कवि |

६ भक्ति-काल

क प्रारम्भिक परिचय

ख भक्ति-काल के प्रधान कवि

(१) मीरा बाई

(३) ईसरदास

(५) सायाजी भूला

(२) दुरसाजी घाटा

(४) महाराज पृथ्वीराज राठोड

(६) कविराजा बाकाणस

ग राजस्थान के सत-सम्प्रदाय

[म] प्रारम्भिक परिचय

[घा] सत कवि

(१) सत दाहूदयालजी

(३) स्वामी लालदासजी

(५) सत चरणदासजी

(७) रामस्नेही सम्प्रदाय क कवि

(९) जैन सन्त कवि

(२) सत रज्जबजी

(४) सत भावजी

(६) जसनाथजी

(८) जाभोजी

घ भक्ति काल के कतिपय अन्य कवि

७. आधुनिक काल

क प्रारम्भिक परिचय

ख आधुनिक काल के प्रधान कवि

(१) महाकवि सूर्यमल

(३) महाराज चतुरसिंहजी

(२) चारण कवि केशरीसिंहजी

(४) नाथूदानजी महियारवा

ग अन्य उल्लेखनीय कवि

घ आधुनिक राजस्थानी काव्य की प्रधान प्रवृत्तियाँ

८. राजस्थानी गद्य साहित्य

क प्राचीन राजस्थानी गद्य के मुख्य रूप

(१) धार्मिक गद्य

(३) मनोरंजनारमक गद्य

(५) व्याकरण, वैचक, ज्योतिष आदि विषयक गद्य

(२) ऐतिहासिक गद्य

(४) प्रशिक्षणात्मक गद्य

ख नवीन राजस्थानी गद्य

(१) उपन्यास लेखक, (२) कहानी लेखक, (३) नाटक लेखक,

(४) निबंध लेखक, (५) भाषाधना लेखक, (६) अनुवाद लेखक ।

द्वितीय अध्याय

राजस्थानी साहित्य

१. प्रारंभिक परिचय

१२। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में राजस्थान को परम गौरव-पूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। राजस्थानी वीर-वीरांगनाओं ने देश की स्वाधीनता और अपनी मान-र्यादा की रक्षा हेतु असीम त्याग एवं बलिदान किया है। गौरवपूर्ण मृत्यु प्राप्त करना राजस्थानी जीवन का सदियों तक प्रधान उद्देश्य बना रहा और इन वीर-वीरांगनाओं ने मरण का भी महान् त्योहार के रूप में मञ्जीवित किया। मरण-त्योहार विषय में कहा गया है—

टह-टह घुरे त्रमागळा, ळै सिधव ललकार ।
चित्तू कू कम चेळा चहै, आज मरण-त्योहार ॥
आज घरे सासू कहे, हरख अचाणक काय ।
बहू बळ वा हूळमे, पूत मरेवा जाय ॥
मुत मरियो हित देस रे, हरख्यो बहु-समाज ।
मा नह हरखी जनम दे, जतरी हरखी आज ॥^१

ओ त्योहारा देसडो, तिथ पर हुवै त्योहार ।
बिना बार तिथ आवणी, मोटो मरण-त्योहार ॥^२

२२। राजस्थान भारतवर्ष की वीर भूमि के रूप में विश्वानु है जिसके विषय में सुप्रसिद्ध इतिहासकार जेम्स टॉड ने लिखा है—

“राजस्थान में एक भी छोटी रियासत ऐसी नहीं है जिसमें यमरपाली जैसी युद्ध भूमि

१ - मरण-त्योहार राजस्थान की रसधारा, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थान संस्कृति परिषद्, जयपुर, १९५४ ई०, पृ० १-७।

२ - श्री नारायणसिंह भाटी, परम वीर, प्रकाशक—बसावतार पुस्तक मन्दिर, रातानाभा, जोधपुर, १९६३ ई०, पृ० ६१।

न हो और कदाचित् ही कोई ऐसा नगर हो जिसने लियोनिडास जैसा योद्धा उत्पन्न किया हो।”^१

३२। राजस्थान का योर भूमि बतान का प्रधान श्रेय राजस्थान के साहित्य एवं साहित्यकारों का है। राजस्थान के साहित्यकार ससनी के साथ ही उत्तार के धनी होन हुए स्वयं युद्ध भूमि में योरा के साथ मरन मारने के लिये तत्पर रह हैं। ऐसे वाररसावतार कवियों की परम प्रभावशाली वाग्मा से प्रेरित होने हुए राजस्थान के श्रमणित योर वीरायनामो ने अपने प्राण महर्ष ही उत्सर्ग कर लिये, इसलिये जेम्स टॉट के उक्त कथन के प्रतिम भाग को इस प्रकार समोपित करना सर्वथा उपयुक्त होगा—

“और कदाचित् ही कोई ऐसा नगर हो, जिसने लियोनिडास जैसा योद्धा तथा होमर जैसा कवि नहीं उत्पन्न किया हो।”

४२। राजस्थानी साहित्य में शय भावनाओं के साथ ही योर भावनाओं की विषय अभिव्यक्ति हुई है।

२ राजस्थानी साहित्य की परिभाषा

५२। ‘राजस्थानी साहित्य’ से अनेक तात्पर्य हो सकते हैं। यथा—

- (१) राजस्थानी भाषा में रचित साहित्य।
- (२) राजस्थान में रचित साहित्य, चाहे वह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश व्रज खड़ी बोली, उर्दू और फारसी आदि किसी भी भाषा में हो।
- (३) राजस्थानियों द्वारा रचित साहित्य, फिर चाहे वह राजस्थानी, हिन्दी गुजराती या बगला किसी भी भाषा में हो।
- (४) राजस्थान से सम्बन्धित साहित्य चाहे वह किसी भी भाषा अथवा विषय का हो।

यहां राजस्थानी साहित्य से लेखक का अभिप्राय राजस्थानी भाषा में रचित साहित्य से है क्योंकि ‘गुजराती साहित्य’ और ‘बगला साहित्य’ आदि से तात्पर्य क्रमशः गुजराती और बगला भाषा में लिखित साहित्य ही होता है।

३ राजस्थानी-साहित्य का काल-विभाजन

६२। विभिन्न विद्वानों ने राजस्थानी साहित्य का काल विभाजन विकास क्रम की दृष्टि से निम्न प्रकारेण किया है—

१ — एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान प्रस्तावना, विलियम क्रुम द्वारा सम्पादित संस्करण, भाग १ १८२० ई०। हिन्दी संस्करण, मंगल प्रकाशन, जयपुर।

(१) डा० एल०पो० तेस्तीतोरी

- क - प्राचीन डिगल-काल — १२५० ई० से १६५० ई० ।
ख - अर्वाचीन डिगल-काल — १६५० ई० से आज तक ।^१

(२) प० मोतीलालजी मेनारिया

- क - प्रारम्भ-काल — स० १०४५ से १४६० ।
ख - पूर्व-मध्य-काल — स० १४६० से १७०० ।
ग - उत्तर-मध्य-काल — स० १७०० से १९०० ।
घ - आधुनिक काल — स० १९०० से २००५ ।^२

(३) प० नरोत्तमदासजी स्वामी

- क - प्राचीन काल — स० ११५० से १५५० ।
ख - अर्वाकाल — स० १५५० से १८७५ ।
ग - अर्वाचीन काल — स० १८७५ के पश्चात् ।^३

(४) श्री होरालालजी माहेन्वरी

- क - विकास काल अथवा प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का आदि-काल—स० ११०० से १५००
ख - नवीन काल अथवा प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का नवीन काल—स० १५०० से प्रारम्भ ।^४

(५) श्री सीताराम जी लालस

- क - आदि-काल — वि० स० ८०० से १४६० ।
ख - मध्यकाल — वि०स० १४६० से वि०स० १९०० ।
घ - आधुनिक काल — वि०स० १९०० से वर्तमान काल तक ।^५

१ - क - बचनिका राठोड रतनसिंह रो, भूमिका प० ५ ।

ख - जनल आफ एगियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, वोल० १०, न० १०, पृ० ३७५-३७७ ।

२ - राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, प० ७७ ।

३ - राजस्थानी साहित्य एक परिचय नवयुग प्रेस-मुद्रोर, जोधपुर, पृ० २२ ।

४ - राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ३०-३१ ।

५ - राजस्थानी गद्य कोष, प्रस्तावना, पृ० ८८ ।

(९) गजराज भोभा

क - प्रारम्भ काल — स० १००० से १४०० ।

ख - मध्यकाल — स० १४०१ से १८०० ।

ग - उत्तरकाल — स० १८०१ से आज तक ।^१

(७) पुरुषोत्तम दास स्वामी

क - प्राचीन राजस्थानी-काल — स० १००० से १६०० ।

ख - माध्यमिक राजस्थानी-काल — स० १६०० से १६०० ।

ग - आधुनिक राजस्थानी-काल — स० १६०१ से वर्तमान समय तक ।^२

(८) डा० जगदीश प्रसाद

क - प्राचीनकाल — लगभग १३०० ई० से १६५० ई० ।

ख - मध्यकाल — लगभग १६५० ई० से १८५० ई० ।

ग - आधुनिक-काल — लगभग १८५० ई० से आज तक ।^३

(९) श्री उदयसिंह मटनागर

क - प्रथम उत्थान या सूत्रपात-युग — स० ७०० से १००० ।

ख - द्वितीय-उत्थान या नव-विकास युग — स० १००० से १२०० ।

ग - तृतीय उत्थान या वीरगाथा युग — स० १२०० से १५०० ।

घ - चतुर्थ उत्थान या भक्ति युग—स० १५०० से १७०० ।

ङ - पंचम उत्थान या रीति-युग — स० १७०० से १९०० ।^४

(१०) उक्त मतों की समीक्षा और लेखक का मत

७२। राजस्थानी साहित्य के उक्त काल-विभाजनो में डा० लक्ष्मीतरी श्रीर डा० माहेनबरी व काल विभाजन 'डिगल' के भाषा रूपा पर आधारित है, घतएव एकांगी है। अथ विद्वाना के काल विभाजन विकास क्रम के प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल व अथवा प्रथम, द्वितीय, तृतीय उत्थान व रूढिगत दृष्टिकोण पर आधारित है। राजस्थानी साहित्य के विकास-क्रम को दर्शाने में काल सम्बन्धी विभिन्न प्रवृत्तियाँ पर अभी तक गहराई से विचार

१ - नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १४, धक १ पृ० १८-१९ ।

२ - वही पृ० २२४-२३५ ।

३ - डिगल साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद पृ०, ११ ।

४ - हिन्दी साहित्य हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय इलाहाबाद, पृ० ५१९ ।

नहीं हुआ है और न काल-सम्बन्धी परिवर्तन का ठोस ऐतिहासिक आधार ही प्रस्तुत किया गया है। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल न इस विषय में लिखा है— “सारे रचना काल को केवल आदि, मध्य, पूर्व, उत्तर इत्यादि खण्डों में आख मूढ़ कर बाट देना — यह भी नहीं देखना कि किस खण्ड के भीतर क्या जाता है, क्या नहीं — किसी वृत्त सग्रह को इतिहास नहीं बना देता।”^१

८२। साहित्य विषय के इतिहास का काल विभाजन सम्बन्धित साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर होना चाहिये। विभिन्न परिस्थितियों के अनुरूप सामाजिक मनोवृत्तियाँ परिवर्तित होती रहती हैं और तदनुसार साहित्यिक प्रवृत्तियों का आविर्भाव होता है। सामाजिक मनोवृत्तियाँ और साहित्यिक प्रवृत्तियों के मूल में बन्तुत ऐतिहासिक परिस्थितियाँ होती हैं जिनकी उभ्या साहित्यिक इतिहास के लेखन में नहीं की जा सकती। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्यिक इतिहास के विषय में लिखा है— “जनता की परिवर्तनशील चित्त-वृत्तियों की परम्परा को परस्वते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।”^२ उक्त दृष्टिकोण के आधार पर राजस्थानी साहित्य के इतिहास को निम्नलिखित चार भागों में विभक्त करना सर्वथा उपयुक्त होगा —

- क—प्रारम्भकाल — वि० स० ८३५ से १२४०।
- ख — बीरगाया काल — वि० स० १२४१ से १५८४।
- ग — भक्ति-काल — वि० स० १५८५ से १९१३।
- घ — आधुनिक-काल — वि० स० १९१४ से प्रारम्भ।

४. प्रारम्भकाल

क प्रारम्भिक परिचय

९२। सम्राट हर्ष की मृत्यु (वि०स० ७०५, ई० सन् ६४८) हमारे इतिहास में युग परिवर्तनकारी सिद्ध हुई क्योंकि इसके पश्चात् हमारे देश में अनकता, पारस्परिक वैमनस्य, सामाजिक विभ्रत, धार्मिक मतवैपरीत्य और आर्थिक पतन का प्रारम्भ हुआ। इसी समय भारतवर्ष की उत्तर-पश्चिमी सीमाओं पर इस्लामी सैनिकों के आक्रमण होने लगे। मुहम्मद बिनकासिम ने एक प्रबल सेना के साथ सिंध पर आक्रमण किया (वि० स० ७६६,

१ — हिन्दी साहित्य का इतिहास, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, बृत्कल्प, पृ० २।

२ — वही, पृ० १।

ई० सन् ७१२) जिनमें भीषण रक्तपात हुआ। हजारों व्यक्तिमा की बची बना कर उन्हें दास बनने में लिये विवश किया गया और जनपूर्वक भारत में इस्लाम धर्म का स्थापना का गई — 'काफ़िरो को या तो मुसलमान बना लिया गया है या नष्ट कर दिया गया है। मूर्ति मन्दिरों के स्थानों पर मस्जिदें तथा भय पूजा गृह सटे कर दिये गये हैं। खुतबा पढ़ा जाता है, अर्जों लगाई जाती है, जिससे निश्चित समयों पर पूजा पाठ होता है। प्रतिदिन प्रातः काल तथा सांध्यों की सर्वशक्तिमान् ईदवर का गुण गान किया जाता है।'

१००। सिंध पर हुए उक्त आक्रमण का भारतव्यापी प्रभाव हुआ और चारा देग अपनी निद्रा को त्याग कर विदेशी आक्राताओं से नोहा सने का उपक्रम करने लगा। राजस्थान में इसी समय प्रतिहार, परमार, गहनात और चोहान राजपूतों का अभ्युदय हुआ जिन्होंने समय समय पर अखिल भारतीय राजनीति का प्रभावित किया और विदेशी आक्रमणकारियों का घणाशक्ति ध्वस्त करने का प्रयत्न किया। बाबा रावण न वि० सं० ७६० (७३३ ई०) में चित्तौड़ पर अधिकार कर मेवाड़ में गहनात शासन की नींव रखी। इसी वंश में भागे चलकर सुमाण, रत्नसिंह कुम्भा सागा प्रताप और राजसिंह जैसे गौरवीर हुए जिन्होंने अपना मानवृष्णि और मान-मर्त्यान् की रक्षा हनु चार सपर्य किया।

१११। मुस्लिम आक्रमणों के साथ ही देश में चारण कवियों का अभ्युदय हुआ, जिन्होंने अश्रम की निवृत्तिपूर्वक गत रसमयी काव्य धारा की प्रवृत्तिपूर्वक राजस्थानी रूप प्रदान किया। चारण कवियों ने यादों को उत्साहित करने हुए विजयोपरान्त प्राप्त होने वाले सुख वैभवों के प्रति आक्षेप उत्पन्न किया और युद्ध में वीरगति प्राप्त करने की भवम्बा से प्राप्त होने वाले स्वर्गिक सुखों की ओर मन्त किया।

१२२। भारतवर्ष में यह समय राजपूतों के उत्थान का माना गया है। राजपूत राजाओं से प्राप्त एक प्रश्न प्राप्त कर राजस्थानी साहित्य निरंतर विकसित होता गया। राजपूत शासकों के प्रभाव से ही राजस्थानी साहित्य में धीरता भक्ति और शृंगारिक तत्वों का समान रूप में समावेश हुआ।

१३३। राजस्थानी साहित्य के प्रारम्भिक काल के ऐसे उदाहरण आचार्य हेमचन्द्र (वि० सं० ११४५-१२२६, ई० सन् १०८८-११७२) ने अपनी व्याकरण में दिये हैं। ३ साथ ही इस युग के कवि स्वयंभू (वि० सं० ८४७-ई० सन् ७६०), महाकवि पुष्पदत्त (वि० सं० ६५६-६७२, ई० सन् ६०२-६१५) आदि का रचनामा में भी राजस्थानी साहित्य-सम्बन्धी

१ - मुहम्मद बिन कासिम का अपने चाचा को लिखा गया पत्र, भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, एस० आर० शर्मा, पृ० ३३।

२ - कविप्रो, श्री सो० २० देसाई, भाग १, मूलिका पृ० ११५।

इन विशेषताओं के प्रारम्भिक दशन होत हैं। आगे चलकर राजस्थानी साहित्य में इन विशेषताओं का समुचित रूप में विकास हुआ।

कवि उद्योतन मूरि द्वारा जालोर दुर्ग में वि० स० ८३५ (७७८ ई०) में लिखित कुवलयमाला में राजस्थानी भाषा के मरुप्रदेशीय रूप का प्राचीनतम उल्लेख उदाहरण सहित प्राप्त हो चुका है^१ और आगे प्राचीन राजस्थानी रूपों के उदाहरण निरंतर प्राप्त होत हैं इसलिये राजस्थानी साहित्य का प्रारम्भकाल वि० स० ८३५ (७७८ ई०) से रक्तना सवथा उपयुक्त होगा।

१४२। राजस्थानी साहित्य का प्रारम्भकाल वि० स० १२५० (११६३ ई०) तक मानना चाहिये क्योंकि इसी वर्ष सम्राट पृथ्वीराज चौहान की तराइन युद्ध में पराजय हो जाती है और भारतवर्ष में नवीन ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिवर्तन होते हैं। ऐसी परिवर्तित परिस्थिति के कारण ही परम विरक्त शालिभद्रसूरि भी वि० स० १२४१ (११८४ ई०) में 'भरतेश्वर बाहुबलि धीर' जैसे युद्धपरक काव्य का निर्माण करत हैं।

१५२। साथैप में राजस्थानी साहित्य का प्रारम्भ-काल (वि० स० ८३५, ७७८ ई० से वि० स० १२४०, ११६३ ई०) का निम्नलिखित आधार सात हैं—

- (१) सम्राट हर्ष की मृत्यु के पश्चात् समस्त भारतवर्ष में एकता स्थापित करने वाली शक्ति का अभाव और देश की परिवर्तित ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थिति।
- (२) भारतवर्ष पर प्रारम्भ होने वाले मुसलमानों के आक्रमण बूट, हत्याएँ और धार्मिक अत्याचार।
- (३) भारतवर्ष में ७ वीं शताब्दी से राजपूत राजाओं का अभ्युदय और उनके द्वारा देश की रक्षा हेतु किये जाने वाले विदेशियों से संघर्ष।
- (४) चारण-कवियों का आविर्भाव और परिणाम स्वरूप साहित्य में वीर भावना का समावेश।
- (५) परिवर्तित साहित्यिक विषय, रस और प्रेरणा स्रोत।

१ - क-राजस्थानी शब्द कोश, श्री सीताराम लालस, रा० गो० स० जोधपुर भूमिका, पृ० ८८।

ख-राजस्थानी साहित्य का प्रादिकाल, स० श्री नारायणसिंह भाटी, 'परम्परा' रा० गो० स० जोधपुर, भूमिका, पृ० १०।

स्व प्रारम्भकाल के कवि-कोविद और कृतिया

(१) स्वयम्भू कवि

१६२। स्वयम्भू का उल्लेख सत्रप्रथम महाकवि पुष्पन्त ने अपने "महापुराण" में किया^१ जिसका प्रारम्भकाल स० १०१६ है। स्वयम्भू ने भी अपने 'पउमचरित' और 'रिटिठणमिचरित' में अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख किया है जिनमें "रविषेणाचार्य" भी हैं। रविषेणाचार्य रचित "पद्मचरित" का लेखन-काल स० ७३४ है। इस प्रकार स्वयम्भू कवि का समय वि० स० ७३४ से स० १०१६ के मध्य होना चाहिये। स्वयम्भू का समय राहुल सांकृत्यायन ने लगभग स० ८४७ (७६० ई०)^२ और नापूराम त्रेभी ने स० ७३४ से ८४० के बीच^३ अनुमानित किया है।

स्वयम्भू ने अपने पिता का नाम माहतिदेव और माता का नाम पद्मिनी सूचित किया है। स्वयम्भू की दो पत्नियों के नाम भी ज्ञात होने हैं— आदित्याम्बा और सामिम्बा। स्वयम्भू के सबसे छोटे पुत्र का नाम त्रिभुवन था। कवि स्वयम्भू के पिता और पुत्र भी कवि थे।

१७२। स्वयम्भू के निम्नलिखित चार ग्रन्थ उपलब्ध हैं—

- (१) पउमचरित (रामकथा पर आधारित जैन काव्य)
- (२) रिटिठणमिचरित (हरिवंश पुराण),
- (३) पचमीचरित (नागकुमार कथा) और
- (४) स्वयम्भू छन्द (छन्द शास्त्र)।

१८२। स्वयम्भू की रचनामासे प्रकट होता है कि वे एक कुशल कवि थे। उन्हें वाच्यगत मार्मिक प्रसंगों की पहिचान थी और उहाने वस्तु वर्णन के साथ ही रसनिरूपण में पूर्ण सफलता प्राप्त की। इनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है—

सुग्रीव और भेषवाहन का युद्ध

किञ्चिदध-णराहिउ धरिउ जाव । धण-वाहण भामडल है ताब ।
अग्निदृ परोप्परु जुज्जु घोर । सरि सोत्त स उत्तरे पहर घोर ।

१ - बज्रमुह सयभु तिरिहरिसु दोषु ।

एलोइउ बइ ईसाणु वाणु । १ ५॥

२ - हिंदी काव्य धारा, किताब महल इलाहाबाद, प० २२ ।

३ - हि० सा० का भा० ६०, भा० रामकुमार वर्मा, रा० ना० सा० इलाहाबाद, पृ० ७५ ।

द्विज्जत महम्मय गरुभ्र गत्तु । णिबडत समुदधुय धवल छत्तु ।
 लोटटत महारह हय रहगु । घुम्मन-वडतमहातुरगु ।
 तुट्टत कवड तुट्टत खग्गु । एच्चत कवघउ अस्सि-करग्गु ।
 आयामेवि रणे रासिय मणेण । अग्गेउ मुक्कु घणवाहणेण ।
 आमल्लिउ आयउ घगघगत्तु । अगार वरिसु णहे दक्खवत्तु ।
 वारुग्गु विमुक्कु भामडलेण । ए गिरिहि वज्जु अखडलेण ।
 उल्लाविउ जलगु जलेण ज जे । सरू णागवासु पम्मूक्क त जे ।
 घत्ता- पुप्फवइ मुउ दीहर पवर महासरेहि ।

परिवेडियउ मलायदुव विसहरेहि ॥ ६ ॥^१

(२) महारुनि पुष्पदन्त

१६ २ । महाकवि पुष्पदन्त के पिता का नाम कशव भट्ट और माता का नाम
 मुग्धादेवी था । इनके पिता प्रारम्भ में गैब थे किन्तु बाद में जैन मुनि से प्रभावित हो कर
 जन धर्म में दीक्षित हो गये —

सिव भत्ताइ मि जिण सण्णासे वे वि मयाइ दुरियणि ण्णासे ।
 वभणाइ कासवरिसी गोसइ गुरुवयणामिय पूरियसोत्तम ॥^२

पुष्पदन्त दीखने में सुन्दर नहीं थे^३ किन्तु पूर आत्माभिमानी थे इसलिये उन्होंने
 अपने नाम के साथ 'अभिमाननेरु', 'का यरत्ताकर' और 'कविकुन्तिलक' जैसे विरुद्ध
 लगाये ।

२० २ । पुष्पदन्त एक समय अपने आश्रयगता से रुष्ट हो कर वन में चले गये
 और वहाँ निम्नलिखित छन्द की रचना की —

एउ दुज्जन भऊहा वक्कियाह दीसत्तु कनुसभावक्कियाड ।
 वर एरतरु धवलच्छिहे होहु म कुच्छिहे मरउ सोणिमुहणिग्गमे ।
 खल कुच्छिय पहुवयणइ मिउडियण यणई म णिहालउ सुरुग्गमे ॥

(गिरि-कदराओ म घास खा कर रहना उचित है किन्तु दुजनो की टेढ़ी मोह
 देखना उचित नहीं । मा के गभ से उत्पन्न होत ही मर जाना उत्तम है किन्तु राजा
 की टेढ़ी भृकुटि एव नेत्र देखना तथा उसके दुर्बचन सुनना उचित नहीं ।)^४

१ - पउमचरिउ, ६५। १-६, हि० का० घा०, पृ० ६२ ।

२ - एयायकुमारचरिउ ।

३ - उत्तरपुराण, ११ ।

४ - वर्मा, हि० सा० घा० ३०, पृ० ८१ ।

कवि के प्रथम आश्रयदाता राष्ट्र-भूट-वश के महाराजा कृष्ण के महामात्य भरत और द्वितीय आश्रयदाता भरत के पुत्र नन्न थे जो भरत के पश्चात् महामात्य हुए ।

२१ २। महाकवि पुष्पत की निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हो चुकी हैं —

(१) महापुराण— इस ग्रन्थ को "तिसाठ महापुरिस गुणालकार" भी कहा जाता है क्योंकि इसमें तिरमठ महापुराणों के चरित्र वर्णित हैं। इस काव्य-ग्रन्थ के दो खण्ड हैं— आदिपुराण और उत्तरपुराण। आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव का और उत्तरपुराण में शेष तेवीस तीर्थंकरों और उनके समकालीन महापुराणों के चरित्र वर्णित हैं, जिनमें श्रीकृष्ण का चरित्र भी है। महापुराण महामात्य भरत की प्रेरणा से रचा गया था।

(२) णाणकुमार चरित— इस काव्य में नागकुमार सम्बन्धी काव्य वर्णित है। यह काव्य महामात्य नन्न की प्रेरणा से रचा गया था।

(३) जसहर चरित— इस काव्य में यशोधरा का चरित्र है।

(४) कोप— यह देश भाषा का कोप ग्रन्थ है।

इनकी रचना का एक उदाहरण निम्नलिखित है —

श्रीकृष्ण - महिमा

कण्हेण समाणउ कोवि पुत्तु । मज्जेणउ जणणि विह्विय सत्तु ।
 दुर्धर भर रण घुर दिण्ण-साधु । उद्धरिय जण णिव्वहन वधु ।
 भजिवि नियलइ गय वर-गईह । सहु माणिणीइपोमावईह ।
 वइवय दिवहईह रइ कीलिरीह । बोस्ताविउ पहु गोवाल्लिखीहि ।^१

(३) योगीन्दु

२२ २। ५० राहुन साहत्यायन क मतापुवार योगीन्दु का काल १००० ई० है ।^२ ये जैन साधु थे और सम्भवतः राजस्थान के थे। इनका रचनाएँ— "परमात्म प्रकाश गीता" और "योगसार दाहा" हैं।^३ इनका रचनाप्रकार उदाहरण इस प्रकार है —

१ - हि० का० धा०, पृ० २३० ।

२ - वही, पृ० २४० ।

३ - प्रका० श्री रायचन्द जन गान्ध्र माता, मम्बई, (१९३० ई०) सम्पा० ए एन उषाम्बे ।

ज्ञान समाधि

जो जाया भाणगिए, कम्म-कलक डहेवि ।
 णिच्च णिरजण णाणमय, ते परमप्प णवेवि ॥१॥
 ते हउ वदउ सिद्ध गण, अच्चहि ज वि हवत ।
 परम-समाहि महगियए, कम्मि घणई हूगत ॥३॥
 भावि पणविदि पचगुरु, मिरि जोइदु जिणाउ ।
 भदटपहायरि विण्णाविउ, विमनु करे बिणु भाउ ॥५॥

— परमात्मप्रकाश

(४) आचार्य हरिभद्र सूरि

२३ २। आचार्य हरिभद्रसूरि का जन्म ब्राह्मणकुल में हुआ किन्तु बाद में वे श्रीचन्द्रसूरि से जैन धर्म में लीकित हो गये। मुनि श्री जिनविजयजी के मतानुसार इनका जन्म-स्थान चित्तौड़ और जन्म काल स० ७५७ स ८२७ के मध्य है।^१ प्रो० हरमन याकोबी ने हरिभद्रसूरि का समय ईसा की नवीं शताब्दी माना है^२ और महापण्डित राहुन साकृत्यायन ने इनका समय ११५६ ई० (वि० स० १२१६) लिखा है।^३

२४ २। हरिभद्र सूरि के अनेक ग्रन्थ हैं जिनमें ललितविस्तरा, घूर्तास्थान, सम्बोधप्रकरण, जसहरचरित और ऐमिनाहचरित मुख्य हैं। ऐमिनाहचरित में से एक उदाहरण इस प्रकार है —

श्रीकृष्ण - सौन्दर्य

नील कु तल कमल-नयणिल्लु विवाहर सियदसणु,
 कवुगीवु पुर-अररि उरयलु ।
 जुय दीहर-भुय-जुयल वयण, ससि जिय कमल-उप्पल ।
 पडमदवारुण वरचलणु तविय-कणय गोरगु,
 अट्ट वरिस वउ पहु हुयउ, समहिय विजिय अणगु ॥४॥

१ - हरिभद्रसूरि का समय निर्णय, जैन साहित्य-संगोष्क, पूना, भाग १, पृ. १ ।

२ - हरिभद्रसूरि रचित "ऐमिनाह चरित" की सम्पादकोष्क भूमिका ।

३ - हि० का० घा०, पृ० ३८४ ।

४ - वही पृ० ३८८ ।

(५) हेमचन्द्र सूरि

२५ २। कलिकाल सर्वत्र आशय हेमचन्द्र सूरि का जन्म-मंथ ११४५ वि० (१०८६ ई०) म कार्तिक शुक्ला १५ का घोर मृत्यु-सम १२०६ वि० माता गया है ।^१ इनका जन्म-नाम भगदव था किन्तु दीक्षा के समय (वि० स० ११८४) इनका नाम सोमचन्द्र घोर सूरि पद प्राप्ति के समय (वि० स० ११९६) इनका नाम इमचन्द्र हुआ । गुजरात नरेश सिद्धराज जयसिंह सातवीं ने हेमचन्द्र की विनोद प्रतिष्ठा की । सिद्धराज जयसिंह ने ये किन्तु प्रथम धर्मों का भी ध्यान करत थे । इनकी प्रेरणा से हेमचन्द्र ने सुप्रसिद्ध 'सिद्ध हेम-व्याकरण' का निर्माण किया ।^१

२६ २। सिद्धराज जयसिंह के पश्चात् इनका भतीजा कुमारपाल राय सिंहासन पर आसीन हुआ जिसके शासन काल में हेमचन्द्र की प्रतिष्ठा घोर भी बढ़ गई । हेमचन्द्र के उपदेशों से प्रभावित होकर कुमारपाल ने गिकार घोर मास-सेवन का त्याग कर दिया । साथ ही कुमारपाल ने २१ ज्ञानकोष अर्थात् ग्रन्थ-भण्डार स्थापित किये घोर ७०० लक्ष्मिया (प्रतिलिपिकर्ता) की नियुक्ति की, जिनका कार्य विभिन्न विषयक ग्रन्थों की प्रतिलिपिया तैयार करना था ।

२७ २। आचार्य हेमचन्द्र रचित प्रधान ग्रन्थ इस प्रकार हैं-

अभिधानचिन्तामणि, काव्यानुशासन छन्दानुशासन, देशीनाममाला, द्वयाश्रयकाव्य, यागशास्त्र, धातुपारायण, त्रिपटिसलाकापुरुषचरित् परिशिष्ट पद और शब्दानुशासन (व्याकरण) ।^२

२८ २। हेमचन्द्र ने कुमारपाल चरित् में कतिपय स्वरचित काव्यात्मक रूप दिये हैं । जैसे -

अम्हे नि दहु कोवि जण, अम्हई वण्णउ कोवि ।
अम्हे नि दहु कवि नवि, न म्हई वण्णहुँ कवि ॥
रे मण करसि की आलडी विसया अच्छहु दूरि ।
करणई अच्छह र्दिघअइ, कडडउ सिवकलु भूरि ॥
काय कुडुल्ली निज अथिर, जिवियडउ चनु एहु ।
ए जाणिवि भवदोसडा, समुहउ भावु चलेहु ॥^३

१ - जन गुजर कविघो, मोहनलाल टुलोचन्द देसाई भाग १ पृ० ११३ ।

२ - हेमचन्द्राचार्य सम्बन्धी विनोद विवरण के लिए देखिए- कावस रचित 'रासमाला' प्रथम भाग (दो खण्डों में) अनु० भी गोपालनारायण बहुरा एम ए, मंगल प्रकाशन, जयपुर, उत्तराखण्ड पृ० ६०-१६४ ।

३ - जन गुजर कविघो, भाग १, पृ० १२५ १२७ ।

२६ २ । आचाय हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में अपने पूर्व समय के प्रचलित अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं । राजस्थानी काव्य की समस्त विशेषतायें इन उदाहरणों में मूल रूप में वर्तमान हैं इसलिये इनका विगेष महत्व है—

भल्ला हुआ जु मारिआ, वहिणि महारा वन्तु ।
 लज्जेज तु वयसिग्रह, जइ भगा घर अन्तु ।
 वायसु उडडावतिअए, पिउ दिठठउ सहसति ।
 अद्धा वलया महिहि गय, अद्धा फुट्ट तडति ॥
 पुत्त जाए कवरु गुणु अचगुणु कवण मुएण ।
 जा बापी को भु हडो, चम्पिज्जई अवरण ॥

३० २ । राजस्थानी साहित्य के प्रारम्भ काल की कतिपय रचनाएँ ऐसी हैं, जिनके विषय में अनेक प्रकार के मतभेद हैं । ऐसी रचनाओं में ढला मारू रा दूहा, जेठव रा दूहा, बीसलदे रास और पृथ्वीराज रासो मुख्य हैं ।

(६) ढोला मारू रा दूहा

३१ २ । ढोला मारू रा दूहा राजस्थानी साहित्य का परम लोकप्रिय प्रणय-काव्य है । जितनी असदिग्ध इस का य की उत्कृष्टता है उतनी ही सन्धि इतिहासकारों में इसकी रचनाकाल और वर्तमान सम्बन्धी धारणा है । इस काव्य का रचना-काल प० भातीलाल जी मेनारिया के मतानुसार वि० स० १००० के आसपास है ।^१ श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी के मतानुसार इन दूहों का प्राचीनतम रूप ११वीं - १२ वीं शताब्दी का है^२ तो श्री भाला दावर व्यास ने इनका समय १३ - १४ वीं सदी माना है ।^३ श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इनका निर्माण-काल स० १५०० लगभग लिखा है ।^४ फ्रेंच विद्वान् वउडेविले के मतानुसार धोलपुर का संस्थापक राजा डालन अपर नाम अवन तवर (११ वीं सदी ही ढोला मारू रा दूहा का नायक है ।^५ ढोला मारू रा दूहा की स० १६१८ से पूर्व की लिखित कोई प्रति अब तक नहीं प्राप्त हो सकी है और यह प्रति भी कुशललाम द्वारा जैसलमेर के तत्कालीन रावल हरराज की प्रेरणा से रचित चौपाइयों सहित है । ढोला सम्बन्धी दूहे आचाय

१ रा० सा० क०, पृ० २१६ ।

२ हि० सा० भा०, प० ६ ।

३ हि० सा० मृ० ३०, भाग १, खण्ड २, पृ० ४, प० ४०४ ।

४ ढोला-मारू रा दूहा का० ना० प्र० स०, प्रवचन, प० ७ ।

५ ढोला मारू - एन इंटरप्रेटेगन जनल आफ ओरिएंटल इन्स्टीट्यूट महाराजा सयाजी राव मुनिवसिटी धडौदा, वी० ११, स० ४ ।

हेमचन्द्राचार्य (११४५-१२२६) के समय में प्रचलित हो चुके थे, जिनके कतिपय उदाहरण उन्होंने अपनी व्याकरण में दिये हैं—

ढोला सामला, धण चम्पा बण्णी ।

एणइ सुवण्णरेह, वस-वटठइ दिण्णी ॥८॥४१३३०११

ढोला मइ तुहुँ वारिया, मा कुरु दोहा मारु ।

निणए गमिही रत्तडी, दडवड होइ विहारु ॥ ८॥४१३३०१२१

ढोरला सई परिहासडी, अइ भण भण वण्णहि देसि ।

हउ भिज्जउ तउ वेहि पिअ, तुहु पुणु अनहि रेसि ॥८॥४१४२५१३

३२२ । उक्त द्रुहा से प्रकट होता है कि १२ वा सगी वि० में ढोना मारू सम्बन्धी प्रेमाख्यान प्रचलित था और इसके दूहे जनता में कहे मुने जाने थे ।

३३२ । निम्न दूहे में आये हुए “कल्लोल” शब्द के आधार पर “ढोला मारू रा दोहा” का कर्ता “कल्लोल” माना गया है —

गाहा गूढा गीत रस, कवित कथा कल्लोल ।

चतुर तणा मन रीभवै, कहिया कवि कल्लोल ॥^१

इसके विपरीत सिवाणा (मारवाड) का एक कवि की प्रति में इसका कर्ता लूणकरण खिडिया (चारण) लिखा है, ऐसा कहा जाता है^२ । सिवाणा की प्रति अभी सामन नहीं आई है इसलिये इस विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता ।

३४२ । “ढोला मारू रा दूहा” के सम्पात्का ने इस काव्य को “बेलेड” मानते हुए “बेलेड” का प्रथम लोक-गात दिया है ।^३ बेलेड जनता में प्रचलित ऐसे कथा-काव्य को कहा जाता है जो गेय होता है और जिसका कर्ता प्रायः अज्ञात हाता है । इसमें समय-समय पर परिवर्तन और परिवर्द्धन भी हाते रहते हैं, यथा— माल्हा ।^४ लोक गीत अंग्रेजी शब्द “फोक सोग” का पर्याय है । लोकगीत लघु मुक्तक रचनाओं के रूप में जनता द्वारा गाये जाते हैं ।^५ यह काव्य वास्तव में ढोला-मारू कथा पर आधारित द्रुहा का सकलन

१ — क डा० हीरालाल माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २०१ ।

ख प० मोतीलाल जी मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १०१ ।

ग डा० गोबद्धन न गर्मा, प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ६, राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य-संस्थान, उदयपुर, पृ० ८३-८५ ।

२ — श्री सीताराम जी लालस, राजस्थानी शब्द कोष प्रस्तावना, पृ० ६३ ।

३ — प्रकाशक, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, भूमिका ।

४ — हिन्दी साहित्य कोष, भाग १, पृ० ६८७-६८८ ।

५ — हिन्दी साहित्य कोष, भाग १, पृ० ६८६ ।

है। इसमें एक ही भाव के अनेक दूह हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इस सकलन में समय-समय पर लिखे हुए अनेक कवियों के दूहे हैं। इस काव्य का हम कथा-मुक्तक कह सकते हैं। जैन यति कुशलनाभ ने वि.सं. १६१८ में जैसलमेर के तत्कालीन रावल हरराज की आज्ञा से इन दूहों का सकलन कर इनका कथा-सूत्र जाड़न के लिये अनेक चौगाइया की रचना की और लिखा —

“दूहा घणा पुराणा अछई। चउपई बघ कियो मइ पछई ॥”

३२२। डोला मारू रा दूहा एक श्रृंगारिक काव्य है, जिसमें सयोग वियोग की अनेक प्रवृत्तियों का सरस और मार्मिक चित्रण देश काल के अनुरूप हुआ है —

प्रीतम आयो है सखी, ज्यारी जोती बाट ।
घर नाचे थाभा हमे, खेलण लागी खाट ॥
बीजळिया नीलज्जिया, जळहर तू ही लज्जि ।
सूनी सेज विदेश प्रिय, मधुरइ मधुग्इ गज्जि ॥

(७) ऊजली जेठवे रा दूहा

३६२। राजस्थान और गुजरात दोनों ही प्रदेशों में ‘ऊजली जेठवे रा दूहा’ प्रचलित है। इन दूहों का समय ५० श्री मातालालजा मेनारिया ने सं० ११०० के लगभग^१ और श्री भवरचन्द्रजी मेघाणी ने सं० १४००-१५०० तक प्राचीन^२ बताया है। ऊजली-जेठवा की कथा श्री जगजीवन पाठक ने सन् १९१५ ई० में ‘गुजराती’ के दोपावली अंक में और ‘मकरध्वज वशी महोपमाला’ पुस्तक में प्रकाशित की है। इन दूहों में जेठवा अथवा मेहउत नाम का आता है। जेठवा १२ वीं मदी में पोरबंदर का राजा माना गया है^३ किन्तु इन दूहों की भाषा १२ वीं शताब्दी की नहीं प्रतीत होती। सम्भवतः मौखिक रहने से इन दूहों की भाषा परिवर्तित हो गई है। साथ ही ऊजली और जेठवा सम्बन्धी विभिन्न समयों में रचित दूहों का प्राचीन दूहों में मिल गया है। उदाहरण स्वरूप मयानिया के चारण कवि जेतदानजी के सं० १६७४-७५ में रचित दूह ‘जेठवे रा सारठा’ नामक परम्परा-प्रकाशन में सम्मिलित है —

१ - रा० सा० हपरेखा, पृ० २१६।

२ - रा० सा० का आदिवाल पृ० १६३।

३ - राजस्थान की रसधारा, पुरुषोत्तमलाल मेनारिया राजस्थान संस्कृति परिषद्, जयपुर, पृ० २०।

डहनयो डफर देख, वादळ थोथो नीर बिन ।
 आई हाथ न एक, जळ री बू द न जेठवा ॥
 दरसण हुया न देव, भेव विहणा भटकिया ।
 सूना मिदर सेव, जनम गमायी जेठवा ॥

३७ २ । “ऊजली जेठवे रा दूहा” ऊजली घोर जेठवा सम्बन्धी प्रमाख्यात पर भाधारित हैं । जेठवा विण परिस्थिति मे एक रात क सहवास क पश्चात् ऊजली को अपनी राजधानी मे भाषित करने का प्रवासन दता है । अभिज्ञानशाकुन्तल की नायिका शाकुन्तला को भाति थोडे समय की प्रतिधा के उपरान्त ऊजली स्वयं जेठवा की राजधानी पोरबंदर पहुँचती है । ऊजला क चारण-पुत्री के रूप मे पूज्य होत क कारण लाव निन्दा के भय से जेठवा उसका रानी क रूप मे स्वीकार नहीं कर पाता है । ऐसी प्रवस्था में ऊजली के उद्गार सारठिया दूहा के रूप मे प्रकट होने हैं । इन सारठिया दूहा मे ऊजली का विरह जनित भर्मांतक वदना निहित है —

टीळी सू टळियाह, हिरणा मन माठा हुवे ।
 वाला बीछडियाह, जीवे किण विध जेठवा ॥
 जिरा बिन घडी न जाय, जमवारो किम जावसी ।
 बिलखतडी बोहाय, जोगण कर गो जेठवा ॥
 वे दीसे असवार, घुडलारी घुमर किया ।
 अबला रो आघार, जको न दीमे जेठवा ॥
 दुनिया जोडी दोय सारस ने चक्वा तणी ।
 मिली न तीजा भोय, जो जो हारी जेठवा ॥

(८) बीमलदे-रास

३८ २ । बीसल-रास घपर नाम बीसलदेव रास एव प्रमाख्यातक काव्य है, जिसमें प्रथम क बीसल चौहान घोर धाराविपति राजा भाज परमार की पुत्री राजमती की कथा वर्णित है । यह काव्य चार भागो मे विभक्त है । प्रथम भाग में बीसलद घोर राजमती का विवाह-वर्णन है । द्वितीय भाग में बीसलद की राजमती क प्रति उदासीनता घोर उद्गीमा यथा वर्णित है । तृतीय भाग मे मुख्यत राजमती का वियोग-वर्णन है । चतुर्थ भाग में बीसल घोर राजमती का पुनर्मिलन बताया गया है ।

३९ २ । काव्य के नाम से ही प्रकट है कि यह नेम है । बीसलदरास का काव्य सौम्य इसका सरल स्वभाविक भावाभिव्यक्ति घोर स्वनाय वातावरण की सुरम्य सृष्टि में निहित है ।

४० २। काव्य में बीसलदे के ऋठ कर उडीसा प्रस्थान का मुख्य कारण इस प्रकार है —

गरव करि उभो छई साभर्यो राव । मो सरोखा नहि ऊर भूभाल ॥
 म्हा घरि साभर उग्गहइ । चिहु दिसी याए जेसलमेर ॥
 गरबि न बोलो हो साभरया राव । तो सरोखा घणा और भुवाल ॥
 एक उडीसा को घणी । वचन हमारइ तू मानि जु मानि ॥
 ज्यु थारइ साभर उग्गहइ । राजा उणि घरि-उग्गहइ हीरा खान ॥

× × ×

कडवा बोल न बोलिस नारि । तू मो मेलहसी चित्त बिसारि ॥
 जीभ न जीम बिगोयनो । दव का दाधा कुपली मेलहइ ॥
 जीभ का दाधा न पागुरइ । नाल्ह कहइ सुणीजइ सब कोइ ॥^१

काव्य में स्थानीय वातावरण —

परणवा चाल्यो बीसलराव । पच सखी मिलि कलस बदावि ॥
 मोती का आपा किया । कू कू चदन पाका पान ॥
 भ्रमली समली आरती । जाई वचेरइ दियो मिलाए ॥^२

४१ २। बीसलदे के उडीसा प्रस्थान पर राजमती कामना करती है कि मार्ग में मपशकुन हो और राजा लौट आवे —

चाल्यो उलीगाणो नग्र मभारि । आढी आवज्यो ईधरा दार ।
 साड तदूकज्यो जीमउइ अङ्ग । सामइ जोगणी काल भुयग ।
 बाट काटे मजारडी । सामही छीक हणई कपाल ॥
 आढी लुवडी आवज्यो । गोरडी कउ प्रीय पाछो हो वाल ॥^३

४२ २। काय का प्रधान भग राजमती का वियोग वर्णन है —

श्री जनम काई दीयो हो महेस । अवर जनम घारे घडा हो नरेस ॥
 रान्ह न सिरजो हरिणली । भूरह न सिरजो धीणु गार्ई ॥
 बनसड काली कोइली । बइसती अरव कइ चंप की डालि ॥
 बइसती दाख बीजोरडी । इणि दुख भूरइ अबला बालि ॥^४

× × ×

१ - बीसलदेव रासो, स० सत्यजीवन वर्मा, का० ना० प्र० सं० पृ० ३७ ।

२ - वही, पृ० १२ ।

३ - वही, पृ० ५६-६० ।

४ - वही, पृ० ६५ ।

कुहणी फाटइ षाचुवउ । पोपरि फाटइ धन को चीर ।
जाएँ दब दाघी लाकडी । दूबली हुइ भूरइ ईम नाह ॥
डावा हाथ को मू दडउ । आवण लागो जीवणी बाह ॥^१

४३ २ । बीसलदे रासो का कर्ता नरपति नाह है, जिसके जन्म-काल और स्थान आदि व विषय में विशेष इतिवृत्त ज्ञात नहीं है । नरपति व विषय में रासा से इतना ही प्रकट होता है कि वह व्यास ब्राह्मण था—

“व्यास बचन इम ऊचरई, दिन-दिन प्रतिपै बीसलराई ।”

— छंद ६६, भाग प्रथम ।

“नरपति व्यास कहइ करि जोडि, तो तूठा तैंतिसो कोडि ।”

— छंद ८४, भाग प्रथम ।

“चउरास्या सहू वणव्या अम्रत रसायण नरपति व्यास ।”

— छंद १०३, भाग तृतीय ।

४४ २ । बीसलदे रास व निर्माणकाल के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं । रासो की एक प्रति में रचना तिथि— ज्येष्ठ कृष्णा ६ बुधवार स० १२७२ दी गई है —

बारह सै बहोत्तरा हा मभारि, जेठ वदी नवमी बुधवारि ।

नाह रसायण आरभई, सारदा तूठि ब्रह्मकुमारी ॥^२

मिश्र बंधुश्री ने रासा के निर्माण-काल पर विचार करते हुए लिखा है कि ज्येष्ठ कृष्णा ६ को बुधवार वि० स० १२७२ में नहीं आता, किंतु शक सवत् १२२० में आता है इसलिये रासो का निर्माणकाल शक सवत् १२२० अर्थात् १३५४ वि० सवत् मानना चाहिये । इस विषय में डा० गौरीशंकर ह राव द शोभा का मत है कि राजस्थान में इस समय शक सवत् नहीं, विक्रमी सवत् ही प्रचलित था । डा० शोभा के मतानुसार ‘बीसलदेव रासो’ का निर्माणकाल सम्बन्धित प्रति के अनुसार वि० स० १२७२ ही सही है और इसका चरित्रनायक बीसलदेव विग्रहराज तृतीय है जिसकी विद्यमानता का समय वि० स० ११५० है । इस प्रकार विग्रहराज तृतीय के १२२ वर्ष पश्चात् इस रासो की रचना हुई ।^३ श्री सत्यजीवन वर्मा ने बीसल देव रासो का निर्माण-काल वि० स० १२१२ लिखा है^४ और रामचंद्र शुक्ल ने भी इसका

१ — बीसलदे रासो स० सत्यजीवन वर्मा, का० ना० प्र० स०, पृ० ७५ ।

२ — वही, प्रथम सर्ग ४ ।

३ — ना० प्र० प०, पृ० ४-५, अंक २ पृ० १६३-७१ ।

४ — बीसलदे रासो, भूमिका, पृ० ५ ।

समर्थन किया है।^१ इन दोनों ने बहोतरा का अर्थ द्वात्रिंशत्तर अर्थात् बारह माना है। बदा उपास्य, बीकानेर में प्राप्त बीसलदेव रासा की एक प्रति में रचनाकाल निम्नलिखित है—

‘सवत् सहस्रं तिहतरइ जाणि । नाल्ह कवीसर सरसीय बाणि ॥’^२

डा० रामकुमार वर्मा ने भी उक्त उद्धरण के आधार पर बीसलदेव रासो का निर्माण काल स० १०७३ लिखा है।^३ इन विषय में डा० माताप्रसाद गुप्त का मत है कि रासो में वर्णित स्थान स० १४०० तक बस गये थे इसलिये रासो का निर्माणकाल स० १४०० मानना चाहिये।^४

प० मोतीलाल जी मेनारिया ने बीसलदेव रासो के निर्माणकाल के विषय में लिखा है कि रासो की प्राचीनतम प्रति स० १६६६ की प्राप्त हुई है। गुजरात में नरपति नामक कवि की ‘नन्दवत्तीमी (स० १५४५), ‘विक्रमचन्द्रण्ड’ (स० १५६०) और ‘स्नेह परिक्रम’ नामक रचनाएँ उपलब्ध हो चुकी हैं।^५ प० मोतीलालजी मेनारिया ने बासलदेव रासो का कर्ता और उक्त रचनाभाषा का कर्ता एक ही नरपति अनुमानित किया है^६ और रासा का निर्माणकाल स० १५४५-६० अनुमानित किया है। श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने भी प० मोतीलालजी के उक्त मत का ही समर्थन किया है।^७

बीसलदेव रासो में बासलदेव का विवाह राजा भोज परमार की पुत्री राजमती से होना लिखा गया है। राजा भोज विप्रहराज द्वितीय का समकालीन था, जिसका समय १०३० से १०५६ वि० स० माना जाता है। ऐसी धवस्था में नरपति नायक का समकालीन सिद्ध नहीं होता जब कि उसने रासा में वर्तमान कालिक क्रियाओं का प्रयोग किया है। रासा में घाना सागर का बयान भी है—

दोठउ आनासागर समद तणी वहार । हस - गवणी मृग-भोचणी नारि ॥
एक भरइ बीजी कलिरव करइ । ताजी धरी पावजे ठण्डा नीर ॥
चीयी घनसागर जू घूलई । इसी हो समद अजमेर को बीर ॥^८

१ - हि० सा० ६०, ७ वा सं०, पृ० ३४ ।

२ - ना० प्र० प०, भाग १४ अक्ष १, पृ० ६६ ।

३ - हि० सा० भा० ६०, पृ० १४७ ।

४ - बीसलदेव रास, स० डा० मा० प्र० गुप्त और अ० च० नाहटा, हि० प० प्रयाग, सूक्तिका पृ० ५८ ।

५ - मो० २० दे०, जैन गुजर कविधरो, भाग ३, पृ० २१५१ ।

६ - रा० भा० सा० हि० सा० स०, पृ० ८८ ।

७ - हि० सा० भा० का०, पृ० ५२ ।

८ - ना० प्र० स० स०, अ० स० २७, पृ० २७ ।

४५ २ । आनासागर का निर्माण विग्रहराज चतुर्थ के पिता भर्णोराज द्वारा सम्पन्न हुआ था ।^१ इस क्षेत्र से बीसलदेव रासा का चरित्र नामक विग्रहराज चतुर्थ नात होता है और राजमती धाराधिपति भोज परमार की पुत्री न हो कर किसी अन्य भोज वंशीय प्रपदा भोज प्रवटक धारी परमार की कन्या हो सकती है ।

वास्तव में बीसलदेव रासा १३वीं सदी में गेय प्रेमाख्यान के रूप में नरपति द्वारा रचा गया था । अनेक वर्ष मौखिक रहने से इसमें अनेक प्रक्षिप्त अंग सम्मिलित हो गये और इसकी भाषा का मूल रूप भी सुरक्षित नहीं रह सका । १७ वीं सदी वि० में यह लिपिबद्ध किया गया और इसी समय की भाषा का रूप सौंदर्य इसमें सुरक्षित है ।

४६ २ । बीसलदेव रासा की समीक्षा इतिहास की दृष्टि से न हो कर एक काव्य ग्रन्थ के रूप में ही होनी चाहिये ।

(६) प्रारम्भकाल के अन्य कवि-कौविद

- (१) पूर्णा, वि० स० ७००, दोहों में रचित अलंकार ग्रन्थ ।
- (२) छेंढणपा वि० स० ६००, चतुर्योग भावना ।
- (३) गोरखनाथ, वि० स० ६००, गोरखवाणी ।
- (४) खुमाण, वि० स० ६००, खुमाण रासा ।
- (५) देवमेन, वि० स० ६६०, १ सावय घम्म-दोहा, २ दशन सार ।
- (६) पुष्पदत्त, वि० स० १०१५, १ महापुराण २ जसहरचरित, ३ गायकुमार चरित ।
- (७) सासा, वि० स० १०३६, फुटकर दोहे ।
- (८) रामसिंह, वि० स० १०५०, पाट्टुड दोहा ।
- (९) धनपाल, वि० स० १०५०, भविंसयत्तकहा ।
- (१०) मुञ्ज वि० स० १०५०, फुटकर दोहे ।
- (११) भोज, वि० स० १०५०, फुटकर दोहे ।
- (१२) बनबामर मुनि, वि० स० १११६, करकड चरित ।
- (१३) जिनबल्लभ मूरि, वि० स० १११६, ब्रह्मनवकार ।
- (१४) तिनदत्त मूरि, वि० स० ११५०, १ चाचरि २ उवएसरमायणु, ३ काल स्वरूप बुल ।

- (१५) ग्राम भट्ट, वि० स० ११५०, फुटकर छन्द ।
 (१६) अज्ञात, वि० स० १२०६, उपदेशतरंगिणी ।
 (१७) महेश्वर सूरि, वि० स० १२२०, समयजसमजरी ।
 (१८) जिनपति सूरि, वि० स० १२३२ वधावणा गीत ।
 (१९) बज्रसेन सूरि, वि० स० १२२५ भरतेश्वर-बाहुबलि धोर ।
 (२०) हूमण चारण, उपदेश तरंगिणी में सकलित रचनाए ।
 (२१) रामचंद्र चारण, पुरातनाचार्य प्रबन्ध में सकलित रचनाए ।
 (२२) बागण कवि, पुरातनाचार्य प्रबन्ध में सकलित रचनाए ।
 (२३) उदयसिंह चारण, प्रबन्ध चितामणी में सकलित रचनाए ।

३ वीरगाथा काल

क प्रारम्भिक परिचय

४७ २ । भारतवर्ष के अंतिम हिन्दू-सम्राट पृथ्वीराज चौहान की वि० स० १२५० (ई० सन् ११९३) में मुहम्मद गौरी से पराजय के फलस्वरूप विदेशी मुस्लिम प्राका तागो का आधिपत्य भारतवर्ष में स्थिर हो जाता है और देश में एक नवीन युग का प्रारम्भ होता है । इसी समय भारतीय इतिहास में मुस्लिम काल प्रारम्भ होता है । तत्पश्चात् भारतीय स्वाधीनता सघष की बागडोर मुख्यतः राजस्थान के राजपूत नरेशों के हाथ में रह जाती है और महा राणा कुम्भा, काह्लडदे चौहान, हमीर एवं महाराणा सागा जैसे वीर नरेश भारतीय सस्कृति की रक्षा करते हुए विदेशी प्राकातागो से तत्परतापूर्वक सघर्ष करते हैं । इन राजपूत राजागो द्वारा राजस्थानी साहित्य, संगीत, नृत्य, चित्र और शिल्प स्थापत्यदि प्रवृत्तियों का विशेष प्रोत्साहन प्राप्त होता है । राजस्थानी भाषा साहित्य की विभिन्न विधाएँ इस काल में स्पष्ट रूपसे परिवर्द्धित हो जाती हैं । जैन पद्य गद्य और चम्पू रचनागो के साथ ही चारण रचनाएँ इस काल की विशेष उपलब्धियाँ हैं ।

४८ २ । इस काल की जन-भावनागो में भी विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं । जनता राजपूत शासकाँ और सेना नायकाँ को अपने एक मात्र नाता समझती है । इस काल में भारतीय स्वाधीनता सघर्ष के लिये राजस्थान एक विशेष केंद्र बन जाता है । राजपूत सेना-नायक राजस्थान के विभिन्न सुरक्षित भागाँ में अपने शासन स्थापित करने हैं । मुहम्मद राजपूता का शासन मेवाड में वि० सं० ७६०, (७३३ ई०) से ही स्थापित हा चुका था किंतु राठोडा का जाधपुर और बीकानेर में, बल्लवाहा का डूँडाड में तथा हाडा चौहाना का हाडीवी प्रदेश में शासन इसी काल में स्थापित हुआ ।

पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गौरी के मध्य हुए अंतिम तराइन युद्ध में गौरा का विजय हुई, जिसकी प्रतिजिया के पत्रस्वरूप जाना में प्रबन्ध और भावना जागृत हुई। राजस्थान में वीरता पूर्ण धर्म युद्ध, जोहर और बलिगाथा की ऐसी परम्पराएँ प्रचलित हुईं जिन्हें उदाहरण विद्वद् इतिहास में अत्यन्त प्रशंस्य है।

४६२। वीरता का इस युग में असाधारण रूप से प्रचार के साथ कवियों ने भी आरम्भ किया। कविताएँ लिखीं और भक्ति का स्वरूप भी वीरता का आचरण छोड़ कर सामने आया।

रत्न वीरगाथा काल के प्रधान कवि और कृतियाँ

(१) शालिभद्र चरि

५०२। राजस्थानी साहित्य के वीरगाथाकाल के प्रथम कवि शालिभद्र गूरि हुए, जिन्होंने वि० स० १२४१ में भरतेश्वर बाहुबलि राम काव्य लिख कर राज परम्परा का अन्तर्गत वीर समात्मक काव्या का श्रीगणेश किया। मुहम्मद गौरी की पृथ्वीराज चौहान का विरुद्ध तराइन युद्ध (वि० स० १२४०, ई० ११९३) की विजय में जनता में प्रबन्ध प्रतिरोध की भावना उत्पन्न हुई और वीर रस का संचार हुआ। पत्रस्वरूप शालिभद्र गूरि अहिंसा व्रत धारि एक जन साधु होते हुए भी अपने ध्यान को समतामयिक वीर भावना में बधित न कर सके।

सामयिक वीर भावना का परिणामस्वरूप जन साहित्य में भरतेश्वर और बाहुबलि युद्ध विषयक काव्य निर्माण की परम्परा प्रचलित होती है। भरतेश्वर और बाहुबली के मध्य हुए युद्ध के दृश्य अर्जुनदास का सुप्रसिद्ध जन मन्दिर विमल यशही में सुन्दरतापूर्वक उल्लेख किये गये हैं। यह राज वीर रस पूर्ण होते हुए भी निर्वेदान्त है। इसमें उरसाह, दर्प और स्वाभिमान पूर्ण उक्तियों की काव्यात्मक पंक्तियाँ विशेष पठनीय हैं। अनेक स्थल नाटकीय सजाया से अलङ्कृत हैं यथा— मतिसागर-भरतेश्वर सवा, दूत-बा बलि संवाद आदि। दूत-बाहुबलि संवाद का एक उदाहरण निम्नलिखित है—

दूत पभणइ दूत पभणइ बाहुबलि राउ,
भरहेसर चक्क घरु कहि न कवणि दूहवण कीजिइ,
बेगि सुबेगि बोलिह सभलि बाहुबलि ।
बिण बधव सबि सपइ ऊणी, जिम बिण लवण रसोई अलूणी ।
तुम बसणि उत्कठित राउ, नितु नितु याट जोह भाउ ॥

१ - भरतेश्वर बाहुबलि रास, सं० लालबाबू भगवानदास गांधी, प्राण्य - विद्या मन्दिर, बडोदा, प्रस्तावना पृ० ५३-५६।

बाहुबलि दूत को बोरतापूर्वक उत्तर देते हैं —

राउ जपइ राउ जपइ सुणिन सुणि दूत ।
जविहि लिहीउ भालयलि तजि लोह इह लीइ पामइ ।
अरि रि । देव न दानव महिमइलि मडलैव मानव
काइ न लघइ लहीयालीह, लाभइ अधिक न ओभा दोह ।^१

५१२ । इस रास में सेना बगन, दिग्विजय-वर्णन, हाथी, घोड़ों और सैनिका के अनेक वर्णन प्रतिशयोक्तिपूर्ण हैं, कि तु भाषा में सबत्र प्रवाह और अनुप्रासों की छटा वलमान है । बोर-रसात्मक का या में सेना यात्रा के प्रसंग अपना महत्वपूर्ण रवान रखने हैं । भरतेश्वर बाहुबलि रास में सेना यात्रा का वर्णन इस प्रकार है —

ठबणि

प्रहि उगामि पूरव दिसिहिं, पहिलउ चालिय चक्क ।
धूजिय धरयल धरहरए, चलिय कुलाचल-चक्क ॥१८॥
पूठि पियारु तउ दियए, भुयबलि भरह नरिदु तु ।
पिडि पचायण परदलहै, हलियलि अवर सुरिद तु ॥१९॥
वज्जिय समहरि सचरिय, सेनापति सामत ।
मिलिय महाधर मडलिय, गाढिम गुण गज्जत ॥२०॥^२

(२) शाङ्गधर

५२२ । कवि शाङ्गधर के हमीर रासों और हमीर काव्य नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं किन्तु ये पूर्ण रूप में अप्राप्य हैं । इनके सस्कृत ग्रन्थ शाङ्गधर सहिता (विषक) और शाङ्गधर पदति (सुभाषित, २० का० १४२० वि०) अवश्य ही पूर्णरूप में प्राप्त होते हैं । इनके भाषा काव्या के कतिपय उदाहरण प्राकृतपेगलम में प्राप्त होते हैं, जिनसे ये कुशल कवि प्रतीत होते हैं —

पिधउ दिठ सणाह बाह उप्पर पक्खर दइ ।
बधु समदि राण धसउ हम्मीर बगण लइ ।
उड डल राइपट्ट भमठ खण रिउ सीसहि डारउ ।
पक्खर पक्खर ठैल्लि पेल्लि पब्बअ अप्फालउ ।

१ — प्रादिकाल के अज्ञात हिंदी रासकाव्य, 'हरीश', भगल प्रकाशन, जयपुर ।

२ — क — हिंदी काव्य धारा, राष्ट्रल सांस्कृत्यायन, पृ० ५०० ।

ख — प्रादिकाल के अज्ञात हिंदी रास काव्य, 'हरीश', भगल प्रकाशन, जयपुर ।

हम्मीर बज्जु जज्जल भणइ, कौहाणल मुहमह जलउ ।
सुलतान सीस करवाल दइ-तज्जि क नयर दिम घसउ ॥

उक्त पद्य में रणवम्भार के राजा हमीर का सेनापति जज्जन प्रतिज्ञा करता है कि — मजबूत करघ पहना कर, घोड़े पर पागर डानकर बंधुजना की सम्प्राप्तन देखर घोर घाह हमीर क बघनों को ग्रहण कर मैं रण में उतरा हू । मैं अतिरिक्त एक आशाग मार्ग में भ्रमण करता हू । राह्य से गनुभा क तिरा को काटता हू । पासर स पागर टेन-गन कर में पर्वता को सम्प्राप्तन करता हू । जज्जन कहाँ है कि हम्मीर के कार्य हेतु मैं बार-बार कोशिश में जल रहा हू और मुन्तान क मस्तक पर तनसार का प्रहार कर देह का तज स्वर्ग में चलता हू ।^१

(३) बारूजी सौदा

५३ २ । बारूजी 'सौदा' नामक गाथा के धारण कवि ये घोर मेवाह के महाराणा हमीर क समकालीन थे महाराणा हमीर के समकालीन बारूजी का रचना काल सं० १४०८ से १४२१ क बीच निश्चित होता है । बारूजी रचित स्वतंत्र काव्य कथ उलपन्थ नहीं होता, किन्तु स्पष्ट रचनाएँ अक्षरम मिलती हैं ।^२ इनके एक गीत का उदाहरण इस प्रकार है —

एला चितोटा सहै घर आसी, हूँ धारा दानिया हरू ।
जएणी इसो कह नह जायो, कहवै दवी धीज करू ॥१॥
रावळ बापा जसो रामगुर रीक वीक सुरपत री रुस ।
दस सहसा जहो नह दूजो, सक्ती कर गला रा सुस ॥२॥
मन साचें माखे महमाया, रसणा सहती बात रसाळ ।
सरज्यो लै अडसी सुत सरखो, पकडे लाउ नाग पयाल ॥३॥
आलम कलम नवै खड एला, बेल पुरारी मीठ किसो ।
देवो कहै मुण्यो नह दूजो, अवर ठिवाणै भूप इसा ॥४॥

(४) श्रीधर व्याम

५४ २ । श्रीधर व्याम कृत "रणमल छन्द" भी इसी काल का एक उत्कृष्ट रचना है । श्रीधर ईडर के राजा रणमल राठीड क समकालीन थे । रणमल घोर पाटण के सुवेदार

१ — राजस्थानी भाषा घोर साहित्य, श्री मोतीलालजी मेनारिया, पृ० ७६ ।

२ — राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीताराम सालस, रा० गो० सं०, जोधपुर प्रकाशना पृ० १०३ ।

मुजफ्फरसाह के मध्य सन् १३८७ (वि० स० १४५४) में हुए युद्ध का वर्णन कवि ने भोजस्वी शब्दावली में किया है। रणमल छन्द ७० छन्दा की एक लघु कृति है किन्तु प्राचीनता और रसपरिपाक के साथ ही ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसका एक उदाहरण निम्नलिखित है —

गोरीदल गाहवि दिटठ दहु हिमि गडि मडि गिरि गहरि गडिय ।
हणहणि हवकन्तउ हुँहुँ हय हय हुकारवि हयमरि चडिय ॥
घडहडउ घडि कमघज्ज घरातलि घसि घगडायण धूस घरइ ।
ईडर वइ पडर वेस सरिसु रणि रामायण रणमल्ल करइ ॥^१

(५) मिचदाम गाडण

५५ २। सिवदास जाति के चारण थे और गाडण इनका गौरव था। सिवदास ने 'मचलदास खीची रो वचनिका' नामक बीर रसात्मक चम्पू काव्य लिखा। इस काव्य में गागरीनगड (कोटा) के खीची राजा मचलदाम और माहू के चादसाह हंग गौरी के युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध वि०स० १४८० (ई० सन् १४२३) में हंग गौरी के गागरीनगड पर चढ़ाई करने पर हुआ था। डा० तेस्मोतारी ने प्रयत्न करके मचलदास का समकालीन बनाते हुए युद्ध के समय ही काव्य का निर्मित होना सूचित किया है।^२ डा० हीरालाल माहेश्वरी के मतानुसार काव्य का निर्माण स० १५०० के लगभग हुआ।^३ इस प्रकार काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। यह काव्य भाषा — शीष्टव, उक्ति वैचित्र्य और वीररस की दृष्टि से उत्तम काव्यों की श्रेणी में है। इस के उदाहरण इस प्रकार हैं —

“एकणि वनि वसतडा, एवड अतर काइ ।
सीह करड डो न लहै, गैवर लखि विकाइ ॥ १ ॥
गैवर गले गळयीयो, जह खचे तह जाइ ।
सीह गलथ्यण जे सहै, तो दह लखि विकाइ ॥ २ ॥

चात

देस तो कोणकोण । सत्यासी । नमीयाड, आसेर, रायगण, प्रोली, पट्टोली,
सेलारपुर, माड सीहीर, हैसगाबाद नगर का । इमा एक ते कटक बाघ । देस-देसका ।

१ - राजस्थानी गद्य बीच, श्री सीताराम लालत भूमिका पृ० १०४ ।

२ - ए डिस्प्टिव बेटलोग आफ् बाइक एण्ड हिस्टोरिकल मेयुस्क्रिप्टस, भा० प्रथम, बोकानेर स्टेट, पृ० ४१ ।

३ - राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ८४ ।

खड खड का । नगर नगर का । घर घर का । खान, मार, उमराउ, चतुरंग दल चढ़ि चाल्या । पातसाहि पापाण पै पलाण धाल्या । इसी हींद राजा कीण छे जिहां का पातमाह के मनि रोस बसी । कुणें का माया सी तिसी । कुणें देव रूठी । कुणें की माइ विद्याणी जो सामहो रहे ।”

(६) बादर दाढ़ी

५६ २ । बादर धर्यान् बहादुर जाति का मुसलमान दाढ़ी या जिसने अपने धाथ्य दाता दला जोईया धीर धीरमजा के बीच होने वाले सघर्ष का धर्यान् धीरमायण काव्य में किया है । प० रामचर्ण जी भासापा ने धीरमायण क वर्ता का नाम रामचन्द्र लिखा है ।^१ स्व० भासापाजी का यह मत समीचीन नहीं है क्योंकि का य में वर्ता का नाम बादर दाढ़ी ही मिलता है —

“बादर दाढ़ी चोलियो नीसाणी गला ।”^२

५७ २ । राजस्थान में दाढ़ी हिन्दु धीर मुसलमान दाना ही जातिया के होत हैं । बादर मुसलमान दाढ़ी या क्योंकि उसने अपने काव्य में हिन्दुओं व लिये “खाफर” शब्द का प्रयोग किया है —

‘खाफर माल कुराण कु लख बेर लगाणी ।’

५८ २ । धीरमायण के रचना-काल के विषय में अनेक मत हैं । प० मोतालातजी मेनारिया ने बादर को मारवाड क राव धीरमजी का धामित बताते हुए धीरमायण का रचना काल राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा धीर दिगल में धीर रस^५ में सं० १५५० के आसपास बताया है । बाद में अपने अपना मत परिवर्तित करते हुए इस काव्य का रचना काल घठारहवीं शताब्दी का मध्य लिखा है ।^६ डा० सुकुमार सेन ने राव धीरम की ही कवि का आश्रयदाता मानते हुए धीरमायण का रचना-काल १५ वीं शती लिखा है ।^७

१ - मारवाड का मूल इतिहास, पृ० ८७ ।

२ - प्रका० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, नीसाणी सं० ८०, ।

३ - धीरवाण (धीरमायण) सं० श्रीमती राजा लक्ष्मीकुमारी बू डावत, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, छन्द सभ्या ६५, पृ० सं० ३१ ।

४ - क - प्रकाशक- छात्र हितकारी पुस्तकमाला प्रयाग, पृ० २२१ ।

ख - प्रकाशक- हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, भूमिका पृ० ३६ ।

५ - राजस्थानी भाषा धीर साहित्य हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पृ० २२६ ।

६ - ए इन्स्टिट्यूट केटलाग, पार्ट १, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, पृ० ३ ।

५६ २। बादर ने वीरमजी और दला जोड़्या के मध्य होने वाले सघर्ष के कारणों और सघर्ष का वर्णन किया है जिसमें वीरमजी और उनके अनुयायियों को दोषी तथा जोड़्यो को निर्दोष बताते हुए जोड़्या की प्रशंसा की है —

अला अला उचार के चढ खँगा चला ।
जुडिया तेगा जोड़्या हुय वीरा हला ।
वीरम मला वोटीया बाजो गलबला ।
भड वीरम मदु भिडे जाणे जम टीला ।
वीरमदे जोया बिचै भासै रिए भला ।
सिंह भचानक साकडे घड कु जर धला ।
केहर जाणक कोप कर उठिया गीर टीला ॥^१

यह कृति जोड़्यो के ढाढी बादर की (बहादुर की) है —

‘हू बादर ढाढी जोया रो ही । सो में पूछ ने सुणी जिसी हगीगत सु बणावट करी । मे जोड़्या रे नगारे माये हो । हेत-बैर सारी निजरा देख्यो । पछे धीरदेजी काम आया । जा पछे तेजमाल जोये मने कैयो कै बादर सिरदार मारिजिया जिण तरै हुइ ये देखी जिसी सारी हगीगत बरण करी ।’^२

६० २। ऐसी प्रवस्था में ‘वीरमायण’ को ‘दलायण’ भी कहा जा सकता है । सम्भव है प्रारम्भ में यह कृति ‘दलायण’ के नाम से ही प्रचलित रही हो और कानान्तर में वीरमजी राठोड के पक्ष वालों ने इसमें वीरमजी का वर्णन देख कर इसको ‘वीरमायण’ के नाम से प्रसिद्ध कर दिया हो ।

(७) पद्मनाम

६१ २। सुलतान भलाउद्दीन खिलजी ने राजस्थान में रणथंभौर, बित्तोड और जालोर आदि दुर्गों पर आक्रमण किये । राजपूत योद्धाओं ने वीरतापूर्वक प्रतिकार किया तथा राजपूत रमणियों ने जीहर व्रत का पालन किया, जिसके विषय में अनेक काव्यों और वार्ताओं की रचनाएँ हुई —

बित्तोड-पुढ —

(१) मुहम्मद जायसो कृत पद्मावत (२० का० १५६७ वि०),

१ - वीरवाण (वीरमायण) स० धीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चू बापत, राजस्थान प्रांतीय विद्या प्रतिष्ठान, छब स० ८५, पृ० स० ४५ ।

२ - वही, पृ० १५ ।

- (२) हेमरतन - गोरा बादल पर्दमणी चऊपई (२० का० १६४६ वि०) ^१
- (३) लघोदय कृत - पद्मनी चरित् (२० का० १७०२ वि०),
- (४) जटमल कृत - गोराबादल वार्ता (ले० का० १८२८ वि०),
- (५) भाग्य विजय कृत - गोराबादल चौपाई (ले० का० १८०३ वि०),
- (६) अज्ञात कवृ क - गोराबादल कथा ।

रणमौर युद्ध —

- (१) नयचंद्र कृत - हमीर महाकाव्य, स० (ले० का० १५५२ वि०),
- (२) जोधराज कृत - हमीर रासो, अपर नाम हमीरायण (२० का० १७८५ वि०),
- (३) ग्वाल कवि कृत - हमीर हठ,
- (४) चन्द्रशेखर कृत - हमीर हठ ।

जालोर युद्ध —

- (१) कवि पद्मनाभ कृत - कान्हडदे प्रबन्ध (२० का० १५१२ वि०)
- (२) अज्ञात कवृ क - वीरम दे सानीगरा री वात, (ले० का० १७६१ वि०) ।

६२ २ । मल्लाउद्दीन के शासन के समय जालोर पर सोनीगरा चाहान काहडदे का शासन था । काहडदे ने अपने वीर राजपूत सैनिका सहित धनक बर्षों तक संघर्ष किया और अन्त में वीरगति प्राप्त की । काहडदे के साथ ही इसके पुत्र वीरमदे ने वारतापूर्वक युद्ध किया । कवि ने वीरमदे और मल्लाउद्दीन की पुत्री का पूर्व जन्म का सम्बन्ध बताते हुए प्रेम प्रसंग भी काव्य में दिया है ।

६३ २ । काहडदे प्रबन्धी प्राचीन राज पानी का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है जिसका निर्माण वान सन् १५१२ है । काव्य का रचना जालोर के चौहान नामक भखराज क ही मानित कवि पद्मनाभ ने युद्ध क १५० वर्ष पश्चात् की, जिसने इसका विशय महत्त्व है । काव्य का मूल पाठ पूर्ण रूपेण सुरंगित रहा है ।^२

६४ २ । काहडदे प्रबन्ध बार संघों में विभाजित है । 'वीरमदे सोनीगरा री वात' भी इसी विषय पर आधारित है, जिसकी राजस्थान में अनेक प्रतिया प्राप्त होती

१ - श्री रुद्रकामिनेय, प्रधान सम्पादक — 'राजा बलदेवदास बिडला प्रथमात्मा', नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, ने इस कृति का २० का० १७६० वि० दिया है (द्वितीय वार्ता, परिषय, पृ० २२) । यह कृति महाराणा प्रताप के दीवान मामाणाट के लघु ध्याता ताराचन्द कावल्या की ध्याता से सादरी में वि०स० १६४६ में रचित है ।

२ - डॉ० साताप्रसाद गुप्त, मानोचना, भाग १६, पृ० ६४, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

है।^१ प्रबन्ध - दोहा, चौपाई और ससैया की देशियो मे लिखा गया है। इसमे पाच लौकिक गैली के गीत और दो गद्यांश भी दिये गये हैं।

६५ २। पद्मनाभ एक कुशल कवि था इसलिए कवि को इतिहास, कल्पना और काव्य तत्वा के निर्वाह मे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। डा० दशरथ शर्मा के मतानुसार- "पद्मनाभ कोरा ऐतिहासिक ही नहीं था, वह कवि भी था, अतः उसे ऐसी कथाओं की कल्पना और उसके समावेश का भी पूर्ण अधिकार था।"^२ कवि ने तत्कालीन भौगोलिक सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों का भी यथासम्भव चित्रण अपने काव्य मे किया है। काव्य के सम्पादक प्रो० के० बी० व्यास ने इसकी तुलना पृथ्वीराज रासो से करते हुए इसको समान रूप में महत्त्वपूर्ण बताया है।^३

६६ २। बान्हडदे प्रबन्ध व कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं —

पदमनाभ पडित भणइ, जनमेतरि जे रीति ।

जाति हुई जुजूई, पूठि न छाडइ प्रीति ॥३, २०६

×

×

×

पदमनाभ पडित भणइ, प्रीति परीक्षा एह ।

अग बिहु जण उल्हसइ, नर नारी नवनेह ॥३, २३०

×

×

तीन्हा तुरी ऊडवइ राउत भला वावरइ भाला ।

माफिम राति म्लेच्छ मारता, वह दिसि हीडइ भूला ॥१, २०८॥

सपराणा सीगीणो गुण गाजइ तीन्हा तूर विष्टुडइ ।

जरइ जीण आगा बीध्यनिइ, अगि सू सरा फटइ ॥१, २०९॥

अगो अगि परे अणीयाने, प्राणइ पापर फोडइ ।

पाडा तणे घाइ समराणे, साधिइ साधि विछोडइ ॥१, २१०॥

(८) महाकवि चन्द : पृथ्वीराज रासो

६७ २। महाकवि चन्द कृत पृथ्वीराज चौहान विषयक रचनाओं के प्राचीनतम प्रमाण ८ छप्पय-छंदा के रूप में मुनि श्री जिनविजयजी पुरातत्त्वाचार्य की वि०स० १२६० से १५२८ तक रचित छंदों के वि०स० १५२८ में लिपिबद्ध हुए "पुरातन प्रबन्धसंग्रह"

१ - राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग २ सम्पा० पुरुषोत्तमलाल भेनारिया, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर।

२ - शोध पत्रिका, भाग ३, अंक १, वीष २००८।

३ - प्रस्तावना प्रका० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

में उपलब्ध हुए^१ और इन छत्रों में से तीन छत्र बागी नागरी प्रचारिणि तमा से प्रमाणित
संस्करण में भी परिवर्तित रूप में श्री मुनिजी ने सौज निकाने । उक्त छत्रय इत प्रकार हैं —

इवतु बाणु पद्मवीमु जु पर्द कईवासह मुनफ्रमो ।
उर भितरि सडहृडिउ धीर ककलतरि चुवकउ ।
वीअंकरि सधीउ भमइ मूमेसरनदण -
एहु मु राडि दाहिममो स्पणइ पुदइ सइभरिवणु ।
कुड छडि न जाई इहु लुविमउ वारइ पलकउ खल गुलह ।,
न जाणउ चंदवलडिउ वि न वि छुट्टइ इह फलह ॥^२

एक बान पद्ममी नरेस कौमासह मुवयो ।
उर उप्पर घरहरया वीर कल्पतर चुवयो ॥
बियो वान सधान हयो सोमेसर नंदन ।
गाडो करि निग्रहयो पनिव गळ्यो सभरि घन ॥
पल धोरि न जाइ अभागरो गहयो गुन गहि अगरो ।
इम जपे चदवरदिया कहा निघट्टे इन प्रलो ॥^३

अगह म गहि दाहिममा रिपुरायखयकरु ।
बूडु मश्रु मम ठवमो एहु जवुप (य) मिलि जगुरु ।
सहनामा सिक्खवउ जइ सिक्खवउ बुज्जाइ ।
जपइ चदवलहु मज्झ परमक्खर सुज्जइ ।
पहु पहुविराय सइभरिघणी सयमरि सउणइ सभरिसि ।
कइवास विआस विसट्टठविणु मच्छिबधिबद्धमो मरिसि ॥^४

अगह मगह दाहिमी देव रिपुराई पयंकर ।
बूरमत जिन करों मिले जम्हू वै जगर ॥
मो सहनामा सुनो एह परमारथ सुज्झै ।
अज्जै चद विरइ वियो कोई एह न बुज्झै ॥
पृथिराज सुनवि सभरि घनी इह सभलि सभारि रिस ।
कौमास बलिष्ठ बसीठ बिन म्लेच्छ बध बध्यो मरिसि ॥^५

१ - सिधो जन प्रथमाला, संख्या २, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, पृ० ८६, ८८ और ८९ ।

२ - पुरातन प्रबन्ध सग्रह, पृ० ८६, पृथ २७५ ।

३ - पृथ्वीराज रासो, पृ० १४६६, पृथ २३६ ।

४ - पृ० प्र० स०, पृथ २७६ ।

५ - पृ० रा०, पृ० २१८२, पृथ ४७५ ।

त्रिण्हि लक्ष तुपार सबल पापरीमइ जसु हय,
 चऊद सय भयमत्त दति गज्जति महामय ।
 बीस लख पायक सफर फारवक पणुद्धर,
 लहसडु अरु बलु यान सरव कु जाणई ताह पर ।
 छत्तीस लक्ष नरहिबई विहि विनडिओ हो किम भयउ,
 जइचद न जाणउ जलहुकइ भयउ कि मुउ कि घरि गयउ, ॥^१

असिय लप्प तोघार सजउ पप्पर सायहल ।
 सहस हस्ति चवसट्टि गरुअ गज्जत महाबल ॥
 पच कोटि पाइअक सुफर पारवक धनुद्धर ।
 जुध जुघान वर वीर तोन बधन बद्धनभर ॥
 छत्तीस सहम रन नाइवो विहि त्रिम्मान ऐसो क्रियो ।
 जैचद राइ कविचद कहि उदधि बुड्डि कै घर लियो ॥^२

उक्त छ पयो से सिद्ध होता है कि कवि चद ने पृथ्वीराज के विषय में छ द लिये थे और वे वि० स० १५२८ तक लोकप्रिय हो चुके थे एवं इन छ'दा को सग्रह प्रथो में मायना मिलने लगी थी ।

६८ २ । पृथ्वीराज रासो की लगभग ६० प्रतिपाद्य तक उपलब्ध हो चुकी है^३ और इन सब में आकार प्रकार एवं रूप की दृष्टि से अनेक भेद हैं । पृथ्वीराज रासो के रूपांतरों को ४ भागों में विभक्त किया गया है —

(१) बृहत् रूपांतर, (२) मध्यम रूपांतर (३) लघु रूपांतर, (४) लघुत्तम रूपांतर ।^४

बृहत् रूपांतर की प्रतिपाद्य वि० स० १७६० और उसके बाद की हैं और इसकी प्राचीनतम प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की उदयपुर शाला में सरस्वती भण्डार के सग्रह में सुरक्षित है । बृहत् रूपांतर महाराणा अमरसिंह द्वितीय (शासनकाल वि० स० १७५५-१७६७) की आज्ञा से तैयार किया गया था । बृहत् रूपांतर की उक्त प्रति के अंत में निम्नलिखित छप्पय भी प्राप्त होता है —

१ - पु०प्र० स०, पृ० ८८, पद्य २८७ ।

२ - पृ १०, पृ० २५०२, पद्य २१६ ।

३ - राजस्थान का विगत साहित्य, प० मोतीलालजी मेनारिया, पृ० ४४, ४५ ।

४ - प० नरोत्तमदासजी स्वामी राजस्थान भारती, नाडू ल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जोकानेर, अजमेर सन् १९४६, पृ० ३४ ।

गुन मनिमन रस पोइ, चन्द कवियन दिदिय ।
छन्द गुनी ते तुट्टि मन्द कवि भिन्न भिन्न विदिय ॥
देस देस विप्यारय, मेल गुन पार न पावय ।
उहिम करि मेलवत, भास बिन अलख आवय ॥
चित्रकोट रान अमरेस भय, हित श्री सुग्य भायस दयो ।
गुन बीन बीन करुना उदधि, लाग्य रासो उहिम कियो ।

उक्त छप्पय में स्पष्ट हाता है कि पृथ्वीराज रासो के छन्द मूल ग्रन्थ से अलग हो गये थे, जैसे कोई माला टूट कर उसकी मणियाँ बिलर जाती हैं। महाराणा अमरसिंह की आगा से देश देश में प्रचलित इन छन्दों की एकत्रित कर सम्बद्ध किया गया। नागरी प्रचारिणी मभा, वाराणसी से प्रकाशित संस्करण बृहद् रूपांतर पर आधारित है। मय आवश्यकता यह है कि प्राप्त समस्त प्रतिमों के आधार पर पृथ्वीराज रासो का एक बृहन्म संस्करण तैयार किया जाय जिसमें इस महात् कृति का अथर्विन मूल्यांकन हो सके। स० १७६० में किये गये उक्त सकलन में अनेक छन्दों का छूट जाना संभव है। पृथ्वीराज रासो का पूण रूप सामने आना आवश्यक है। संवत् १९०० में प्राचीन काल में किये गये अनेक कवियों के लेखकों को भी काव्य सीमा से बाहर नहीं रखा जा सकता।

६६०। पृथ्वीराज रासो के मध्यम रूपांतर वि० स० १७२३ और १७३६ १७४० में लिपिबद्ध हुए हैं। बृहद् रूपांतरों में अध्याया का नाम 'सम्यो' है किन्तु मध्यम रूपांतरों में इनको 'प्रस्ताव' कहा गया है।

७०२। लघु और लघुतम रूपांतरों की प्रतिमा १७वां शताब्दी में लिपिबद्ध हुई हैं। लघु रूपांतरों में अध्याया को 'खण्ड' कहा गया है और लघुतम रूपांतर की प्रतिमा अष्टम्या में विभक्त नहीं हैं। पृथ्वीराज रासो की प्राचीनतम प्रति धारणोज में वि०सं० १६६७ की उपलब्ध हुई है और यह राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के द्वीय पुस्तकालय जोधपुर में सुरक्षित है। इस प्रति का पुष्पिका लेख इस प्रकार है —

“इति श्री कवि भट्ट चन्दवरदाई कृत राजा श्री प्रियीराज चहुमाण रासज रसान सपूर्ण ॥ गद्यांश १३०० शिलोक छन्द । श्री अस्तु । तेष्वक वाचयो । यादृश पुस्तके दृष्टा तादृश लिखित मया । यदि शुद्धमशुद्ध वा मम दोषो न दीयते ॥ श्री रस्तु ॥ श्री कल्याण ६६ ॥ संवत् १६६७ वर्षे, शके १५३२ प्रवत्समाने आसाढ मासे शुक्ल पक्षे पंचमी तिथी महाराजाधिराज महाराजा श्री कल्याणमलजी तत्पुत्र राजा श्री भाणजी तत्पुत्र राजा श्रीमगवानदासजी पठनार्थ श्रेय कल्याण श्री शुभ भवतु ।”

७१२। उक्त प्रति में श्री पुरातन प्रबन्ध संग्रह से महाकवि चन्द द्वारा पृथ्वीराज रासा का १६वां सदी से पहले रचा जाना सिद्ध होता है। लघुत्तम रूपान्तर बृहत् पृथ्वीराज रासा का संक्षिप्त रूप भी हो सकता है। राजस्थान में विद्यान काव्य ग्रन्थों को संक्षिप्त रूप देने की परम्परा भी रही है, उदाहरण स्वरूप 'विडदण्डिणगार' और 'जसवतभूषण' नामक काव्यों को लिया जा सकता है। 'विडदण्डिणगार १२५ छन्दों का काव्य है और यह चारण कवि वरणीयान कृत 'सूरजप्रकाश' नामक साठे सात हजार छन्दों में रचिन महाकाव्य का संक्षिप्त रूप है। इसी प्रकार जसवतभूषण नामक काव्य कविराजा मुरारीदास कृत जयव्रतजमोभूषण का संक्षिप्त रूप है।

७२०। डा० माताप्रसाद गुप्त ने पृथ्वीराज रासा के लघुत्तम रूपान्तर को मूल के समीप अनुमानित करते हुए लिखा है — "मंगलाचरण और कथा की एक संक्षिप्त भूमिका के अनन्तर जयचन्द के राजसूय और सयोगिता के पृथ्वीराज सम्बन्धी प्रेमानुष्ठान विषयक विवरणों से रचना प्रारम्भ हुई होगी। तदनन्तर उसमें मन्त्री कयमाम के वध, पृथ्वीराज के कन्नोज गमन में उसके प्राकट्य, सयोगिता परिणय पृथ्वीराज जयचन्द युद्ध और दिल्ली आकर पृथ्वीराज सयोगिता के केलि विलास को कथाएँ उसके पूर्वार्द्ध की सृष्टि करती रही होंगी और उत्तरार्द्ध में उस केलि विलास से चन्द के द्वारा किये गये पृथ्वीराज के उद्घाटन, शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के (द्वितीय) युद्ध तथा शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के अन्त को कथाएँ रही होंगी। इस मूल रूप का आकार लगभग ३६० रूपकों का रहा होगा।"

७३२। आचार्य प० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी के मतानुसार — मूल रासा की रचना शुक शुक की सवाद के रूप में होनी चाहिए अतएव शुक शुक की सवादों से युक्त प्रसंग ही प्रचलित रासा की प्रतियों में प्रामाणिक है — शुक शुक की सवाद रूप में कथा कहने की योजना तत्कालीन प्रचलित नियमों के अनुकूल तो थी ही, इसलिए भी आवश्यक थी कि उसमें चन्द कवि स्वयं एक पात्र है। किमी दूसरे के मुख से ही अपने बारे में कुछ कहलवाना कवि को उचित लगा होगा।^२

७४२। स्व० कविराज मोहनसिंह के मतानुसार पृथ्वीराज रासा में संस्कृत वृत्तों के अतिरिक्त साटक, गायक दोहा और कवित्त (छन्द) का ही समावेश होना चाहिए क्योंकि कवि चन्द ने इन्हीं छन्दों के लेखन का संकेत किया है —

छन्द प्रबन्ध कवित्त जति साटक, गाह, दुग्रत्य ।

लहु गुर मडित खडियहि पिगल अमर भरत्य ॥^३

१ - हिंदी साहित्यकोष, भाग २, ज्ञान मंडल वाराणसी, पृ० ३२१ ।

२ - हिंदी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० ६५ ।

३ - प्रथम समय ।

७५ २ । उक्त आधार पर १३० कविराज जो ने पृथ्वीराज रासा का सम्पादन भी किया कि तु नेपक कर्तव्यों ने उक्त छन्द भी कथय रासा में जाड़े होये। अतएव कविराजजी द्वारा रासा पाठ ग्रहण एवं सम्पादन के लिए प्रयत्नाया गया आधार निर्णय नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार मानार्थ हजारीप्रसादजी द्वारा बताया गया कुछ पुस्तकी संवाद में भी दोषक उठाना स्वाभाविक है।

७६ २ । पृथ्वीराज रासा का उल्लेख उज्जयपुर के निबन्ध राजममुद्र नामक विमान सरावर के बांध पर पञ्चमी गिलावा पर उत्कीर्ण 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' में इस प्रकार उपलब्ध होता है —

“भापारासापुस्तकेभ्य मुद्रम्योक्तोन्मिविरतर १”^२

राजप्रशस्ति महाकाव्य का कर्ता भोटिंग भट्ट था, जिसने इसका लेखन कार्य वि०सं० १७१८ में प्रारम्भ कर वि०सं० १७३२ में पूर्ण किया था।^३

पृथ्वीराज रासा का उल्लेख वि०सं० १७८७ में लिखित 'जसवन्तउद्योत' नामक काव्य में भी हुआ है —

चंद भाट की चाकरी, पृथ्वीराज विचारि ।
सग सारह सामंत ले गया गुपत अनुहारि ।
सयोगिता कुमारिका, बरयो जहा चौहानु ।
तही पिथीरा कह दयो, राइ भर्मे जिय दानु ।
रासो पृथ्वीराज को, तहा बहुत विस्तार ।
में बरयो सधेप ही, सकल कथा को सार ॥ — जसवन्त उद्योत^४

तदुपरान्त कवि यदुनाथ कृत वृत्तविनाम नामक काव्य में रासा का उल्लेख मिलता है —

एक लाल रासा किया, सहस्र पंच परिमान ।
पृथ्वीराज नृप को सुजसु, जाहर सकल जिहान ॥^५

बल्लभ कृत कुतूबसंग्रहनाम्यां में रासा का उल्लेख इस प्रकार मिलता है —

१ — प्रकाशित, राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य संस्थान, उज्जयपुर ।

२ — सग १ — श्लोक २७ ।

३ — शोभा उज्जयपुर राज्य का इतिहास पृ० ५७०, ५७२ ५७७ ।

४ — धनुष संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर की प्रति ।

५ — रघुनाथकाल सं० १८०० । डा० श्रीरामेश्वर हीराचंद शोभा का निबन्ध, कोणोत्तर स्मारक संग्रह, काशी शायरी प्रचारिणी सभा, धाराएसी ।

भारत समु प्रमाण, रासा ना तमासा भालो ।
 कर्षा भारत बेत्रण आरत उवेखिए ॥
 पृथ्वीश प्रसशा कथो, मानसे नु मौधु तेमा ।
 प्रेमानद नी कविता सविता सी पेखिए ॥
 ग्राहण थो भाट थया, वशज विधि ना आ तो ।
 कवीश्वर ना पिता थो, चद मद देखिए ॥^१

७७ २ । पृथ्वीराज रासा के उक्त उल्लेख १८वीं शताब्दी विक्रमी के हैं । पृथ्वीराज रासो की प्राप्त अधिकार प्रतिया भी १८वीं शताब्दी विक्रमी की प्राप्त होती हैं । इस आधार पर प० मोतीलाल जी मेनारिया ने पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल १८वीं शताब्दी विक्रमी माना है । इनका मत है — 'विक्रमी स० १७०० से पूर्व की अधिकार प्रतियो मे सम्भवत् और तिथि के साथ वार का उल्लेख नहीं है और किसी प्रति में वार का उल्लेख है तो वह गणना के अनुसार सही ज्ञात नहीं होता । इसलिए १७०० से पूर्व की प्रतिया जाली हैं । मेवाड के महाराणा राजसिंह ने राजसमुद्र के बाध पर शिलालेख के रूप में लगवाने के लिए राजप्रशस्ति महाकाव्य का निर्माण प्रारम्भ करवाया तब चद का कोई वशज अथवा उसकी जाति का कोई दूसरा व्यक्ति रासो लिखकर सामने लाया प्रतीत होता है । यदि यह व्यक्ति रासो को अपने नाम से प्रचारित करता तो लोग उसे प्राचीन इतिहास के लिए अनुपयोगी समझते और उसमें वर्णित बातें उसे सप्रमाण सिद्ध भी करनी पड़ती अतएव चद रचित बतलाकर उसने इस सारे भगड़े का अंत कर दिया । चद का नाम लोक प्रचलित था ही । लोगों को उसकी बात पर विश्वास भी हो गया ।'^२ प० मोतीलालजी के मतानुसार पृथ्वीराज रासो की प्राचीनतम प्रति महाराणा अमरसिंह द्वितीय (स० १७५५-६६) के शासन काल में वि०स० १७६० में लिखी गई । यह प्रति राजस्थान प्रांच्य विद्या प्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा में सरस्वती भण्डार संग्रह में उपलब्ध है, इसका पुष्पिका-लेख निम्नलिखित है —

“स० १७६० वर्षे शाके १६२५ प्रवर्त्तमाने उत्तरायण गते श्री सूर्य शिशिर ऋतौ सभागलप्रद माघ मासे कृष्ण पक्षे ६ तिथी सोमवासरे । श्री उदयपुर मध्ये हिन्दूपति पातिसाहि महाराजाधिराज महाराणा श्री अमरसिंह जी विजय राज्ये । मेदपाट जातीय भट्ट गोवधन सुतेन रूपजी ना लिखित चद बरदाई कृत पुस्तक ।’

१ - रचनाकाल स० १८३८ श्री कहेयालाल मालिकलाल मुनी, गुजरात एण्ड इटस लिटरेचर पृ० २०० ।

२ - राजस्थान का विंगल साहित्य हितथी पुस्तक भण्डार, उदयपुर, पृ० ५० ।

इसी प्रति के अन्त में एक छप्पय इस प्रकार लिखित है —

मिलि पक्क गन उदधि करद कागद कातरनी ।
कोटि कवि काजलह कमल कटिक् तै करनी ।
इहि तिथी सरया गुनित कहै कक्का कविया नै ।
इहि श्रम लेखनहार भेद भेदे सौइ जानै ।
इन कष्ट प्रथ पूरन करय, जन बड या दुख ना लहय ।
पालिये जतन पुस्तक पवित्र लिखि लेखिक विनती करय ॥

उक्त छप्पय का अर्थ करते हुए डा० श्यामसुन्दर दास ने लिखा है — “यदि पक्क से पक्क नाल (१) गन को गुन (६) का अशुद्ध रूप, उदधि से समुद्र (४) और करद से कटार या चाकू (१) जिसका फल एक होता है, मान ले, तो स० १६४१ बनता है। शेष शब्दों में मास, तिथि आदि हागो, पर यह स्पष्ट नहीं होता। यदि इस हिसाब से रासो का सकलन स० १६४१ मान लिया जाय तो कुछ अनुचित नहीं होगा, इससे कई बातों का सामञ्जस्य हो जायगा।”

७८ २। उक्त मत के विपरीत ‘मिली पक्क गन उदधि करद’ का अर्थ उदधि को ८ और करद (खग) को १ मानते हुए वि०म० १७६० किया गया है और अमरेश नृप से अभिप्राय अमरसिंह द्वितीय लिया गया है जिनका शासनकाल १७६० था।^२ साथ ही ‘कातरनी’ का अर्थ दो कठे हुए रासो का निर्माणकाल १२०० के लगभग भी बताया गया है और महाराणा अमरसिंह के समय इसकी एक प्रति का लिपिबद्ध होना सूचित किया गया है।^३

७९ २। वास्तव में उक्त द्वाद लिपिकार के प्रति-लेखन में किये गये परिवर्तनों को भी सूचित करता है। पक्क गन से अथ हाथ की उगलिया और उदधि से अर्थ दवात है। करद, कागद, कातरनी, काजल, कटि आदि के अर्थ स्पष्ट हैं। उक्त गठन ‘क’ से प्रारम्भ होने वाला है और नागरी लिपि का वणमाला भी कक्का कही जाती है। लिपिकार कहता है कि यह प्रति कष्टपूर्वक लिखी गई है इसलिए इसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

१ — ओरियंटल कॉलेज स० १९६० के हिंदी विभाग में दिया गया भाषण।

२ — प० मोतीलाल जी मेनारिया राजस्थान का पिपल साहित्य, हितथी पुस्तक मण्डार, उदयपुर पृ० ४७।

३ — कविराव मोहनसिंह का निबंध, पृथ्वीराज रासो की विवेचना, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर।

८० २। डा० गीरीशकर हीराचंद घाभा, कविराजा श्याममल दास और कविराजा मुरारीचान घादि ने पृथ्वीराज रासा में ऐतिहासिक दृष्टि से अनन्य श्रुतियाँ बताते हुए इसकी जाली लिखा है। इतिहासकारों में से सर्वप्रथम कनल जेम्स टाड का ध्यान पृथ्वीराज रासा का और प्राकृतिक हूमा और उसने निम्नलिखित गद्यांश में इस ग्रंथ की प्रशंसा की —

“चंद का यह ग्रंथ अपने समय का एक विश्वमुग्धीन इतिहास है। इसके १४ सर्गों में पृथ्वीराज के पराक्रम सम्बन्धी एक लाख छंद हैं जिनमें राजस्थान के प्रत्येक प्रतिष्ठित घराने के पूर्वपुत्रों का कुछ न कुछ लेखा मिलता है। इसलिए राजपूत नाम का कुछ भी अभिमान रखने वाली जातियाँ इस अपने सग्रहालयों में रखती हैं और इसके द्वारा अपने उन वीर पुरखाओं का पता लगाती हैं जिन्होंने किर्मान के दरों में जबकि युद्ध के बादल हिमालय में हिंदुस्तान तक के मैदानों में गड़गड़ा रहे थे, युद्ध-तरंगों का जल पान किया था। पृथ्वीराज के युद्धों उनकी सधियों उनके वंशवर्तों अनेक शक्तिशाली राजाओं, उनके निवासस्थानों तथा वंशावलियों ने चंद के इस काव्य को इतिहास एवं भूतत्व का एक अमूल्य ज्ञापन बना दिया है तथा देव गाथाओं, रीति-अवहारों व मनुष्य के मन के इतिहासों का भी वह एक कोषागार है।”^१

८१ २। जेम्स टाड ने रासा के ३००० छंदों का अंग्रेजी अनुवाद भी किया।^२ जेम्स टाड के अनुसार फ्रांसीसी विद्वान गार्सोदितासी ने भी अपने ‘इस्तवार द ला लितरातपूर इदुई ए, इदुस्तानी’ (सन १८३९ ई०) नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में रासा की प्रशंसा करते हुए इसको १२वीं शताब्दी की प्रति बताया। राबर्ट निज नामक रूसी विद्वान ने रासा के एक खण्ड का अनुवाद किया।^३ तदुपरांत एफ० एम० ग्राउस, जान बोम्म और फडालफ हानसी प्रभृति विद्वानों ने जेम्स टाड का समर्थन करते हुए अनेक लेख लिखे और उसका अंग्रेजी अनुवाद छापवाना प्रारम्भ किया।^४

८२ २। ऐतिहासिकता की दृष्टि में रासा का सर्वप्रथम विराध उत्तपुर के कविराजा श्याममलदास ने किया और इस विषय में “पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता” नामक निबंध दिल्ली में स० १९४२ में तथा अंग्रेजी में सन् १९८६ में प्रकाशित करवाया।^५

१ - दि एनलस एण्ड एटिक्विटीज ऑफ राजस्थान (प्रथम संस्करण) सन १८२६ ई० पृ० २५४।

२ - वही, पृ० २५४।

३ - डा० जाज प्रियसन, दि माडन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान, पृ० ४।

४ - सेंटिनरी रिव्यू ऑफ दि एणियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, सन १७८४-१८८३, परिशिष्ट - सी०, पृ० १०५-१६७।

५ - जनरल ऑफ दि एणियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, सख्या १, भाग १।

कविराजा जी ने अपने इस निबन्ध में निम्नलिखित तथ्यों की ओर विद्वाना का ध्यान आकर्षित किया —

- (१) पृथ्वीराज रामो पृथ्वीराज चौहान के समय से बहुत बाद में बना है ।^१
- (२) पृथ्वीराज रामो का कर्ता मेवाड़ के वेदला ग्रथवा कीठारिया के चौहान जागीरदारा का आश्रित कोई भाट था जिसने अपनी जाति के बढप्पन के लिए इसकी रचना की ।^२
- (३) पृथ्वीराज रासो इतिहास की दृष्टि से दोषपूर्ण और अनुपयोगी है ।^३
- (४) पृथ्वीराज रासो का निर्माण स० १६४० और स० १६७० के मध्यकाल में हुआ ।^४

८३ २ । उदयपुर में १० माहानलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने 'पृथ्वीराज रासो की प्रथम सरक्षा' नामक पुस्तिका तैयार कर स० १९४४ में प्रकाशित की। पण्ड्याजी ने यह बनाने का प्रयत्न किया कि रामो में अनन्त विक्रम सम्बत् का प्रयोग हुआ है जिसमें ६० या ६१ वर्ष जोड़ देने से विसुद्ध वि० स० निकलता है। पण्ड्याजी का यह कल्पना मात्र थी और कसौरी पर खरी नहीं उतरी ।^५

८४ २ । रासो सम्बन्धी उक्त विवाद में अनेक विद्वान् तटस्थ रहे, क्योंकि रासो कवि 'शब्द नामक भाट का लिखा हुआ है और कविराजा श्यामलदास तथा मुरारानान जैसे चारण विद्वान् इसके विरोधी थे और इस विवाद को चारण और भाटों के परम्परागत मन मुटाव का परिणाम समझा गया। इसी बीच जर्मन विद्वान् प्रा. बुलर को काश्मीर में हस्तलिखित ग्रन्थों को खोज करते हुए कवि जयानक कृत पृथ्वीराजविजय नामक महाकाव्य की भोज पत्र पर लिखित प्रति प्राप्त हुई। इस प्रति का अध्ययन कर प्रो० बुलर ने अग्रेल सन् १८६३ ई० में एंग्लो-सैन्टि सोसाइटी कलकत्ता की पत्र लिखा —

मेरे एक शिष्य मि० जेम्स मारीसन ने सख्त पृथ्वीराज विजय' का अध्ययन कर लिया है, जिसे मैंने जोनराज की टीका के साथ (जो सन् १४५०-७५ के बीच लिखी गई थी) सन् १८७५ में वास्मार में प्राप्त किया था।

१ — पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता पृ० २ ।

२ — वही, पृ० ११ ।

३ — वही पृ० ८७ ।

४ — वही, पृ० ७५ ।

५ — नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, स० १९६७, पृ० ३७७-४५४ ।

ग्रन्थकार निश्चित रूप से पृथ्वीराज का समकालीन था और उसके राज कवियों में एक था। वह सम्भवतः काश्मीरी था और अच्छा कवि और पण्डित भी था। उसके द्वारा वर्णित चौहानों का वर्णन चन्द के वर्णन से प्रत्येक विवरण में भिन्न है और वह वि०स० १०३० और १२२५ के शिलालेखा से मिलता है। पृथ्वीराज का वंश वर्णन उसी प्रकार है जैसा हम इन शिलालेखों में पाते हैं। अथ बहुत से विवरण जो "विजय" से मिलते हैं, अथ साक्षियों से भी मिलते हैं। (जैसे मालवा और गुजरात के शिलालेख)

में समझता हूँ इस काल के इतिहास पर पुनर्विचार की आवश्यकता है और चन्द का रासो अप्रकाशित ही रहने दिया जाय। वह जाली है, जैसा कि जोधपुर के मुरारीदान और उदयपुर के श्यामलदास ने बहुत पहले कहा है। 'विजय' के अनुसार पृथ्वीराज के बन्दीराज या प्रधान कवि का नाम पृथ्वीभट्ट था, न कि चन्द वरदाई।^१

८५२। डा० बुलर ने पृथ्वीराज विजय का विस्तृत विवरण अपनी रिपोर्ट में प्रकाशित करते हुए इसकी ऐतिहासिकता का दृष्टि में प्रामाणिकता सिद्ध की।^२ डा० बुलर के पत्र से प्रभावित होकर एशियाटिक सोसाइटी ने रासो का प्रकाशन स्वयं कर दिया।

८६२। डा० गोरीनकर हीराचन्द भोक्सा ने ऐतिहासिक दृष्टि से पृथ्वीराज रासो का परीक्षा की और इसकी वि० स० १५०० के लगभग की रचना बनाया।^३

डा० भोक्सा ने रासो की प्रामाणिकता पर मुख्यतः निम्नलिखित आरोप लगाये —

- (१) उसमें इतिहास सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियाँ हैं जो शिलालेखा और पृथ्वीराज विजय से सिद्ध हो जाती हैं।
- (२) उसमें तिथियाँ बिल्कुल अशुद्ध दी गई हैं।
- (३) उसमें अरबी, फारसी के शब्द बहुत हैं जो चन्द के समय किसी प्रकार भी व्यवहार में नहीं लाये जा सकते थे। ऐसे शब्द प्रायः दस प्रतिशत हैं।

१ - प्रोसीडिंग्स ऑफ़ दी रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, फार एप्रिल, १८६३।

२ - डिटेल रिपोर्ट ऑफ़ ए टूथर इन सच ऑफ़ सस्कृत मेमुस्क्रिप्टस मेड इन काश्मीर, राजपूताना, स टूल इण्डिया, डा० जी बुलर, १८७७।

३ - क - पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, बोपोत्सव स्मारक ग्रन्थ, बागी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

(४) भाषा अनुस्वारात् शब्दो से भरी हुई है और उसमें कोई स्थिरता नहीं है। प्राकृत और अपभ्रंश की शब्द रूपावली का कोई विचार नहीं है और शब्दों की रूपावली और नये पुराने ढंग की विभक्तियाँ युरी तरह में मिली हुई हैं।

८७२। डा० घोषा के विरोध में बाबू स्वामसुन्दर दास और मिश्र व पुष्पा ने अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये, किन्तु ये तर्क की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। डा० रामकुमार वर्मा ने भी सतक कारण बताते हुये पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक लिखा है।^१

८८२। पृथ्वीराज रासो का मूल्यांकन इतिहास की दृष्टि से नहा वरन् एक महाकाव्य की दृष्टि से ही किया जाना चाहिए। वाणी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण में पृथ्वीराज रासो के सर्ग निम्नलिखित हैं —

- (१) आदि पद्य (मगलाचरण चौहान वंश की उत्पत्ति आदि पृथ्वीराज का जन्म)।
- (२) दसम समय (विष्णु के दशावतारों का वर्णन)।
- (३) दिल्ली कीली कथा।
- (४) अजानबाहु समय।
- (५) कहपट्टी समय (सूँछ ऐठने पर प्रतापसिंह चालुक्य को कह चौहान भरे दरबार में भार डालता है। पृथ्वीराज उसे दरबार में अपनी आँखों पर पट्टी बाँधने के लिए बाध्य करता है)।
- (६) आखेटक वीर समय (मृगया वर्णन)।
- (७) नाहर राय समय (नाहर राय से युद्ध)।
- (८) मेवाती मुगल समय (मेवातियों से युद्ध)।
- (९) हुसेन कथा समय (शहाबुद्दीन से हुसेन के लिये युद्ध जिसने पृथ्वीराज की शरण ली थी)।
- (१०) आखेटक चूक वर्णन (शहाबुद्दीन के द्वारा आखेट में पृथ्वीराज पर आक्रमण, पर उसकी पराजय)।
- (११) चित्ररेखा समय (गक्कर कुमारी जो शहाबुद्दीन की प्रियतमा थी और जिसे लेकर हुसेन पृथ्वीराज के समीप भाग आया)।
- (१२) भोलाराय समय (गुजरात के भोलाराय से युद्ध)।
- (१३) सलख युद्ध समय (सलख के द्वारा सुल्तान के बंदी होने पर उसका उद्धार)।

- (१४) इच्छिनो ब्याह कथा (पृथ्वीराज का इच्छिनो से विवाह) ।
- (१५) मुगल युद्ध कथा (मुगला से युद्ध) ।
- (१६) पुण्डरीर दाहिमी ब्याह कथा (दाहिमी से ब्याह) ।
- (१७) भूमि स्वप्न प्रस्ताव ।
- (१८) दिल्ली का दान प्रस्ताव (अनंगपाल के द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली का उपहार) ।
- (१९) माघो भाट कथा (माघो भाट का आगमन, शहाबुद्दीन का पुन आक्रमण, पर पराजय) ।
- (२०) पद्मावती ब्याह कथा (पद्मावती से विवाह) ।
- (२१) पृथा ब्याह कथा (चित्रकोट के राजा समरसो के साथ पृथ्वीराज की बहन पृथा का ब्याह) ।
- (२२) होली कथा (होलीकोत्सव का वर्णन) ।
- (२३) दीपमालिका कथा (दीपमालिकोत्सव का वर्णन) ।
- (२४) धन कथा (खत वन मे पृथ्वीराज को खजाने की प्राप्ति) ।
- (२५) शशिव्रता वर्णन (देवगिरि के राजा की पुत्री का पृथ्वीराज द्वारा हरण और फलस्वरूप वन्नौज के राजा जयचन्द मे युद्ध) ।
- (२६) देवगिरि समय (जयचन्द के द्वारा देवगिरि का घेरा, पृथ्वीराज के सेनापति चामुण्डराय द्वारा जयचन्द की हार) ।
- (२७) रेवातट समय (सुल्तान शहाबुद्दीन से रेवातट पर युद्ध) ।
- (२८) अनंगपाल समय (अनंगपाल का दिल्ली आगमन, फिर बद्रीनाथ गमन) ।
- (२९) घघघर नदी की लडाई (सुल्तान शहाबुद्दीन से घघघर नदी पर युद्ध) ।
- (३०) करनाटि पाय गमन (पृथ्वीराज का करनाट गमन) ।
- (३१) पीपा युद्ध ।
- (३२) करहरा युद्ध ।
- (३३) इद्रावती ब्याह ।
- (३४) जैतराय युद्ध (जैतराय द्वारा सुल्तान को फिर पराजय, जिसने घोड़े से मुगलों करते समय पृथ्वीराज पर आक्रमण किया था) ।
- (३५) कागुरा युद्ध प्रस्ताव (कागुरा किले पर पृथ्वीराज की विजय) ।
- (३६) हसवती नाम प्रस्ताव (हसवती से ब्याह)
- (३७) पहाड राय समय ।

- (३८) वरण कथा ।
- (३९) सोमेश्वर वध (गुजरात के भोला भीम के द्वारा पृथ्वीराज के पिता का वध) ।
- (४०) पञ्जून धोगा नाम प्रस्ताव ।
- (४१) चानुक्वय प्रस्ताव ।
- (४२) चन्द द्वारिका गमन (चन्द की द्वारिका की तीर्थयात्रा) ।
- (४३) कैमास युद्ध (पृथ्वीराज के सेनापति कैमास द्वारा फिर सुल्तान को पक जाना) ।
- (४४) भीम वध (अपने पिठघाती भीम का पृथ्वीराज द्वारा वध) ।
- (४५) विनय मगले नाम प्रस्ताव (सयोगिता के पूर्व ज म की कथा, उसकी तपस्या)
- (४६) विनय मगल ।
- (४७) सुक वर्णन ।
- (४८) बालुकराय वर्णन ।
- (४९) पग जज्ञ विध्वंस समय ।
- (५०) सजोगिता नेम प्रस्ताव (सजोगिता का पृथ्वीराज से विवाह करने का प्रण)
- (५१) हसीपुर प्रथम जुद्ध ।
- (५२) हसीपुर द्वितीय जुद्ध ।
- (५३) पञ्जून महोबा प्रस्ताव ।
- (५४) पञ्जून पातसाह जुद्ध प्रस्ताव (दसवीं बार सुल्तान का फिर बंदी होना, प उसे फिर छोड़ देना) ।
- (५५) सामत पग जुद्ध प्रस्ताव ।
- (५६) समर पग जुद्ध प्रस्ताव ।
- (५७) कैमास वध समय ।
- (५८) दुर्गा केदार समय ।
- (५९) दिल्ली वर्णन ।
- (६०) जगम कथा ।
- (६१) कनवज्ज जुद्ध कथा (कर्नाज के राजा जयचंद से युद्ध, सारे महाकाव्य में सबसे बड़ा 'समय') ।
- (६२) शुक चरित ।
- (६३) भ्राह्मेटाचार श्राप प्रस्ताव ।

- (६४) धीर पुण्डीर प्रस्ताव (पु डीर का फिर सुल्तान को बंदी करना पर उसे मुक्त कर देना) ।
- (६५) विवाह सम्यो (पृथ्वीराज की स्त्रियो की सूचि) ।
- (६६) बडी लडाई (पृथ्वीराज का सुल्तान मे लडाई में पराजित और बन्दी होना) ।
- (६७) दान वेध सम्यो (युद्ध के बादे चंद का गजनी पहुँचना पृथ्वीराज का शब्द-वेधी बाण से सुल्तान को मारना) ।
- (६८) राजा रैनसो नाम प्रस्ताव (पृथ्वीराज के पुत्र नारायणसिंह का दिल्ली में राज्याभिषेक पर उसका चय और दिल्ली का पतन) ।
- (६९) महोबा जुद्ध प्रस्ताव ।

८६२ । रासा, रासा, और रासउ आदि शब्दा के मूल में 'रास' है जिसको ध्रुपद आदि रासो में गेय बताया गया है —

“तदेव ध्रुवमुद्भिन्धे तस्मे मान च बहुदात्”^२

सलग्न रासा, रासा और रासउ आदि स प्रकट हाता है कि बीसलदे रास और अन्य अनेक रास परक काव्यो की भाँति पृथ्वीराज रासो भी मूलत एक गेय काव्य रहा और गेय होने से यह काव्य कालांतर में विकसित होता गया । इस प्रकार “पृथ्वीराज रासो” वास्तव में एक विवसनशील महाकाव्य है ।

६०२ । पृथ्वीराज रासो के आशिक रूप में गेय होने का एक अन्य प्रमाण भी हमें उपलब्ध हुआ है । संगीत-ग्रथ ‘राग कल्पद्रुम’ के द्वितीय संस्करण^३ के सम्पादक श्री नगोदनाथ बसु ने राग कल्पद्रुम के निर्माता स्व० कृष्णानन्द व्यास “राग सागर” का परिचय देते हुए लिखा है —

‘इस समय एक मात्र यही कवि चंद का वह रायसा उपयुक्त रूप से गाय सकते हैं । हमने बहुत ढरते ढरते गुरु स्थानीय बसु महाशय से वही गान सुनने का आग्रह प्रकाश किया और ‘राग सागर’ ने भी हसते हसते बालक का मन् रख दिया । उन्होंने कवि चंद का गान सुनाने के लिए पहले अपना परिघृत परिच्छेद

१ - हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १५४ १५७ ।

२ - श्री मधभागवत् स्वयं १०, अध्याय ३३, श्लोक १० ।

३ - प्रकाशक-बंगीय साहित्य परिषद २४३।१ अवर सरकुलर रोड कलकत्ता प्रकाशन काल स० १९७१ । राग कल्पद्रुम का प्रथम संस्करण सवत् १९०० (सन् १८४३ ई०) में स्वयं श्री कृष्णानन्द व्यास ने प्रकाशित किया था ।

समस्त शील राल लगीटा पहना । पोछे बीर रगात्मक कवि धरु का एक पद गाया । बैसा हृदय उत्तेजक और और रसात्मक गान फिर हमें कभी गुा न षडा । जो लोग धान-दृष्ट्य बसु महाशय के पुस्तकागर म उत समय बैठे थे व 'राग-सागर' महाशय का प्रपूर्व स्वरालाप सुन और हाव भाव दस मानो मन्त्रमुग्ध हो गये ।" १

६१ २ । श्री नगेन्द्रनाथ बसु ने — श्रीकृष्णानन्द व्यास का जन्म सन् १७६४ ई० बताया है और इन्हें मेवाड के 'ओरैनी' स्थान का निवासी लिखा है । श्री व्यास उदयपुर महाराणा के सगोताचार्य थे और उदयपुर महाराणा ने ही इन्हें 'राग सागर' का सम्मान प्रदान किया था । २

६२ २ । पद्मोराज रासो का निर्माण पृथ्वीराज चौहान का बीरता एवं परशुरु चरित्र से प्रेरित होकर पृथ्वीराज के मृत्युदान पर्याप्त विक्रमो सवर् १२५० क लगभग ही सम्भवत प्रारम्भ हुआ । विभिन्न कवियों द्वारा कानन्तर में पृथ्वीराज रासो का विकास होता रहा और रासो के सुनत गेय होने म इसकी गान परम्परा मोतिक रूप में चलती रही । वि० सं० १९६७ मे पहले की श्राणी काई निविन प्रति नहा प्राप्त होती । मेवाड के महाराणा धमरसिंह द्वितीय (गासनवाल वि०सं० १७५५-१७६६) ने पृथ्वीराज रासो के बिलारे हुए रूपा को एकत्रित करवाया जिसकी बृहत रूपानर की संज्ञा दी गई है ।

६३ २ । पृथ्वीराज रासो हमारे साहित्य भण्डार का एक अनुपम और धनमोन जगमगाता रत्न है । इसमे मूनकवा क साथ, धनेक उरकवाया रसा छ्ण और चलवा रादि काध्याया का सकलतापूर्वक समावेश हुआ है । मवदय हा रासो मे धनेक छोक है किन्तु उनका भी काधय की दृष्टि मे महत्व है । गेपक के धागेप म ता हमारे बाल्मिकीय रामायण, महाभारत और रामचरित मानस धानि भी बचित नहा है तो फिर दीपकी क बारण पृथ्वीराज रासो का साहित्यिक दृष्टि म महत्त्वहीन नहा कहा जा सकता ।

६४ २ । पृथ्वीराज रासो का प्राप्त समस्त प्रतिया के धाधार पर इस महाकाव्य के पूर्ण पाठ का वैज्ञानिक 'बृहद्दतम संस्करण' क रूप में सम्पादित करते हुए इसका प्रद्ययन और मुल्याकन करना सबधा उचित होगा ।

६५ २ । बीरगाथा काल के कतिपय अन्य कवि —

(१) जिनपद्य सूरि, वि०सं० १२५०, धूलिभद्र पातु ।

(२) विनयचन्द सूरि, वि०सं० १२५०, नेमिनाथ चतुष्पदि ।

१ - राग कल्पद्रुम, द्वितीय संस्करण (सं० १९७१) में प्रकाशित चतुर्थम् ।

२ - वही ।

- (३) अजयपाल, वि०स० १२५५ फुटकर छन्द ।
- (४) आसिगु वि०स० १२५७ (१) जीव दया रास, (२) चन्दनवाला रास ।
- (५) धर्म (धम्म) मुनि, वि०स० १२६६ जम्बूस्वामी रास ।
- (६) अभयदेव सूरि, वि०स० १२८५, जयतविजय ।
- (७) विजयसेन सूरि, वि०स० १२८७ रेवन्तागिरि रास ।
- (८) पल्लव, वि०स० १२८६, (१) आरू रास, (२) नेमिनाथ बारहमासा ।
- (९) जिनभद्र सूरि वि०स० १२६०, वस्तुमान तेजपाल प्रबन्धवाली ।
- (१०) सुमतिगणि, वि०स० १२६५, (१) नेमि रास (२) गजधर सार्धशतक बृहद्बृत्ति ।
- (११) भाषना वि०स० १३०० भक्ति के पद ।
- (१२) लखण वि०स० १३०० अणुवयरण ।
- (१३) अभयतिलक गणि, वि०स० १३०७, महावीर रास ।
- (१४) लक्ष्मीतिलक उपाध्याय, वि०स० १३११, (१) बुद्ध चरित्र, (२) श्रावकधर्म प्रकरण बृहद्बृत्ति ।
- (१५) प्राणद सूरि एव, प्रेम सूरि वि०स० १३२३ द्वादश भाषा (दाल) निबद्ध तोषमाला रास ।
- (१६) रत्नप्रभ सूरि, वि०स० १३२४ पद ।
- (१७) तिलोचन वि०स० १३२४ रचनाए प्रप्राप्य ।
- (१८) कवि सोममूर्ति, वि०स० १३३१, जिनेश्वर सूरि दीक्षा विवाह वणन रास ।
- (१९) सोममूर्ति (?), वि०स० १३३२, जिनप्रबोध सूरि चचरो ।
- (२०) मुनि राजतिलक, वि०स० १३३२, शालिभद्र रास ।
- (२१) हेमभूषण मणि वि०स० १३४१, जिनचन्द्र सूरि चचरो ।
- (२२) जज्जल, वि०स० १३५० हम्मोर की प्रशंसा में काव्य ।
- (२३) अज्ञात, वि०स० १३५६ शालिभद्र कवका ।
- (२४) मेरुतुङ्गाचार्य, वि०स० १३६१, प्रबन्धचिन्तामणि संग्रह ।
- (२५) श्रावक कवि वस्तिम, वि०स० १३६२, वीस विरह मान रास ।
- (२६) राजशेखर सूरि वि०स० १३७०, नेमिनाथ फाणु ।
- (२७) गुणाकार सूरि वि०स० १३७१, श्रावकविधि रास ।
- (२८) अम्बदेव सूरि, वि०स० १३७१, समरा रास ।
- (२९) मुनिधर्मकलश १३७७, जिनकुशलसूरि पट्टाभिषेक रास ।
- (३०) छल्लु, (१) क्षेत्रपाल (२) द्विपदिका ।

- (३१) सारमूर्ति, पद्मसूरिपट्टाभिषेक रास ।
 (३२) जिनपद्म सूरि, स्थूलिभद्र रास ।
 (३३) पञ्चम, शालिभद्र काव्य ।
 (३४) सोलणु, चचरिवा ।
 (३५) जिनप्रभ सूरि, वि०स० १३८५, पद्मावनी चौपाई ।
 (३६) २ जेश्वर सूरि, वि०स० १४०५, (१) प्रबन्ध कोश, (२) नेमिनाथ फागु ।
 (३७) हलराज, वि०स० १४०६, स्थूलिभद्र फागु ।
 (३८) मुनि शालिभद्र सूरि, वि०स० १४१०, पाव पाडव रास ।
 (३९) मुनि विनयप्रभ सूरि, वि०स० १४१२, गौतमस्वामी रास ।
 (४०) हरसेवक, वि०स० १४१३, मयणरेहा रास ।
 (४१) जैनमुनि ज्ञानकलश, वि०स० १४१५ जिनोदय सूरि पट्टाभिषेक रास ।
 (४२) प्रसन्नचन्द सूरि वि०स० १४२२, पार्श्वनाथ फागु ।
 (४३) कष्ठावर्षी जयसिंह सूरि, वि०स० १४२२, (१) प्रथम नेमिनाथ फागु ।
 (२) द्वितीय नेमिनाथ फागु ।
 (४४) श्रावक विद्वणु वि०स० १४२३, ज्ञानपञ्चमी चौपाई ।
 (४५) असाइत, वि०स० १४२७ हसाउलि ।
 (४६) ममुधर, वि०स० १४३० नेमिनाथ फागु ।
 (४७) मेरुनन्दणगणि वि०स० १४३२, जिनोदय सूरि गच्छनायक विवाहनु ।
 (४८) देवप्रभ गणि, कुमारपाल रास ।
 (४९) कवि चपा, वि०स० १४४५, देवमुन्दर रास ।
 (५०) साधु हस, वि०स० १४४५, शालिभद्र रास ।
 (५१) जाखो मणिहार, वि०स० १४५३, हरिचन्द पुराण ।
 (५२) चरकानन्द, चरपट ।
 (५३) जयशेखर सूरि, वि०स० १४६२, (१) त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध, (२) नेमिनाथ फागु (३) अशु दाचल बीनती ।
 (५४) अज्ञात, वि०स० १४६२, प्रबोधचित्तमाली ।
 (५५) भीम, वि०स० १४६६, सदयवत्सचरित ।
 (५६) धत्ता भगत, वि०स० १४७२, पद ।
 (५७) हीरा चन्द सूरि वि०स० १४८५, वस्तुपाल-सेज । रास ।
 (५८) महाराणा कु भा, वि०स० १४९०, फुटकर रचनाए ।

- (५६) अज्ञात, वि०स० १४६६ पाच पाडव फागु ।
 (६०) अज्ञात, भरतेश्वर चक्रवर्ती फागु ।
 (६१) समर, वि०स० १४६३, नेमिनाथ फागु ।
 (६२) पद्म, वि०स० १४६३, नेमिनाथ फागु ।
 (६३) चारण चौहत वि०स० १४६५ गीत ।
 (६४) अज्ञात, वि०स० १४६६, राणापुरमण्डल चतुर्मुख आदिनाथ फागु ।
 (६५) चानण खिडियो, वि०स० १४६५ फुटकर रचनाए तथा नाटक ।
 (६६) गुणवत, वसतविलास ।
 (६७) भाइण वि०स० १४६८, सिद्धचक्र श्रीपाल रास ।
 (६८) मेहा कवि वि०स० १४६९ (१) रणकपुरस्तवन । (२) तीर्थमाला स्तवन ।
 (६९) सोममुदर सूरि, वि०स० १४६९, नेमिनाथ नवरस फागु ।
 (७०) बारहठ दूदो, स्फुट छन्द ।
 (७१) घरमो कवियो स्फुट छन्द ।
 (७२) खिडियो लूणकरण, स्फुट छन्द ।
 (७३) पसाइत, (१) राव रिणमल रो रूपक, (२) गुण जोघायण ।
 (७४) देववर्धन स० १५००, नल दमयती आख्यान ।
 (७५) अज्ञात, वि०स० १५००, सामुद्रिक स्त्री-पुस्तक शुभाशुभ ।
 (७६) जयसागर, जिनकुशल सूरि सप्रतिका ।
 (७७) अज्ञात, वि०स० १५०० वसन्त विलास ।
 (७८) देपाल जंहुस्वामी रास ।
 (७९) महर्षि वर्धन सूरि, १५१२, नलदमयती रास ।
 (८०) दामो वि०स० १५१६, लक्ष्मणसेन पञ्चावती चउपई ।
 (८१) कवि भाडउ, वि०स० १५३८ राय हमीर देव चौपाई ।
 (८२) हंस कवि वि०स० १५४०, चन्दकधर रो वार्ता ।
 (८३) सालमद्र, वि०स० १५५० मुनिपति चरित ।
 (८४) धर्मसमुद्र गणि, (१) सुमित्रकुमार रास, (२) कुलध्वज कुंमार रास, (३) रात्री भोजन रास, (४) शकुन्तला रास ।
 (८५) तत्ववेता वि०स० १५५०, कविता ।
 (८६) सिद्धसेन, वि०स० १५५६ विक्रम पचदण्ड चउपई ।

- (८७) चतुर्भुज, वि०स० १५५६, अमर गीता ।
- (८८) कौत्ह वि०स० १५५६ ८४, पद ।
- (८९) भासानन्द, वि०स० १५६१ १६६०, (१) सप्तमण्डपण, (२) निरज पुराण,
(३) गोगाजी की पेडा (४) बाया रा दूहा, (५) उमादे भटियारी रा
कवित्त, (६) फुडकर छन्द ।
- (९०) सादा बारहूठ जमनाजी, वि०स० १५६९ ८४, स्फुट रचनाए ।
- (९१) हरिदास, वि०स० १५६६, स्फुट रचनाए ।
- (९२) केसरिया चारण वि०स० १५८४, स्फुट रचनाए ।
- (९३) गणपति, वि०स० १५७४, माधवानल कामकदसा प्रबन्ध ।
- (९४) छोहल, स० १५७५, पंचसहेली रा दूहा ।
- (९५) गोरा, (१) रावलूणकरणरा कवित्त, (२) रावजेतसो रा कवित्त ।

६ - भक्तिकाल

क. सामान्य परिचय

१६२ । महाराणा सागा की खानवा-युद्ध (सं० १५८४, सन् १५२७) में बाबर से पराजय और विनाल राजपूत बाहिनी ने विनाग तथा दूसरे ही वष सागा की मृत्यु से जनता की समस्त भाशाओं पर तुपारापात हो गया । खानवा-युद्ध के परिणाम-स्वरूप भारतवर्ष में मुस्लिम शासन की जडे जम गई । खानवा-युद्ध के पश्चात् बाबर ने दिल्ली की अपनी राजधानी बना कर भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य की नींव रखी । जनता में चारों ओर घोर निराशा का बातावरण छा गया और जन भावनाएं जीवन मरण से पलायन की ओर उन्मुख हुई । जनता ईश्वर को ही अपना एक मात्र प्राता समझती हुई भक्ति भावना में डूब गई । मध्य मुस्लिम आक्रान्ताओं की भांति बाबर लूट मार कर भारत से विदा नहीं हुआ, वरन् उसने स्वयं भारतीय शासन की बागडोर भारत में ही रहते हुए सम्हालने का दृढ़ निश्चय व्यक्त किया । इससे भारतीय जनता का अस्तित्व ही प्रागति-प्रस्त हो गया । हिन्दू जनता और हिंदू राजा न तो बाबर जैसे मुस्लिम शासक का सकलतापूर्वक विरोध कर सकते थे और न अपने धर्म का ही संरक्षता पूवक छाड़ सकते थे इसलिये परिस्थिति विषम हो गई । जनता में भय का संचार हुआ और भक्ति का प्रबल रूप में ऽई भाव हुआ । दक्षिण भारत में प्रारम्भ हुए भक्ति आंदोलन का प्रभाव उत्तरी भारत एवं राजस्थान में अधिक होता गया । रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी और निम्बाकांचाय के भक्ति-पीठ मनेरु केन्द्रों में स्थापित हुए और जनता के समक्ष भक्ति का धारदा प्रस्तुत किया गया ।

राजस्थान के राजपूत राजाओं ने वेष्णव धर्माचार्यों की विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों को विशेष प्रोत्साहन प्रदान किया और अपनी अपनी राजधानियों में उनकी गद्दीया स्थापित की। परिणामस्वरूप जनता के समक्ष भवतार रूप में परब्रह्म परमेश्वर का लोक रक्षक और लोक-रजक रूप प्राया तथा आशा का संचार हुआ।

६७ २। भक्ति आन्दोलन का प्रादुर्भाव मूलतः दक्षिण में वेष्णव धर्म के प्रभाव से हुआ — “यह भक्ति भावना उत्तरो भारत में पल्लवित होने के पूर्व दक्षिण में अपना निर्माण कर चुकी थी। यह भावना वेष्णव धर्म से उद्भूत हुई थी, जिसका सम्बन्ध भागवत या पंचरात्र धर्म से है। वेष्णव धर्म का आदि रूप हमें विष्णु के देवत्व में और देवत्व की प्रधानता में मिलता है।” “विष्णु” शब्द की व्युत्पत्ति ‘विश’ धातु से हुई है जिसका अर्थ “व्याप्त होना” है। विष्णु का सब प्रथम उन्नेष ऋग्वेद में प्राप्त होता है —

अतो देवा अस्तु ना यतो विष्णु विचक्रमे पृथिव्या सप्तवामभि ॥ १६ ॥

इदं विष्णुविचक्रमे देवा नि दये पद समूलहमस्य पामुरे ॥ १७ ॥

श्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्य अता धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥

६८ २। विष्णु की गणना ऋग्वेद में प्रधान देवताओं में नहीं की गई और वे सौर शक्ति के रूप में ही माने गये। किन्तु कालांतर में विष्णु क्रमशः देवों में प्रधान एवं सर्व शक्तिमय विष्णु हो गये। विष्णुपुराण, ब्रह्मवर्त पुराण और भागवत पुराण में उनको देवों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त हो गया। विष्णु परब्रह्म परमेश्वर मन्त्रिगण स्वरूप हो गये और राम तथा कृष्ण भी विष्णु के ही अवतार माने गये।

६९ २। भगवान् विष्णु के अवतार राम और कृष्ण के पावन चरित्रों के प्रकाश में मुस्लिम साम्राज्य रूपी घोर अंधकार युग में भी भारतीय जनता अपना धर्म मार्ग ग्रहण कर सकी। राम और कृष्ण की लाकरणिक और लोकानुरजन कारिणी लीलाओं ने प्रभावित हो कर जनता ने सुख की सांस ली। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र में भारतीय जनता ने रावण और अश्वत्थामाचारी दानवों का विनाश देखा। राम ने अपने पराक्रम में शक्ति मुनियों की यज्ञादि प्रवृत्तियों को पुनः निविधता पूर्वक सम्पन्न करने की व्यवस्था कर जनता को निभय बना दिया था और अश्वत्थामाचारी दानव रावण द्वारा हरी गई भारत-लट्ठी रूपी सीता को लाकर पुनः मर्यादित में प्रतिष्ठित किया था। इसी प्रकार श्री कृष्ण ने गकटामुर, वत्सामुर, वसामुर, प्रनम्बामुर, सखामुर भीमामुर, जरासंध और गिणुवान आदि का

१ — डॉ० रामकुमार वर्मा, हि० सा० भा० ६०, पृ० २०२।

२ — ऋग्वेद संहिता सायणाचार्य, प्रथमस्य द्वितीय सप्तमो वग — डॉ०

वध कर पुन धार्मिक व्यवस्था की थी। साथ ही श्रावण ने रासलीलादि लोकजक प्रवृत्तिया द्वारा जनता में नवोन्नत भाषा, विश्वास और सुख का संचार किया। राम और श्रावण के चरित्र से प्रभावित हो कर भारतीय धर्मशास्त्र जनता में घोर निराशा के वातावरण में भी सुख की सवदा समीप देता।

१०० २। रामानुजाचार्य मध्वाचार्य कल्लभाचार्य और निम्बार्काचार्य प्रभृति धर्म गुरुओं ने अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन सशुद्ध प्रथम ही किया कि तु इनके गिण्यप्रगिण्य कवियों ने जनता तक सिद्धांतों का प्रचार प्रसार का उद्देश्य से जन भाषाओं का उपयोग किया। कवियों ने आचार्य सिद्धान्तानुसार सर्वथा सरल और सरस भाषा का अपनी रचनाओं में प्रयोग कर अपना सन्देश सर्वत्र पहुँचा दिया।

१०१ २। इसी काल में अनेक सत्त ऐसे भी हुए जिन्होंने हिन्दु मुस्लिम एकता का प्रतिपादन किया। हिन्दु मुसलमानों का सम्पर्क में रहते हुए अनेक वर्ष व्यतीत हो गये थे और दोनों ही वर्ग एक दूसरे की विशेषताओं में परिचित हो चुके थे। ऐसी अवस्था में हिन्दु मुस्लिम सभ्यता का सम्बन्ध आवश्यकतापूरव था। ऐसे सत्त कवियों ने निर्याण और निरावार ब्रह्म का उपासना का समर्थन किया तथा मूर्तिपूजा, व्रत, राजा नमाज आदि का विरोध किया। सत्त कवियों पर रामानुजाचार्य की विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है जिन्होंने जातिवाद का बंधन को गिराकर तथाकथित निम्न वर्गों के लिए भी भक्ति का मार्ग खोल दिया। निर्याणी सन्तों का सूफी सम्प्रदाय का प्रचार राजस्थान में अत्यन्त हुआ किन्तु पानमार्गी सम्प्रदाय का तो राजस्थान विशेष में ही बल गया। बाद में राजक रामस्नही जसनाथी आदि कतिपय सम्प्रदायों की जन्मभूमि हान का ध्येय भी राजस्थान को प्राप्त हुआ।

१०२ २। इस काल में राजस्थान विभिन्न जन सम्प्रदायों का भी केंद्र बन गया। राजपूत राजाओं के दीवान और प्रबंधक बहूधा जैनमतावलम्बी होते थे, जिन्होंने राजस्थान में अनेक जन मन्दिरों और उपाधियों का निर्माण कराया। राजस्थान में अनेक जैन साधुओं, साध्वियों और यतियों आदि ने अपने धार्मिक सिद्धांतों के अनुसार प्रचुर मात्रा में विविध विषयक साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

१०३ २। राजस्थानी साहित्य का बीरगाथा-काल में अहिंसा व्रतानुसारि अनेक जैन कवियों ने भी जन भावनाशुद्ध तत्कालीन अर्थ कवियों के अनुकरण में बीरसात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की थीं किन्तु इस भक्तिकाल में ईश्वरनाम जी, सायाजा भूना और माधोदास जी जैसे चारण कवियों ने भी भक्तिरस का अर्थ लिखे। इन कवियों ने महापुरुषों की देवत्व मानते हुए उनकी वारता का वर्णन भी भक्ति के अन्तर्गत किया।

ख भक्तिकाल के प्रधान कवि

(१) मीराबाई

१०४२। राजस्थानी साहित्य में भक्तिकाल का प्रारम्भ मेवाड का कविता सुप्रसिद्ध भक्त कवियत्री मीराबाई की सरस भक्तिपरक रचनाओं से होता है। राटाड राजकुल में उत्पन्न और मेवाड के शीशोदिया राजकुल में विवाहिता मीरा ने वास्तव में जन भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हुए अपने गेय पदों में भक्ति में दार्ढ्य प्रवाहित की है।

१०५२। मीरा के पद भारतीय जनता में इतने अधिक लोकप्रिय हुए कि राजस्थानी के अतिरिक्त गुजराती, ब्रज, पंजाबी आदि भाषाओं में भी मीरा के नाम पर अनेक पद्य रचने लगे। आज मीरा के मूल और दोषक पदा को भूलना तथा मूल पदों के आधार पर मीरा का जीवन चरित्र निरूपित करना एक समस्या है। मीरा के जीवन सम्बन्धी तथ्यों के अभाव में जेम्स टॉड जैसे इतिहासकार भी भ्रान्ति में पड़ गये और उन्होंने मीरा को मेवाड के महाराणा कुम्भा की रानी लिख दिया।^१ यही भ्रान्त मत टॉड का अनुसरण करते हुए प्रियर्सन^२ और शिवमिह^३ जैसे विद्वानों ने व्यक्त किया है। यह भ्रान्ति सम्भवतः ऐसे पद्यों से हुई है जिनमें कुम्भाजी का नाम है और जिनका मीरा रचित कहा जाता है —

राणा कुम्भाजी ओ जी जीव रा सदाती जग में नाथ मिले जी ।
 राणा कुम्भाजी ओ जी, एक तो मायड रे दोय डीकरा जी ।
 एक तो बैठी राज करे, दूजो भारी बचण जाय ॥ राणा कुम्भा जी०
 राणा कुम्भाजी ओ जी एक तो गायड रे दोय डीकरा जी ।
 एक तो शिवजी रे नादियो, दूजो कसाया रे जाय ॥ राणा कुम्भा जी०
 राणा कुम्भाजी ओ जी, एक तो बेलड रे दोय तूमडा जी ।
 एक तो राणाजी खप्पर भरे जी, दूजो जमनाजी में जाय ॥ राणा०
 राणा कुम्भाजी ओ जी, एक तो कुम्भार हाडा दो घडिया जी,
 ज्यारा न्यारा-न्यारा लेख ज्यारा यारा-यारा लेख,
 एक तो महादेव जी रे जलेरी चढे, दूजो जूठण री कुण्डी ॥ राणा०
 मीरा जीव रा सदाती जुग म नाथ मिले जी ॥^४

१ - डी एनल्स एण्ड एटिक्विटीज ऑफ राजस्थान, क्रुक्स सस्करण, लंदन, पृ २८६।

२ - डी माइन वर्नाबूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान पृ० १२।

३ - शिवसिंह सरोज, पृ० १०२।

४ - लेखक के निजी संग्रह का पद।

१०६२। मीराबाई को महाराणा कुम्भा की राना लिखना वास्तव में इतिहास और अनुमान दोनों के विपरीत है। महाराणा कुम्भा का ६० गिला लाल प्राप्त हुए हैं^१ किन्तु किसी में भी मीरा का नाम नहीं है। कुम्भा की मनेत्र राणिया थी। इनमें से रानी कुम्भलदेवी का नाम चितौड़ के कौनिस्तम्भ की प्रशस्ति (स० १५१७) में^२ और धपूर्व दवी का नाम गीत गाविण की महाराणा कुम्भा का 'रसिक प्रिया टीका' में^३ प्राप्त होता है। राणा कुम्भा की राणिया के नाम ख्याता में भी दिये हुए हैं किन्तु इनमें कहीं मीरा का नाम नहीं है। मीरा का वरान नाभास इत भक्त माल में भी उपलब्ध होता है किन्तु इसमें महाराणा कुम्भा का कोई उल्लेख नहीं है —

लोक लाज कुल श्रु खला तजि मीरा गिरधर भजी ॥
सदृश गोपिका प्रेम प्रकट कलिपुगहि दिखाया।
निर अकुश अति निडर रसिक जसरसना गायो ॥
दुष्टनि दोष विचारि मृत्यु को उद्यम कीयो।
बार न बाको भयो, गरल अमृत ज्यो पीयो ॥
भक्ति निशान बजायके, काहू ते नाहिन लजी।
लाक लाज कुल श्रु खला, तजि मीरा गिरधर भजी ॥^४

१०७२। यदि मीराबाई महाराणा कुम्भा जैसे प्रसिद्ध महाराणा का राना हाती तो उक्त रचनापत्र में अवश्य ही उसका उल्लेख किया जाता। कुम्भा का देहात वास्तव में मीरा के जन्म से ३० वर्ष पूर्व स० १५२५ में हो चुका था।^५

१०८२। मीराबाई का जन्म वि०स० १५५५ के लगभग मडता के बुडकी नामक गाव में माना जाता है।^६ यह राव दूदाजी राठीड के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की एक मात्र सतान थी। मीरा का विवाह महाराणा सांगा (स० १५६६-८४) के पाटवी कुवर भाजराज के साथ स० १५७३ में सम्पन्न हुआ किन्तु भोज का देहात छोड़े समय पश्चात् ही हो गया। खानवा युद्ध (स० १५८४) में मीरा के पिता रत्नसिंह वीरगति को प्राप्त हुए और फिर राणा सांगा को भी विष द दिया गया, जिससे मीरा का ध्यान पूर्णरूपसे श्राद्धपूर्ण भक्ति में

१ - ओम्हा, उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० ३१८।

२ - यस्मानककुतूहलक मदवी कुम्भलदेवी प्रिया। इलोक स० १८१।

३ - महाराज्ञी श्री अर्जुनदेवी हृदयाधिनाथेन महाराजाधिराज महाराज श्री कुम्भकण महीमहेन्द्रेण। निलयसागर प्रस, यम्बई का संस्करण पृ० १७४।

४ - भक्तमाल, सटीक पृ० ६६४।

५ - ओम्हा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३२२।

६ - क - हरविलास सारदा महाराणा सांगा, पृ० ६६।

ख - ओम्हा उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३५६।

लग गया। मीरा ने भक्ति विषयक अनेक पत्र की रचनाएँ की। मीरा का देहांत स० १६०३ में हुआ।^१

१०६२। उक्त घटनाओं के प्रतिरिक्त मुगल सम्राट अकबर का मारा के दर्शन हेतु आना और मीरा का गास्वामी तुलसीदास से पत्र-व्यवहार करना जैसी घटनाएँ सत्तह रहित नहीं बही जा सकती क्योंकि मीरा के देहांत काल में अकबर की आयु केवल ४ वर्ष की और तुलसीदास की आयु १४ वर्ष निश्चित होती है। इसी प्रकार मीरा के गुरु रैदास भी सिद्ध नहीं होत हैं क्योंकि रैदास नामात्मास कृत भक्तमाल के अनुसार रामानन्द के शिष्य थे और रामानन्द का जन्म स० १३५६ में हुआ था।^२ रैदास शिष्य होने के नाते रामानन्द से अवश्य छाटे रहे होंगे किन्तु यदि उन्हें रामानन्द के समान उग्र का मान लिया जावे तो भी वे मीरा के समकालीन नहीं सिद्ध होते। रैदास की मृत्यु १२० वर्ष की आयु में मानी जाती है^३ अर्थात् रैदास की मृत्यु स० १४७६ में हुई। यह समय मीरा के जन्म में ७६ वर्ष पहले का है और मीरा द्वारा रैदास का शिष्यत्व स्वीकार करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। सम्भव है भवाड के प्रतिष्ठित राजवंश से अपना सम्बन्ध बताने के लिये रैदासों पथ के अनुयायियों ने पत्र में मीरा और रैदास के नाम जोड़ दिये हों। इसी प्रकार के प्रयत्न बल्लभ सम्प्रदाय वाला की ओर से भी हुए जैसा कि "बीरासी वैष्णवों की वार्ता" और "दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता" से प्रकट होता है। अजमत रघुनाथ दास का^४ और जीव गास्वामी^५ की मीरा का गुप्त मानते हैं। वास्तव में मीरा सम्प्रदायों और मतमतांतरों से ऊपर उठी हुई एक सद्गृहस्थ भक्त महिला थी।

११०२। मीरा की रचनाएँ निम्नलिखित मानी जाती हैं —

१ पदावली, २ गीतगोविन्द टीका, ३ नरसंजी रो माहरो, ४ सत्यभामाजी नू रसगू, ५ राग सोरठ, और ६ राग गोविन्द।

१११२। मीराबाई के पदों की सत्या हजारा ही है जिनके अनेक संग्रह हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती और बंगला आदि भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। मीरा के पदा की प्राचीन प्रामाणिक प्रति के अभाव में यह निश्चय करना कठिन है कि मीरा के रचित मूल पद

१ - क - मुंशी देवीप्रसाद मीराबाई का जीवन चरित्र, पृ० २७।

ख - श्रीभा उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० २६०।

२ - क - डा० बडधवाल, हिन्दी काव्य में निगुण सम्प्रदाय, पृ० ४१।

ख - चार० जी० भण्डारकर, वैष्णवविजय, शिवविजय एण्ड माइनर रितीजियस सिस्टमस, पृ० ६६।

३ - डा० रामकुमार वर्मा, हि० सा० भा० इ०, पृ० २२५।

४ - श्री ब्रजरत्नदास, मीरा माधुरी भूमिका, पृ० ७६।

५ - श्री विद्योगी हरि, वही, पृ० ७६।

कितने और किस रूप में हैं ? पद्मावली के प्रतिरिक्त मीरा की प्रथम रचनाएँ भी सद्देहात्मक हैं और सामान्य नोटि की हैं ।

११२२ । सरल, सरस भाषा में हादिक प्रभावयुक्ति ही मीरा पद्मावली का प्रधान भावपूर्ण है । मीरा की कला, कला के आडम्बर से सर्वथा धूम है इसलिये रसिकों और भक्तों में विशेष प्रिय है । मीरा पद्मावली में माधुर्यभाव से पूर्ण मीरा की भक्ति का उच्चादर्श प्राप्त होता है ।

(२) दुरसाजी आटा

११३२ । चारण कवि दुरसाजी आटा का जन्म वि० सं० १५९२ में जोधपुर के धू घला नामक गाँव में हुआ । इनके पिता का देहांत इनके बचपन में ही हो गया था अतएव इनका पालन पोषण बगडी के ठाकुर प्रतापसिंहजी ने किया । श्री सीताराम भालसन लिखा है कि निधनता के कारण इनके पिता ने स्यास ग्रहण कर लिया था ।^१ बगडी के ठाकुर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए दुरसाजी ने लिखा —

माथे मावीताह, जनम तणै क्यावर जितो ।

सोहूड सुध पाताह, पालणहार प्रतापसी ॥

११४२ । एक निर्धन परिवार में जन्म लेते हुए भी दुरसाजी को अपनी काव्यात्मक प्रतिभा के कारण प्रागे चल कर अनेक राजदरबारों में पर्याप्त सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुआ । बीकानेर के राजा रायसिंहजी ने जोधपुर पर अधिकार करने पर चार गाँव, एक हाथी और एक करोड़ रुपये का पुरस्कार प्रदान किया ।^२ सिरोही के राव सुरताण ने भी इस महाकवि को एक करांड का 'पसाव' दे कर सम्मानित किया ।^३

११५२ । कहते हैं कि मुगल सम्राट अकबर के दरबार में भी दुरसाजी को बहुत सम्मान मिला और अकबर ने इनको एक करांड 'पसाव' प्रदान किया । अकबर और दुरसाजी के विषय में अनेक उपाख्यान प्रचलित हैं । यथा —

दुरसाजी में अकबर के प्रथम परिचय के विषय में कहते हैं — एक समय अकबर आगरा से अहमदाबाद जा रहा था । मार्ग में सोजत के डेरे से गुजरा क डेरे तक राह प्रवध का काय बगडी के ठाकुर प्रतापसिंह का था । दुरसाजी इस कार्य में प्रतापसिंह के प्रमुख सहायक थे । दुरसाजी के काय - कीर्तन और प्रवध पठुता से अकबर बहुत प्रसन्न हुआ एव दुरसाजी को इसने लाख पसाव दिया ।

१ - राजस्थानी गद्द कीय, भूमिका पृ० १३६ ।

२ - दयालदास की कथा, भाग २ पृ० ११८ ।

३ - प० मोतीलालजी मेनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १३७ १३६ ।

१ अकबर के दरबार में लखवाजी नामक एक चारण कवि थे। लखवाजी के सहयोग से दुरसाजी भी दरबार में पहुँचे। तब लखवाजी की प्रशंसा में दुरसाजी ने यह दूहा बनाया —

दिल्ली - दरगह अब - तह, ऊँची फळद अपार ।
चारण लख्खी चारणा, डाळ नमावणहार ॥

एक समय की घटना है कि अकबर का प्रतिभावाक वैरामला कार्यवशात अजमेर आया हुआ था और दुरसाजी भी पुष्कर स्नान के लिये वहाँ पहुँच हुए थे। दुरसाजी वैरामला के द्वारे पर उससे मिलन गये किन्तु वैरामला के घादमियाँ ने नहीं मिलने दिया। तब वैरामला को बाहर भ्रमण के लिये जाने पर दुरसाजी ने उसको यह दूहा सुनाया —

आफनाब अघेर पर, अगनी पर ज्यु नीर ।
दुरसा कवि का दुख पर, है बहराम वजीर ॥

वैरामला ने दुरसाजी को निवृत्त बुला कर बातचीत की। दुरसाजी ने वैरामला को ये दूहे सुनाये —

तू बदा अल्लाह का, मैं बदा तेराह ।
तेरा है मालिक खुदा, तू मालिक मेराह ॥
पीर पराई मेटणा एह पीर का काम ।
मेरो पीडा मेट दे, बडा पीर बहराम ॥
विभीषण कू भेटियो, लका में एक राम ।
आण मिल्या अजमेर में, दुरसा कू वैराम ॥

वैरामला ने दुरसाजी की कष्ट गाथा सुन कर दुरसाजी को दिल्ली बुलाया और अकबर से मिला कर दुख दूर किया।

११६२। १० मातालालजी मेनारिया ने इस प्रकार की कथाओं को मुख्यतः इस आधार पर कपोल कल्पित बताया है कि दुरसाजी का नाम मुसलमान तवाराखा तथा राजस्थान की प्राचीन कथाओं में नहीं मिलता। इन्होंने लिखा है कि दुरसाजी के यश तथा अपनी जाति के महत्त्व को बढ़ा कर बतलाने के लिये चारण लोगों ने इनको गढ़ लिया है।^१

११७२। वास्तव में ऐसी घटनाओं का निरीक्षण कपोल कल्पित और गली हुई नहीं बताया जा सकता। दुरसाजी प्रारम्भ में जायपुर के सरदारों और राजा के साथ थे जिन्होंने अकबर की अधीनता ही नहीं स्वीकार की बल्कि अकबर से विवाह सम्बन्ध भी स्थापित कर लिये थे। ऐसा अकबर से दुरसाजी का अकबर के सम्पर्क में आना और अकबर का दुरसाजी की काम्य चातुरी से प्रसन्न होना असंभव नहीं जाना जाता। इन कथाओं में थोड़ा-बहुत सार

अवश्य है। दुरसाजी ने अपनी विरुद्ध छिहत्तरी नामक कृति में महाराणा प्रताप को धार्मिक धर्म का रक्षक ही नहीं ईश्वर का अवतार भी बताया और अकबर के लिये 'प्रथम एन 'सालची जैसे विशेषण प्रयुक्त किये। दुरसाजी जसे स्वाभिमानी कवि के लिये ऐसा करना सर्वथा स्वाभाविक ही था और उस युग में ऐसा सम्भव भी था। महाराज पृथ्वीराज राठौड़ न भी अकबरी दरबार में रहते हुए महाराणा प्रताप की प्रशंसा में अपनी काव्यात्मक रचनाएँ प्रस्तुत कीं। दुरसाजी के विषय में उक्त कथन के प्रमाण में पृथ्वीराज का उदाहरण पर्याप्त है।

११८२। दुरसाजी कवि होने के साथ ही कुशल योद्धा भी थे। स० १६४० में सोसादिया जगमान की सहायता के लिये सिरोही के राव सुरताण के विरुद्ध अकबर द्वारा भेजी हुई सेना में दुरसाजी भी जोधपुर के रायसिंह चंद्रमेनोत के साथ थे। दुरसाजी इस युद्ध में घायल हुए। युद्ध के अंत में सिरोही के राव सुरताण और उनके साथी घायलों के निरोक्षण के लिये रणभेद में पहुँचे तो दुरसाजी को घायलों से लक्ष्य देखा। राव सुरताण ने इनके बचने की सलाह नहीं जान कर इनका दूध देना (मारना) चाहा तब दुरसाजी ने कहा मैं राजपूत नहीं, चारण हूँ। तब सुरताण ने कहा 'यदि वास्तव में चारण हो तो अभी युद्ध में मारे गये देवडा समरा की प्रशंसा में कविता कहो' दुरसाजी ने तब यह दूहा सुनाया —

धरं रावा जस झूगरा, ब्रद पोना सत्र हाण ।
समरे मरण सुधारियो, चहु थोका चहुवाण ।

युद्ध में घायल हुए चारणों की सभी प्रकार से रक्षा की जाती थी, इसलिये राव सुरताण ने पालकी में ले जा कर दुरसाजी का उपचार करवाया और अपना "पोलपात" बना कर इन्हे दो गाव 'पेशुवी' और "साल" भेंट कर "क्रोड पसाव" भी प्रदान किया। दुरसाजी का देहांत ११७ वर्ष की अवस्था में वि०स० १७१२ में माना जाता है।

११६२। दुरसाजी की रचनाएँ निम्नलिखित हैं —

१ विरुद्ध छिहत्तरी, २ किरतार बावनी, ३ श्रीकुमार अजाजीनी भूचर भौरी नी गजपत ४ राउ श्री सुरताण रा कवित्त, ५ भूतणा रावत मेघा रा, ६ दूहा सोलकी वीरमदेव रा, ७ गीत राजि श्री रोहितास जी रो, ८ भूलणा राव श्री अमरसिंघजी रा, और ९ स्पुट छन्द ।

१२०२। दुरसाजी अपने समय के एक राष्ट्रीय कवि थे क्योंकि इन्होंने राष्ट्रवीर महाराणा प्रताप को देवायमान कर उनकी भक्तिपूर्वक प्रशंसा करत हुए भारतीय सभ्यता तथा मानव मर्यादा की रक्षा हेतु अपनी वाणी को मुखरित किया था। दुरसाजी ने अपने

समय के अन्य व्यक्तियों में भी गुण दखे तो उनका बिना सकोच अपनी रचनाओं में चित्रण किया। भावू पर्वत पर अचलेश्वर के मन्दिर में इनकी एक सर्वधातु की मूर्ति भी प्रतिष्ठित है जिससे इनकी देवोपम प्रतिष्ठा शत होती है।

(३) भक्त कवि ईसरदास

१२१२। भक्त कवि ईसरदास का जन्म चारणा की बारहठ घाटा में हुआ। विपलसी भाई पाता भाई के मतानुसार ईसरदास जी का जन्म विक्रम संवत् १५१५ है। इन्होंने अपने मत के समर्थन में यह दोहा उद्धृत किया है -

संवत् पनर पनडोतरे, जनम्या ईसरदास ।
चारण वरण चकार मा, ईण दिन हुओ उजास ॥^१

उक्त मत के विपरीत विशोरसिंह बाहस्पत्य ने ईसरदासजी के जन्म के सम्बन्ध में यह दोहा उद्धृत किया है -

पनरासो पिच्चाणवे, जनम्या ईसरदास ।
चारण वरण चकार मे, उण दिन हुओ उजास ॥^२

उक्त मता में से प्रथम मत का समयन मानदास जी बारहठ ने यह दोहा देते हुए किया है -

सर भुव सर शशी बीज, भृगु श्रावण सित परवार ।
समय प्रात सुरा धरे, ईसर भो श्रवतार ॥^३

वास्तव में ईसरदास जी का जन्म संवत् इनकी मूल जन्म पत्रिका के आधार पर संवत् १५६५ ही सिद्ध होता है और जन्म संवत् की दाहे का मूल रूप भी इस प्रकार प्राप्त होता है -

पनरासो पिच्चाणवे, जनम्यो ईसरदास ।
चारण वरण चकार मे, उण दिन हुओ उजास ॥^४

१२२२। ईसरदास जी के पिता का नाम सूजाजी और माता का नाम अमरबाई था। इनके काय शुक भक्त कवि आशानन्द थे। एक बार ईसरदास जी द्वारिका यात्रा के

१ - ईसर धारोठ कृत हरिरस प्रथ, द्वितीय संस्करण, पृ० १६८० ।

२ - हरिरस, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता ।

३ - श्री हरिरस प्रथम संस्करण, जामनगर पृ० १६६४ ।

४ - हरिरस, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता ।

प्रसंग में जामनगर में ठहरे । जामनगर के रावल ने इनका अच्छा सत्कार किया और द्वारिका से लौटते समय ईसरदास जी को जामनगर में ही राक लिया । जामनगर के रावल ने ईसरदास जी को “ करौड पसाव ” किया । इनकी पहली पत्नी का देहात हो चुका था इसलिये रावल जी ने आग्रह कर इनका दूसरा विवाह जामनगर में ही किया । जामनगर रावल की सभा में पीताम्बर भट्ट नामक सस्त्रुत के पंडित थे , जिनसे इन्होंने भागवत् का अध्ययन किया —

सागू हूँ पहली लुले , पीताम्बर गुरु पाय ।
भेद महारस भागवत् प्रामू जास पसाय ॥ ^१

ईसरदास जी वृद्धावस्था में अपने जन्म स्थान के निकट लूनी नदी के किनारे एक कुटिया में रहने लगे , जहाँ मवत् १६२२ के लगभग इनका देहात हो गया —

सम्बत् सोल बाचीस बुध , शुदि नौमी मधुमास ।
ईशाणद कवि उद्धरे , विश्व करो विश्वास ॥

कवि भावदान जी भोमजी भाइ रतनु ने भी इसी मत का समर्पण किया है । ^२ इनके विपरीत कतिपय इतिहासकारों ने इनका मृत्युकाल सवत् १६७५ लिखा है । ^३

१२३ २ । ईसरदास जी रचित ग्रंथ इस प्रकार हैं —

१ हरिरस २ छोटा हरिरस, ३ बाल लीला, ४ गुण भागवत हस, ५ गुरुद पुराण, ६ गुण आगम, ७ गुण निंदा स्तुति, ८ देविमाण, ९ गुण वैराट १० साखिया, ११ हाना भाला रा कु डलिया, १२ रास कैलास, १३ दाण लीला १४ गुण समा पर्व, १५ गीत छंद, १६ सामला रा वृहा, १७ भजन (पद और वाणिया) ।

१२४ २ । ईसरदास जी राजस्था और गुजरात में “ ईसरा सो परमेसरा ” के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनकी कृति हरिरस का एक धार्मिक ग्रंथ के रूप में नित्य पाठ का प्रचलन है जिससे इनकी महत्ता प्रकट होती है । ईसरदास जी की रचनाओं में “हरिरस” और ‘हाना भाला रा कु डलिया’ श्रेष्ठ मानी गई हैं । हरिरस में ईश्वर के सगुण रूप के साथ ही निष्कृण रूप का समर्पण भी किया गया है ।

१२५ २ । हाना भाला रा कु डलिया राजस्थानी भाषा का वीररस पूर्ण श्रेष्ठ ग्रंथ है । इसमें हाना और भाला क्षत्रियों के बीच होने वाले युद्ध का सरम वर्णन है ।

१ — वही, बोहा स० १ ।

२ — यदुवत्स प्रकाश अपने जामनगर नो इतिहास, प्रथम संस्करण, स० १९६१ ।

३ — रा० मा० सा, हि० सा० स०, पृ० ११६ ।

इनकी रचनाओं के उदाहरण इस प्रकार हैं —

जनम-पीड जगदीश, ईस अवतार म आणे ।
 छल बल करि छोडवण, जनम आपण कर जाणे ।
 भणे नाम हू भणिस जोति जगती जगदीसे ।
 कृपा साधना करण, तवन कोड तेतीसे ।
 द्रगदेव दिनकर ससि हुवे, त्रिगुण नाथ तारण-नरण ।
 “ ईमरो ” कहे असरण-सरण किमु तूक कारण करण । — हरिरस
 ऊठि अचू का बोलणा नारि पयपै नाह ।
 घोडा पाखर धमधमी, सीधू राग हुवाह ॥
 हुवो अति सीधवो राग बागी हका ।
 थाट आया पिसण घाट लागै थका ॥
 अखाडा जीति खग अरि घडा खोलणा ।
 ऊठि हरघवल सुन अचू का बोलणा ॥ — हाला भाला रा कु डळिया ।

(४) महाराजा पृथ्वीराज राठौड

१२६२ । पृथ्वीराज का ज म बीकानेर राज परिवार में विक्रमी सवत १६०६ में माना जाता है । पृथ्वीराज बीकानेर नरेग राव कल्याणमल के द्वितीय पुत्र थे । इनका अकबर के दरबार में सनापति और मनसबदार के रूप में उच्च स्थान था । अकबर के दरबार में रहते हुए भी इन्होंने भारतीय स्वाधीनता संग्राम के परम प्रेरक महाराणा प्रताप की प्रशंसा में अनेक गीत और दूहे लिखे । साहित्य जगत में पृथ्वीराज 'पीपल' के नाम से प्रसिद्ध हैं । महाराणा प्रताप को लिखा गया पृथ्वीराज का पत्र साहित्य जगत में प्रसिद्ध है और कहा जाता है कि इस पत्र के द्वारा ही महाराणा प्रताप को अकबर से सघर्ष करने रहने की प्रेरणा मिली । इतिहासकारों ने भवश्य ही पृथ्वीराज के इस पत्र की अप्रामाणिक माना है ।^१ पृथ्वीराज का पत्र महाराणा के उत्तर सहित इस प्रकार है --

पातळ जो पतसाह, बोले मुख हूता वयण ।
 मिहर पिछम दिस माह, अगे कासपराव-उत ॥ १ ॥
 पटकू भूछा पाण, कै पटकू निज तन करद ।
 दीजे लिख दीवाण, इण दो महली बात इक ॥ २ ॥

महाराणा प्रताप का उत्तर —

तुरक बहासी मुख पते, इण तनसू, इकलग ।
 अगे ज्याही अगसी, प्राची धीच पतग ॥ ३ ॥

खुसी हूत पीयळ कमघ, पटको मू छा पाण ।
 पछटण हे जैते पतो कलमा सिर कैवाण ॥ ४ ॥
 साग मू ड सहसी सकी, सम-जस जहर सवाद ।
 भड पीयळ जीता भला वँण तरक सू वाद ॥ ५ ॥^१

पृथ्वीराज के लिले हुए चार काय ग्रय हैं —

१ वेलि किसन रुक्मणी री, २ ठाकुरजी रा दूहा, ३ गगाजी रा दूहा,
 ४ फुटकर दोहे व गीत^२ और छप्पय ।^३ ५० मोतीलानजी मेनारिया^४ और श्री
 सीतारामजी लानस^५ के अनुवार पृथ्वीराज की रचनाए इन प्रकार है —

१ वेलि किसन रुक्मणी री २ दसम भागवत रा दूहा, ३ गगा लहरी,
 ४ वसदे रावउत, ५ दसरथ रावउत ।

रचनाओं के नामों में उक्त अंतर वसदे रावउत और दशरथ रावउत को ठाकुर जी
 रा दूहा मानने में और गगानहरी को गगाजी रा दूहा मानने से तथा कवि पीयल के अनेक
 स्फुट गीत और दूहे मिलने से हुआ है । कवि पीयल ने दशरथ रावउत में श्रीराम का और
 वसदेरावउत में श्रीकृष्ण चरित्र का बरणन किया है । शांत रस विषयक इनके एक गीत का
 उदाहरण इस प्रकार है —

हरि जेम हलाडो जिम हालीजै , काये धणिया सू जोर बृपाल ।
 मोली दिवौ दिवौ छत्र माये , देवौ सो लेऊ स दयाल ॥ १ ॥
 रोस करी भावै रलियावत गज भावै खर चाढ गुलाम ।
 माहरै सदा ताहरी माहव , रजासजा सिर ऊपर राम ॥ २ ॥
 मूऊ उमेद बडी महमैहण , सि घुर पापे केम सरै ।
 चोतारी खर सोस चित्र दे , किमू पुतलिया पाण क्यै ॥ ३ ॥
 तू स्वामी पृथुराज ताहरो , बलि बीजा को करे विलाग ।
 रुढी जिकी प्रताप रावला भू डी जीकी हमीणो भाग^५ ॥ ४ ॥

१ - श्री नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संपादित राजस्थान रा दूहा भाग पहलडो, प्रथम
 संस्करण १९३५ ई०, प० ६८ व ६९ ।

२ - श्री हीरालाल माहेन्वरी राजस्थानी भाषा और साहित्य, १९६० ई०, प० १५५ ।

३ - श्री सोभाग्यसिंह नेलावत का निबंध 'पृथ्वीसिंह राठोड के छप्पय', गोध पत्रिका
 वष १९६३ ।

४ - राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १२२ ।

५ - राजस्थानी गद्यकीय राजस्थानी गोध-संस्थान, चौपासनी, भूमिका, पृ० १३८ ।

६ - वेलि (हिंदुस्तानी एकेडमी), भूमिका प० ४४ ।

१२७२। कवि पृथ्वीराज की रचना बेलि क्रिमन स्वमणी रो राजस्थानी काव्यो मे एक श्रेष्ठ रचना मानी जाती है।

(५) साया जी भूला

१२८२। भक्त कवि साया जी का जन्म चारणों की भूला शाखा^१ मे विश्वमी स० १६३२ मे माना जाता है। साया जी ईडर राज्या तर्गत लीलछा^२ नामक गाव क जागीरदार स्वामीदाम जी के दूसरे पुत्र थे। साया जी के बड़े भाई का नाम भाया जी था। साया जी का देहात विक्रमा सवत् १७०३ माना जाता है। साया जी ईडर नरेश राव वीरमदव जी और इनकी मृत्यु के पश्चात् राव कल्याणमलजी के आश्रित थे। दोनो ही नरेशा ने साया जी को एक एक लाख पसाव भेंट किया था। राव कल्याणमल जा ने लाख पसाव के साथ ही इनका कुवावा नामक ग्राम भी भेंट किया, जहा इनके वंशज आज भी रहते हैं।^३

१२९२। राज्यालय में रहकर और राज्य सम्मान प्राप्त कर साया जी ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा न करते हुये केवल मात्र श्रोतृवृष्ण के गुणगान में ही अपनी रचनाएँ लिखी।

१३०२। साया जी रचित कतिपय फुटकर पद्य और 'नागदमण तदा स्वमणी-हरण' नामक काव्य उपलब्ध हैं। 'नागदमण' मे श्रीमद्भागवत के आधार पर कालिय-दहन की कथा और 'स्वमणी हरण' मे कृष्ण स्वमणी विवाह की कथा वर्णित है।

(६) कविराजा बाकीदास

१३१२। कविराजा बाकीदास का जन्म जाधपुर राज्य मे पचपद्रा परगने में भाडियावास मे वि० स० १८३८ मे माना जाता है। बाकीदास जी भाडिया शाखा के चारण थे और इनके पिता का नाम फतहसिंह था। अपने गाव मे सामान्य शिक्षा प्राप्त कर बाकीदास जी जोधपुर प्राये जहा रामपुर के ठाकुर भर्तृनसिंह जी ने इनकी प्रतिभा से प्रसन्न हो कर इन्हें विभिन्न गुरुओं से काव्य, व्याकरण, इतिहास आदि की शिक्षा दिलवाई।^४

१ - चारणों की १२० शाखाओं मे से 'देह' शाखा के प्रथम 'भूला' एक उपशाखा मानी गई है। महाकवि सूर्यमल कृत सगभास्कर, भाग १, स० प० रामकण जोधपुर, प्रताप प्रेस, जोधपुर स० १९५९, पृ० ८४।

२ - लीलछा गांव गुजर नरेश सिद्धराज जयसिंह ने भालाजी भूला को प्रदान किया था। सायाजी के पिता स्वामीदासजी भालाजी की नयी पीढ़ी में हुए थे। नागदमण स०, राज्य कवि हमीरदानजी — प्रकाशक राज्यकवि लालाजी कान्ही, दिल खुशालबाग पालनपुर, मुम्बई, पृ० १-२।

३ - स्वमणी हरण, सम्पादक-गुदयोत्तमलाल मेनारिया राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सम्पादकीय प्रस्तावना, पृ० १७-२६।

४ - राजस्थानी भाषा और साहित्य, हि० सा० स०, पृ० १८६।

जाधपुर में बाकीदास जी महाराजा मानसिंह के गुरु भादग देवनाथ जी से मिले तो भादग देवनाथ जो इनका कविता से बहुत प्रसन्न हुए और इन्हें महाराजा से मिलाया। महाराजा मानसिंह ने बाकीदास जी का अपना काव्य गुरु बना कर सम्मानित किया और कागज पर गुरु गिष्य सम्बन्ध की सूचना माहुर लगाने की स्वीकृति प्रदान की। माहुर पर यह छन्द उत्कीर्ण करवाया गया —

श्रीमन् मान घरणिपति, बहु गुन रास ।

जिन भाषा गुरु कीनी, बाकीदास ॥ १

१३२२। कविराजा बाकीदास जो संस्कृत, ब्रज, राजस्थानी और पारसी के मुजाता होने के साथ ही इतिहासज्ञ भी थे। बाकीदास जी भारत में अश्वमेधी यासन के प्रयत्न विरोधी और हिन्दु मुस्लिम एकता के समर्थक थे।

१३३२। कविराजा भाग्यवि होने के साथ ही काव्यशास्त्र के अध्येता थे और पद्य के साथ ही गद्य लेखन में भी कुशल थे। इनकी राजस्थानी भाषा सरल होने के साथ ही प्रौढ़ और प्रसादगुणयुक्त है। कविराजाजी अनेक छन्दों के लेखन में सिद्धहस्त थे, किन्तु धारके दूहो और गीतो का चमत्कार विशेष प्रभावशाली है। कविराजाजी की रचनाएँ इस प्रकार हैं—

१ सूर छत्तीसी, २ सीह छत्तीसी, ३ वीर विनोद, ४ घवल पचीसी, ५ दातार बावनी ६ नीतिमजरी, ७ सुपहछत्तीसी, ८ वैसकवारता, ९ मावडिया मिजाज, १० कृपणदरपण, ११ मोहमरदन १२ चुगलमुख चपेटिका, १३ वैस वारता, १४ कुकवि बत्तीसी, १५ बिदुर बत्तीसी, १६ भुरजाल भूषण १७ गगालहरी १८ जेहल जस जडाव, १९ कायर बावनी, २० कमाल नखसिख, २१ सुजस छत्तीसी २२ संतोष बावनी, २३ सिद्धराय छत्तीसी, २४ बचन विवेक २५ कृपण पञ्चीसी, २६ हमरोट छत्तीसी, २७ स्फुट संग्रह, २८ कृष्ण चद्रिका, २९ विरहचद्रिका, ३० चमत्कारचद्रिका, ३१ मान जसो मडन, ३२ चंद्रदूषण दर्पण, ३३ वैसाख वार्ता संग्रह, ३४ श्री दरवार री कविता, ३५ रसालकार ग्रन्थ, ३६ अक्षरलोकर भासा व्याख्या, ३७ महाभारत छंदोऽनुवाद, ३८ अक्षर-लापिका, ३९ घलघट पञ्चीसी, ४० गीत नै छंद संग्रह और, ४१ बाकीदास री ख्यात ।

१३४२। बाकीदास का देहान्त जोधपुर में वि० स० १८६० थावण शुक्ला ३ को हुआ। इनके देहान्त पर महाराजा मानसिंह बहुत दुखी हुए और अपने शोकोद्गार इन छंदों में प्रकट किये —

१६— यह मोहर बाकीदासजी के शब्दों के पास अभी तक सुरक्षित है ।

सद् विद्या बहु साज , बाकी थी बाका वमु ।
 कर सुधी कवराज , आज कठी गी आसिया ॥
 विद्या - कुल विख्यात , राज काज हर रहस री ।
 बाका तो बिण बात , किण आगल मनरी कहा ॥

बाकीदास जो की काव्यात्मक रचनाओं के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं -

सुर न पूछे टीपणो , सुकन न देखे सूर ।
 मरणा नू मगळ गिणें , समर चढे मुख नूर ॥ १ ॥
 दामोदर दीजे मती , कायर काठे वास ।
 सरणे राखें सूर रै , तेथ न ध्यापे आस ॥ २ ॥
 कै सूरुा घर कज्ज है , कै सूरुाँ पर कज्ज ।
 सुर-पुर दोहू सचरे रुका व्है रज - रज्ज ॥ ३ ॥
 सूर भरोसे आपरै , आप भरोसे सीह ।
 भिड दोहू भाजे नही , नही मरण रो बीह ॥ ४ ॥
 सखी भ्रमोणा कथ री , पूरी एह प्रतीत ।
 कै जासी सुर द्र गढे , कै आसी रणजीत ॥ ५ ॥
 फवै सवा मण मुक्त फळ , मंगळ कुम्भ मभार ।
 पिण हायळ बळ सू हुवाँ , सीह बडो सिरदार ॥ ६ ॥
 सीहा देस विदेस सम , सीहा किमा उत न ।
 सीह जिक्के बन सचरे , सो सीहा रो व न ॥ ७ ॥
 चमर दुलै नरें सीह सिर , छत्र न धारै सीह ।
 हायळ रा बळ सू हुवाँ श्री मृगराज भबीह ॥ ८ ॥
 तू वयू गणपत नाम लै जोतै धवळो भार ।
 गणपत हदा बाप री , धवळ उठावें भार ॥ ९ ॥
 धवळा सू राजे घणी , चगी दीसे ग्वाड ।
 नारायण मत नाखजै , धवळा उपर घाड ॥ १० ॥

ग राजस्थान के सत्-सम्प्रदाय

(अ) सामान्य परिचय

१३५ २। सत्तर में ऐसे व्यक्तियों का अभाव नहीं होता जो सत् ही दूसरा की सुख सुविधाओं का ध्यान रखने हुए परोपकार में सलग्न रहते हैं। ऐन व्यक्ति परोपकार के लिए किसी भी प्रकार का श्रेष्ठ सहप सहन कर सकते हैं। इत्यादि दृश्य उभार होता है

भीर इनकी भावना "वसुधैव कुटुम्बकम्" की होता है। उगारता, बध्द-सहित्ता भीर परापकार स परिवार - विगप म ही नही, समस्त समाज भीर नेग में सुस-गति की स्थापना होती है। परिवार भीर बाहर यदि सभी लाग अपने अपने कर्नधो का पानन करते हुए एक दूसरे के सहयोगी बनकर रह भीर उ ार दृष्टिकोण स कार्य करते रह तो समा प्रकार की मुल सुविधाओं भीर गति उपलब्ध ही सकती है। अपनी प्रावश्यकताएँ पूनतम रखते हुए जो दूसरा को अधिनाधिक लाभ पहुचाने है वही वास्तव म सत कह जा सत है। सत ही समाज क माग दृष्टा हाते हैं। यद्यपि सतो को अपनी प्रतिष्ठा मप्रतिष्ठा भीर मानापमान का ध्यान नही रहना, कि तु समाज मे स ता की प्रतिष्ठा सर्वोच्च हाता है।

१३६२। वास्तव मे सता क कारण ही हमारी ससृति का विकास होता है। "सम्यक करण ससृति" अर्थात् ससृति द्वारा ही प्राकृतिक देन की सुधार कर उपयोगी बनाया जाता है। मुश्यत सता न ही मानव समाज का पनु कोटि म सुधार कर उन्नति की धार प्रसर किया है। सन्ता न पारस्परिक व्यवहारा की सात्विक रूप दिया है।

१३७२। भारतीय साहित्य में सत ाद की व्याख्या कई रूपों में की गई है। ऋग्वेद में "सत्" का बणन करन वाने कातिशो "विप्रा" का उल्लेख हुआ है।^१ छा-दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि प्रारम्भ मे ब्रह्म अथवा परमात्मा के रूप में सत ही वतमान था।^२ महाकवि भवभूति ने बुद्धिमान व्यक्ति को ही सत माना है।^३ श्रीमद्भागवत मे पवित्रात्मा को सत माना है।^४ सुतुहरि ने परोपकारी को ही सत के रूप मे स्वीकार किया है।^५ गास्वामी तुलसीदास ने सत ाद की व्याख्या सज्जन के रूप में की है।^६ महाभारतकार ने सदाचारी को ही सत माना है।^७

अंग्रेजी के 'सेट' ाद की भी सत का पर्यायवाची कहा जा सकता है, क्योंकि अंग्रेजी से ट ाद की उत्पति 'सेन्सिब्रा' नामक लेटिन शब्द से हुई है, जिसका अर्थ पवित्र करना होता है। इसीलिए कई ईसाई सता को पवित्रात्मा के रूप मे भी सम्बोधित किया

१ - पचतत्र अथ निज परोवेति गणना लघु चेतसाम् ।
उदारचरिताना तु वसुधय कुटुम्बकम् ॥

२ - सुपण विप्रा कथियो अयोविरेक सत बहुषा कल्पयति । १० ११४।

३ - छादोग्य उपनिषद् अण्ड १ ।

४ - सत परोक्षमातरव भजते गूढ पर प्रपत्य नव बुद्धि ते सत जोतुमहति सद-सद्
व्यक्ति हेतव —उत्तर रामचरित् ।

५ - भागवत, प्रथम स्कन्ध । अ०१ श्लोक ८ ।

६ - सत स्वय परहिते विहितामि योगा । —शतकत्रयम् ।

७ - रामचरित मानस, बालकाण्ड २४ ।

८ - आचार लक्षण धम सनस्याचार लक्षण ।

गया है। सत्त गन्तु वास्तव में "सत्" नामक संस्कृत गन्तु का बहुवचन है। "सत्" शब्द "असत्" अर्थात् होना शब्द से सम्बन्धित है। इस प्रकार सत्त शब्द के मूल में — होने वाला, रहने वाला, जन्म मरण से परे, अजर अमर, सत्य ब्रह्म अर्थात् परमात्मा का स्वरूप है। भारतीय शास्त्रों में "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" कहा गया है। सत्त गन्तु के मूल में सत्य ही मानना चाहिये। श्रीमद्भागवत गीता के "ऊतत्सत्" में निहित "सत्" शब्द भी ब्रह्म अर्थात् सत्य के लिये व्यवहृत हुआ है।

१३८२। भारत के प्रत्येक भू-भाग में सत्ता की अवतारणा हाथी रहा है और भारत को प्राचीनकाल से ही सत्ता की भूमि कहा जाता है। सत्ता के कारण ही भारतीय सामाजिक जीवन में धर्म की उच्च स्थान प्राप्त हो सका है और भारतीय संस्कृति एक धर्म-प्रधान संस्कृति बन गई है। वास्तव में भारतीय संस्कृति के मूल में धर्म के निम्नलिखित लक्षण ही हैं —

धृति क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रह ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशक धर्म लक्षणम् ॥

१३९२। जगरी, चित्तौड़, भद्रुदाचन, भिन्नमाल, भाहड, नागद्रहा, वैराट, अजयमेरु चन्द्रावती आदि ऐतिहासिक स्थानों में प्राप्त धार्मिक अवशेषों से सिद्ध होता है कि राजस्थान में प्राचीनकाल के समस्त भारतीय धर्मों जैसे वैष्णव, शैव, शाक्त बौद्ध, जैन धर्मों का विशेष प्रचार रहा है।^१ राजस्थान में अनेक प्रकार के धार्मिक स्थानों, जैसे — देव मंदिरों, स्तूपों और विहारों का निर्माण हुआ है। विभिन्न मत-मतांतरों और देवी-देवताओं से सम्बन्धित मूर्तियाँ भी राजस्थान में प्रचुर मात्रा में निर्मित एवं प्रतिष्ठित हुई हैं।

१४०२। राजस्थान निवासियों ने धार्मिक कार्यों में भी मत्ता से शक्ति प्रकट की है। राजस्थानी शूरवीरों तथा धीरांगनाओं ने मुख्यतः अपनी धार्मिक धृष्टियों के कारण ही अतृष्णा त्याग कर भारतीय इतिहास में अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

१४१२। इस प्रकार राजस्थान सत्ता के लिए प्रचार-प्रसार का उत्तम मैत्र बन गया और प्रमुख भारतीय सत्त सम्प्रदायों को राजस्थान में विशेष प्राथम्य प्राप्त हुआ। ऐसे सम्प्रदायों में — गोरखनाथ, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, कबीर आदि के सम्प्रदायों को लिया जा सकता है। राजस्थान में अनेक सत्त सम्प्रदायों का जन्म भी हुआ। वाद् राम स्नेही, चरणनाथी, विष्णोई और जैन धर्म के अतृष्ण कई मत राजस्थान में आविर्भूत हुए और उनका राजस्थान के बाहर भी प्रचार हुआ।

१ — मध्यकालीन भारतीय संस्कृति डॉ० गौरीशंकर मोभा द्वारा, हिन्दुस्तानी एन्सेक्लोपी, प्रयाग।

१४२ २। राजस्थान व सत साहित्य पर इस्लाम का भा मयेष्ट प्रभाव पडा है। मुसलमानो का भागमन भारत मे आठवी सती स ही प्रारम्भ हो गया था। मुसलमाना के भारत भागमन का उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार, 'यापर व शासन सत्ता स्थापित करना था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुसलमाना को भारतवासियो स सघर्ष करना पडा। मुसलमानो की विजय क साथ ही भारत मे बडी सरया में सूफी सत व फकीर भी आए। इन्होंने अपने विचारो को प्रचारित करने के लिए प्रम का मार्ग अपनाया। ऐमे मुस्लिम सता का एकस्वरवा (वहदानियत) भारतीय धर्म के भी अनुकूल हुआ। भारतीय परम्परा नुसार आत्मा और परमात्मा व मिलन को मोक्ष की सजा दी गई है। आत्मा अजर अमर है व नाना गरीरो मे प्रवेश करती हुई परमात्मा मे लीन होना चाहता है। मोक्ष प्राप्ति में गुण की सहायता परम भावश्यक होती है। आत्मा और परमात्मा व बीच माया का आवरण रहता है। इस्लाम मत मे आत्मा के स्थान पर बाद है जो गरीयत, तरीकत, हकीकत और मांरफत नामक अवस्थाओं को पार करता हुआ खुदा के नजदीक बवा होकर फना व लिए पहुँचता है। माया का स्थान इस्लाम मे शतान न ग्रहण किया है जो बादे की मार्ग भ्रष्ट कर खुदा के नजदीक नही पहुँचन दता है। बौद्ध और जैन धम म भी मोक्ष की ही प्रधानता दी गई है। इस प्रकार सत मत व उद्भव स सर्वे मतवय का झूठा प्रतिपादन होता है।

आ मत कवि

(१) मत दादूदयालजी

१४३ २। स्वामी दादू दयाल जी दादू पय के प्रवर्तक माने जाते हैं। दादू पय का प्रभाव राजस्थान में विशेष रूप से है जिसके फलस्वरूप राजस्थान के सैकड़ों ही स्थाना मे दादूजी के स्थानक मिलते हैं। दादू-पयी निराकार परब्रह्म की उपासना करते हैं। राजस्थान म जयपुर के निकट 'नारायणा' नामक स्थान दादूपधिया का मुख्य केन्द्र है।

१४४ २। दादूजी का जन्म अहमदाबाद मे वि० १६०१ में माना जाता है। दादूजी की आति के विषय मे मत्भे है। "दादू जन्म लील्य परची" मे दादूजी के शिष्य जन गोपाल ने दादूजी के जीवन वृत्त पर लिखा है। कहते हैं कि साबरमती मे सद्रुक मे बहते हुए अहमदाबाद व एक ब्राह्मण को एक बालक मिला जो बाद म दादूजी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दादूजी ने राजस्थान मे अपने धर्म का विशेष प्रचार किया और 'भामेर' 'साभर', 'नारायणा' आदि स्थाना म अपने धर्मप्रचार के केन्द्र स्थापित किये। दादूजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र गरीबदास को अपना उत्तराधिकारी बनाया। दादूजी का देहान्त १६६० वि० मे नारायणा नामक स्थान में हुआ जहा इनके वस्त्रों और पुस्तका की पूजा आज भी की जाती है।

१४५ २। दादूजी की रचनाओं का संग्रह 'वाणी' व नाम से प्रसिद्ध है। दादूजी

की रचनामा मे नान, गुरुभक्ति सत्मग वराग्य, माया, जीव, और ब्रह्म भादि विषयो के बारे मे चर्चा है ।

१४६२ । अपनी रचनापो मे दादूजा ने दुबहना को सग ही दूर रखा है । घम सम्बन्धी दुबह विचारा को सरलता से व्यक्त किया गया है । साहित्यिक दृष्टि से भी स्वामी दादूदयाल जी की रचनाए उल्लेख्य कही जा सकती हैं । दादू सम्प्रदाय का जयपुर क्षेत्र में विशेष प्रचार है । क्योंकि सत दादूजी का निवास मुहमत इमो क्षेत्र में रहा है । दादूजी ने अह भाव को छोड़कर निर्गुणापासना पर अधिक बल दिया है । दादू सम्प्रदाय मे इस समय चार दल है जिनके नाम हैं— खालसा, विरक्त उत्तराधा और नागा ।

खालसा — दादूजी के देहावसान के बाद उनके बड़े पुत्र गरीबदास गद्दी के अधिकारी बने और उन्होंने अपनी आचार्य-परम्परा चलाई । इसी आचार्य परम्परा वाले खालसा कहे जाते हैं । खालसा शाखा का मुख्य केन्द्र जयपुर के पश्चिम की ओर नाराणा नामक स्थान है । नाराणा मे ही दादूजी का दहात हुआ और यही इनकी मुख्य गद्दी स्थापित हुई ।

उत्तराधा — राजस्थान से हरियाना, हिमार रोहनक दिल्ली, भटिंडा, नामा, पटियाला आदि उत्तरदिशा के स्थाना मे चले जाने के कारण दादूजी के शिष्य उत्तराधा कहे गये । उक्त क्षेत्रो मे भी कई दादू द्वारो की स्थापनाए हुई, जिनसे दादू पथ के प्रचार मे सहायता मिली ।

विरक्त — दादू पथी विरक्त साधु स्थान स्थान पर घूमते रहते हैं और लोगो को दादूवाणी का उपदेश देते हैं । विरक्त साधु अपना निर्वाह गृहस्थो द्वारा दी गई भिक्षा से करते हैं । वर्षा ऋतु मे किसी उपयुक्त स्थान पर टहरकर ऐसे साधु चातुर्मास करत हैं और वही नित्य प्रति अपने सम्प्रदाय का प्रचार करते हैं ।

नागा — दादूपथी नागा साधुओ की जयपुर मे सात जमातें प्रसिद्ध हैं । नागा-साधु शास्त्र-संचालन और मूलविद्या में बड़े प्रवीण रहे हैं । जयपुर मेना के अतगत नागा साधुओ की भी एक टुकड़ी रही, जिसने कई युद्धों में भाग लिया ।

१४७२ । दादू सम्प्रदाय में सत— दादू के अतिरिक्त गरीबदास (स० १६३२-१६६३), बलनाजी (रचनाकाल स० १६४०-१६७०), जगजीवन (स० १६४०), जनगोपाल (स० १६५०), रज्जव जी पठान (ज० स० १६२४ लगभग), जगन्नाथदास (स० १६५०) भोजजन (स० १६५५) माधोदास (स० १६६१), मन्तदास (स० १६६६), वाजिद (स० १६६० लगभग) मुन्दरदाम (स० १६५३-१७६६), खेमदास (स० १७००), राधवदास (स० १७१७) चारण कवि स्वर्णदास

(रचनावाला स० १८८०-१९२०) और मंगलदास (सं० १९१०) आदि प्रमुख सत कवि हो गए हैं।

(२) सन्त रज्जव जी

१४८२। रज्जव जी का वास्तविक नाम रज्जव भन्ना सा था। रज्जव भन्नी सा का जन्म स्थान जयपुर व निकट सागानर और जन्म सं० १९२४ वि० माना जाता है। रज्जव भली सां २० वर्ष की आयु में अपना विवाह करने के लिये सा दादूजी से इना साक्षात्कार हुआ और तत्काल ही विवाह का विचार छोड़कर दादू सम्प्रदाय में दाखिल हो गये। रज्जव जी अपने गुरु को विद्यार्थी की दृष्टि से स्तन थे और दादूजी के देहात पर उन्होंने अपनी भ्रातृत्व की भाँति देखी। रज्जव जी का देहात उनके जन्म स्थान पर सागानर में स० १७४६ वि० में हुआ।

१४९२। रज्जव जी के दो सग्रह-ग्रंथ 'वाणी' और 'सरवगी' हैं। दोनों ही ग्रंथों से रज्जव जी के अग्रिम ज्ञान, गुरु भक्ति और काव्य शक्ति का परिचय मिलता है।

१५०२। सत रज्जव भली सा पठान की 'वाणी' और "सरवगी" के अन्तर्गत अनेक रचनाएँ मिलती हैं जिनके अन्तर्गत नाम निम्नलिखित हैं —

अग्रिम वावनी, दूसरी वावनी, पद्महृति, गुरु उपदेश, अविगतिलीला, अरक्तलीला, परमपारितोष उत्पत्ति निर्णय का अग्र ग्रंथ वैराग्य बोध दोष दरीवे और जैन जजाल (वाणी)। स्तुति, भेंट, गुरुदेव, विरह आदि के अग्र (सरवगी)।

मुसलमान होते हुए भी इनकी रचनाओं पर मुस्लिम प्रभाव पात नहीं होता। इनकी भाषा — सरल, सरस राजस्थानी या दो से युक्त है।

(३) स्वामी लालदास जी

१५१२। स्वामी लालदास जी का जन्म स० १५९० में अजमेर राज्य के धोनीदूब नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम चादमल और माता का नाम श्रीमती श्रीसमुदा था। इनकी आयु १०८ वर्ष बताई गई है। इनका देहावसान वि०स० १७०५ में हुआ।

स्वामी लालदास जी दादू महाराज से प्रभावित थे। उन्हें जीवन का आडम्बर और मनकी गहरी सतीव विरोध था।

(४) सन्त भावजी

१५२२। डूंगरपुर में सत भावजी की विनैय भावता है। सत भावजी का जन्म

हृ गुरपुर के समीप सावला नामक गाव में श्रीदीन्य ब्राह्मण कुल में हुआ था । मावजी का जन्म स० १७७१ और देहावसान स० १८०१ माना जाता है ।

१५३ २ । मावजी के पिता एक भक्त ब्राह्मण थे जिनका बालक पर विशेष प्रभाव हुआ । मावजी ने १२ वर्ष की अवस्था में ही घर का त्याग कर सोम और माही नदी की युष्ठा में तपस्या की । तदुपरान्त मावजी लाख सेवा और भक्ति का उपदेश देने लगे और इनके अनुयायी बढने लगे । मावजी की वाणी वागड क्षेत्र में विशेष प्रसिद्ध है और इनकी भविष्यवाणियों पर जनता पूरा विश्वास रखती है ।

(५) स्वामी चरणदास जी

१५४ २ । स्वामी चरणदास जी महाराज चरणरामी पथ के प्रवर्तक माने जाते हैं । चरणदास जी ने मूर्ति पूजा का खण्डन और निराकार ब्रह्म की उपामना का समर्थन किया है । चरणदासी सम्प्रदाय के साधु नीले रंग के वस्त्र पहनते हैं और सिर पर गोपी चन्दन लगाते हैं ।

१५५ २ । चरणदास जी का जन्म मेवात के डहरा (जिला प्रलवर) नामक स्थान में स० १७६० के लगभग माना जाता है । इनकी जाति के विषय में मतभेद है । कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण और कुछ लोग महाजन बतलाते हैं । चरणदास जी ने १६ वर्ष की अवस्था में गुरुदेव मुनि से दीक्षा ली और वाट में लागू का उपदेश देना प्रारम्भ किया । चरणदास जी के शिष्यों की संख्या ५२ कही जाती है । चरणदास जी का शिष्यामा म दयाबाई और सहजोबाई राजस्थानी भाषा की प्रसिद्ध रचयित्रिया हो गई हैं । चरणदास जी का देहान्त स० १८३८ वि० में हुआ । चरणदास जी रचित निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं —

(१) अष्टांगयोग, (२) नासकेत, (३) सदेह सागर, (४) भक्ति सागर, (५) हरी प्रकाश टीका । (६) अमरलोक खण्ड घाम, (७) भक्ति पदारथ, (८) शब्द, (९) मन व्यर्थ गुटिका (१०) राम - माला, (११) ज्ञान स्वरोदय, (१२) दानलीला (१३) ब्रह्मज्ञान सागर और (१४) कुण्डक्षेत्र लीला ।

१५६ २ । चरणदास जी ने अपनी रचनाओं में काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि बुराईया का निरूपण करत हुए नाम महिमा, साधन, भगवद्प्रम, आदि का समर्थन किया है ।

१५७ २ । चरणदासी सम्प्रदाय के अनुयायी मुख्यतः राजस्थान के उत्तर - पूर्वी भाग मेवात में मिलते हैं । इस सम्प्रदाय में गुरु भक्ति, यागसाधना और शान्तिचरण पर बल दिया गया है । चरणदासी सम्प्रदाय में निर्ग्रन्थ व सगुण दोनों ही मतों का समन्वय हुआ है क्योंकि सत चरणदासजी निर्ग्रन्थ सगुण दोनों में विश्वास रखत थे ।

(६) श्री जमनाथ जी

१५८२। हड़प्पा और माहनजादो घाटी को खुलाई म प्राप्त यागो की मूर्ति से सिद्ध होता है कि योग की परम्परा भारत म प्राचीन है। योगिक क्रियाया का महत्व वदो मे भी प्रतिपादित किया गया है।^१ उपनिषद् कान में तो योग का विज्ञेय प्रचार हो गया था जिसक परिणामस्वरूप योगोपनिषद् जैसी रचनाया का निमाण हुआ।^२ तदुपरात महर्षि पातजलि ने विक्रमी पूव दूसरी सती मे योग सूत्रा की रचना कर योगविद्या का महत्व प्रतिपादित किया। सिक्दर, बुद्ध और महावार के काल मे भी भारत में योग का प्रचार पाया जाता है। नाथ सम्प्रनाय भी मुख्यत योगियो का सम्प्रदाय है और इसक प्रवतक योगेश्वर आदिनाथ^३ शिव माने जाते हैं। कहते हैं कि एक समय शिवजी धीर समुद्र के किनारे पावती की योग विद्या बता रहे थे। उसी समय पानी में मत्स्य रूप म निवास करन वाले मत्स्येन्द्रनाथ ने शिवजी से योग विद्या सुन ली। तदुपरात योग विद्या मत्स्येन्द्रनाथ से गोरखनाथ को प्राप्त हुई और आगे क्रमस शिष्य परम्परानुसार गैनीनाथ और निवृत्तिनाथ को यह विद्या प्राप्त हुई।

१५९२। नाथ पथ के प्रधान नेता गुरु गोरखनाथ माने जाने हैं, जिनका प्रभाव सारे भारत मे पूव से पश्चिम तक और उत्तर से सिंहलीप तक है। गोरखनाथ की २२ गिष्य परम्पराएँ स्थापित हुईं। इनमे से माननाथी पथ अथवा पावनाथी पथ जोधपुर म विद्यमान है। कई नाथ योगी राजस्थान के राठोड, सिसादिया व कछवाहा राजपूतो के गुरु रहे हैं। आज भी राजस्थान मे नाथ पथी साधुया के कई केन्द्र है। नाथ पथी साधुया को कनकडा योगी भी कहा जाता है क्यकि ऐसे योगी काना में बड़ी बड़ी बालिया पहनते हैं। राजस्थान म योगी भन्वू हरी और गोपीचद से सम्बन्धित कई गाथाए भी प्रचलित हैं जिनमे नाथ पथ के ध्यापक प्रचार का पता चलता है। मेवाड राय के संस्थापक बापा रावल के गुरु भी नाथ सम्प्रनाय से सम्बन्धित शात हाते हैं और मेवाड राजकुल के उपास्य भगवान एवलिंग की पूजा का काय भी सैकडा वर्षों तक नाथ यागिया की अधीनता में रहा।^४

१६०२। सत श्री जसनाथ जी का जन्म वि० स० १५३६ मे दीवानर के कतरियासर ग्राम में हुआ। धारका देहावसान वि० स० १५६३ में हुआ।

१ - तम आशीतमसा गूढ़ मये प्रवेत मलिल सथमा इदम ।

सुन्दयेनाम्बपिहित घदासीरापसस्तमहिम जायते कम ॥

— ऋग्वेद, मं० १०, सूक्त १२६।

२ - सम्पादक वं० महादेव गारग्री, अदयार लाईब्रेरी, अदयार, मद्रास ।

३ - आदिनाथ को जसथर नाथ भी माना जाता है। — गंगा का पुरातत्वाव, पृ० २२०।

४ - उदयपुर राय का इतिहास, प्रथम भाग, गौरीगुरु हीराचद घोषा ।

१९१२ । जमनाथ का इस क्षण भयुर मौलिकता के प्रति भ्रमना एक दृष्टिकोण था जो उनकी रचनाओं में दृष्टिगत होता है । यद्यपि भाव की रचनाएँ अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं होनी फिर भी जो कुछ प्राप्त हानी है उनमें उनका दृष्टिकोण, जीवन - दर्शन, कवित्वशक्ति और वैराग्य के दर्शन होने हैं -

अठे ऊँचा पील चिणाया, आगे पील उसारे ।
ऊँचा अजब भरीखा राख्या, वे पूगा नेवारे ॥
पाछे घिरने जोइयो, सब जुग रहियो लारे ।
गुरु परसादे गोरख बचने, सिध जसनाथ विचारे ॥
इन जिवडे के वारणे, हर हर नाव चितार ।
ओ घन तो है बलतो छाया, ज्यू घु व री धारे ॥
लाह हुए सायब री दरगा, खरचो बस्तु पियारे ।
गुरु परसादे गोरख बचने, सिध जसनाथ उचारे ॥
बैठे जिवडो, धर धर काप्यो, उवट किसी उधारे ।
का उवरे कोइ सुवृत कीया का करणी इदकारे ॥

(७) रामस्नेही सम्प्रदाय के कवि

१९२२ । रामस्नेही सम्प्रदाय वाले श्री रामानुज को भ्रमना प्रथम आचार्य मानते हैं और रामानुजाचार्य से ही अपनी शुद्ध - परम्परा को स्थिर करते हैं । रामस्नेही सम्प्रदाय में ब्रह्मज्ञान पर विशेष बल दिया गया है । निराकारावासना, प्राप्तवाक्य में विश्वास और आचार रामस्नेही मत का मुख्य सिद्धान्त मान गए हैं ।

१९३२ । राजस्थान में शाहपुरा, खेडावा और रेण नामक स्थानों में रामस्नेहियों की तीन गाथाएँ हैं । रामस्नेही सत रामद्वारे में रहते हुए शिक्षान सं भ्रमना निर्वाह करते हैं । सात्वा से रहना व शास्त्र उर्चा करना इनका प्रधान कार्य माना गया है । रामस्नेही सत्ता का मुख्य केन्द्र शाहपुरा है, जहाँ पाल्छुन गुक्ता ६ स चत्र कृष्ण ६ तक मेला मगता है ।

१९४२ । रामस्नेही मत में शाहपुरा शाखा के प्रवर्तक रामचरणजी (सं० १७७६-१८५५) के अतिरिक्त रामजन (सं० १८३६), जगन्नाथ (१८५५), हरिराम दास (सं० १८००-१८३५), रामदास (सं० १७८३-१८५५) दयालदास (सं० १८१९-१८८५), दरियावजी (सं० १७३३-१८०५), आदि कवि हुए हैं । जोधपुर, बीकानेर, भजमेर, उदयपुर, जयपुर आदि क्षेत्रों में कई रामद्वारे स्थापित हुए हैं । इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित प्राचीन ग्रन्थ भी सुरक्षित हैं ।

(८) जांभोजी

१६५ २। विश्वोई सम्प्रदाय के प्रसक्त सत्त जांभोजी माने जाने हैं जिनका जन्म जोधपुर के अतगत पीपामर गाव में भाद्रपद कृष्णाष्टमी सं० १५०८ में हुआ था। जांभोजी का पिता का नाम लाहित था माता का नाम हासाबाई था। ये जाति का पवार राजपूत थे। बचपन में जांभोजी गाँव पराया करत थे। एक समय इन्होंने जाधपुर का राव दूताजी को भी प्राणीर्वाण दिया। यह प्राणीर्वाण सफल हुआ तबसे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी व कई लोग इनका अनुयायी हो गये।

१६६ २। जांभोजी का सम्प्रदाय विश्वोई सम्प्रदाय कहा जाता है क्योंकि इसके २० और ६ सिद्धांत हैं। जांभोजी ने निर्गुणोपासना, योगाग्याम, ग्रहिसा और सिद्धि पर विशेष बल दिया है। सत्त जांभाजा ने तालवा बीकानेर में समाधि ली। इस कारण से यहा विश्वाईयो का मेना लगता है।

(९) जैन सन्त कवि

१६७ २। जन धर्म के प्रसक्त भगवान् ऋषभदेव माने जाते हैं। ऋषभदेव के पश्चात् २३ अन्य तीर्थकर हुए जिनमें से अन्तिम तीर्थकर भगवान् महावीर हैं। भगवान् महावीर का समय ५२१-४६६ वि० पूर्व का माना जाता है। भगवान् महावीर ने १२ वर्ष तक घोर तपस्या की तदुपरान्त अपने उपदेशों से वैदिक कर्मकांड का विरोध किया।

१६८ २। जन सिद्धांत के अनुसार जीव का स्वभाव— शुद्ध, बुद्ध एवं सच्चिदानन्द माना गया है किंतु कर्मों के कारण क्लृप्तता का आवरण छा जाता है। उसको हटाने बिना मोक्ष की उच्च स्थिति प्राप्त करना असम्भव है। इसलिए मन, वचन, और कर्म से किसी प्राणी को दुःख न देना, समय से रहना, सत्कार पालन बिना अधिकार कोई वस्तु ग्रहण न करना मनको विषय वासना में अलग करके लिए व्रत उपवास करना आदि सिद्धांत माने गए हैं। इसके लिए सम्यक् ज्ञान सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र की आवश्यकता होती है।

१६९ २। जन मूर्तियों और मंदिरों का निर्माण पौराणिक युग से ही भारत में होने लगा था। जैन मूर्तियों को वस्त्रादि से सज्जित करने के विषय को लेकर जन मतानुयायियों में मतभेद हो गया तब श्वेताम्बर और दिगम्बर दो दल हो गये। श्वेताम्बर जन अपनी मूर्तियों को वस्त्र पहिनाने लगे और दिगम्बर जैन नग्न मूर्तियों की उपासना करने लगे। श्वेताम्बर साधु श्वेत वस्त्र पहिनते हैं व दिगम्बर साधु वस्त्र हीन रहते हैं।

१७० २। राजस्थान में जैन सम्प्रदाय का अर्थ किसी भू भाग से अधिक प्रचार हुआ। राजस्थान के सिद्ध नरगा के व्यवस्थापक मुख्यतः जन धर्मानुयायी हुए, जिन्होंने राजस्थान में सुविमान और कलापूर्ण जैन मंदिरों का निर्माण करवाया। राजस्थान जैन

सत्ता और साधुओं का मुख्य केन्द्र बन गया और राजस्थान में कई पुस्तक भण्डारों की स्थापनाएँ हुईं जिससे से जैसलमेर के जन प्रथम भण्डार ध्वनी गौरव गरिमा को आज भी सुरक्षित किये हुए हैं। जैन साधु साध्वियों, यतियों और गृहस्था ने राजस्थानी में हज़ारों विविध विषयक रचनाएँ की।

१७१२। राजस्थान में आहू, भाघापुर, भासिया, नागदा, चितौड़, सागानर आदि जैन धर्म के प्राचीन केन्द्र हैं। यही विद्वान जैन मन्दिर भी मिलते हैं।

१७२२। राजस्थान से सन्तान प्रदेश दिल्ली, मालवा पंजाब, सिंध और गुजरात में भी जैन धर्म का विशेष प्रचार हुआ जिसके परिणाम स्वरूप इन क्षेत्रों में राजस्थान का सांस्कृतिक सम्पर्क स्थापित हुआ। जैन साधु-साध्वियों और श्रावक श्राविकाओं उक्त क्षेत्रों में यात्रा करते रहे। राजस्थान की ही भाँति उपरान्त क्षेत्रों में भी धार्मिक भवनों का निर्माण हुआ और बहुत से धर्म भण्डार स्थापित किये गये।

१७३२। कालांतर में श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय के अन्तर भी कई मत-मतांतर हो गये जिन्हें स्थानकवासियों, तेरन्पथी आदि कहा जाता है। मतमतांतरों के कारण ही जैन धर्म के अन्तर्गत विभिन्न गच्छों की स्थापना हुई।

१७४२। भारतीय साहित्य में जैन साहित्य का विशेष महत्व है क्योंकि इसका प्रणेता परम तपस्वी और अनुभवी षड्विंशति रहे हैं और यह गद्य पद्यात्मक अनेक रूपों में उपलब्ध होता है। मध्यकालीन कतिपय जैन साहित्यकार निम्न लिखित हैं —

विनय समुद्र बीकानेर के उपनेत्रगच्छीय वाचक हरसमुद्र के गिण्य थे। जिनका समय वि०स० १५८३ में १६१४ तक है। इनकी रचनाओं के नाम — (१) विक्रम पंचदश चौपाई, (२) अम्बड चौपाई (वि०स० १५६०), (३) आराम शोभा चौपाई (१५८३), (४) मृगावती चौपाई (१६०२), (५) चित्रसेन पद्मावती रास (१६०४), (६) पद्म चरित्र (१६०४), (७) शीलरास (१६०४), (८) रोहियेय रास (१६०५), (९) सिंहासन बतौसी चौपाई (१६११), (१०) नन दमयती रास (१६१४), (११) सगराम सूरि चौपाई, (१२) चन्दनवाला रास, (१३) नमि राजपि सजि (१४) साधु वदना, (१५) ब्रह्मचरि (१६) श्रीमधर स्वामी स्तवन, (१७) शत्रुञ्जय गिरि मङ्गल श्री आदीश्वर स्तवन, (१८) स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवन (१९) पार्श्वनाथ स्तवन और (२०) इलापुत्र रास हैं।

इनकी रचना का एक उदाहरण इस प्रकार है —

ताहरइ दरसण दुरित घुनाई, नव निधि सबि मंदिर पाई जाई रोग सबि दूरो।
समरण सकट सगला नासइ, वाच सग बुण नावइ पासइ, आपइ आणद पूरो।

पामेय वसुहानंद दाया, तत्र तिष्ठयन् नायको ।
धरणेन्द्र सेवत परण अनुगत, मयल मंश्रिय गायता ।
धमणाधीश जिणेन प्रभु तू, पाम जिणवर सामिया ।
धीनती यिता पयाप जपइ, समय प्ररवि नामिया ।

१७२ २ । हीरकलत सरतगच्छीय माणरगत्र मूरि गाना क कवि हा गय रे
इनका जन्म सं० १११५ माना जाता है । हीरकलत ज्यातिष क विगण गाना थे । इनका
साहित्य २८ रचाया म उपलब्ध हो चुका है । इनका माता कपामिया संका का उदाहरण
इस प्रकार है —

मोती — दव पूजउ गुरत गति जिहा, मगल काजि निवाह ।
आदर दीजइ चम्हा तणी सविज करइ उद्याह ।

कपामिया — सभलि तवइ कपामीउ, मोती म हूय गमार ।
गरव न कीजइ बापडा, भला भनी संमार ।

मोती — कहि मोती मुन फाऊडा, मह तइ बेहो साय ?
है साठुं कचण सरिस, तइ खल तू के स दाय ।
मइ मुर नरवर भेटिया, कीधा जीहा सिगार ।
तइ भेटिया गोधण वलद, जिहा कीधा आहार ।

कपामिया — उत्तर दीयइ कपामियउ अरु आहार जोइ ।
गामा गोरस नीपजइ, वलदे करसण होइ ।
गोधण जदि वाटउ न हुइ वदि वरतइ कतार ।
धान वडइ तव बेचीयइ, सोवन मोती हार ।

१७६ २ । हेमरत्न मूरि का समय अनुमानत सं० १६१६ से १६७३ है । इनकी सं०
१६४५ में रचित “गोराबादल पक्षिणी चऊपई” विशेष प्रसिद्ध है । इस रचना में
मलाउहीन के बितोड आक्रमण और गोराबादल की वीरता का वर्णन है । इस कृति में कवि
ने विभिन्न रसा का समावेश किया है —

वीर्य रस सिणगार रस, हासा रस हित हेज ।
सामधरम रस साभलउ, जिम होवइ तन तेज ॥

इनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है —

पान पदारथ सुधड नर अणतीलीया बिकाई ।
जिम जिम पर भुइ साचरइ मौली मु हगा थाइ ।
हसा नइ सरवर घणा, कुसुम केली भवराह ।
सपुरिसा नइ सज्जन घणा, दूरि विदेस गयाह ॥

१७७ २। सत्रहवीं सदी के जैन-साहित्यकारों में समयसुन्दर (सं० १६२० से १७०२) का स्थान महत्वपूर्ण है। इनकी रचनाएँ अनेक हैं, जिनका प्रकाशन समयसुन्दर द्वारा 'कुसुमाजलि' में श्री अग्ररच द जी नाहटा द्वारा संपादित रूप में हो चुका है।

१७८ २। 'समयसुन्दर' के गीता के विषय में प्रसिद्ध है —

“समयसुन्दर रा गीतडा, कुम्भे राणे रा भीतडा” अर्थात् जिस प्रकार महाराणा कुम्भा द्वारा बनवाये हुए चितौड़ कीतिस्तम्भ, कुम्भश्याम का मंदिर व कुम्भलगढ़ प्रसिद्ध हैं इसी प्रकार समयसुन्दर के गीत प्रसिद्ध हैं।

कवि जयराज जाधपुर-नरेश उदयसिंह के समकालीन थे व इनका जन्म सन् १६३१ माना जाता है। इनकी रचनाओं में “भजन छत्तीसी” और “गुणबावनी” महत्वपूर्ण हैं।

१७९ २। जिन हर्ष का अग्र नाम जसराज था। इनकी रचनाओं में “जसराज बावनी” (सं० १७३८ वि० में रचित) और “नन्दबहोत्तरी” (सं० १७१४ में रचित) प्रसिद्ध हैं।

१८० २। १८वीं शताब्दी में आनन्दधन नामक कवि ने “धौवीसी” नामक रचना में तीर्थकरों के स्तवन लिखे। इनका देहांत मारवाड़ में सं० १७३० वि० में हुआ। इनका आध्यात्मिक चिंतन उच्चकोटि का था —

राम कहो रहमान कहो, कोउ कान कहो महादेव री ।
 पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्मा स्वयमेव री ।
 भाजन भेद कहावत नाना, एक मूर्त्तिका रूप री ।
 तैसैं खण्ड कल्पना रोपित, आप अखण्ड सरूप री ।
 निज पद रमे राम सो कहिए, रहिम करे रेहमान री ।
 कर मे करम कान से कहिए, महादेव निर्वाण री ॥
 परमे रूप पारस सो कहिए, ब्रह्म चौहें सो ब्रह्म री ।
 इस विधि साधो आप आनन्दधन चेतन मय निकर्म री ॥

१८१ २। उत्तमचन्द्र और उदयचन्द्र भदारी जोधपुर के महाराजा मानसिंह के भ्रात्रेय थे। इनका रचनाकाल सं० १८३३ से १८८६ तक है। दोनों ही भदारी-वंशुभा ने अनेक रचनाएँ की, जिनसे इनके वाच्यशास्त्रीय और आध्यात्मिक ज्ञान का परिचय मिलता है।

जैन साहित्यकारों की सस्या संकड़ों ही नहीं हजारों तक पहुँचती है। प्रत्येक काल में जैन साहित्यकारों की रचनाएँ विकसित अवस्था में और विविध रूपों में प्राप्त होती हैं।

राजस्थानी जैन साहित्य मुख्यतः राजस्थान और गुजरात में रचा गया क्योंकि प्राचीन काल में जैन धर्म का प्रचार भी मुख्यतः इसी प्रदेश में हुआ।

१८२२। भक्तिकाल के कतिपय फुटकर कवि —

- (१) बोटू सूजो, वि०स० १५६१ १५६८, राज जैतसिरो छन्द।
- (२) कायस्थ केशवदास, वि०स० १५६२, बसंतविलास फाग।
- (३) कुशल लाभ —
 - (१) माधवानल चौपाई, (२) तेजसार रास (३) अगहदत्त रास,
 - (४) दुर्गासप्तसती, (५) जिनपालित जिनरक्षित सधि,
 - (६) भवानी त्रय, और (७) डाला मारू रा दूहा चऊपई।
- (४) मालदेव —
 - (१) मन भमरा गीत (२) महावीर पारणा (३) माल शिक्षा चौपाई,
 - (४) शील बावनी।
- (५) बीटू सूरु, वि०स० १५१५ १५२५।
- (६) मुनि मतिशेखर, वि०स० १५१४ ३७।
- (७) लालूजी महडू वि०स० १५६१ ८३।
- (८) सहज समुद्र वि०स० १५७० १६००।
- (९) राजशील, वि०स० १५६३ १५६४।
- (१०) हरिराम केशरिया।
- (११) पुण्यरत्न, वि०स० १५६६, नेमिनाथ रास।
- (१२) बीटू मेहा —
 - (१) पाडूजी रा छन्द और (२) गोगाजी रा रसावला।
- (१३) केशवदास गाडण, वि०स० १६१० ६७,
 - (१) गुण रूपक, (२) राव अमरसिंह रा दूहा,
 - (३) विवेक वार्ता और (४) गजगुण चरित्र।
- (१४) नारायण ब्राह्मण, वि०स० १६१५ ४०, हितोपदेश।
- (१५) जयवतमूरि, वि०स० १६१५, स्थूलभद्रबोश प्रेमविलास फाग,
- (१६) रतनी खाती वि०स० १५१६, नरसी मेहता रा भायरो।
- (१७) दयान सागर, वि०स० १६१७, मदन नरिंद चरित्र।
- (१८) अल्लूजी वि०स० १६२०, फुटकर।
- (१९) जट्ट, वि०स० १६२५, बुद्धिरासा।
- (२०) रामा सादू वि०स० १६२८, वेलि राणा उदयमिथरी।
- (२१) पोथा प्राणिया, १६२८ ५३।

- (२२) अखी भारणावत, वेलि देईदास जैतावत री ।
- (२३) देवो, वि०स० १६३७ फुटकर ।
- (२४) अग्रदास, वि०स० १६३२ —
 (१) श्रीराम भजन मजरो, (२) कु डलिया, (३) हितोपदेश भाषा,
 (४) उपासना बावनी, (५) ध्यान मजरो, (६) पद
 (७) विश्व ब्रह्म ज्ञान, (८) रागावली, (९) रामचरित,
 (१०) अष्टयाम, (११) अग्रसार (१२) रहस्यत्रय ।
- (२५) गरीयदास, वि०स० १६३२ ६३ —
 (१) अनभे प्रबोध, (२) साखी, (३) चौबोली, (४) पद ।
- (२६) गोरधन वोगसी, स्फुट छन्द ।
- (२७) सूर टापरिया, स्फुट छन्द ।
- (२८) कनक सोम, वि०स० १६२५ ५५, आपाढ भूति चौपाई ।
- (२९) रगरेसो बीरू, राठोड महाराजा रायसिंह कल्याणमलोत री गीत ।
- (३०) दूदा आसिया, १६३३ १६४४ ।
- (३१) माला सादू ।
- (३२) बारहठ शकर दातार सूर री सवाद ।
- (३३) देवीदास, वि०स० १६३३, सिंहासन बत्तीसी, हितोपदेश ।
- (३४) पद्मा सादु वि०स० १६४० ।
- (३५) चतुर्भुज दास, वि०स० १६४०, भागवत एकादश स्कन्ध ।
- (३६) चतुर्भुज दास निगम, वि०स० १६४०, मधुमालती चउपई ।
- (३७) हेमरतन, वि० स० १६४५ —
 १ महिपाल चउपई, २ अभयकुमार चउपई, ३ गीराबादल पद्मिणी चउपई,
 ४, शीलवती कथा, ५ लीलावती, ६ सीताचरित्र, ७ राम रासो,
 ८ जगदबा बावनी, ९ शनिश्चर छन्द ।
- (३८) लवखोजी, पादू रासो ।
- (३९) माघोदास दघवाडिया, १ राम रासो, २ भासा दसम स्कन्ध ६ गजमोख ।
- (४०) नरहरिदास, वि० स० १६४८ —
 १ अवतार चरित, २ दशमस्कन्ध, ३ रामचरित, ४ अहल्या प्रसंग,
 ५ अमरसिंह रा दूहा ।
- (४१) मसकीनदास, वि० स० १६५०, वाणी ।
- (४२) टोलाजी, वि० स० १६५०, वाणी ।

- (४३) प्रयागदास वि० स० १६५० यागी
- (४४) मोहनदास, १६५०, १ आदिनाथ, २ साधमहिमा श्रीर ३ नाममाला ।
- (४५) जैमल जोगी, वि० स० १६५०, वाणी ।
- (४६) जैमल चौहाण, वि० स० १६५० —
१ वाणी, २ गुणगजनामा, ३ गीतसार श्रीर योगवाणिष्ठ मार ।
- (४७) परशुराम देव, वि० स० १६७७ —
१ विप्रवतासी, २ परशुराम सागर ३ साखी का जोडा, ४ छ द का जाडा,
५ सर्वया रास भ्रवतार, ६ रघुनाथ चरित, ७ सिंगार मुदामा चरित
= द्रोपदी का जोडा, ८ छप्पय गज ग्राह का, १० श्रीवृष्ण चरित
११, प्रह्लाद चरित, १२ अमरबोध लीला, १३ १७ पतिवि लीला,
१४ शौच निषेध लीला, १५ नाथ लीला १६ निजहृष लीला
३७ श्री हरी लीला, १८ नद लीला, १९ नक्षत्र लीला, २० निर्वाण लीला,
२१ तिथि लीला, २२ श्री बावनी लीला ।
- (४८) दयाल दास वि० स १६८० राणा रामो ।
- (४९) नारायण बैरागी, वि० स० १६८२ ।
- (५०) केहरी वि० स० १६८८ १७१०, रसिक विलास ।
- (५१) हेम सामार, वि० स० १६८५ गुण भापा चरित्र ।
- (५२) कल्याण दास महडू, वि० स० १६८५, राव रतन री बेलि ।
- (५३) सुमतिहस, वि० स० १६९१, विनोदाम ।
- (५४) हरिदास भाट, वि० स० १७००, १ अजीर्तसिंह चरित, २ अमर बत्तीसी ।
- (५५) दीनदयाल वि० स० १७०० छंद प्रकाश ।
- (५६) लब्धोदय वि० स० १७०६ ७, पद्मिनी चरित्र ।
- (५७) किसन कवि, वि० स० १७०८, उपदेश बावनी ।
- (५८) रामकवि वि० स० १७१०, जयसिंह चरित्र ।
- (५९) साईदास चारण, वि० स० १७०९, समतसार ।
- (६०) श्रीधर वि० स० १६१०, भवानी छंद ।
- (६१) जग्गो, वि० स० १७१५, बचनिका राठौर रतनमिह जी महेमदासात री ।
- (६२) किशोरदास, वि० स० १७१८, राजप्रकाश ।
- (६३) गिरधर आसिया वि० स० १७२०, सगनरासो ।
- (६४) नरहरिदास १ भ्रवतारचरित्र, श्रीर २ अमरसिंह जी रा वृहा ।

(६५) जय सोम, धारह भावना वलि ।

(६६) धर्मबद्धन, श्रेणिक चौपाई ।

(६७) लघराज, १ देवविनास, २ कालिका जी रा दूहा, ३ पातूजी रा दूहा, ४ प्रबोध माला, ५ देव विलास, ६ लघमल सतक दूहा, ७ रुक्मागद चरित ८ सीप बत्तीसी, ९ भजा पच्चोसी, १० महादेवजी री नीसाणी और ११ गणेशजी री नीसाणी ।

(६८) ज.गादास, वि० स० १७२१, हरिपिगल प्रबन्ध ।

(६९) उपायाय लाभवधन, वि० स० १७२३ १ विक्रम ६०० कथा चौपाई, वि० स० १७२८ २ लीलावती रास, वि० स० १७३३, ३ विक्रम पचदह चौपाई वि० स० १७४२, ४ पमबुद्धि पापबुद्धि रास, वि० स० १७६३, ५ नीसाणी महाराज अजोतसीधरी वि० स० १७६७, ६ पाहव चरित चौपाई, वि० स० १७७०, ७ शकुन दीपिका चौपाई ।

(७०) मनिमु दर, वि० म० १७२४, विक्रम वेलि ।

(७१) मतदाम वि० स० १७२५ १८०८, अणभैवाणी ।

(७२) दौलतविजय, वि० स० १७२५ ६० खुमाण रासो ।

(७३) सूरविजय, वि० स० १७२३, रत्नपाल रत्नावती रास ।

(७४) कु भकरण, वि० स० १७२३, १ रतन रासो २ जयचन्द रासो ।

(७५) मान जती, राजविलाम ।

(७६) वृद्ध वचनिका आदि ।

(७७) रूपजी, वि० स० १७३७, रसरूप ।

(७८) अजीतमिह, वि० स० १७३५, १ गुणसागर, और २ भावविरही ।

(७९) कीर्तिमुदर, १ वाग्विलास, २ माकडराम, ३ अभयकुमारादि, ४ ज्ञान छत्रीसी ५ कौतुक पच्चोसी ६ साधुरास, ७ चौबोली चौपाई, ८ अश्वति सकुमार चौडलिया ।

(८०) हरिनाम, वि० स० १७४०-१७५०, केसरीसिंह समर ।

(८१) वीरभाग चारण, वि० स० १७४५-६२, राजरूपक ।

(८२) वल्लभ, वि० स० १७५०, १ वल्लभ विलास और २ वल्लभ मुक्तावली ।

(८३) शिवराम वि० स० १७५०, दसकुमार प्रबन्ध ।

(८४) मुरली, वि० म० १७५५-६३, १ अश्वमेध कथा, और २ त्रिया विनोद ।

(८५) हमीरदान रतनू वि० स० १७७४ १ हमीर नाम माला २ लखपत पिगल, ३ पिगल प्रकाम ४ जदुवस वसावली, ५ देसलजी री वचनिका, ६ कीर्तिस

जडाव, ७ ब्रह्माण्ड पुराण, ८ भागवत दण्ड, ९ भरतरी सतक,
१० चाणक्य नीति और ११ महाभारत रा अनुवाद छोटी व बडी ।

- (८६) द्वारकादास, स० १७७२ अजीत सिंहरी दवावैत ।
 (८७) करणीदान, वि०स० १७७७ १ सूरजप्रकाश और २ विडद सिण्णगार ।
 (८८) खेतसी सादू, भाषा भारत ।
 (८९) पीरदान लालस, अनेक रचनाए ।
 (९०) पहाडखान आढा, गोगादे रूपक ।
 (९१) अमरसिंह, वि० स० १८१७ रमिक चमन ।
 (९२) बहादुरसिंह, महाराजा किशनगढ रावत प्रतापसिंह म्हाकर्मसिंह हरीसिंघोत री
वात, रयाल ।
 (९३) ब्रह्मदास, भगतमाल ।
 (९४) मछाराम, १८३०-९२ —
 १ रघुनाथ रूपक गोता रा और २ फलजी फलमती री वार्ता ।
 (९५) मोती चन्द, वि० स० १८३६-४५ —
 १ बुढलारी ढाला और २ बुढया रामो ।
 (९६) गणेश चतुर्वेदी वि स० १८४० —
 १ रस चन्द्रोदय, २ ऋण भक्ति चन्द्रिका नाटक ३ मभापव, ४ शतक,
और ५ फागुन माहारम्य ।
 (९७) ओपाजी आढा, वि० स० १८४०-७५ ।
 (९८) हुकमीचन्द खिडिया, जयपुर महागजा प्रतापसिंह जी री भूमाल ।
 (९९) कृपाराम चालकनेची माता नाटक, राजिया रा दूहा ।
 (१००) दयालदास करुणा सागर ।
 (१०१) चण्डीदास, वि०स० १८४९-९२ —
 १ सार सागर, २ बलि विग्रह ३ वसानरण, ४ तीज तरंग और
५ विरुद प्रकास ।
 (१०२) रामदान लालस,
 १ भीम प्रकास २ करणी रूपक और ३ खीचिया री इतिहास ।
 (१०३) हरि, वि०स० १८५४, कवाट सरबहिया री वात ।
 (१०४) साईदानजी, साईदान के रखते ।
 (१०५) नवनदान लालम आडू वर्णन ।
 (१०६) उदयराम, कविकुल ज्ञाय ।
 (१०७) किसनानी आढा, १ रघुव-जम प्रकाश और २ भीम विलास ।

- (१०८) मनराजन वि० स० १८६१ छद्मनिधि विगल ।
- (१०९) मुनि गणेशचन्द्र, वि० स० १८७०, वराह्य शतक ।
- (११०) रायमिह साद्र, मोतिया के दूह ।
- (१११) राव बख्तावर वि० स० १८७० - १९०६ १ केहर प्रकाश, २ रमावृत्ति, ३ स्वरूपयश प्रकाश, ४ शम्भुयश प्रकाश, ५ सज्जनयश प्रकाश, ६ फतह यश प्रकाश, ७ सज्जनचित्र चद्रिका, ८ मन्चार्णव ९ अयोक्तिप्रकाश, १० सामन्तयश प्रकाश, ११ राग रागिनियों की पुस्तक और १२ वैत मह-राणा शर्माहजी रो ।
- (११२) स्वामो गणेशपुरी, वि० स० १८६३, वीर विनाद ।
- (११३) प्रतापकुवरी वार्ड, वि० स० १९००, १, ज्ञानसागर, २ ज्ञान प्रकाश, ३ प्रताप पञ्चीसी, ४ प्रेम सागर ५ रामचन्द्रनाम महिमा ७ रामगुण सागर ७ रघुवर स्नेह लीला ८ रामप्रेममुग्ध सागर ९ राममृजस पञ्चीसी, १० रघुनाथ के कवित ११ भजन पद हरजस, १२ प्रताप विनय, १३ श्री रामचन्द्र विनय, १४ हरिजय ।
- (११४) गुलाबजी, वि० स० १९००, १ रुद्राष्टक, २ रामाष्टक, ३ गंगाष्टक, ४ बालाष्टक, ५ पावन पञ्चीसी, ६ प्रण पञ्चीसी ७ रम पञ्चीसी, ८ समग्या पञ्चीसी ९ गुलाब कोप १० नामचन्द्रिका, ११ नामसिधुकोप, १२ व्यग्याय चद्रिका १३ ललित कौमुदि, १४ नीति सिधु, १५ नीति मजरी, १६ नीति चन्द्र, १७ काव्य नियम, १८ कविता भूषण १९ चिन्ता तत्र, २० मूर्खशतक, २१ ध्यानरूपसवति का कृष्ण चरित्र, २२ आदित्य हृदय, २३ कृष्ण लीला, २४ रामलीला २५ सुलोचना लीला, २६ विभीषण लीला, २७ दुर्गाम्बुति, २८ लक्षण कौमुदी, २९ कृष्णचरित्र, ३०, शारदाष्टक, और ३१ रसपञ्चीसी ।

७ आधुनिक काल

क. प्रारंभिक परिचय

१८३२ । भारतवर्ष में मुगल शासन की सत्ता भीख होन लगा तो भारतीय माधिरूपक लिये इंग्लैण्ड की ईस्ट इंडिया कम्पनी, फ्रेंच व्यापारियों, पुर्तगालियों और मराठा में प्रबल प्रतिस्पर्धा हुई । भारत में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हुई और मराठा पिछारियों तथा पठानों ने देश में लूट-मार करना प्रारम्भ किया । मराठा शासक देश में विदेशियों का प्रभुत्व समाप्त करने के लिये अन्त तक प्रयत्नशील रहे किन्तु इनका बलात्कीय वसूल करने की नीति के कारण देश के सभी राजाघरा और जनता का सम्मान इन्हें नहीं मिल सका । देशी नामका में व्याप्त वारस्पिक ईर्ष्या, द्वेष और घूट का विदेशी

यान्तरिया न पूरा पूरा लाभ उठाया और धीरे धीरे व्यापार वृद्धि के साथ ही शासन मना हथियाना प्रारम्भ किया ।

१८४२ । राजस्थान में उज्जयपुर जोधपुर और जयपुर के राजाओं ने शांति सुरक्षा के लिये संधि का, किंतु पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष के कारण यह संधि स्थायी नहीं हो सकी । मराठा गामकों ने राजस्थानी राज्यों को पीड़ित कर धनहीन बना दिया और अधिक धन के लिये भ्रतक भागों से मालगुजारी को स्वयं वसूलना प्रारम्भ किया । ऐसे भ्रवसर पर अंग्रेज गामकों ने राजस्थान के राजाओं से संधि प्रस्ताव किये । राजस्थानी राजाओं ने विदेश हाकर क्रमशः अंग्रेजों गामकों को उज्जयपुर में भ्रपन मस्तक द दिये । अंग्रेज शासक राजस्थानी जनता के स्वाधीनता प्रेम से परिचित हो चुके थे इसलिये जनता को दबाए रखन के लिये राजस्थान में राजाओं का अस्तित्व आवश्यक समझा गया । राजस्थानी राजाओं को पारस्परिक एकता स्थापित करने अथवा शक्ति सम्पन्न होने का भ्रवसर न मिले इसका पूरा मात्राणी बगती गया । अंग्रेज रेजाेंट राज्य की आंतरिक गतिविधियां पर निरंतर ध्यान रखत और अधिकाधिक बाहरी भ्रवसरों का नियुक्त कर मनमानी करत । राजस्थान के राजा धीरे धीरे अंग्रेज गामकों के हाथों की कठपुतलिया बनने लगे ।

१८५२ । स्वाधीनता प्रेमी राजस्थानी यन्त्रि ब्रिटिश शासन का निरंतर विरोध करत रहे । अंग्रेजों ने राजाओं की सहायता से इन विरोधों का तत्परता पूर्वक दबाए रखवा राजस्थानी जनता और कविया का अंग्रेज विरोधी भावनाएं और क्रियाएं निरंतर यत्न होती रती ।^१ सवत् १९१४ अर्थात् सन् १८५७ के भारतीय स्वाधीनता सग्राम में राजस्थान के राजा निष्क्रिय बन रहे किन्तु राजस्थान के भ्रतक जागीरदार और जनप्रतिनिधि इस भ्रवसर पर प्रबल सघर्ष के लिये प्रस्तुत हुए । भाउवा के ठाकुर कुमानसिंह किंगसिंह मेड़तिया काठा रिया रावतजी और कोटा के जागीरदारों तथा राजसमचारिया ने अंग्रेजों गामकों समाप्त कर न्न के निय सगहन क्रांति का और अंग्रेज गामकों जन, धन की भ्रवार हानि सहन कर बड़ी कठिन संस्थिति का नियमित कर सके ।

१८६२ । ब्रिटिश शासन काल में पुराना महायुद्ध में राजस्थानी सनिका ने समाज के भ्रय सनिका का समानता में सहन हुए अन्न की रता प्रकट का । इन विश्वयुद्धों के परिणाम स्वरूप जन समाज की विचार धारा भा परिवर्तित हान लगी । महात्मा गांधी के समन्वय आन्दोलन और स्वाधीनता सघर्ष के फलस्वरूप राजा का स्वाधीनता और राजस्थान के अकाकरण में राजस्थान की सामाजिक और राजनिक स्थिति पूर्णरूपेण परिवर्तित हा रती ।

१ - क - गीरा हट जा नामक साहित्य संग्रह, सं० श्री नारायणसिंह भाटी रा० गी० सं०, घोषासनी, जोधपुर ।

ग - काठोमुन्न भाक राजस्थान इन की हटगत पार भाइम भ्रवमे ट, श्री नापूराम सरगावन केन्द्रीय राज्य मुद्रालय, जयपुर ।

१८७२। इस प्रकार राजस्थानी साहित्य पर आधुनिकता का प्रभाव मुख्यतः इन राजनतिक और ऐतिहासिक घटनाओं द्वारा होता है —

- (१) वि०स० १९१४ (१८५७ई०) का स्वाधीनता संग्राम
- (२) भारत में ब्रिटिश शासन का मुट्ठ होना,
- (३) युरोपीय महायुद्ध,
- (४) महात्मा गांधी के निर्देशन में असहयोग आन्दोलन,
- (५) सन् १९४७ ई० में भारतीय स्वाधीनता का उदय,
- (६) राजस्थान का एकीकरण और जनप्रतिनिधित्व द्वारा नव निमाण एवं विकास कार्यों का प्रारम्भ होना, और
- (७) भारत पर विदेशियों के आक्रमण ।

१८८२। राजस्थान अनेक रूपों में प्राचीन परम्पराओं का प्रेमी आधुनिक काल में भी बना रहा है अनेक आधुनिकता में प्रभावित होते हुए भी अनेक प्राचीन साहित्यिक परम्पराएँ राजस्थान में प्रचलित रही हैं। राजस्थान में पश्चिमी शैली से प्रभावित रचनाओं का भाष ही प्राचीन ाला के दूहे और गीत आज तक रचे जाते हैं। साहित्यिक क्षेत्र में नवान् उपाना के साथ ही महाराणा प्रताप, पद्मिनी और हाडी रानी जैसे चरित्र प्रिय रहे हैं। स्वाधीनता संग्राम सम्बन्धी घटनाओं में युक्त राजस्थान का इतिहास स्वाधीनता प्राप्ति में ही नहीं, स्वाधीनता की सुरक्षा में भी हमारे लिए प्रेरक बना हुआ है।

१८९२। आधुनिक काल में राजस्थानी साहित्य मुख्यतः तीन रूपों में प्राप्त हुआ है —

- (१) पद्य साहित्य,
- (२) गद्य साहित्य और
- (३) लोक साहित्य ।

पद्य और गद्य दोनों रूपों में प्राचीन और नवीन गैलिया वर्तमान हैं। विषय और रचना शैली की दृष्टि से आधुनिक राजस्थानी साहित्य में प्राचीनता और नवीनता का सम वय एक विशेषता है। जनता में मौखिक रूप में प्राप्त होने वाला लोक साहित्य आधुनिकता से प्रभावित है और नवीन राजस्थानी पद्य एवं गद्य के लिए एक आधार बना हुआ है।

अनेक राजस्थानी कवि लोक गीतों की शैली में अपने गीत लिखते हैं और ऐसे गीत जनता में विशेष प्रिय होते हैं। सब श्री गजानन वर्मा^१ मेघराज मुकुल^२ देवतदान चारण^३ और कल्याणसिंह राजानत^४ आदि के राजस्थानी गीत जनता में विशेष रचि से सुने जाते हैं।

- १ — "सौनो निपज रेत में" और "बारहमासा" आदि गीत संग्रह ।
- २ — "उभय" (गीत संग्रह) ।
- ३ — "चेत मानवा" (गीत संग्रह) ।
- ४ — "रामतिया मत तोड़" (गीत संग्रह) ।

१६०२। राजस्थानी लोक कथाओं की शला में प्रस्तुत नवीन कथाएँ भी निरंतर लिखी जा रही हैं। श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूडावत विजयान तथा और परपात्म लाल मनारिया की कथाएँ उक्त शला की कथाओं में प्रमुख हैं। लोक साहित्य जनता का अपना साहित्य है, जिसका निर्माण, विकास और परिमाण जनता द्वारा मौखिक परम्परा में होता है। हमारी इनक प्राचीन साहित्यिक रचनाएँ भी लोक साहित्य के आधार पर रचित हैं। इन जनक कथाओं में विराजमान रही हैं। लोक साहित्य हमारा विभिन्न साहित्यिक विधाओं के लिये मुक्त भाषा शला की दृष्टि में आधार भूमि प्रस्तुत करता है और हमारा अधिकांश जनता लोक साहित्य से ही प्रेरित होता है इसलिये लोक साहित्य को आधुनिक काल में उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

आधुनिक राजस्थानी साहित्य में पश्चिमी शैली का रचनाएँ भी निरंतर सामने आ रही हैं। पश्चिम में शला की और शला की मौलिकता का विवेक महत्व दिया गया है। ऐसा अवस्था में लोक प्रचलित प्राचीन परम्पराओं की सर्वथा उपेक्षा कर पश्चिमी शला का अध्यात्मिक साहित्य जगत के लिये हितकर नया कहा जा सकता। राजस्थानी साहित्य रूपा की मौलिक विशिष्टताएँ हैं और इनका जहाँ जनमानस में गहराई तक पहुँची हुई हैं इसलिये साहित्यिक रचना विधान में इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

ख आधुनिक काल के कतिपय प्रधान कवि —

(१) महाकवि सूर्यमल

१६१२। सन् १८५७ के स्वाधीनता संघर्ष में प्रभावित होकर जिन राजस्थानी कवियों ने अपना रचनाओं से स्वाधीनता प्रेमी वीरों को प्रेरित किया उनमें महाकवि सूर्यमल मिश्रण प्रमुख हैं। सूर्यमल ने चारणोचित स्वाभिमान, स्वातंत्र्य प्रेम, बहुमुखी प्रतिभा और भाजमयी वाणी से निष्क्रिय राजपूत राजाओं का प्रताड़ित कर राजस्थानी जनता की स्वाधीनता-संग्राम के लिए प्रेरित करने का सुप्रयत्न किया। सूर्यमल का जन्म कार्तिक कृष्ण १ सन् १८०७ में हुआ। सूर्यमल का राजस्थानी कवि थे किंतु बाहर के अनेक राजा और जागीरदार भी इनकी वाणी प्रतिभा से प्रभावित होकर इनके स्वागत-सम्मान का अपना महाभाग्य मानने लगे। सूर्यमल ने सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम में रचित लल हूए वीर-जनसैन्य का निर्माण प्रारम्भ किया। स्वाधीनता संग्राम के प्रति राजस्थानी राजाओं का उदात्तता दखकर इन्होंने वीरों के ठाकुर पुत्रमिह जी का पोषण सुक्या प्रतिभवा सन् १६१४ के पत्र में लिखा —

‘अर ये राजा लोग ता दशरति जमी का ठाकर टै जे मरा हिमालय का गल्या हो नीमरया मो चालीस सा लर माठ मत्त बरसताई पाटे पटनया छै तो भी गुनामी करे छै परतु या म्हारो वचन राज्य याद राग्यो कि जे मरने (अप्रेज) रह्या तो इको गायो ही परो करती। जमी की ठाकर कोई भी न

रहमी । मत्र ईसाइ हो जामो । तोसा दूरदसी विचारें तो फायदो कोई कै भी नहीं परन्तु आपणो आछो दिन होय तो विचारें और राज्य जसो सुहृत् म्हारे होय तो बडाई तरीकै लिबो जाय तोमू थोडा म बहुत जाए लसी । विशेषु अलमिति पीप शुक्ला प्रतिपत्ता १ ज्यजुर्वेदाङ्क भू १६१४ मित नरेन्द्र विक्रमार्क शक मवतया त्रिपिरियम् । १

१५० । स्वाधीनता मस्राम म महारत्रि सूर्यमन् अपने साधिया सहित स्वय भाग लेन क निय सैयार हुए और इम निय म र गन नामनी ठापुर बस्तावरसिंह जी को अपने चैत्र गुनना नवमी वि०स० १११५ के पत्र मे लिखा —

‘मल्लन्ठा का इरादो अस्यो दीसे छ कि अत्रकै रह्या तो इ आर्पावत हैं परत त्र करि हा दसो अर ठिगणो काई भी हिन्दू के न रहसी परन्तु परमेश्वर की इच्छा आर्य न राखवा की दीसे छै बयोकि अवार क्षत्रिया ने प्रतिवृल बाता छै ज सब अनुकूल दीम रही छै तोसा भावी विपरीत ही जाण्यो पडे छै और अटी का तरफ को वतमान जाणसी कि इ गरेज की फोज अजमेर सू कोट लडाई पर आई छै । गोरा तो सौनामे छै अर काला हजार च्यार क अनुमान छै परन्तु मन म बदल्या हुवा दीसे छै अर उट आठ हजार के अनुमान छै और छकडा, किराच्या पेट्या बगैरे हजार आठ सै के अनुमान छै बडी तोपा च्यारि छै छोटी तोपा तथा शुबारा असी के अनुमान छै सो चैत सुदी छठ क दिन चामल सो दोई बोस ओली तरफ जाय पडी छै अब होसी सो जाणी जावसी ।’^२

१६३२ । महारत्रि सूर्यमन् हा का य वृत्तिया इम प्रकार हैं —

१ वश भास्कर, २ वीर सतसई (अपूण) ३ बलवत विलास, ४ छन्दो मयूख, ५ बलवद्विलास, ६ रामरजाट ७ सती रासो, ८ धातु रूपावली और ९ फुटकर छन्द ।

इन वृत्तिया मे वश भास्कर और वीर-सतसई मुख्य हैं । वश भास्कर में राजस्थान का और मुख्यत बू दी का इतिहास कायबद्ध किया गया है । कवि ने चारखोचित स्वाभिमान के साथ निष्पन्न रहने हुए वश भास्कर की रचना की इसलिये ऐतिहासिक दृष्टि से इसका विशेष महत्व है ।

१ - वीर सतसई, स० डा० बहेगलाल सहल पतराम गौड और डा० ईश्वरदान घाणिया, बगाल हिन्दी सण्डल ८ रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता । भूमिका पृ० ७६ ।

२ - यही, पृ० ७६ ।

१९४२। वीर सतसई अपने युग की प्रतिनिधि रचना है। ब्रिटिश शासन काल में वीर सतसई का पुस्तक रूप में प्रकाशन नहीं हुआ। सन् १८५७ के भारतीय स्वायत्तता संग्राम के वातावरण में वीर सतसई की रचना हुई। इस स्वायत्तता संग्राम में गीत ही रचि गित हा जाने से ही सम्भवतः सूर्यमल की वीर सतसई पूरा नहीं हुआ। वीर सतसई के अत्यन्त प्रभावशाली चमत्कारों के साथ ही कवि-कल्याण का अतृप्ति उदान और सरल सरल राजस्थानी भाषा की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना है।

१९५२। राजस्थान के गौरवमयी इतिहास में सतिया का विषय स्थान है और हमारे कवि न भी सतिया के गुणगान में किसी प्रकार कमी नहीं की है। सना होने के लिये उत्सुक वाराणा के लिए महाकवि न मनक डूहा में अपने हृदयगत प्रकट किय हैं। वीर सतसई के उदाहरण इस प्रकार हैं —

नायण आज न माड पग, काल मुणीजै जग ।
 धारा लागीजै धणी, तो दीजे धण रग ॥
 हूँ पाछे आगई हुवे, आणी नाह घरेह ।
 ज वाली धण जीवऊ, आगे मूक करेह ॥
 काळी चूडी की तजे, मगळ वेळा रोप ।
 रावत जाई डीररी, सत्ता सुहागण होप ॥
 आज घरे सासू कहे, हरख अचाणक काय ।
 बहू बळेवा हुळसे, पूत मरेवा जाय ॥
 बाला चान म बीसरे, मो थण जहर समाण ।
 रीत मरता डील की ऊठ थियो घमसाण ॥
 और जहर मुख आविया भट भेज परधाम ।
 अतरो अतर मूक म, मार पडिया काम ॥
 भोळा की डर भागियो, अत न पोडे एण ।
 बीजी दीठा कुळ बहू, नाचा करसी नेण ॥
 पूत महा दुख पावियो, वय खावण थग पाय ।
 एम न जाण्णा आरही, जामण दुध लजाय ॥
 हूँ बलिहारी राणिया भ्रूण सिखावण भाव ।
 नाळो बाढण रो छुगी भपटे जणियो साव ॥
 मन सोचे जाणो मनी, माने वाळक माय ।
 वेर पराया बाहुटे जठे न घर रा जाय ॥^१

१ - वीर सतसई, स० डा० कृष्णलाल सहल प्रो० पतराम गौड़ वीर डा० ईश्वरीदान आसिया, बंगाल हिन्दी मण्डल, ८ रायल एक्सचेंज प्लेस कलकत्ता ।

सूर्यमल ने अनक गीता की रचना की। इनक एक गीत का उदाहरण इस प्रकार है —

दगो रिचारे फेरियो अगरेजा लोणा चौगड्हो,
तासा बबी भडदा वेडियो नाग ताय ।
भाळ धाचो फेरिया खेह रो हूत द्यायो भाण
बाघलो वेहरो चैन घेरिया बनाय ॥१॥

माचे खाग भाटा राचे तवाई छ खडा माये
रशा घाट पाटा नदी बवाई रोमाग ।
पाय घाटा जग रूपो कुवाणा नवाई पाणा,
सनाटा वेडियो थाटा सवाई सौभाग ॥२॥

सुणे घार तासा ग्राममाण लागियो सीस,
सना घू चैन रो खाग बागियो समूल ।
कोपे 'हण' आसुरा विभाडवा आगियो किना
सिदुर पाटेवा मूती जागियो सादूळ ॥३॥

देवता एहो जग घडके आगरी दिल्ली,
बबी जैत माग रा रडके वारवार ।
भूके खाग रा बाड भडके कायरा भुण्ड,
हमल्ला नाग रा माया रडके हजार ॥४॥^१

१६६२। स्वाधीनता संग्राम के असफल हो जाने से शौर उसके प्रति क्षत्रिय नरेशों की उदासता से सूर्यमल जी उदास रहने लगे। इनका देहान्त वि०स० १६२० में हुआ।

(२) चारण कवि केमरीसिंहजी

१६७२। चारण कवि केसरीसिंह जी बाराहठ (स १६२६-१६६८) राजस्थान में क्रांतिकारी दल के नेता थे जिन्होंने मानवभूमि की सेवा में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था। इनके पुत्र प्रतापसिंह का भी ब्रिटिश शासन की कोपान्नि का शिकार होना पड़ा। केसरीसिंह जी ने उदयपुर के महाराणा फतहसिंह को "चतावणी रा चू गथा" के रूप में राजस्थानी दोहे लिख कर सन् १६१२ के प्रसिद्ध दिल्ली-दरबार में जाने से रोक दिया था —

१ - राजस्थानी शब्द कोष, स० श्री सीताराम लालस, रा० श्री० चं०, जोधपुर, पृ० १७७।

कणो सोम पे गाम प्रसावै ऋगी नीम कमठाणो ।

ई तो पवन पृथ रा मेळा 'चानुर' भेत् पिट्याणो ॥ ४ ॥^१

(४) नाथदानजी महियारिया (जन्म म० १९४८, वतमान)

२०१२ । कविवर नाथदान जी महियारिया का जन्म चारणा की महियारिया गावा में हुआ । इनकी रचित अनन्त का यात्राक रचनाएँ हैं जिनमें बारसतसई मुख्य है । वीरसतसई में बार वीरायताप्रा क अनोभाव सजाव रूप में चित्रित किये गये हैं ।^२ वर्तमान में वीर रस निरूपण करने वाले कवियों में नाथदान जी अग्रणी हैं । इनके गद्यांश क वृत्तिय उक्त हरण निम्नलिखित हैं —

रण कर कर रज रज रगै रवि ढकै रज हूत ।

रज जैता धर नह दिये रज रज व्है रजपूत ॥ १ ॥

भड वाका वाको खगा, बाकी हाथ कवाण ।

निहुँ नाका आगळ रहै, जग सूधा सब जाण ॥ २ ॥

देण सखी मोटा गण गाळा री भडियाह ।

काय न वावै काकरी भट री भू पटियाह ॥ ३ ॥

सुत मरिया हित देस रै, हररया बंधु समाज ।

मा नह हरखी जनम दे, जतरी हरखी आज ॥ ४ ॥

सुत आया घावा सहित, अजस थायो माय ।

पय पाया घोळै वरण, रातो वरण दिखाय ॥ ५ ॥

धव थायो घावा वहै, पावा रक्त अतोल ।

मग बळिया ही चूकसी पग मटणा रो माल ॥ ६ ॥

च द उजाळै एक पख बीजै पख गधियार ।

बळ दु^३ पकख उजाळिया चदमुखी बळिहार ॥ ७ ॥

पिव कमरिया पट किया हू केसरिया चोर ।

नाहक लाया चूनडो बळतो वेळा वीर ॥ ८ ॥

पडिया जाडे बाप रे पाग नसूमल सेन ।

बेटो घर थायो नही घोळी वाण हत ॥ ९ ॥

खग ता अरिया खोम ना पिव घर आया भाज ।

जिण खूटी मग टागता उण पर टागो लाज ॥ १० ॥

१ - राजस्थानी भाषा और साहित्य, प० मोतीलालजी मेनारिया पृ० २५६ ।

२ - कविवर नाथदानजी महियारिया, ले० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थानी साहित्य, राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन की पत्रिका १९४२ ई० वष १, अंक २ ।

ग कतिपय अन्य उल्लेखनीय कवि

२०२२। प्रागुक्त राजस्थानी काव्य की दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है —

(१) परम्परागत शैली का प्रागुक्त राजस्थानी काव्य और (२) नवीन शैली का राजस्थानी काव्य। परम्परागत शैली का राजस्थानी काव्य में खोरता भक्ति और शृंगार प्राग् विषयों में दाहे और गीत प्रादि लिखे जाते हैं। परम्परागत शैली में लिखे जाते कवि मुख्यतः प्राचीन राजस्थानी साहित्य के प्रेमा राजपूत चारणादि हैं। ऐसे कवियों का मर्यादा बड़ी है जा गवा में निवास करते हुए स्वात गुलाम भयवा अनरजन हेतु परम्परागत शैली में राजस्थानी काव्यत्मक रचनाएं प्रस्तुत करते हैं। ऐसे कवियों में परम्परागत काव्य शास्त्रीय ज्ञान की कमी नहीं है। इन कवियों में प्रथम और मुक्त शैली प्रकार का काव्य लिखे हैं। मुक्त लेखकों में चारण गीत लिखने वाले कवि भी हैं, जिन्होंने अनेक प्रकार के गीतों की रचना काव्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार सफलतापूर्वक की है। प्राचीन परम्परा के कवियों में — हिंगलाजदान कविया उदयरज उज्ज्वल^१, रावल नरेद्रसिंह^२ चण्डोदान पादुदान, जागोदान, रामनाथसिंह 'राठी' रामसिंह मोलको, बलवत सिंह, काहीदान, ठाकुर नाहरसिंह, (आऊवा) देवकरणसिंह राठीड, अजयदान बारहठ, रामसिंह तवर लक्ष्मणसिंह चापावत^३, जुहारदान (पाचोटिया) रणवीरसिंह बद्रोदान, बलदेवदान, हनुमानसिंह^४, राजा फतेहसिंह (भासोप) मुरारीदान, भावलदान आसिया, केसरीसिंह, नाथूदान (मालाणी), नारायणसिंह भाटी^५, मनोहर शर्मा^६, केसरीसिंह^७ नानूराम^८, रेवतसिंह भाटी^९, सौभाग्यसिंह शैलावत^{१०}, देवकरण बारहठ, मुकदसिंह बोदावत^{११}, कविराव मोहनसिंह^{१२} श्रीमती मानकु वरी राव, रिडमलसिंह (जाहवी), कविया मानदान, कविया कल्याणदान, मुकुन्ददान (विरमी), शक्तिदान कविया, स्वरूपसिंह चूण्डावत आदि अनेक नाम उल्लेखनीय हैं।

१ — पूडसार, मातिया रा डूहा, ऊजल सदेव, राजस्थानी शतक।

२ — खोरपूजा सतसई।

३ — रसाल।

४ — बिखरिपोडा गीत, सुरसन शतक।

५ — साभ मेघदूत, धोलू।

६ — अरावती की आत्मा, उमर खयाम, गीत कथा, मेघदूत।

७ — दुर्गादास।

८ — कलायण दसदंड, समय धायरी, बटोही ग्पोही।

९ — क्षत्रिय भजनावली, राम रहस्य, मोहिल गौरवप्रकाश, शोका चरित्र जयमल चरित्र, छत्रसाल बसक, चंद्रमेन सतसई।

१० — रणरोल, भूषा मोती, खादू रा खेटा, वह चकवा बात।

११ — बेलि भाटी संतानसिंधरी।

१२ — मृगया बावनी, रामशतक, भूपाल पञ्चीसी, जयमलौता री नीसाणी, दुर्गा पाठ, दुर्गाबावनी प्रादि।

२०३२ । नवीन शैली के राजस्थानी कविया ने छायावाणी रहस्यवाणी, प्रगतिवाणी और प्रयागवादी नैलिया में भी अपना रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। ऐसे कवियों ने अपनी रचनाओं में राजस्थानी प्रकृति का बहुविध रूप भी सफलतापूर्वक चित्रित किया है। अनेक कवियों ने संस्कृत अग्रेजा और हिन्दी कविताओं के सफल राजस्थानी पद्यानुवाद भी प्रस्तुत किये हैं। इतिहास प्रेम और राष्ट्र प्रेम भी अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। नवीन शैली में अनेक राजस्थानी गीत भी इन कवियों ने लिखे, जिन्हें रचिपूर्वक गाया और सुना जाता है।

२०४२ । नवीन शैली के राजस्थानी कवियों में निम्नलिखित नाम विशेष उल्लेखनीय हैं —

मनोहर शर्मा^१, नारायण सिंह भाटी^२, भरत यास^३, श्रीमंत कुमार यास^४, नानुग्राम सस्वर्ती^५, चंद्रसिंह^६, मधुराज मृदुल^७, कन्हैयालाल सटिया^८, विश्वनाथ शर्मा विमलेश^९, मनोहर प्रभाकर रेवतदान चारण^{१०}, गणेशीलाल व्यास^{११}, गजानन वर्मा^{१२}, गणपतिचंद्र भण्डारी^{१३}, रावत सारस्वत^{१४}, विशारद कल्पनाकृत^{१५}, सीताराम महर्षि भीम पण्ड्या^{१६}, रामनिवास हारीत,

१ - गीत कथा अनुवादित काव्य मधुदूत, उमर खय्याम अयोधिसतक, गीता और धम्मपद ।

२ - दुर्गादास, परमवीर और मेघदूत (अनुवाद) ।

३ - रजपूत, दिवाली ऊठ सुजान चदणा ।

४ - दिवले री जोत, बादल, दसदेव, कलापण, सम वायरो, घटोही ।

५ - गीत सूर बादरी, कहमुकरणी ।

६ - माटी मुलभी बीज पसीज्या जिया तावडो चवरी, सेनाणी ।

७ - रमणिय रा सोरठा भीभर ।

८ - सत पकवानो छेडलानी गीता ।

९ - मेघदूत भरतरी सतक ।

१० - चैन मरनसरा ।

११ - मरुपञ्चक ।

१२ - धरती रा गीत, सोनो नीपजे रेत मे, धरती री धुन और बारामामा ।

१३ - रत दीप ।

१४ - स्फुट गीत

१५ - अनुवादित-कुमार समक श्रुतसहाय धरती रा गीत ।

१६ - हाथ मू कतर सीनो बीरली ।

कृष्णगोपान कल्ला^१, मदनगोपाल शर्मा^२ महधर मृदुल, मागीलाल व्यास^३, शान्तिलाल भारद्वाज^४, रामनाथ व्यास^५ रतनलाल दाधीच, सत्यप्रकाश जोशी^६, कल्याणसिंह राजावत^७, रामदेश आचार्य, भगवान सहाय त्रिवेदी, कमलाकर, नन्दकिशोर पागेकर, श्रीमती राजलक्ष्मी, जगमोहनदास मूदडा, गंगाप्रसाद शास्त्री, अम्बु शर्मा, इंदुबाला पुरी, गणपति स्वामी, कैप्टिन मोतीसिंह, घोषलसिंह, सुमेरसिंह शेखावत^८ गंगाराम पणिक आजाचद भण्डारी, सभमणसिंह रसवत, रघुनाथसिंह, भिक्षुदान, वृद्धिशंकर त्रिवेदी, आश्विनीकुमार चित्तौडा, बुद्धिप्रकाश गणपतलाल डांगी भगवतीलाल व्यास, ब्रजमोहन शर्मा आदि ।

घ आधुनिक कान्थ की प्रधान प्रवृत्तिया

२०५२ । आधुनिक राजस्थानी का य की प्रधान प्रवृत्तिया इस प्रकार हैं —

(१) स्वाधीनता प्रेमी और अपनी मान मर्यादा की रक्षा हेतु मर मिटने वाले वीरो और वीरागनाओं की गाथाएँ युग के अनुसार नवीन रूप में प्रस्तुत करना आधुनिक काल की प्रधान प्रवृत्ति रही है । वीरो में महाराणा प्रताप, राजसिंह, अमरसिंह राठौड़, दुर्गादास राठौड़, सुजानसिंह शेखावत, पादूजी राठौड़, बल्लूजी चापावत, जगदेव पवार, सागो गौड़, ऊड़णो पिरथीराज, सगमराय, मानसिंह भाला चूडाजी भारत चान युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाले परमवीर शैतानसिंह और परम वीर पारससिंह महात्मा गांधी जवाहरलाल नेहरू, और सुभाषचंद्र बास आदि के उदात्त चरित्र आधुनिक कवियों के लिये विशेष आकर्षण रहे हैं । वीरागनाओं में पद्मिनी, करणावती, पना घाय, हाडी रानी, भासी की रानी लक्ष्मी वाई आदि के चरित्र रचिपूर्वक चित्रित किये गये हैं ।

(२) पौराणिक देवी देवताओं में राम, कृष्ण, सीता, राधा, रुक्मिणी, हनुमान, दुर्गा शिव पार्वती और गणेश आदि के चरित्र लिखे गये हैं । राजस्थानी कवियों ने अनेक प्रसंगों में नवान भावा का आरोपण भी पौराणिक चरित्रों में किया है ।

१ - भाभरकी ।

२ - कुमारसम्भव का अनुवाद ।

३ - भरौं बावनी ।

४ - स्कुट गीत

५ - हिवडे रा बोल, अनुवाद गोताञ्जलि ।

६ - राधा, दीवा काये क्यू ।

७ - रामतिया मत तोड ।

८ - चांदणी, बिरस्ता, देवल ककाली ।

- (३) वीर रस की सर्वांगूर्ण अभिव्यक्ति अनेक कविता में लक्षित होती है। महाकवि सूयमल की परम्परा में रचित नायूदान महियारिषा की वीर सतसई उक्त कथन का उत्तम उदाहरण है।
- (४) मूमल और ढाला मरवण जैसे राजस्थानी प्रेमांगदान भी हमारे कवियों को आकर्षित करते रहे हैं।
- (५) प्रकृति वर्णन मन्व की रचनाओं में प्राधुनिक राजस्थानी कवियों ने वर्षा, बादल बिजली, तारो छाई रात श्रावण की माझ आदि के साथ ही नृवि स्तुत मरुस्थलाय टोबा, कडकनी गर्मी लू, ठडी हवाओं आदि का भी सजीव वर्णन किया गया है। वनस्पतियां म खेजडा, बम्बूल, नाम आदि के वर्णन विशेष मनोरम हुए हैं। प्रकृति वर्णन करते समय कविता ने राजस्थान के पहाड़ो जलाशया और खाना का भी नशी भुलाया है।
- (६) गीत लेखको ने अपनी नवीनतम भावनाओं को अभिव्यक्ति लोकप्रचरित गोन शैलियां म सफरता पूर्वक की है। अनेक गीत शास्त्रीय राग गानियों में भी गेय है।
- (७) साम्यवाद में प्रभावित कवियों ने रचनाओं को यूनना नहीं है। इन रचनाओं में कृषको, मजदूरो और अय शोषित वर्गों का पथ समर्थन सशक्त वाणों में किया गया है।
- (८) पद्यानुवादों में सस्कृत अंग्रेजी, और हिंदा रचनाओं के साथ ही बगला रचनाओं के अनुवाद हुए हैं। उमर खैय्याम की ख्वाईयो ने भी राजस्थानी कविता को पद्यानुवाद की ओर प्रेरित किया है।
- (९) प्रबन्ध कविता की अनेका मुक्त रचनाओं की ओर प्राधुनिक कवियों का विशेष ध्यान रहा है।

८ राजस्थानी गद्य साहित्य

२०६२। राजस्थानी गद्य १३वां शताब्दी में प्राधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूप में उपलब्ध होता है। अनेक भारतीय भाषाओं में प्राचीन गद्य का अभाव है किंतु राजस्थानी में प्राचीन गद्य के विविध रूप प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

२०७२। प्राचीन राजस्थानी गद्य के प्रमुख रूप इस प्रकार हैं —

(क) धार्मिक गद्य,

(ख) ऐतिहासिक गद्य

(ग) मनोरजनात्मक गद्य,

(घ) अभिलेखो का गद्य,

(ङ) व्याकरण, वैद्यक ज्योतिष आदि दिपयक गद्य ।

क धार्मिक गद्य

२०८२ । प्राचीन राजस्थानी धार्मिक गद्य मुख्यतः (प्र) जैनिया और (भा) ब्राह्मणा द्वारा रचित है ।

(अ) जैन गद्य के रूप

२०६२ । (१) टीका । जैन टीकायें टट्टा और बालावबोध के रूप में लिखी गई हैं । टट्टा के अंतगत मूल पाठ पत्र के मध्य में लिखा गया है और उसकी विविध टीकाभा के रूप में टट्टा हाथियों पर लिखा जाता है । टट्टा का रूप बहुत सक्षिप्त हाता है । टट्टा का उदाहरण इस प्रकार है —

“जेहे परब्रह्म केवल ज्ञान प्रामित्त । दुर्लभ मुक्ति रूप लाभ छई जेहनई । जेहे सरभ पदाथ नु आरोप मु क्यउ । त्रिभुवन रूप धर धरिवा स्तभ समान । ते सिद्ध शरणि हूजे ह आरम्भ छाडिया । इम सिद्धनइ शरणि करो । याय सहित ज्ञान नू कारण ।”^१

२१०२ । (२) बालावबोध प्रकार की टीका विस्तृत और सुबोध हाती है । मूल पाठ का विवेचन प्रसंगानुसूल विविध दृष्टा तो सहित विस्तार स हाता है । बालावबोध का एक उदाहरण इस प्रकार है —

महापुर नगर । भोज राजा । लक्ष्मण श्रेष्टि । तेहनइ नदा वेटी श्राविका । बाप वर चिता करइ । तिसइ वेटी कहइ । जोनिइ वीवइ काजल नहीं, कालिकि न हुइ, जिहा दसा वाटि पूटइ ज सदेव स्थिर हुई जिहा चौपड पूटइ नहीं एहवु दीवउ जेहनइ धरि सदा रहइ ते वर टाली वीजउ न परणउ । सेठि चिता पडिउ ।”^२

२११२ । (३) श्रौतिक ग्रंथ — श्रौतिक ग्रंथ में मुख्यतः व्याकरण का विवेचन होता है । श्रौतिक ग्रंथ का उदाहरण इस प्रकार है —

१ — सवेगदेव गणि रचित ‘खउसरण पयना टट्टा’, ह० प्र० अमय जन ग्रन्थालय, बीकानेर ।

२ — यथावश्यक बालावबोध (१६वीं शताब्दी), ह० प्र० अमय जन ग्रन्थालय, बीकानेर ।

“करिस्यइ, लेसिइ देस्यइ इत्युच्चारणे भविष्यत्कारणे भविष्यति परस्मै पद । करोसिइ, लोजिसइ इत्युच्चारणे आत्मने पद ॥७॥”

२१२२ । (४) क्या ग्रंथ — जन साहित्यकारा न अनेक गद्य कथाया का निर्माण किया जिनमे धार्मिक सिद्धांतों का जनता के लिए सरलतापूर्वक समझाया गया है । जन कथा का उदाहरण इस प्रकार है —

‘तुरुमणि नगरोइ दत्त ब्राह्मणि महन्तइ राज्य आपणइ वसि करा आणितु जितशनु राजी काढी आपण पइ राज्य अधिष्ठिउ । धर्म नी बुद्धइ घणा याग यजिया । एक बार दत्त ना माउता श्री कालिकाचाय गुरुभाणज राजा भणो तीणइ नगरि आविया । मामउ मणीदत्त गुरु क हइ गिउ । भाग नु फल पूछवा लागु । गुरे कहिउ जीवदया लगइ धम हइ ।’^२

२१३२ । चरित्र ग्रंथ — जैन लेखका ने चरित्र ग्रंथों में अनेक तीर्थंकरों, महागुरुओं और सतियों आदि के चरित्र राजस्थानी गद्य में प्रस्तुत किये हैं । सीता चरित्र का उदाहरण इस प्रकार है —

‘इहैव भरत खेत्रे मिथिला नगरभ्या नगरी रहिष्यमीए समृद्धा चउरासी चौहटा बहत्तरि पावटा अनेक बावडी पुष्करणी कुवार तलाब महाद्रइ खण्डोखली तिका सत्पा काई नही । अति ही मनोहर प्रधान इत्यादि सरोवरादि फल फून पत्र कूपल लताये करि विराजमान वनखण्ड वृक्ष करि विराजते शोभते ।’^३

२१४२ । (६) पट्टावली और गुर्वावली — जैन लेखकों ने पट्टावली और गुर्वावली के अन्तर्गत क्रमशः अपनी पट्टा परम्परा और गुरु परम्परा का राजस्थानी गद्य में वर्णन किया है । ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसी रचनाओं का विशेष महत्व है । पट्टावली का उदाहरण —

“पवनदी साधक सिधु देशि अनेक अवदात कारक श्री जिनदत्त सूरि स १२११ आसाढि सुदि ११ अजयमेरु नगरि स्वग प्राप्त हुउ । स० १२०५ वर्षे जिनमेखर सूरि हैति रद्रपन्नीय गच्छे हुअउ । श्री जिनदत्त सूरि नइ पाटि स० ११६३

१ — जय सागरोपाध्याय कृत उक्ति समुच्चय’ (१७वीं अंकादी) ह०प्र० अंभय जनक प्रकाश बोकारन ।

२ — कालिकाचाय की कथा (स० १५६७-१५११ई०) डा० एल०पी तेल्लिहोरी, नोटस अफ द इण्डियन एन्टीक्वैरी (१९१४ से १९१६) ।

३ — सीता चरित्र भाषा, श्री अमरचन्द नाहटा, महाराष्ट्र में प्रकाशित खोपे पत्र, ह०प्र० अंभय जनक प्रकाश बोकारन ।

भाद्रवा सुदि ८ जेहनउ जम रामल धावक देलहणदेवी नउ पुत्र सा० १२०३ फागुण सुदि ६ दिने ।”^१

गुर्वावली का उदाहरण इस प्रकार है —

“जिनहस सूरिनइ वारइ सा० १५६६ थो शाति सागराचार्य थकी आचार्य गच्छ जुअउ थअउ । तेहनेइ पाटि थो जिनमार्गिअक सूरि सा० १५८२ भाद्रवा सुदि ६ बलाही देवराज कारित नदी महोत्सवइ । श्री जिहस सूरइ आपणइ हाथि थाप्या ।”^२

२१५२ । (७) सीख ग्रन्थ — जैन लेखका ने अनेक गद्य ग्रन्थ धार्मिक शिक्षा प्रचार की दृष्टि से लिखे । ऐसे ग्रन्थों में धार्मिक नियमों का विस्तृत वर्णन है । उदाहरण —

‘कोइनी निदा करवी नहि । कोइनु मर्म प्रकाशनु नहि । कोइ साये इष्यां करवी नहि । सब साधे मित्र भाव राखवोजी । कोई साये शत्रु भाव राखवो नहि । सदाय लज्जावत रहेवु जी । कदापि निलज्जना धारण करवी नहि ।”^३

२१६२ । (८) विनक्ति पत्र, नियम पत्र और समाचारी आदि — जैन लेखका ने साधु साध्वियों और श्रावका आदि के लिए विभिन्न विषयक व्यवहार सम्बन्धी नियम पत्रा में लिखे हैं । नियम पत्र का उदाहरण इस प्रकार है —

“साधु साध्वीनइ जे पुस्तक पाना जोइयइ ते भित भित श्रावकनइ न कहणा, ययायोग्य ते सधनइ कहणा, श्री सधइ यया योग्य चिता करणी ।”^४

समाचारी का उदाहरण इस प्रकार है —

“घनागरा माहि घाणा सूठ हरइइ दाख खारक ए सहु एक द्रव्य । परेद्रव्य पचरवाण ना घणी जुदा २ न खाइ एकठा करी खाइ तउ एक द्रव्य ।”

विनक्ति पत्रा में विभिन्न नगरों के श्रावका की ओर से आचार्यों की सेवा में चातुर्मास, निवास आदि के लिए निवेदन किये गये हैं । अनेक विज्ञापनपत्र सचित्र भी उपलब्ध होते हैं

१ — सरतर गच्छ पट्टावली, ह०प्र० अमय जन प्रयालय, बीकानेर ।

२ — सरतर गच्छ गुर्वावली, ह०प्र० अमय जन प्रयालय, बीकानेर ।

३ — हत शिक्षा विषे छुटा बोल श्रीमन्पाशवदप्रकरणपाला, भाग १, प्र०का० १६१३ ।

४ — क — युग प्रदान श्री जिहवद्र सूरि, श्री अमरवद नाहुटा, अमय जन प्रयालय बीकानेर, परिशिष्ट (क) ।

ख — राजस्थानी भाषा और साहित्य, डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० ३४१ ।

तिनमे सम्बन्धित नगरो के विभिन्न दृश्या का चित्रण हाता है ।^१ विनपित वत्र क गद्य का उदाहरण इम प्रकार है —

“सखी भट्टारकजी री पुज्य श्री श्री जिन भक्ति जी री छ्द कगावत वणारसीजी श्री श्री न दलालजी पठनार्थ ॥२०॥ मधेन श्रीराम जोगीदासोत श्री बीकानेर मध्य चित्र राजुक्ते ॥श्री॥श्री॥”^२

(आ) जनेतर धार्मिक गद्य —

२१७ २ । जनेतर धार्मिक गद्य पौराणिक विषयो पर श्रीर ईसाई पात्रिया द्वारा राजस्थानी भाषा की विभिन्न बालिया मवाडी मारवाडी, बीकानरी, डूढ़ाडी, हाडोनी तथा मानवी के अनुवाचों क रूप मे उपलब्ध होता है ।

मारखपधी राजस्थानी गद्य का एक प्राचीन उदाहरण उपर ध होता है जितनी भाषाये रामचंद्र सुवन ने लगभग १४वीं शताब्दी का माना है —

“श्री गुरु परमानंद तिनको दडवत है । हैं यैमे परमानंद आनंद स्वप्न है, सरीर जिह्वा का । जिही के नित्य गायै तै सरीर चेतनि अर आनंदमय हातु है । में जु ही गारिख तो मध्यदरनाथ को दडवत करत हूँ । है कस वे मध्यदरनाथ । आत्मा ज्याति निश्चल है अत करण जिनकी अर मूल द्वार तै छद्म चक्र जिति जाकी तरह जाने । अर जुग काल कल्प इनिकी रचना तत्व जिति गायी । सुगध की समुद्र तिति को मरो दडवत । स्वामी तुमै तो सतगुरु अम्है तो सिख । शब्द एक पूछिबो दया करि कहिबो मनि न करिबो रोस ।”^३

रामायण महाभारत भागवतादि विविध पुराणो, व्रत माहात्म्य आदि क राजस्थानी गद्यानुवाद प्रचुर मात्रा मे हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहालय मे प्राप्त होत हैं ।

२१८ २ । ऐतिहासिक गद्य निम्नलिखित रूप मे मिलता है —

क ख्यातें — सौसोदिया री ख्यात राठाडा री ख्यात जाडेवा री ख्यात, कछावा री ख्यात, मुहुंगोत नैणसी री ख्यात, बाकीदास री ख्यात महाराजा मानसिंह री ख्यात जोधपुर री ख्यात,

१ — क — राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, केंद्रार्थ संग्रहालय, जोधपुर ।

ख — अमय जन्म प्रयालय, बीकानेर ।

२ — बीकानेर का एक सचित्र विनपित लेख भवरलालजी माहटा, राजस्थान भारती, भाग २ अंक ३४ जुलाई १९४३ पृ० ६८ ।

३ — हिन्दी साहित्य का इतिहास हिन्दी गद्य पृ० ४०३ ।

उमरावा री ह्यात, बीकानेर री ह्यात, देवलिये रा घणिया री ह्यात, चहुवाण सोनगरा री ह्यात ।

ख घात — राणा उदैसिध री वात, हाडा सुरजमल री वात, राव बोकेजी री वात, जैसलमेर री वात, पाडूजी री वात, राणा कुम्भा चितभरमिया री वात, राव लूणकरण री वात सोडा री वात, आदि ।

ग विगत — गैहलोना री चौबीस साप्पा री विगत, मेवाड रा भांगर री विगत, सीसोदिया चुडावता री साख री विगत, जोधपुर बीकानेर टोकायता री विगत, जोधपुर रा निवाणा री विगत, गढ कोटा री विगत कछवाहा सेखावता री विगत, बिदावता री विगत आदि ।

घ पीढ़ी — ईडर रा घणी राठीडा री पीढ़िया, राठीडा रे खापा री पीढ़िया, हमीरोत भाटिया री पीढ़िया आहाडा री पीढ़िया, भायला री पीढ़िया, च द्रावता री पीढ़िया इत्यादि ।

ङ वसावली — राठीडा री वसावली राजपूता री वसावली, जैसलमेर रा भाटी महारावल री वसावली, झाला री वसावली, बीकानेर रे राठीडा राजावा री वसावली, उदेपुर रा राजावा री वसावली, आदि ।

च दवावत, घत — नरसिंह दास गोड री दवावैत, जिन मुख सूरिजीरी दवावैत जिनलाभ सूरि दवावैत, वेन महाराणा जी आ शभूसिध जी री राव वखनावर री कही, आदि ।

छ वचनिका — अचलदास खीची री वचनिका (शिवदास चारण कृत) वचनिका राठीडा रतनसिंह जी री महेस दासोत री (जग्गा ग्विडिया रांचत), आदि ।

क ह्यान —

२१६ २ । ह्यान शब्द इतिहास का सूचक है । मुसलमान इतिहासकारों के अनुकरण में राजस्थानी इतिहासकारों ने राजस्थानी गद्य में विभिन्न राजवंशों से सम्बन्धित अनेक ह्यातें लिखी हैं । ह्यात के गद्य का एक उदाहरण इन प्रकार है —

‘माछना रा मगरा सू उनर न सहर छै । दीवाण रा मोहल पीछोला री पाल ऊपर छै । मोहला धी आघरण नू तलाव लगती सहर छै । कास दा-रे फेरे

छै । महर री एक कानी माद्रा गी मगरो छै । एकग तानी मरुं रिस् सिगरवा री मगरो छै । तलाव घणा भरीज तर पाणी मगरे ताई जाय छै ।”^१

ख यात —

२२० २ । यात मयरा वार्ताण स्थान म छापी हाती है । दृष्टा एक म्यात क मर्तगत मनक वाती मयवा वार्तामा का समापेण रहता है । यात घोर वार्ताण काननिक भी होती हैं । कथानक, विषय, भाषा रचना प्रकर मली घोर उद्भव का दृष्टि म वात मयवा वार्ताण मनक प्रकार की मिलता है ।^२ वात का एक उदाहरण इस प्रकार मिलता है —

“पिगन राजा सावतसी दवडा नू आदमी मेन त्हायो — अरै थै ग्राणो करी । तद सावतसी घणा ही विचारियो पण वात वाप कोई बमे नही । कु वरी नै ऊभण्णा द मेलीजे । तद उठ, घोडा रथ सजमान सजा । पासवान, मापे हुवा सा उदैचद खम नही ।”^३

ग विगत —

२२१ २ । विगत में किसा विषय का विस्तृत बणन जाता है । विगत का उदाहरण इस प्रकार है —

मोहिल अजीत ने राणो वछी इयारा राजधान लाडनु ने छापर हुती ने द्रणपुर माहिल काही वस्ती । पछे महाराई श्री जोधजी सगलाणु मारि ने मोहिले रे री धरती ने नै राजि श्री बीदेजो नु राणीयो ।”^४

घ पीढ़ी इ बणावली —

२२२ २ । पीढ़ी घोर बसावतिया मे प्रमुख ऐतिहासिक यक्ति की वक्ष परम्परा मयरा सम्पूर्ण वक्ष का गद्यात्मक बणन जाता है । ऐसी रचनामा मे सामान्य यक्तियो के नामात्मक मान होत है किन्तु प्रमुख यक्तियो का बणन विशेष होता है । पीढ़ी का उदाहरण इस प्रकार है —

१ — मुद्रता नणसीरी त्यात राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

२ — राजस्थानी शब्द कोष, मम्पादकीय प्रस्तावना १८६ १६० ।

३ — टाला मारु री यात लि० का म० १८७०, राजस्थानी शब्द कोष संपादकीय प्रस्तावना पृ० १६८ ।

४ — क — ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग खड एक, भाग २ डा० एल० पी० तेन्सीतोरी, पृ० १६२० ।

ख — ह० प्र० स० २३३।७।७ अनूप सस्टृत पुस्तकालय, बोकानेर ।

तीजो की त्तारी हर सन सन पै होनी थी ।
 सो भी हम देपो अन उपमा तै म्होनी थी ॥
 बारी महलू मे त्रिभ अथ के अलानी थी ।
 परदे चग चदवा भन भनरा की भापी था ॥
 पानुस की पणत लग बत्वा बनवाई थी ।
 नीके अथ उरन के भारन मनवाई थी ॥^१

छ वचनिका —

२२४२ । वचनिका के पद्य ध धोर गद्यध नामक दा भेद द्वावत की तरह ही
 बताये गये हैं —

वैत दवा जिम वचनका पद गद बध प्रमाण ।
 दुय दुय विव तिणरो दखू मुणजे जका मुणण ॥^२

प्राप्त वचनिका सनक रचनाप्रा मे गद्यध धोर पद्यध दाता ही प्रकार की
 वचनिकाप्रा का मिश्रण हुआ है —

‘पग पग पउलि पउलि हस्तो की गजपटा । तो उररि सान सात सै जोध धनक
 धर सावठा । सात सात श्रीनि पाइक की बैठी । सात सात श्रालि पाइक ऊठा । खेडा
 उदण मुद फरकरी । चुहचका ठाइ ठाइ ठठरी ।’^३

(३) मनोरजनात्मक गद्य

२२५२ । मनोरजनात्मक गद्य मे मनोरजनात्मक कथा वार्ताप्रा तथा वर्णनात्मक
 राजस्थानी गद्य का समावेश होता है । मनोरजनात्मक कथाप्रा मे प्रम वीरता भक्ति धोर
 हास्य की अद्भुत योजना होनी है । वार्ताकारा ने काल्पनिक प्रयोगा द्वारा ऐसी कथाप्रा मे
 रहस्यरोमाच की सृष्टि भी की है । हस्तलिखित प्र य मण्डारो म मनोरजनात्मक राजस्थानी
 कथाप्रा के अनेक सग्रह प्र य उपलब्ध हाते हैं । इन कथाप्रा मे गद्य व साथ कहीं कहीं पद्य का
 छण भी प्रभावशालीतो हातो है । ऐसी वार्ताप्रा मे ब्रज गुजराती धोर उडू व प्रभाव भी
 कहीं कहीं मिलते हैं । उदाहरण —

‘पछे वामण सीदो ले ने तलाव ऊपर रोटी करवा बेठी । जठे तलाव री तीर

१ — वैत म्ाराणा जी नी समूतध जी रो, राव बख्तावर री कही, राजस्थान विद्या
 पीठ, साहित्य संस्थान, उदयपुर ।

२ — रघुनाथ रूपक गीता रो, कवि मड्ड डूव, नागरी प्राचरिणी सभा, वाराणसी,
 ६ ।

— भवलदास लोवी री वचनिका ह० प्र० न० ६६, अ० स० ला०, बीकानेर ।

एक मोड़क आयो । आवे न कामण थी वही । देवता सीहे तो मैं अठे वदी नहीं देरयो । तू वठे जाअ है । जदी बामण वहे । हूँ उजीए रही छू ने गया जी जाऊ छू ।”^१

वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य रचनाओं में अनन्य विषया का मनोरम और सर्वांगपूर्ण वर्णन होना है । पदेष विशति, पृथ्वीराज चरित्र अपरनाम धागविलास, मणिकय सुन्दर सूरि कुतुहलम् सभाष्ट गार, मुक्त्वनानुप्रास, राजाज्राउत रो वात वणाव, खीचो गगैव नीवावत रो दीपहरो आदि वर्णनात्मक रचनायें विशेष उल्लेखनीय हैं । ऐसी रचनाओं में कतिपय वर्णन इस प्रकार हैं —

वर्षाकाल वर्णन —

“विस्तरिउ वर्षाकाल जे पथी तणउ काल, नाठउ दुकाल ।
जिणिइ वर्षाकालि मधुर ध्वनि मेह गाजइ, दुर्भिक्ष तणा भय भाजइ ॥
जाणे सुभिक्ष भूपति आवता जय ढक्का वाजइ ।”^२

ऊमटी घटा बादल होइ एकठा, पडइ छटा, भाजइ भटा भीजइ लटा ।
मेह गाजइ, जाणे नाल गोला वाजइ दुकाल लाजइ सुवाव वाजइ
इद्र राजइ, ताप पराजइ ॥”^३

वसंत ऋतु वर्णन —

“निसिह आविउ वसंत, हुइ शीत तणउ अत ।
दक्षिण दिशि तणउ शीतल वाउ वइ विहसइ वणराइ ॥

बोहा— सध्वे भला मासटा, पण वइसाइ न तुल ।
जे दवि दाघा खड्डा तीट मावइ फुल ॥”^४

वर्षाकाल वर्णन —

“वर्षाकाल हुउ, वहितो रहिउ कुयउ, वादि पाणी भरतारया, बादल उनया ।
मैघ तणा पाणी वह पथी गामइ जाता रहै ।

१ - प्राचीन वार्ता, २० का० सं० १८००, राजस्थानी भाषा और साहित्य, ले० प० मोतीलाल जी मेनारिया । पृ० ३६३

२ - कतिपय वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य ग्रंथ, अणरधन्द नाहटा, राजस्थान भारती भाग ३, अंक ३-४ जुलाई १९५३ ।

३ - वाग्विलास, वही, पृ० ४१ ।

४ - वही, पृ० ४१ ।

की श्रेवज बावन हजार बीघा जमी उजेण वे प्रगने दीधी जकण रो तावापन श्री पातसाहजी का नाव को कराय दीधी अण सवाय आगा सु चारण वरण सासत पचा कुलगुरु गगारामजी का बाप दादा ने व्याह हुअे जकण में कुल दापा रा रुपाया १७॥ और त्याग परट हुवे जीण मा मोतीसरा की नावो वधे जीण सु दुणो नावो कुल गुरु गगारामजी का बेटा पोता पाया जासी समत १६४२ रा मती माहा सूद ५ दसवन पचाली पन्नालाल हुकम धारहठजी का सु लीखी तसत आगरा समसत पचा की सलाह सू आपाणी या गुरा सू अधिकता दूजी नही छै ।^१”

(५) व्याकरण, त्रैघरु, ज्योतिष, टीका आदि विषयक गद्य

२२६ २। राजस्थानी भाषा में व्याकरण, चरक, ज्योतिष, टीका, स्तवन प्रादि विषयक गद्य भी विभिन्न लेखकों द्वारा प्रचुर परिमाण में लिखा गया है। अनेक राजस्थानी महाकाव्यों में भी गद्य लेखन उपलब्ध होते हैं। कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं —

ज्ञानचारी पुस्तक पुस्तिका सापुट सापुटिका टीपणा कबली उत्तरी ठवडी पाठा दोरी प्रभृति ज्ञानोपकरण अवज्ञा अकालि पठन अतिचार विपरीत कपयु उत्सूत्र प्ररूपणु अश्रद्धाण-प्रभृति कु आलोयहु ।^२

“स्वर केता १४ समान केता १० सवर्ण १० ह्रस्व ५ दीर्घ ५ लिगु ३ पुल्लिगु, स्त्रीलिगु, नपुसाक लिगु मलउ, पुल्लिगु मली स्त्रीलिगु, मलु नपुसाक लिगु ।

— बालशिक्षा व्याकरण, ठक्कुर साग्रामसिंह कृत सा० मुनि श्री जिनविजयजी ।

२३० २। पछइ सुम दिहाडइ जिण कतरा सवण जोई जइ सु घात कागलि लिपि नइ आप तीरे राखीजइ । चक्री रइ गर्भि बेसीजइ पछइ कृष्ण स्मरण कीजइ दिन घडी ॥ आधी अरुइ सवण लइ बेसीजइ तारा निरमला हुवै अर द्रु रउ तारउ रुडा दीसइ ता लग बैसीजइ द्वारा तारा परगट हुवा पछइ ऊठीजइ तठा विजी कोई सवण बोलइ सु विचारी जइ ।^३

२३१ २। “आसोज आवताही नभ कहता आकास थै बादल दूरि हुआ । पृथी तै पक कहता कादी दूरि हुआ । जल की गुडलता दूरि हुई । निर्मल हुआ । ताकी दृष्टात जिम सतगुरु मिल्या थो । जातीजे छै मनुष्य की सत गुरु

१ - राजस्थानी शब्द कोष, स० सोतारामजी सालस सम्पादकीय प्रस्तावना, पृ० १६३ ।

२ - आराधना (स० १३३०) प्राचीन गुजराती गद्य सदभ, मुनि जिनविजय, पृ० २१८-२१९ ।

३ - गहन ग्रन्थ, लि० का० वि०स० १६२६ १६३३, अनुप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, ह० लि० ग्रंथ स० ६६ ।

मिल्या — ग्यान की दीपति हुई । इहा आसोज मिल्या थ आगनि माहे जोति अधिक हुई छै । इह मानो ग्यान की दीपति हुई छै ।”^१

२३२ २ । “राजा काहूबदे तणइ कटिकि पाछिलइ पुहरी कडाहि चडइ । बाज पडइ । सिंह थो दीडा प्रवाहि घोडा पडपता न महइ । थानातरि वहिला सु पाचण चाल्या । कठलोया किर्या । भडार भरीया । आलोचि आत्मानइ आव्या । मत्र मुहाडि हुई ।”^२

ख नवीन राजस्थानी गद्य

२३३ २ । राजस्थानी साहित्य में नवीन युग के जन्मदाता महाकवि सूर्यमल हैं । इन्होंने अपने वंश भास्कर से पद्य के साथ ही गद्य भी अनेक प्रसंगों में लिखा है । इनको भाषा में समृद्ध तत्सम शब्दों का भी व्यवहार हुआ है —

“सो राजा नै आपरा प्राण रो औपध अनगसेन जाणि अवरोध लाय राणी रै अरथ निवेदन कीधो । राणी तो कलिजुग रो रूप एहा अभिरूप अवनीस रो तिरस्कार करि सुद्धात रै आश्रित अनेक जन रहे जिका मे कोई दो ही लोक रो खोवणहार ठालियो जिण रो सागति रै प्रभाव स्वगलीक रा माग मुद्रित कराय कु भीपाक रो निवास भालियो सो आपरा स्वामी रो दीधो अपुव चमत्कारिक फल राणी अनगसेना नै जार रै भेट कीधो ।”^३

२३४ २ । सूर्यमल जी हाडोती प्रदेश में बू दी के निवासी थे । इ होने अपने व्यक्तिगत पत्र हाडोती बोली में लिखे हैं ।^४ कि नु उक्त उदाहरण से प्रमाणित होता है कि इहाने साहित्यिक गद्य राजस्थानी के टकसानी रूप में ही लिखा है ।

२३५ २ । आधुनिक काल के प्रारम्भ में राजस्थानी गद्य के अनेक ग्रंथ लिखे गये जिनमें दयालदास सिद्धायच कृत राठोडा री प्यात प्रमुख है । गोपाल दान कविया रचित शिखर वशोत्पत्ति (२० का० १९२६), महाराजा मानसिंह कृत रतना हमीर री वात और कविराव बरनावर कृत केहरप्रकाश (२० का० वि०स० १९३६) में भी राजस्थानी गद्य के प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुए हैं —

१ — लाखा चारण कृत वि०स० १९७३ में लिखित वेति क्रिसन क्वमणी री टीका, हिंदुस्तानी एक्डेमी, इलाहाबाद पृ० ७९५ ।

२ — काहूबदे प्रबंध (२०का० स० १५१२), राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर पृ० ४० ।

३ — वंशभास्कर, जोधपुर, राजस्थानी गद्य कोष, संपादकीय प्रस्तावना पृ० १९६ ।

४ — वीर सतसई, स० डा० कहेपालातजी सहल, पतराम जो गौड़ और ई वर दानजी भासिया संपादकीय भूमिका ।

“पाछे आलमगीरजी हाथी सू उत्तरिया अरु फोज माय फिरै। आपरा काम ग्रामा तथा घायला नू देखे है। आपरी तरफ रा नू उठाटे है, पाटा बाध जाबतो कराव है, तथा डौलियो म घाले ह, वा साह सूजे री तरफ रा नू मारै है। अरु बू दी रा राव राजा सत्रसालजी घावापूर हुवा पाडया है। जिसे आलमगीरजी गया। सू मूहडे उपर हाथ फेरियो, अरु पाणी पायो सावचत कर अमल दियो। तद चेता हुवौ। पछे आलमगीरजी पुरमाया जो रावजी अरज करौ।”^१

२३६२। स्याम ताज बफनी वमडल म नीर। डाटी सुपेत सेरा सुवरण शरीर। मोकल राव आती दखि माथा मी नवायो। साईं स्या भुरानी सेख नामो पथ पायो। जगल म चरे छी सौ अन्ध्या भोटी आई। मोकल का कना सू सेल चीपी म दुहाई।”^२

२३७२। ‘सुघड जठे बोली या नवेली सहज सारे ही सिधावज्या पण वन सरोवर कदे भी मत जाज्यो। जावेला बाग तो पिक सुक अली उड जावसी ने बियफल श्रीफल अनाड सेवा जो सु खावसी, जावेला जा वन तो रुजन कपात चौध चुरेला।”^३

२३८२। प्राधुनिक काल म मनव लखक राजस्थानी गद्य म उपन्यास, कहानी, नाटक निबन्ध, आनाचना और अनुवाद आदि लिखत रह ह। ए क प्रथम प्रकाशित भी हुए हैं और जनता म लोकप्रिय बन हैं। ब्रिटिश काल म प्रकाशन सम्बन्धी कार्यों पर राजस्थान म कडे प्रतिबन्ध रहे, जिनस पत्र पत्रिकाप्रा और नवीन गला की रचनाओं का पर्याप्त मात्रा में प्रकाशन नही हो सका। भारतीय स्वाधीनता और राजस्थान के एकीकरण के पश्चात् राजस्थान मे नवीन राजस्थानी गद्य लखन का बल मिला है। परिणामस्वरूप प्रति वर्ष मनव राजस्थानी गद्यात्मक रचनाए प्रकाशित होती जा रही हैं।

प्राधुनिक काल क कनिष्ठ गद्य लखक इस प्रकार है —

उपन्यास लेखक —

२३९२। गिवचन्द्र भरतिमा (काक सुंदर आदि), श्री लाल जाशी (आभेपटकी) त्रिभुवन देवा (टीका राव सात राजकुमार आदि)।

कहानी लेखक —

२४०२। मुरलीधर व्यास, रानी लक्ष्मीकुमारी चू टावत, नरसिंह राज पुराहित श्री चंद्रा माधुर भवरलाल नाहटा दीनदयाल श्रीभा, सीभाग्यसिंह गणेशन पुरवोत्तमनाथ मनारिया नेमीनारायण जागी मदनमाहन जाबलिया, आदि।

१ — इषावशास की स्याम अनुप सस्कृत पुस्तकालय, धौकानर।

२ — गिनर वनीत्वति राजस्थानी म द कोय संपादकीय इस्तावना पृ० २००।

३ — अरु प्रकाश कही।

नाटककार —

२४१ २। शिवचन्द्र भरतिया, सुयकरण पारीक, श्रीनाथ मोदी, पूरणमल गायनका, मनमोहन शर्मा, भगवती प्रसाद दास्का, गावि दे माधुर (सतरगिणी) पुरपोत्तमलाल मेनारिया) जुग पलटो) निरजन नाथ आचाय (नेहरी भगडा), भरत व्यास (डोला मरवण), प० गिरधारीलात्जी शास्त्री, चंद्रशेखर भट्ट, आजाचन्द भडारी, गणेशीलाल व्यास, गणपतनाल डानी, आदि ।

निबंध लेखक —

२४२ २। गुलाबचंद नागोरी और मारवाडी हितकारक पत्र का लेखक मडन, ठाकुर रामसिंह, अग्रचंद नाहटा, जयनारायण व्यास, रावत सारस्वत और मरुवाणी का लेखक मडल विशीर कल्पनाकांत और ओळमो पत्र रत्नगढ़ का लेखक मडल "राजस्थानी वीर", पूना का टटक मडल, सीभाग्याम्ह जी इस्लावत पुरपोत्तमलाल मेनारिया, ब्रजमोहन जावलिया, आदि ।

धालोचना लेखक —

२४३ २। रामकरण आसोपा (मारवाडी व्याकरण) सीनाराम लालस (राजस्थानी व्याकरण), महाराज चतुरसिंह, रावत सारस्वत, अग्रचंद नाहटा, रानी लक्ष्मीकुमारी चू डावत, सुयकरण पारीक, पुरोहित हरिनारायण प० नरोत्तमदास स्वामी, विजेदान देया, कोमल कोठारी डा० मोतीलाल गुप्त, सरनामसिंह, हीरालाल माहेदवरी, नरेद्र भाणावत, मदनराज महता, नारायणसिंह भाटी, रामप्रसाद दाधीच अक्षयचंद्र शर्मा, कहेयालाल सहल, डा० मोतीलाल मेनारिया, मनोहर शर्मा, चंद्रदान, वद्रीप्रसाद साकरिया, पुरपोत्तमलाल मेनारिया, डा० गोवर्द्धन शर्मा, मूलचंद प्राणेश, आदि ।

अनुवाद लेखक —

२४४ २। महाराज चतुरसिंह,^१ नरसिंह राजपुरोहित पुष्कर मुनि, रामनाथ व्यास परिवर,^२ श्रीमत्कुमान व्यास चंडीदान, शक्तिदान कविद्या, ब्रजमोहन जावलिया, रावत सारस्वत कुंवर चंद्रसिंह आदि।^३



१ - महिम्नस्तोत्र धीमदभगवद गीता और रामायण ।

२ - गीताजली वगला, रविद्रनाथ ठाकुर ।

३ - दोस्वर यादव की कहानियों का राजस्थानी अनुवाद ।

(ग) पिगल काव्य—

१ “पिगल” शब्द विचार

२ पिगल साहित्य का वर्गीकरण —

(क) चरित्र काव्य—१ रामो काव्य, २ अय काव्य

(ख) पौराणिक काव्य और महाभारत सम्बन्धी काव्य

(ग) भक्ति काव्य—१ कृष्ण भक्ति काव्य, २ राम भक्ति-काव्य, ३ त्रिगुण और अय काव्य ।

(घ) रोति काव्य—१ रस-अलंकार, २ छन्द, ३ नायिका भेद, पद्मनु-वर्णन नक्षत्र शिख वर्णन ।

(ङ) नीति काव्य

(च) फुटकर काव्य

(घ) भक्ति एवं सन्त काव्य—

(अ) साखी, (आ) शब्द, (इ) परिचयी, (ई) भक्तमाल, (उ) मंगल विवाहलो,
(ऊ) ककहरा, बारहखडी, (ए) श्लोको आदि ।

(ङ) लोक काव्य—

(अ) प्रबन्ध, मुक्तक, (आ) प्रबन्ध-खण्ड काव्य महाकाव्य ।

(च) आधुनिक काव्य

२. विवाह और विवाह-संज्ञक रचनाएं

(क) विवाह-संस्कार

(ख) विवाह--

(अ) ब्राह्म विवाह, (आ) देव विवाह, (इ) आर्ष विवाह, (ई) प्रजापत्य विवाह, (उ) आसुर विवाह, (ऊ) गा धर्व विवाह, (ए) राक्षस विवाह, (ऐ) पिशाच विवाह ।

(ग) विवाह संज्ञक रचनाएं —

१- (अ) मंगल काव्य, (आ) विवाहलऊ, विवाहलो, विवाह (इ) वेलि, (ई) हरण (उ) परिणय ।

२- (क) मराठी मंगल काव्य (ख) बन्नड मंगल काव्य,
(ग) तैलगु मंगल काव्य, (घ) उडिया मंगल काव्य,
(ङ) गुजराती मंगल काव्य, (च) हिंदी मंगल काव्य
(छ) राजस्थानी मंगल काव्य ।

तृतीय अध्याय

राजस्थानी साहित्य के विविध रूप

और

विवाह संज्ञक रचनाएं

१ राजस्थानी साहित्य का वर्गीकरण

(क) जैन काव्य, (ख) डिगल काय, (ग) विगल काव्य, (घ) भक्ति काय एवं सत काव्य, (ङ) लोक काव्य, (च) धार्मिक काय ।

(क) जैन काव्य—

(अ) कथा काव्य अथवा चरित् काव्य—

१ राम रासो, २ चऊरई, ३ मधि, ४ चवरो, ५ प्रबध, चरित्र, भाष्यात्मक और कथा

(आ) ऋतु काव्य—फागु धमान और बारह माना

(इ) उत्सव काव्य

(ई) नीति काव्य—कथा-बारहसडी

(उ) स्तवन

(ऊ) डाल

(ए) टव्वा और बालावबाध

(ऐ) ज्यातिप, वास्तु शास्त्र, धातुवत्तादि शास्त्राय रचनाएं ।

(ख) डिगल काव्य—

१ डिगल का नामकरण

२ डिगल काव्यो का वर्गीकरण—

(१) चरित नामकों के आधार पर—(अ) रामो (आ) प्रमाण, (इ) विनाम, (ई) रूपक, (उ) वचनिका

(२) पदों के आधार पर—(अ) नीमाला, (आ) भूषणा, (इ) भमान, (ई) गीत (उ) कुम्बिदा, (ऊ) कविता (ए) दूहा (ऐ) वेन ।

(३) प्रयोगों और शास्त्राय

तृतीय अध्याय

राजस्थानी साहित्य के विविध रूप

१ राजस्थानी साहित्य का वर्गीकरण

१ ३। साहित्य का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया जा सकता है। प्राचीन काल से साहित्य मौखिक और लिखित दो रूपों में प्राप्त होता रहा है। प्राचीन काल में टकण और मुग्ग के माधन मुनभ नहीं थे इसलिए विद्या को कण्ठस्थ करने पर बल दिया जाता था। तदुमार "विद्या कण्ठ रो" उक्ति प्रचलित हुई है। मौखिक और लिखित साहित्य को क्रमशः श्रुतिनिष्ठ और लिपिनिष्ठ भी कहा जा सकता है।

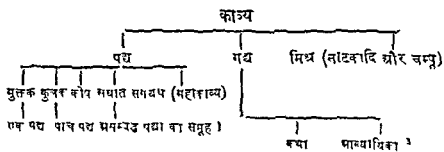
२ ३। आचार्य व्यास ने काव्य को तीन रूपों में वर्गीकृत किया है —

(१) शब्द, (२) अभिनय, और (३) प्रकीर्ण—

"शब्दचक्राभिनय च प्रकीर्ण सकलोजितम्" १

३ ३ आचार्य भामह ने काव्य एवं साहित्य के पद्य और गद्य नामक दो भेद बताए हैं। भाषा - भेद की दृष्टि से भामह ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश नामक तीन विभाग बताए हैं। भामह ने काव्यवस्तु की दृष्टि से— (१) वृत्तदेवादिकरितप्रसिद्धि (२) उत्पान्य वस्तु, (३) कलाश्रय, (४) शास्त्राश्रय नामक भेद बताए तथा काव्य का स्वरूप - भेद का दृष्टि से निम्नलिखित वर्गीकरण किया — (१) सर्गबन्ध (महाकाव्य) (२) अभिनेयाद्य (नाट्य), (३) आस्थायिका, (४) कथा, और (५) अनिबद्ध २

४ ३ आचार्य दण्डी ने साहित्य का संस्कृत, प्राकृत, परस्य और मिश्र भाषाओं में वर्गीकृत करते हुए काव्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया —

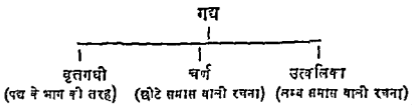


१ - अग्निपुराण ३३७। ३६।

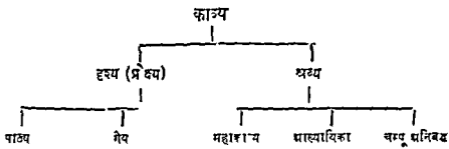
२ - काव्यालंकार, प्रथम परिच्छेद।

३ - काव्यादर्श १। ११। १४, २३ ३१।

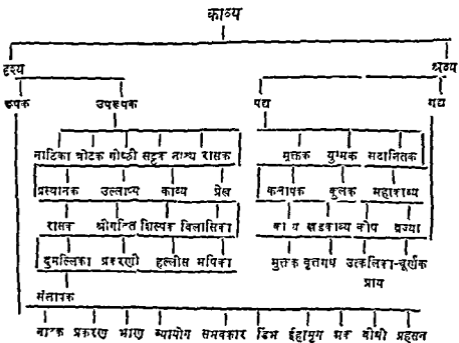
५ ३। आचार्य वामन ने 'काव्यालंकारसूत्र' में काव्य के पद्य और गद्य दो रूप मानते हुए गद्य के तीन रूप बताए हैं—



६ ३। आचार्य हेमचन्द्र ने सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और ग्राम्यापभ्रंश भाषाओं को काव्य भाषा मानते हुए काव्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया—

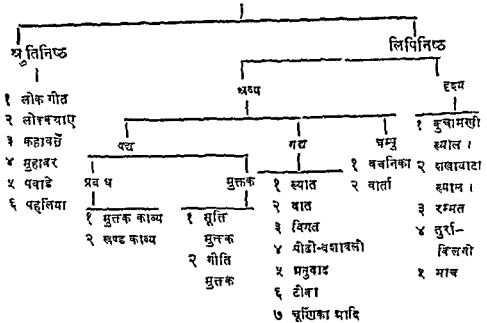


७ ३। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण के मतगत काव्य के दृश्य और अदृश्य नामक दो भेद मानते हुए काव्य का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया है—



८ ३। लिपिनिष्ठ और श्रुतिनिष्ठ राजस्थानी साहित्य का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में करना उचित होगा—

राजस्थानी साहित्य



९ ३। १० मरोतमदास जी स्वामी ने राजस्थानी साहित्य की तीन शैलियाँ मानी हैं—(१) जैन शैली, (२) चारणी शैली और (३) लौकिक शैली ।

उक्त शैलियों के अतिरिक्त राजस्थानी साहित्य की विंगल, भक्ति एवं सत काव्य और भाषुनिक साहित्यिक शैलियाँ भी हैं जिनका समावेश उक्त वर्गीकरण में नहीं हुआ है । चारणी शैली से चारणों द्वारा प्रयुक्त गई शैली का ही बोध होता है । रावा, राजपूतों मोतासरो डाड़ियो और शाहणा भादि ने भी चारण कवियों की भाँति अनेक विंगल रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । अतएव "चारणों" शब्द उक्त अर्थ को प्रकट नहीं करता । साथ ही "चारणी" शब्द 'चारण' पुलिग दा द के स्त्री-लिंग रूप का भी बोधक है ।

१० ३। श्री अमरचन्द्र नाट्टा ने ११५ प्रकार के काव्य रूप बताए हैं—

१ रास २ संधि, ३ चौपाई ४ फागु, ५ धमाल ६ विधाहलो
७ धवल ८ मंगल, ९ वेनि, १० सलोक ११ सवाद १२ वाद, १३ भगडो
१४ मातृका १५ बावनी, १६ कवका, १७ बारहमासा १८ चोमामा

१-राजस्थानी साहित्य, एक परिचय नवयुग प्रेस कुटीर, धीकानेर, पृ० २३ ।

१६ पवाडा, २० चर्चगे, (चाचरि), २१ जामाभिषेक, २२ कलगा, २३ तीर्थमाला
 २४ चैत्य परिपाटी, २५ राघ-वसुन्, २६ ढाल २७ ढालिया २८ चाढालिया,
 २९ छढालिया ३० प्रबोध, ३१ चरित्र, ३२ मन्वन्, ३३ ग्राम्यान, ३४ कथा,
 ३५ सतक, ३६ बहोतरी, ३७ छत्तीमो, ३८ सत्तरी ३९ बत्तीसो ४० इक्कीसो,
 ४१ इक्कीसो, ४२ चौबीसो, ४३ बीसो, ४४ अष्टक, ४५ स्तुति, ४६ स्तवन
 ४७ स्तोत्र, ४८ गीत, ४९ सउभाय ५० चैतवदन, ५१ देववदन, ५२ वीनती, ५३
 नमस्कार, ५४ प्रभाती, ५५ मंगल ५६ साभ ५७ बघावा, ५८ गहूली, ५९ होयाली,
 ६० गूढा, ६१ गजल, ६२ लावणी ६३ छद ६४ नीसाणी, ६५ नवरसो, ६६
 प्रबहण ६७ पारणो ६८ बाहण, ६९ पट्टावली, ७० गुर्वावली, ७१ हमचढी
 ७२ हीच, ७३ माला-मालिका, ७४ नाममाला, ७५ रागमाला ७६ कुलक, ७७
 पूजा, ७८ गोता, ७९ पट्टाभिषेक, ८० निर्वाण ८१ समय श्री विवाह वर्णन, ८२
 भास ८३ पद ८४ मजरी ८५ रसावलो ८६ रसायन ८७ रसलहरी, ८८ चद्रा
 वला, ८९ दीपक, ९० प्रदीपिका, ९१ फुलडा, ९२ जोड ९३ परिक्रम ९४ कल्प
 लता, ९५ लेख, ९६ विरह, ९७ मूदडी ९८ सत, ९९ प्रकाश, १०० होरी, १०१
 तरग, १०२ तरगिणी, १०३ चौक, १०४ हुडी १०५ हरण, १०६ विलास १०७
 गरबा, १०८ बोली, १०९ अमृतध्वनी, ११० हालरियो १११ रसोई ११२ कडा,
 ११३ भूलणा, ११४ जकडी ११५ दोहा, ११६ कुडलिया, ११७ छप्पय आदि ।^१

श्री नाहटाजी ने काव्य रूपों की सख्या ११७ दी है । कि तु मंगल रूप सख्या ८ और
 ५५ दो बार आ गया है और सख्या ८१ पर "समय श्री विवाह वर्णन" विवाह परक
 रचना है । ऐसी रचनाओं का समावेश विवाह विवाहला सना म हो जाता है ।

११ ३ । श्री नाहटा जी की उक्त ११५ काव्य रचनाओं की सूची में ङिगल और ङिगल
 काव्य रूप नहीं हैं तथा साखी, शब्द, परिषयो और भक्तमाल जैसे काव्य रूप भी छूट गये हैं ।
 प्राधुनिक राजस्थानी काव्य रूपों का भी उक्त सूची में समावेश नहीं है । अतएव श्री नाहटा
 जी द्वारा प्रस्तुत काव्य रूपों की उक्त सूची एकलौटी और सुर्यत जैन रूप पर आधारित ही
 प्रतीत होती है ।

१२ ३ । भाषा शैली की दृष्टि से राजस्थानी काव्य के निम्नलिखित भेद किये जाने
 चाहिए — (क) जैन काव्य, (ख) ङिगल काव्य, (ग) ङिगल काव्य, (घ) भक्ति काव्य एवं सत
 काव्य (ङ) लोफ काव्य और (च) प्राधुनिक काव्य ।

१ — प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा, भारतीय विद्या मन्दिर गोध प्रतिष्ठान, बीकानेर,
 पृ०-२-३ ।

क. जैन काव्य—

१३ ३। जैन काव्यों का वर्गीकरण (अ) कथा काव्य अथवा चरित् काव्य, (आ) ऋतु काव्य, (इ) उत्सव काव्य, (ई) नीति काव्य, (उ) स्तवन (ऊ) डाव, (ए) टन्वा एवं बालावबोध, और (ऐ) उपासित, वास्तु, आयुर्वेद रीति ग्रन्थ आदि शास्त्रीय विषयों पर आधारित काव्यों के रूप में किया जा सकता है।

ख. कथा - काव्य अथवा चरित् - काव्य

१४ ३। जैन काव्यों के अन्तर्गत आदर्श वस्तुओं के चरित्रों - सम्बन्धी अनेक कथा काव्यों उपलब्ध होते हैं। इन काव्यों के माध्यम से दान, शीघ्र तप और भावना नामक ब्राह्मण गुणों तथा शोध, मान, माया और लाभ नामक त्याज्य प्रवृत्तियों पर विशेष बल दिया गया है। इस विषय में कहा गया है —

दान शीघ्र तप भावना, चार चरित लहेस ।
क्रोध मान मायावली, लोभादिक परहरेस ॥ १

१५ ३। कथा अथवा चरित् काव्यों के रूप निम्नलिखित हैं — (१) रास, रासो, (२) चौपाई, (३) सधि, (४) चर्चरी, (५) प्रबन्ध चरित, आख्यानक, कथा।

(१) रास रासो—

१६ ३। रासपरक काव्यों की परम्परा हमारे साहित्य में बहुत प्राचीन है। रास अथवा रासो काव्यों की रासक, रासो, राइसो, राइसा, राइसठ, रासु, रायसा और रासा आदि भी लिखा गया है। रास शब्द की पुरातन विषय में अनेक मत प्रचलित हैं —

१ बीसलदेव रास में प्रयुक्त 'रसायन' शब्द से 'रासा' की उत्पत्ति हुई है।
— भाषार्थ प० रामचन्द्र शुक्ल ।^१

२ रासो शब्द की उत्पत्ति 'राजस्य' से है।
— गार्सिद तासी ।^२

३ रासो शब्द की उत्पत्ति "रहस्य" से है।
— राममुन्दर दास ।^३

४ रासो शब्द की उत्पत्ति "राजघरा" से है ।^४

१ - हेमरत्न इत अमर शब्दकोश, हस्त लि० प्रति, अमर जैन प्रयाग, धौकानेर ।

२ - हिंदी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, (स०२००३) पृ० ३२ ।

३ - हिन्दुई साहित्य का इतिहास ।

४ - हिंदी शब्द सागर ।

५ - भारतीय विद्या, पृ० ३, अ० १, पृ० ६६ ।

- ५ "रासो के मायने कृपा के हैं, यह रुद्रि गण है, एकदवन रासो, बहुदवन रासा ।"
—मुदी दी दवी प्रसा ।^१
- ६ "राजादेश" से रासो की उत्पत्ति हुई है ।" —डा० जार्ज प्रियर्सन ।^२
- ७ 'रासा' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द "रास" से है ।
—डा० गीरीशंकर हीराचंद शोभा ।^३
- ८ 'रासो शब्द' की उत्पत्ति 'रास' अथवा 'रासक' से है ।"
—पं० मोहनलाल विष्णुलाल पट्ट्या ।^४
- ९ "रास शब्द वस्तुतः संस्कृत भाषा का नहीं है प्रत्युत दशमी भाषा का है जो संस्कृत बन गया है ।"
— डा० शरण भाभा ।^५
- १० चरित्र काव्यों में रासो-प्रथ मुख्य है । जिस काव्य प्रथ में किसी राजा की कीर्ति विजय, युद्ध, वीरता आदि का विस्तृत बखान हो उसे रासो कहते हैं ।"
—पं० मातीलाल जी मेनारिया ।^६
- ११ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के मतानुसार 'रासक' शब्द को रामो की उत्पत्ति के लिए ग्रहण किया जा सकता है ।^७
- १२ 'रास या रासक मूलतः नृत्य के साथ गाई जाने वाली रचना विशेष है ।'
—के० का० शास्त्री ।^८
- १३ उद्यम या पचडे आदि से भी रासो के अर्थ लिए गये हैं ।^९
- १४ रास मुख्यतः गेय छंदा में लिखा जाता था, 'गरवो' को रास का उत्तराधिकारी भी बताया गया है ।^{१०}

१ - सरस्वती, भाग ३ पृ० ६८ ।

२ - वही, पृ० ६७ ।

३ - सम्मेलन पत्रिका, भाग ३३, सख्या १२, पृ० ६७ ।

४ - रासो की प्रथम सरला, उद्यमपुर ।

५ - हिंदी नाटक उद्यम और विकास, पृ० ७० (द्वितीय संस्करण) ।

६ - राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ० २४, सन् १९५२ ।

७ - सम्मेलन पत्रिका, भाग, ३३, सख्या १२, आश्विन, २००३ ।

८ - घाणसा कविघोष, भाग एक, पृ० १४३-१५२ और ४१६-४३२ ।

९ - साहित्य सदन, मद्र १९५१ ।

१० - दो बल्काग आक की गुजराती एण्ड राजस्थानी मेमुसक्रिप्टस इन दो इण्डिया प्राइसि मायबरी, ब्याक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, ब्याक्सफोर्ड १९५४ ।

१५ प० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी ने इसको मिश्र गेय रूपक मानने हुए रामो और रासक को पर्याय माना है। उनके मत में द्रुमचद्र के काव्य के आधार पर यह मिश्र गेय है।

१६ 'विविध प्रकार क रास, रासावलय, रासा और रासक छंदा, रासक और नाट्य रासक उपनाटकों, रासक, रास तथा रासा नृत्या और नृता स भी रासो प्रबंध परम्परा का निकट का सम्बन्ध रहा है यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता। कदाचित् नहीं रहा है।'
—डा० माताप्रसाद गुप्त।^१

१७ पहले "रासामो" का धर्मोपदेश मुख्य हेतु था। फिर उपदेश में कथा-तत्व और चरित्र-संकीर्तन आदि तत्वा का समावेश हुआ। साहित्य स्वरूप की दृष्टि से रासक एक नृत्य काव्य तथा गेय रूपक है।^२

१८ डा० भीम प्रकाश के अनुसार तीन विशेषताएँ रासा में पाई जाती हैं— (अ) वस्तु वर्णन, (आ) शैली, (इ) सक्रिय चित्र।^३

१९ राम शब्द का प्रयोग श्रीमद्भागवत् में गीत नृत्य के लिए हुआ है—

"रासोत्सव सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डल मण्डित"^४

इसमें द्रुपद आदि रागो का भी प्रयोग मिलता है—

'तदेव द्रुप मुनि-यै तस्मै मानं च बहदात्।'^५

२० विजयराय कल्याणराग वैद्य के मतानुसार रास छंद धार्मिक कथाओं के तत्वो से युक्त है।^६

२१ रास क नृत्य, अभिनय और गेय वर्तु — इ ही तीनों अंगो से समय या कर परस्पर मिलत जुतते किन्तु साहित्य की दृष्टि से विभिन्न तीन प्रकार के रासो की उत्पत्ति हुई। कुछ नृत्य विशेष रास कहलाए, इसी प्रकार श्रव्य रास और रासक उपरूपक बने।^७

१- हिंदी साहित्य का आदिकाल, पृ० ५६, सन् १९५२।

२- हिंदी अनुशासन, पृ० ४, अंक ४।

३- डा० मजुलाल र० मजुमदार, गुजराती साहित्यना स्वरूपो पृ० ६६ तथा ७१।

४- हिंदी काव्य और उसका सौंदर्य, पृ० १८-२०।

५- स्कंध १०, अध्याय ३३, श्लोक ३।

६- गुजराती साहित्य नी रूपरेखा, पृ० १६-२०, आवृत्ति पहली।

७- डा बंशरथ शर्मा, साहित्य-सांदेश, कुलार्थ १९५१।

२२ विरहाक के वृत्तजातिसम्बन्धय के "रासक" और स्वयम्भूत्त" व "रासा" का बताते हुए डा० हरिवल्लभ भायाणी न सदेव रासक म प्रयुक्त "रासा" नामक छन्द की चर्चा की है ।^१

२३ पृथ्वीराज रामा मे पाच स्त्रो पर 'रासा' छन्द होने का सूचना डा० विविन बिहारी त्रिवेदी ने दो और बताया— 'इतना तो कहा जा सकता है कि एक समय रामा मा रासो काव्य म अनेक विविष्ट छन्दा का व्यवहार इष्ट होकर शास्त्रोक्त हो गया था ।'^२

२४ रासक या रास का छन्द प्रभाकर^३ और हिनी छन्दप्रनाग^४ म एक छन्द विगण बताया है ।

२५ अनेक विद्वानो के मतानुसार रसपूर्ण होने म यह रचना रास कहलाई । 'गालिभ' सूरि कृत पंचपांडव चरित रामु (सन् १४१०) में लिखा है—

‘ रासि रसाउनु चुणीजई ।’^५

२६ जिनन्तसूरि के "उपदेश रमायन रास" से लघुड रास और ताला रास का पता चलता है । ये रास खेले भी जाते थे । कवि के अनुसार दिन में लघुड रास और रात्रि में ताला रास क खेल वर्जित है—

ताला रामु विदित न रयणि हि,
दिवसि वि लघुडा रमु सहु पुरिसि हि ॥

इसकी पुष्टि इन उदाहरणो से ही जाती है—

ताला रामु रयणि नहि देह लउडा रमु मूलह बारेह ।^६

और—

पीछे ताला रस पडइ बहु भाट पढता ।
अनइ लकुट रास जाईइ खेला नाचता ॥^७

और रेवतगिरि रास (स० १२८८)—

१ — सदेव रासक, मुनि श्री जिनविजय जी, भारतीय विद्या मयन बम्बई, प्रस्तावना ।

२ — रेवातट समय भूमिका पृ० १३४ १३५ ।

३ — श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' कृत पृ० ५६ ।

४ — श्री रघुनन्दन गायत्री कृत, पृ० २४५ ।

५ — गुजररासावली जी० प्रा० एत० सी० अठारह ।

६ — जगद रचित सम्यक्खे चौपाई ।

७ — सप्तशेरी रास, (प्रा० गृ० का० स० पृ० ५२) ।

रगिहि ए रमई जो रासु मिरि विजयमेण सूरि निम्भविज्जए ।

जिनोदय सूरि 'पट्टाभिवेक' रास (स० १४१५)—

नाचई ए नयण विशाल, चदवयणि मन रग भर ।
नव रगि ऐ रासु रमति, खेला खेलिय सुष परिवरे ॥

कान्हड रे रास (स० १५१२)—

फल्या मनारथ पूगो आस, ठामि ठामि दिवराइ रास ।^१

२७ भाव प्रकाश म शास्त्रातनय ने तीन प्रकार के रामक का वर्णन किया है—

लता रामक नाम स्याद्नत्त्रेया रामक भवेत् ।
दण्डरासकमेकतु तथा मण्डलरासकम् ॥

घोर रामक नामक गेय नाच्य का उल्लेख उपरूपको में किया गया है—

काव्य च प्रेक्षण नाट्यरासक रासकं तथा
उल्लाप्यकच हल्लीसमथ दुर्मल्लिकाऽपि च ॥

हमचंद्र—

गेय-डोम्बिका भाण प्रस्थान शिगक भाणिका प्रेक्षण
रासकीड हल्लीसक रासक-गोष्ठी श्रीगदित राग काव्यादि ॥^२

वाग्भट्ट^३ (द्वितीय) घोर कवि विद्वनाय—

नाटिका त्रोटक गोष्ठी सहक नाट्यरासकम्
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेखन रासक तथा ।^४

रासक में अनेक प्रकार के तान और लय, ६४ तक के युगल और कामल उद्धत-गेय रूपक तथा अनेक नर्तकियाँ भी होती हैं—

अनेक नर्तकी योज्य चित्र ताल लयान्वितम् ।
आचतुषष्टि युगलाद्रासक मुसणोद्धतम् ॥

डा० दयामण्डलदास^५ श्री वाजेद^६ और श्री ब्रजराजदास^७ प्राणि न हिन्दी साहित्य में उपरूपक के १६ भेदों में से नाच्यरासक को भी एक भेद माना है ।

१ - पृ० ५६, खण्ड १, २३६ ।

२ - वायानुगासनम् ।

३ - काव्यानुगासनम् ।

४ - साहित्य दण्ड ।

५ - परि० ६ ।

६ - रूपक रहस्य ।

७ - हिन्दी नाटक साहित्य ।

८ - हिन्दी काव्य शास्त्र ।

२८ हिन्दी साहित्य के ल' के समुगार रामो नाम मे अभिहित कृतिगो दो प्रकार की है— एक धो गीत-मृग परक जो राजराम तथा पुनराज मे विभेय कए ते मपूठ हुई और दूसरी छन्द बेविध्य परक जो पूर्वो राजराम तथा रोष हिन्दी प्रेस मे अधिक विकसित हुई ।^१

१७ : ३ । भीमदमागवद् क राम भीमा प्रगग मे ज्ञात होता है कि राम का सम्बन्ध मूलतः शृ गारिक मृदगीत मे है । निम्नलिखित श्रुतियों मे भी राम का सम्बन्ध शृ गारिक मृदगीत मे प्रकट होता है—पाइमस्यो नाममाया^२ 'रामो ह्मीगदा', देगी नाम माला के 'हलीसो रासक'^३ 'मन्देन स्त्रीणा मुताम्' तथा कुरणो रासक^४ 'पाइम सह महण्णवो' क रास-रासक^५ और रिपुणो रास ।^६

१८ : ३ । रस मूलत मोदिक और शृगारिक गीत रहे है जिनके साधार पर केन कविया ने धार्मिक रास लिखे । धीरे धीरे इन रास गीतों ने परिवर्तित होत हुए प्रबन्ध काव्य गैसी का रूप धारण कर लिया ।

(२) चउपई —

१९ : ३ । "चउपई" अर्थात् चौपाई छन्दा मे रचित होने से इन रचनाओं को चउपई संज्ञा से अभिहित दिया गया ।

(३) सधि —

२० : ३ । अनेक महाकाव्यों मे सर्ग से तात्पर्य सधि लिया गया है । हेमचन्द्राचार्य ने महाकाव्य के सधण बताते हुए लिखा है—

"पद्य प्रायः संवृतप्रावृतापन्न क्षाग्राम्यभायानिबद्धभिन्नवृत्तसर्गा-
श्वाससन्ध्यवस्वधकबधसत्संधिशब्दार्थवैचित्र्योपेत महाकाव्यम्"

कुछ सधि विषयक काव्य निम्न हैं—

(१) आनंद सधि विनयचंद्र, (२) गीतम सधि १४ वीं शताब्दी, ह० प्रति श्री अग्रज्य जैन ग. गाल्ज्य बीकानेर तथा जै० गु० का० भाग १, ३, (३) मृगापुत्र सधि

१ - पृष्ठ ६५६ ।

२ - धनपाल कृत, ३७ ।

३ - हेमचन्द्र कृत, ८ । ६१ ।

४ - वही २ । ३८ ।

५ - प० हरगोविन्ददास मोक्षमचन्द्र सेठ, कलकत्ता, सं० १९८५ ।

६ - मधु मारती, पद्य ४ अंक २, गुजरात, १९५६, डा० बसराय शर्मा का निबन्ध ।

(१५५०)—कल्याण तिनक (४) नन्द मण्मिहार सत्रि (१५५७)—बाहचन्द्र (५) उदाह
राजपि सधि (१५६०) तथा गजनुकुमाल सत्रि (१५६०)—सयम मूर्ति (६) जिनपालिन
जिन रक्षित सधि (१६२१)—कुशललाम (७) गजनुकुमाल सन्धि (१५५३) मूलप्रम,
(८) सुबाहु सधि (१६०४)—पुष्पसागर, (९) हरिकेशी सन्धि (१६४४) कनक साम,
(१०) चउसरण प्रकीर्णक सधि (१६३१) चरित्रमिडु (११) भावना सन्धि (१६४६)—
जयसोम (१२) अनायी सन्धि (१६४७)—विमल विनय (१३) कवचना सत्रि
(१६५१)—गुणविनय, आदि ।

(४) चर्चरी —

२१ ३ । संगीतबद्ध रवना राग रागिनियो में बाध कर नृत्य के साथ गाई जाती
है वह चर्चरी कहलाती है । जिनदत्त सूरि की रचना जिननत्नम सूरि की स्तुति सपञ्चम
काव्यत्रयी में है ।^१ हिंदी और प्राकृतपैंगलम् में इसकी छन्द बताया गया है ।^२ य रचनाएँ
चौदहवीं शताब्दी से मिलना आरम्भ हुई हैं ।^३

(५) प्रबन्ध, चरित्र, आख्यानक और कथा —

२२ ३ । जन कविद्या ने अनेक रचनाएँ प्रबन्ध चरित्र आख्यानक और कथा
का या के अंतर्गत लिखी हैं । अर्थात् चरित्र प्रबन्ध मुख्य घटना का उल्लेख इन नामों से
पहले करने की परम्परा रही है ।

(आ) ऋतुकाव्य

२३ ३ । ऋतु का या के अंतर्गत (१) फागु, (२) धनाल, और (३) बारह
मासा परक रचनाओं का समावेश होता है ।

(१) फागु काव्य —

२४ ३ । वसंत ऋतु में गेय रहे हैं । होली के अवसर पर फागु क साथ इन रच
नामों का सम्बन्ध होने से इहे फागु कहा गया । फागु नाम की व्युत्पत्ति व विषय में
अनेक मत हैं—

१ डा० भोगोनाल साडेसरा संस्कृत फल्गु प्रा० फल्गु फागु

२ श्रु गारिक विषयो के आधार पर के० का० शास्त्री ने, इसे फागुवाल कहा है ।^४

१ - गायत्र्याड श्रीरियटल सिरीज में प्रकाशित ।

२ - हिंदी छन्द प्रकाश पृ० १३१ तथा हिंदी काव्यशास्त्र, पृ० २०४ ।

३ - जनसत्त्वप्रमाण, पृ० १२, अंक ६, में श्री हीरालाल कापडिया का 'चर्चरी' नामक लेख ।

४ - प्रापणा कवीश्री पृ० २३३ ।

- ३ श्री कालीलाल बलदेवराम व्यास के मतानुसार सा० फाल्गुन-अ० फल्गु पु० १० रा० फागु । फागुन में बसंत अपनी पूर्ण यौवन पर हाती है । इस समय के मादकता से भरे हुए गान को फागु कहते हैं ।^१
- ४ जिस प्रकार संस्कृत में यमकबद्ध अनुप्रासमय काव्य होते हैं, वैसी रचना को भाषा में फागबद्ध कहा जा सकता है ।^२
- ५ श्री लाल चंद्र गांधी के मतानुसार फागु शैली विषय के आधार पर विविध तत्वों से युक्त है ।^३
- ६ अक्षय चंद्र शर्मा के अनुसार यह मधुमहोत्सव रूपी गेय रूपक है ।^४
- ७ फागु मूल में लोक साहित्य का गीत-स्वरूप है — डा० म० २० मजुमदार ।^५
- ८ देशीनाम माला में बसंतोत्सव कहा गया है फागु-महुच्छद ।^६ संस्कृत फल्गु से भी इसकी उत्पत्ति इसी आधार पर दिखाई गई है ।^७ स० फल्गु प्रा० फगु (अथवा देश्य फगु)-जू०गु० फागु फाग ।
- ९ डिगलकोष में भी फाल्गुण, और फागण, फाल्गुण के पर्याय दर्शाए गये हैं ।^८

फागु काव्य गेय होने के साथ ही नृत्य के साथ अभिनेय भी होत थे । धुनिभद्र फागु (१४ वीं शताब्दी) में लिखा है—

खरतर गच्छि जिए पन्म सूरि किम फागु रमेवउ ।
खेला नाचइ चेत्र मासि रगिहि गावेवउ ॥^९

जैन कवियों द्वारा लिखित फागु काव्यों में शृंगार का अभाव मिलता है । शृंगार रस परक फागु काव्य जनता में लोकप्रिय थे । 'बसंत विलास' नामक फागु काव्य शृंगार रस का उत्तम उदाहरण है ।^{१०} जैन कवियों ने लोक प्रचलित शृंगार रस परक फागु काव्य परम्परा का अनुसरण करते हुए शत रस परक काव्यों की रचना की ।^{११}

१ — बसंतविलास । भूमिका पृ० ३८ ।

२ — जन सत्यप्रकाश, वष १२ अंक ५ ६, पृ० १६५ ।

३ — वही, वष ११, अंक ७ पृ० ११२ ।

४ — नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वष ५६ अंक १, सन् २०११, पृ० २५ ।

५ — गुजराती साहित्य ना स्वहपो पृ० २०१ ।

६ — धष्ट वग ॥८२॥ पृ० २४३ (कलकत्ता),

७ — गुजराती साहित्य ना स्वहपो, पृ०, १६६, टिप्पणी ।

८ — परम्परा डिगलकोष कविराज मुरारीदास, पृ० १७२, पृ० १८४ ।

९ — धी सी० डी० दलाल प्राचीन गुजर काव्य-संग्रह, पृ० ४१ ।

१० — प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

११ — राजस्थानी फागु काव्य की परम्परा और विशिष्टता, सम्मेलन पत्रिका में श्री अण्णर चंद नाहटा का निबंध ।

(२) धमाल —

२५ ३। राजस्थान में होली के घवसर पर गेय गीता को धमाल कहा जाता है। होली के घवसर पर गाई जाने वाली एक राग का नाम भी धमाल है। जैन कवियों ने धमाल परम्परा में अनेक धार्मिक धमालें लिखी हैं। यथा—भापाठ भूति धमाल, भाद्र कुमार धमाल (वनक सोम), नेमिनाथ धमाल (सालदेव) आदि।

(३) बारहमासा —

२६ ३। बारहमासा काव्यों में मुख्यतः विप्रलभ ७ गार का समावेश होता है। ऋषि वर्ष के प्रत्येक मास की परिस्थितियों का चित्रण करते हुए नायिका का विरह वर्णन करते हैं। बारहमासा का वर्णन प्रायः भापाठ से प्रारम्भ होता है। जैन कवियों ने बारहमासा परम्परा के अन्तर्गत अनेक कृतियाँ लिखी हैं। जैसे—नेमिनाथ बारमास चतुष्पदिका (१३५३), विनयचन्द्र सूरि,^१ नेमिनाथ राजिमति बारमास चारित्रकलण,^२ नेमिनाथ बारमास वैल प्रबन्ध (१६५०)—गुणसौभाग्य^३ श्री धररचन्द जी नाहुटा ने अपने एक निबन्ध में “बारहमासा की प्राचीन परम्परा” पर विस्तृत प्रकाश डाला है।^४

(३) उत्सव-काव्य

२७ ३। उत्सव-काव्यों के अन्तर्गत विवाह, दीक्षा आदि उत्सवों का वर्णन रहता है। जिस काव्य में विवाह का वर्णन रहता है उसको विवाहलउ, विवाहणी, विवाहना आदि तथा विवाह के अन्तर्गत गाए जाने वाले गीतों को धवल और मगल कहा गया है। विवाहला परक रचनाओं में जिनेश्वर सूरि कृत “सयम श्री विवाह वर्णन रास” और “जिनोदय सूरि विवाहला “अब तक प्राप्त हुई रचनाओं में प्राचीनतम हैं। तरहवी सगी में रचिन जिनपति सूरि “धवल गीत” धवल परक रचनाओं में प्राचीनतम माना गई है।^५ विवाहोत्सव सम्बन्धी कतिपय रचनाएँ इस प्रकार हैं—

- (क) भाद्र कुमार विवाहलउ (१४६३)
- (ख) महावीर विवाहलउ (१५ वीं शताब्दी)—कौतिरत्न सूरि
- (ग) नेमि विवाहलउ (१५०५)—जयसागर
- (घ) शान्ति विवाहलउ (१६ वीं शताब्दी)
- (ङ) दालिमद्र विवाहलउ (१५६८)—सकमण
- (च) जम्बू अन्तरंग रास विवाहलो (१५७२)—सहजसुन्दर
- (छ) पार्श्वनाथ विवाहलउ (१५८१ में पहले)—पेयो

१ - प्राचीन गु० का० स० ।

२ - गुजराती साहित्यना स्वरूपो पृ० २७६ ।

३ - धही, पृ० २८२ २८३ ।

४ - हिन्दी अनुशीलन, दृष्य ६, अंक ५, स० २०१० ।

५ - जैन सत्यप्रकाश, पृ० ११, अंक १० ११ ।

- (ज) शानिनाय विवाहलो घवन प्रबन्ध (१५६१)—आणन्द प्रमोद
(झ) सुपार्व्वजिन विवाहलो (१६३२)—ब्रह्मविनयदेव ।

(ई) नीति-काव्य

२८ ३। जैन कवियों ने प्रायः प्रत्येक कृति में उपदेश ज्ञान एवं नीति का किसी न किसी रूप में समावेश किया है। जैन कवियों का मुख्य दृष्टिकोण धार्मिक प्रचार करना रहा है। नीति काव्य के अन्तर्गत अनेक सवाह, कक्का मात्रिका, बावनी सुनक और हियाना परक रचनाओं का समावेश होता है। सम्वादपरक रचनाओं में दो विराधी पक्षों का सम्वाद लिख कर जैन कवियों ने अपने पक्ष की शक्ति में विजय बताई है। सम्वादपरक रचनाओं के द्वारा जैन कवियों ने अपने सिद्धांतों का प्रचार को दृष्टि से सरल रूप में प्रस्तुत किया है। सम्वाद सम्बन्धी कतिपय रचनाएँ इस प्रकार हैं—

- (क) सहजसु दर आखि-कान सम्वाद, यौवन जरा सवाद ,
(ख) लावण्यसमय, कर-सवाद (१५७५) रावण-मदोदरी सवाद
गोरी-सावली गीत ।
(ग) हीरकलश, जीम-दात-सवाद (१६४३),
मोती-कपासिया सवाद (१६२६)
(घ) नरपति जिह्वा-दात सवाद, सुखड-पचक सवाद (१६ वी शताब्दी)
(ङ) श्रीघर रावण-मदोदरी-सवाद (१५६५)।

(उ) कक्का

२९ ३। कक्का उन रचनाओं को कहते हैं जिनमें वणमाना के बावन वर्णों में से प्रत्येक वर्ण से रचना का प्रारम्भ किया जाता है। कक्का बारहहत्ती परक रचनाएँ तेरहवों शब्दों से उपलब्ध होती हैं।^१

(ऊ) स्तवन

३० ३। स्तुतिपरक काव्यों को स्तवन कहा जाता है। ऐसे काव्यों को स्तुति, स्तान्न, सज्जाय, वीनती और नमस्कार भी कहते हैं। इनका सम्बन्ध तीर्थंकरों महापुरुषों, तीर्थों, साधुओं और महाशक्तियों आदि से होता है।^२

(ए) टव्वा और बालावयोव

३१ ३। मूल रचना का स्पष्टीकरण हेतु पत्र का किनारा पर टिप्पणियाँ लिखी जाती हैं उन्हें टव्वा कहते हैं और विस्तृत स्पष्टीकरण का बालावयोव कहा जाता है।

१ - प्राचीन गुजरात काव्य-संग्रह ।

२ - राजस्थानी भाषा और साहित्य, भा० माहेदवरी पृ० २५५ ।

(ए) ज्योतिष, वास्तुशास्त्र, आयुर्वेदादि शास्त्रीय विषयों पर आधारित काव्य

३२ ३। जीन कवियों ने धार्मिक विषयों के साथ ही ज्योतिष वास्तुशास्त्र आयुर्वेद आदि शास्त्रीय विषयों पर भी काव्य रचना की है। हीरकलश कुल जोइस हीर' धकुन सोलहो^२ आदि अनेक ग्रंथ शास्त्रीय विषयों पर लिखित उपलब्ध होते हैं।

१ “द्विगल” का नामकरण—

३३ ३। द्विगल राजस्थानी काव्य की एक विशेष शैली है। द्विगल का विकास प्राचीन मरु-भाषा के आधार पर हुआ और कालांतर में रस शैली की राजस्थान के प्रायः समस्त भागों के कवियों ने अपनाया। द्विगल शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत हैं—

१ डा० हरप्रसाद शास्त्री ने द्विगल शब्द का सम्बन्ध ‘द्वगल’ से जोड़ा है और ‘द्वगल’ का अर्थ मिटटी का ढेला माना है। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं—

दीसे जगल दगल, जेथ जल बगल चाढे ।
अनहुता गल दिये, गला हुता गल काढे ॥

शास्त्री जी ने इन पंक्तियों का लेखक चौहवीं शताब्दी का माल्हा चारण लिखा है। वास्तव में यह छन्द १७ वीं सदी में हुए कवि मल्लू जी का है और उनके छप्पय का एक पद्य ही है। पूरा छप्पय शुद्ध रूप में इस प्रकार है—

दीसे जगळ-दगळ, जेथ जळ बगळा चाढे ।
अणहुता गळ दिये, गळा हुता गळ काढे ॥
मच्छगळ्यागळ माहि, ग्वाळ ह्वै गळी दिखाले ॥
गळी डाळ फळ गजी गजी डाळा फळ गाळे ॥
नगळै असुर सुर नाग नर, आपण चै कुळ उधरे ।
अनत रे हाय मगळ-अमगळ, कई भगळ विद्या करे ॥

इस छप्पय का अर्थ निम्नलिखित है।

१ - भास्कर किरण, दो भाग, ४।

२ - समय जन प्रत्यासथ, बीकानेर।

३ - प्रिलिमिनेरी रिपोर्ट आन दी आपरेशन इन सध आफ मेन्गुल्किण्टत आफ् आरार्थिक कोनिकल्स, १९१३, पृ० १५।

जहाँ जगल और मिट्टी के ढले दिखाई देते हैं वहाँ ईश्वर बगलो तक पानी चढ़ा देता है। वह भूतो को भोजन देता है और किसी के गले से भोजन निकाल लेता है। कठिनाई के समय ईश्वर ग्वालरूप धारण कर मार्ग-दर्शन करता है। वह गली (सूखी) डालियो पर फल लगाता है और फलपुक्त डालियो को सुखा देता है। वह सुर अमुर नाग और नर को निगल जाता है तथा अपने भक्तों का उद्धार कर लेता है। मंगल-अमंगल सब ईश्वर के हाथ में है, वह अनेक इद्रजाल की क्रियाएँ करता है अथवा इद्रजाल की क्रियाएँ करने में कोई लाभ नहीं है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने ईश्वर की शक्तिमत्ता का ही इस छन्द में चित्रण किया है। इसमें वहीं भाषा का नाम अथवा प्रसंग नहीं है। इस छन्द में शास्त्री जी के यह लिखने का कोई आधार ही नहीं है— इसमें स्पष्ट है कि जगल देश अर्थात् मरु-देश अथवा मारवाड़ जा कि प्राचीन कुरु जगल है की भाषा डगल नहीं गई।^१

(२) डा० श्यामसुन्दर दास ने लिखा है कि जो लोग ब्रज भाषा में कविता करते थे उनकी भाषा पिगल कहलाती थी और इसमें भेद करने के लिए मारवाड़ी भाषा का उमी ध्वनि में घडा हुआ डिंगल नाम पडा।^१ वास्तव में डिंगल का साहित्य ब्रजभाषा साहित्य में अथिब प्राचीन है इसलिए केवल अनुमान से पिगल के आधार पर डिंगल नाम का अचलन मानना युक्तिमगत नहीं है।

३ डा० तमीतारी ने लिखा है कि डिंगल एक विशेषण मात्र है जिसका अर्थ "अनियमित" होता है। पिगल अर्थात् ब्रज भाषा परिष्कृत भाषा मानी गई और इसमें सामने डिंगल अपरिष्कृत अथवा गवारू भाषा रही।^२

डा० तमीतारी ने अपने मत के आगे स्वयं ही "संभवतः" लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि यह मत उनका अनुमान मात्र है। डिंगल वास्तव में शिक्षित आरणा द्वारा अथनाई गई होती है। आरणा का सम्मान राजपूतबारा में भा रहा है। ब्रज भाषा की भाँति डिंगल में भी अर्थकार, छन्द और रसादि के नियमों का पालन होता रहा है। डिंगल का व्यवहार सिद्ध समाज में होता रहा है। इस प्रकार डा० तमीतारी का अनुमान आधारहीन है।

४ श्री गजराज भाभा के मतानुसार "ड वर्ण की प्रधानता होने में इसका नाम डिंगल हुआ।"^३

१ - हिन्दी गद्य-भाषा, बानी नागरी प्रचारिणी सभा, भूमिका पृ०, २८।

२ - जनत एण्ड प्रोमीडिंगम आफ लिंग्वाटिक सोसायटी आफ बंगाल बोल्डूम १० पृ० २६७।

- डिंगल भाषा नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग १४, बंगाल संवत् १९६०, पृ० १२७-१४८।

किसी वर्ण की प्रधानता होने के आधार पर भाषा का नामकरण नहीं होता। साथ ही यह मान लेना भी अनुचित है कि डिगन में 'ड' वर्ण की प्रधानता है। उदाहरणस्वरूप महाराज पृथ्वीराज के सुप्रसिद्ध डिगन काव्य 'वेना' का निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं—

सकुण्डित समममा स था समये ,
रति वाञ्छिति रुचमणि रमणि ।
पथिक बहू द्विडि पव पलिया ,
कमन पत्र सूरिज किरणि ॥ १

वास्तव में श्री गजराज भोभा का मत उनकी कल्पना मात्र है।

५ श्री जुगनसिंह खीची ने डिगन का 'ट'कार बहुधा मानते हुए डिगन का व्युत्पत्ति कल्पित की है।^२ श्री भोभा के मत के विषय में प्रकट की गई उक्त समीक्षा के अनुसार श्री खीची का मत भी माय नहा हो सकता।

६ श्री पुरुषोत्तमनाथ स्वामी के अनुसार डिगल 'ड' डिम + गन से बना है। 'डिम' का अर्थ डमरू की ध्वनि और 'गल' का गले से तात्पर्य है। डमरू का ध्वनि रणचढो का आह्वान करती है तथा वारो को उत्साहित करने वाली है। डमरू वीर रस का देवता महादेव का बाजा है। गले से जो कविता निकल कर डिम् डिम् का तरह घीरो के हृदय का उत्साह से भर दे उसी का डिगल कहते हैं। डिगन भाषा में इस तरह की कविता की प्रधानता है। इसलिए वह डिगन नाम से प्रसिद्ध हुई।^३

वीर रस का देवता महादेव न होकर इन्द्र माने गये हैं। श्री मोतीलाल जो के मता अनुसार— 'महादेव रौद्र रस के प्रतिष्ठाता हैं। फिर डमरू की ध्वनि की भाँति उत्साहबद्ध के घोर गले से निकली हुई कविता का गठन इन तो द्विष्टुन युक्तिशून्य और हास्यास्पद है।'^४

७ श्री जगन्नील सिंह गहलोत के मतानुसार "यह डिगल शब्द डिम और गन शब्द से मिलकर बना है। इसका अर्थ ऊँची बोला है। क्योंकि इस भाषा के कवि उच्च स्वर से अपनी कविता का पाठ करते हैं। व्रज भाषा की कविता में ध्वनि उच्च नहीं होता।'^५

सम्पूर्ण डिगन काव्य ऊँच स्वर में नहीं पढ़ा जाता, साथ ही उच्च स्वर और निम्न स्वर के आधार पर किसी भाषा शब्दों का नामकरण करना शोचनीय करना है।

१ - ध्रुव सं० १६२ सं० डा० ध्यान-प्रकाश दीक्षित, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर पृ० ३४।

२ - राजस्थानी भाषा और साहित्य की भाँकी साहित्य-सेवा, जुलाई १९५४।

३ - भा० प्र० प० भाग १४, पृ० २५५।

४ - राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद, पृ० २५।

५ - राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० १११-११०।

८ मु शी देवीप्रसाद ने भी ढिगी झयवा ढिगा वा मय ऊ चा मानते हुए इही शब्द का आधार पर ढिगल की व्युत्पत्ति निश्चित करन का प्रयत्न किया है।^१ श्री गहलोत के उक्त मत की भांति मु शी जी का मत भी निरी कल्पना पर आधारित है।

९ श्री मोतीलाल जी का मतानुसार ढिगल शब्द ढीगल का परिवर्तित रूप है इसकी उत्पत्ति ढीग श द क साथ ल प्रत्यय जोडन से हुई है। और इसका अर्थ है ढीग से युक्त अर्थात् अतिरजनापूण।^२

ढिगल शब्द में ल' प्रत्यय नहीं कि तु 'इल प्रत्यय है। अतिरजना से किसी भी प्रकार का साहित्य प्रकृत नहीं होता। इसलिए यह मत भी कल्पना पर आधारित प्रतीत होता है।

१० किशोरसिंह वाहरपत्य के अनुसार ढिगल शब्द की व्युत्पत्ति "ढीङ विहायसा गती" से हुई है। यह 'ढी' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'उड़ने वाली'। बदरीदान जी कविता और सत्येश जी झाड़ा भी इस मत का प्रतिपादक हैं। यह कविता उड़ने वाली कहलाती है क्योंकि यह ऊँच स्वर से पढ़ी जाती है।

(११) उक्त मत का समर्थन करते हुए उदयराम उज्जवल कहते हैं "पिगल भाषा गंगा यमुना के निकटतम प्रदेशों की भाषा है जो साहित्यशास्त्र के नियमों की शृंखला में बचती हुई है। मत ढिगल के कवि पिगल को "पिगली (पगु) भाषा" कहते हैं और ठीक इसके विरुद्ध में ढिगल भाषा को उड़नेवाली भाषा कहते हैं। ढिगल में साहित्यशास्त्र के बंधन प्रायः नहीं हैं और छंदों का अधिक विस्तार न होने से कवि की इच्छानुसार शब्दों का प्रयोग होता है। इस कारण उनकी घटत बढ़त सरसता से हो सकती है। ढगल शब्द न बिगलताओं का सूचक है। इसी से ढिगल बना है।^३ श्री उदयराम जी ने 'ढगल' के निम्न निश्चित अर्थ बताये हैं—

(अ) ढग = पाखें। ल = लिए हुए। पाखें लिए हुए = पाखें वाली = उड़नेवाली = स्वतंत्रता से चलने वाली।

(आ) ढग = मन्वा बटम = तेज चाल। ल = लिए हुए = तेज चाल वाली।

(इ) ढगल = ढीला जिसके अंग या जोड़ हड़ता से गठे हुए नहीं होते, ढीले होते हैं, उसको भी ढगल या ढगलो या ढगना कहते हैं। ढिगल भाषा भी पिगल के समान नियमों से मुगटित नहीं है।

१ - श्री मारवाड़ी मन्, भाट और चारणों का हिन्दी भाषा संबंधी काम, पृ० २०५।

२ - सा० भा० और सा० पृ० २७ २८।

३ - अन्वयान्त भारती भाग २, माघ ११४६, पृ० ४२ ४८।

(ई) डगल - कई से भरा हुआ शीतकाल में पहनने का वस्त्र विशेष । यह ढीला होने से डगल, डगलो, या डगला कहलाना है जा शरीर को चमने फिरने व मुडने की स्वतंत्रता का नही राकता, इसी प्रकार डिंगल भाषा में कवि की गति स्वतंत्र रहता है ।

इस मत का न मानने के कई कारण हैं । डिंगल में काव्य शास्त्रीय नियम पिंगल की अपेक्षा सरल नही होते । डगल का डिंगल अर्थ पर्याय न होकर कल्पना ही माना जा सकता है ।

१२ डा० सुनीति कुमार चातुर्वर््या न इस विषय में लिखा है, 'मध्ययुग की मारवाडी के आधार पर पिंगल की प्रतिस्पर्धी साहित्यिक भाषा डिंगल भी प्रकट हुई ।' राजपूताने के भाट और चारण्य ने पिंगल की अनुकारी एक नई कवि भाषा मारवाडी के आधार पर बनाई जो डीगल या डिंगल नाम से अब परिचित है ।^२

डिंगल कविता पिंगल की अपेक्षा अधिक प्राचीन है और डिंगल तथा पिंगल दोनों ही नाम एक साथ प्रचलित हुए हैं । ऐसी अवस्था में यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि डिंगल और पिंगल में से कौन शब्द किसके आधार पर बना है ।

१३ श्री गणपतिचंद्र ने लिखा है, "राजस्थान में बहुत पहले कोई डगल नाम का अर्थान छोटा सा प्रदेश था जो अब गायद इतिहास के गत के कारण लुप्त हो गया है । इस डगल के रहने वालों का भाषा डिंगल कहलाई ।" डा० हरप्रसाद शास्त्री द्वारा उद्धृत दाह के विषय में श्री गणपतिचंद्र ने लिखा है, "दाहे के अर्थ से स्पष्ट है कि लेखक का अर्थ सिवा किसी प्रयोग विशेष के नाम से और कोई अर्थ नहीं निकाला जा सकता है ।"^३

श्री हरप्रसाद शास्त्री की भाँति श्री गणपतिचंद्र ने भी सम्बंधित पूरे छंद की रचन और उसके तात्पर्य को समझने का प्रयत्न नही किया है । राजस्थान में किसी डगल प्राल का होना और उसकी भाषा डिंगल के नाम से प्रसिद्ध होना प्रमाण शून्य है ।

१४ श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने लिखा है 'डिंगल केवल अनुकरण शब्द है । काफिया न मिलेगी तो बोझो तो मरेगा' की कहावत के अनुसार पिंगल से भेद दिखलाने के लिए बना दिया गया है । -डिंगल एक यहद्वयात्मक शब्द है, डित्थ आदि की तरह इसका कोई अर्थ नही है ।

श्री गुलेरी जी का मत सर्वथा अनुमानात्रित है ।

१५ श्री नरोत्तमराज जो स्वामी ने डिंगल के विषय में लिखा है, "पिंगलानुमोदित

१ - राजस्थानी भाषा राजस्थान विश्वविद्यालय, साहित्य संस्थान, उदयपुर पृ० ५८ ।

२ - वही पृ० ६५ ।

३ - साहित्य-संदेह. छात्रा. मार्च १९०१ ।

छन्दों में लिखी गई कविता की भाषा पिगल नाम से प्रसिद्ध हुई। उसी के बजन पर पिगल के छन्द से भिन्न गीता में लिखी कविता की भाषा का डिगल नाम पड़ा। इस प्रकार डिगल छन्द जैसा कि गुलेरी जी कहते हैं—निरर्थक है और पिगल के बजन पर बन गया है।^१

उक्त मत के विपरीत श्री स्वामी जी ने यह भी लिखा है—“बुद्धलनाम रचित पिगल शिरोमणी ग्रंथ में उडिगल नागराज का एक छन्द शास्त्रकार के रूप में उल्लेख हुआ है।—जब डिगल गीतों का आविष्कार हुआ तो उनका सम्बन्ध भी किसी प्राचीन महापुरुष से जोड़ना आवश्यक जान पड़ा और पिगल नागराज के समान उडिगल नागराज की कल्पना की गई। यह उडिगल शब्द ही डिगल का मूल है।”^२

पिगल के बजन पर डिगल शब्द प्रचलित होने के विषय में पहले लिखा जा चुका है कि कोई सम्भावना नहीं है, क्योंकि डिगल शास्त्रात्मकतः पिगल से भी प्राचीन काव्य गैली है। पिगल नागराज के अनुसार उडिगल नागराज की स्थापना करना और उसी उडिगल का आधार पर डिगल की कल्पना का भी कोई ठोस कारण नहीं प्राप्त होता। साथ ही “ग्रन्थ उडिगल नाम माला लिख्यते” के स्थान पर ‘ग्रन्थ उडिगल नाम माला’ पाठ भी ग्रहण किया जा सकता है।^३

३४ ३। किसी ठोस और अकाट्य प्रमाण के अभाव में ‘डिगल’ नाम के विषय में प्रकट किये गये उक्त मत स्पष्टतः कल्पना पर आधारित प्रतीत होते हैं और ‘वाग्विलास’ के उदाहरण मात्र हैं। ‘डिगल’ शब्द के विषय में अन्य अनेक कल्पनाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं जैसे—हमारा प्राचीन वैदिक साहित्य पठन गुप्त अर्थात् शिक्षा, कल्प व्याकरण, निरुक्त छन्द और ज्योतिष सम्बन्धित माना गया है—

शिक्षा कल्पहि जानिषे, श्री व्याकरण निरुक्ति ।
 छन्द नाम वणत सुकवि, पुनि ज्योतिष सजुक्ति ॥
 वेद पठन की विधि सबै, शिक्षा देन लखाय ।
 सब करमन की रोति जो, कल्पहि ते दरसाय ॥
 शब्द बुद्धाशुद्धि को ज्ञान व्याकरण जानि ।
 कठिन पदन के अर्थ की, कहै निरुक्ति बखानि ॥
 अक्षर मात्रा वृत्ति को, ज्ञान छन्द सो हाय ।
 ज्योतिष काल ज्ञान इमि, वेद पठन जोय ॥^४

१ - राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० हीरासात जी माहेश्वरी, पृ० १६ ।
 २ - राजस्थानी साहित्य, एक परिचय, पृ० १२ १३ ।
 ३ - पिगल शिरोमणी, श्री नारायणसिंह माटी, परम्परा प्रकाशन राजस्थानी शोध-संस्थान जोधपुर, पृ० १४५ ।
 ४ - कुसुमी गार्ग्य प्रकाश, श्री कृष्णानन्द व्यास, पृ० ४३ ।

३५ ३। पढगो से मुक्त साहित्य प्रारम्भ मे पडगल कहा गया और काला तर मे भाषा - विज्ञान के परिवर्तन सम्बन्धी नियमानुसार प्राणि व्यंजन 'व' का जोष हो कर डिगल रूप प्रचलित हुमा। सम्भव है, यह कलना काला तर मे प्रायः किसी प्रमाण क आधार पर साकार रूप धारण कर ले। 'डिगल' शब्द क मूल मे 'डिगो' और 'डोगो' अर्थात् बडा और बडो, मोटा और मोगी शब्दा को कलना भो हो सकती है, जिससे इसका महत्व प्रतिपादित होता है।

२ डिगल काव्यों का वर्गीकरण

(१) चरितनायको के आधार पर—

- (अ) रासो—रायमल रासो, रतन रासो, राणा रासो, सगतसिंह रासो, महाराजा सुजानसिंह रासो, इत्यादि।
- (भा) प्रकाश—राज प्रकाश, सूरज प्रकाश भीम प्रकाश, रतन जस प्रकाश, कीरत प्रकाश, इत्यादि।
- (इ) विलास—राजविलास, जगविलास रतन विलास, विज विलास, जय विलास, भीम विलास इत्यादि।
- (ई) रूपक—रघुनाथ रूपक, राज रूपक, रतन रूपक महाराज गजसिंहजी रो रूपक, गांगादे रूपक, राव रिंगमल रो रूपक, इत्यादि।
- (उ) बचनिका—अचलदास खीची रो बचनिका, राठोड रतनसिंह महेशनाथोत रो बचनिका इत्यादि।

(२) छंदो के आधार पर रखे गये ग्रन्थो के नाम—

- (अ) नीसाणो—गीगाजी चहुवाण रो नीसाणो, राठोड अजबसिध रंगासिधोत रो नीसाणो अरिबर रा महाराजा प्रतापसिंह जो रो नीसाणो, राव खगार जो रो नीसाणो नीसाणो बीरभाण रो, इत्यादि।
- (भा) भूलणा—खोडा रा गुण भूलणा राजा राजसिध रा भूलणा, अमरसिंह जो रा भूलणा, राव सुरत्राण देवडे रा भूलणा, इत्यादि।
- (इ) भमान—बीशवत करमसेण शिमतसिधोत रो भमान अमान जोरसिध पापा वत रो, अमान दाउपा रो इत्यादि।
- (ई) गीत—खीधला रा गीत, पवारा रा गीत, जाडेवा रा गीत, राठोड रामसिध जो रा गीत, राजा रामसिध जो रा गीत, इत्यादि।
- (उ) कु डलिया—हाला भाला रा कु डलिया, सगरामदास रा कु डलिया, भादि।

- (ऊ) कवित्त — महाराजा प्रभैसिंह जी रा कवित्त, पंचार पलराज रा कवित्त, राठोड रतनसा रा कवित्त, महाराजा गजसिंह जी रा निरवाण रा कवित्त, चहुवाण सावलदास जी वरमसिपजी रा कवित्त, इत्यादि ।
- (ए) दूहा— पातूजी रा दूहा राव समरसिंह जी रा दूहा, सावैतूनाणी रा दूहा सागे राणै रा दूहा, हमीर राणै रा दूहा, समरकी चहुवाण रा दूहा, इत्यादि ।
- (ऐ) वेत— राजकुमार मनोपसिंह जी रो वेत, राजा रावसिप जी रो वेत, रागे उभैसिप जी रो वेत, राठोड देईगव पोतावन रा वेत राजा मूरसिप जा रा वेत, रूपादे रो वेत आदि ।

(ग) प्रभीर्ण और शास्त्रीय—

- (अ) देश-भक्ति, देशो का नैसर्गिक वर्णन
 (आ) अश्व-प्रशंसा
 (इ) उष्ट्र-प्रशंसा,
 (ई) शास्त्र-प्रशंसा,
 (उ) श्रु गार रस की प्रकीर्ण कविताए
 (ऊ) सिलोका,
 (क) धर्मशास्त्र,
 (ख) ज्योतिष-शास्त्र,
 (ग) शकुन शास्त्र,
 (घ) शालिहोत्र,
 (ङ) वृष्टि विज्ञान,
 (च) तत्व ज्ञान,
 (छ) नीतिशास्त्र,
 (ज) आयुर्वेद शास्त्र, और
 (झ) कौक शास्त्र, आदि ।^१

(ग) विंगल

३० ३ । विंगल नाम के एक आचार्य हुए जिन्होंने 'छन्द सूत्र ग्रन्थ की रचना की । कालांतर में छन्द शास्त्र को आदि आचार्य के नाम से विंगल कहा गया ।^२ इसी छन्द शास्त्र को इतिषय विद्वानों ने ब्रजभाषा का चोतक मान लिया—' राजस्थान में ब्रजभाषा

१ - क राजस्थानी भाषा और साहित्य, प० मोतीलालजी मेनारिया पृ० ५० ५१ ।

ख राजस्थानी शब्द कोष, सपादकीय प्रस्तावना स० श्री सीताराम जी लालस पृ० (११८ ११९) ।

२ - हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० ४५० ५१ ।

के लिए विगल नाम प्रचलित है ।^१

विगल शब्द का भाषा-शैली व रूप में प्राचीनतम व्यवहार सन् १७२३ ६५ के समय माना जाता है^२

३७ ३। विगल को भाट भाषा भी कहा गया है और इसके प्रमाण में यह दूहा उद्धृत किया गया है—

चारण डिगल चातुरी, विगल भाट प्रकास ।
गुण सरया-कल-वरण गण, धारो करो उजास ॥^३

३८ ३। विगल से तात्पर्य ब्रज भाषा का छन्दशास्त्र मानना किसी सीमा तक उचित कहा जा सकता है किन्तु विगल का अर्थ ब्रज भाषा में उचित नहीं क्योंकि विगल का अर्थ ध मारवाड़ी से भी जोड़ा गया है—‘अथ विगल सिरोमणि मारवाड़ी भाषा लिख्यते’^४

उक्त विगल सिरोमणि ग्रन्थ में मारवाड़ी अर्थात् राजस्थानी काव्यशास्त्र का विवेचन है ।

३९ ३। विगल शब्द का व्यवहार भाषा शैली विशेष के रूप में अठारहवीं सदी से ही उपलब्ध होता है—

१—डिगलिया मिलिया करे, विगल तणी प्रकास ।
सस्कृती वृहै कपट सज, विगल पडिया पास ॥ —बाकीदास^५

२—और भी आसीयू में कवि बक ।
डिगल विगल सस्कृत फारसी में निसक ॥ —बुधाजी^६

३—बदन मुकवि सुत कवि मुकुट, अमरगिरा मतिमान ।
विगल डिगल पट्ट भये धुरंधर चडि दान ॥ —सूरजमल^७

४—विगल डिगल पट्ट प्रकट, गहरो ब्रह्म सुग्यान ।
बदनमिह रे सुत विदित, दाखो चडिदान ॥ —मुरारीदान^८

१ — श्री मोतीलालजी, मेनारिया राजस्थान का विगल साहित्य, पृ० १३ ।

२ — गुरु गोविन्दसिंह, विचित्र भाटक, दशम ग्रन्थ, प्रकाशक श्री गुरुमत प्रेस, अमृतसर, पृ० ११७ ।

३ — श्री उदयरज उज्जवल, डिगल शब्दकी व्युत्पत्ति, राजस्थान भारती, भाग २, अंक २ ।

४ — विगल सिरोमणी, परम्परा प्रकाशन राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर, पृ० १७ ।

५ — बाकीदास प्रयावली, भाग दूसरा पृ० ८१ ।

६ — बाकीदास प्रयावली, भाग तीसरा, पृ० १०, सूचिका ।

७ — ज्ञान भास्कर, प्रथम राशि, चतुर्थ मसूदा, पृ० ४० ।

८ — डिगलकोष पृ० ११ ।

४० ३। इस प्रकार स्पष्ट है कि मुख्यतः चारण कविया द्वारा ही भाषा शैली का रूप में पिगल शब्द का प्रयोग किया गया है। मय कविया ने ब्रज भाषा को भाषा (भाषा) यथवा ब्रज भाषा कहना ही उचित समझा है—

१—ताही ते यह कथा यथा मति भाषा कीनी ।^१

२—मुरभाषा ते अधिक है, ब्रजभाषा सो हेत ।

ब्रजभूपन जाकी सदा, मुख भूपन कर लेत ॥^२

बेशकदास कह छ (कहै छै) जे माहुरी मति सम्कृत वाणी नै विषे बुद्धि विशेष छै तो पिण हूँ भाषा रस में विषे लोलपी छु ते कहनी परे जिम देवता न देवलोक माहे अमृत धका पिण देवागना ना अर ना रस नी बाछा अर अधर रस नी घणी इच्छा तिम जपिण मस्कृत भाषा जाणु हु तो पिण ब्रजभाषा नी बाछा घणी है मुझने ॥^३

४१ ३। पिगल का पर्याय नाग भा है। प्रसिद्ध है कि यथनाग यथना रक्षा न निय गहक जो वा छन्दशास्त्र सुनाने हैं घोर घत में "शुभ्रण प्रयात" सुनाते हुए जल मग्न हो जाते हैं। इस प्रकार छन्दशास्त्र के श्राद्धि प्राचाय सोमनाग यथवा नागराज भी कह जाते हैं। पिगल की भाँति नागबानी का उल्लेख भी मिलने है।^४ भिलारादास ने ब्रजभाषा नेल का साथ ही नागभाषा लिखा है^५ जिसमें ज्ञात होता है कि नागभाषा ब्रज से भिन्न है।

४२ ३। उक्त विवेचन में स्पष्ट होता है कि मुख्यतः राजस्थान के चारण कवियों ने भाषा को राजस्थानी वाक्य-शैली का पिगल कहा क्योंकि पिगल में द्विगल-गीत जैसे छन्दों का स्थान पर प्राचान परम्परागत छन्दा की ही अधिकता रही। पिगल साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(क) चरित्र काव्य—(१) रासो काव्य, (२) मय काव्य ।

(ख) पौराणिक काव्य और महाभारत सम्बन्धी काव्य ।

(ग) भक्ति काव्य—(१) कृष्ण भक्ति काव्य, (२) राम भक्ति काव्य,

(३) निर्गुण और मय काव्य ।

१ - कददास, रासपद्याध्यायी ।

२ - शिवक प्रिया की समरथ कृत टीका (सं० १७५५), बानसागर प्रथम मण्डार शोकानेक पद्य सं० १७ ।

३ - केनव कृत निरुक्त की टीका (सं० १७६२ से पूर्य) अमय जन प्रयासप, शोकानेक का प्रति ।

४ - (क) निर्जज्ञान कृत ब्रजभाषा व्याकरण 'गुहकतुरहिद' ।

(ख) हिन्दी साहित्य कोष नाग १ पृ० ४५१ ।

५ - हिन्दी साहित्य कोष, भाग १ पृ० ४५१ ।

(घ) रोहि काण्ड—(१) रस (२) प्रवहार (३) छंद (४) नायिकाभङ्ग
पट ऋतु वर्णन, नवनिष बण्ड भाङ्ग ।

(ङ) नीति काव्य,

(च) कुटकर ।^१

(घ) भक्ति एव सन्त काव्य

४३ ३। भक्त कवियों ने प्रबल और मुक्तक दोनों ही प्रकार की रचनाएँ प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत कीं। राजस्थानी भक्त कविता में चारणों और रात्रूतों का आधिपत्य रहा, तन्नुसार इन कविता में विविध प्रकार की छन्दों लियी प्रयुक्त की। वार रस के नियम प्रयुक्त प्रविभाग त्रय कवियों की भक्त कविता में अपनी भक्ति भावना प्रकट करने हेतु सरुवना पूर्वक प्रयुक्त किया। उदाहरण स्वरूप चोर रस के लिये प्रयुक्त दूहा, गीत, छप्पय, और नीसाणी आदि त्रय कविता राजस्थानी भक्त कवियों द्वारा भी धरनाई गई क्योंकि इनकी काव्य शास्त्रीय शिक्षा राजस्थानी परम्परानुसार ही सम्पन्न हुई थी।

४४ ३। राजस्थानी सन्त कविता में अपनी रचनाएँ मुख्यतः निम्नलिखित रूपों में प्रस्तुत कीं—

(अ) साखी, (आ) मवाद (इ) परिचयी (ई) मक्तमान, (उ) मगन विवाहना
(ऊ) ककहरा बारहखड़ी (ए) शलोक, आदि।

(अ) साखी—साखी का मूल रूप साणी है। साणी का अर्थ आला देवी बान का वर्णन करना अर्थात् गवाही देना होता है। साखी परक रचनाया में सन्त कविता में अपने अनुभूत ज्ञान का वर्णन किया है। साखी परक रचनाएँ, अधिकांश में दूहा छन्द में लिखित हैं। राजस्थानी में सोरठा दूहे का ही एक भेद है इसलिए साखियों में सोरठा छन्द का भी व्यवहार हुआ है। साखिया में चोराई चोपई, छप्पय आदि का भी प्रयोग हुआ है, किन्तु बहुत कम।

साखियों का विषयभार वर्गीकरण भी किया गया है। जैसे कबार का साखिया गुरुदेव को मग रस का मग, वेति को मग, सुन्दरी का मग, आदि १६ प्रयोगों में विभक्त हैं। साखियाँ सन्त साहित्य में महत्वपूर्ण माना गई हैं, जिन्हें विषय में कहा गया है—

साखी आखी ज्ञान की समुक्त देख मन माहि।

बिन साखी मसार में भगरा छूत नाहि ॥

सन्त कविता में शास्त्रीय नियमों का कठोरता पूर्वक पालन नहीं किया परिणाम स्वरूप साखियों में मात्रात्मक नियमित रूप में मिलती हैं—

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा ।
तेरा तुझको सोपता, क्या लाग मेरा ॥^१

उक्त दोहे में प्रथम पक्ति में एक मात्रा अधिक है और द्वितीय पक्ति में एक मात्रा कम है ।

साखी के विषय में कबीर ने उक्त साखी विषयक दोहे की टीका लिखत हुए महात्मा पुरण ने लिखा है 'साखी कहिये साक्षी, सो साक्षी बिना ज्ञान अथा है, याके वास्त ज्ञान की साखी साक्षी से गुरु कहते हैं कि अपने मन में विचार करके देखता नहीं कि बिना साखी से ससार का भंगरा टूटता नहीं ।'

(घा) सबद—सत काव्य में 'सबद' से तात्पर्य गेय पदा से है । सबद' में प्रथम पक्ति 'रक' अथवा स्थायी होती है, जिसको गाने में बारंबार दोहराया जाता है । राजस्थान में विभिन्न सत सम्प्रदायो व अनुयायी राताजगा आयाजित करते हैं जिनमें रात भर जागते हुए डोलक मजीरा और तदूरा आदि वाद्यों के साथ सामूहिक रूप में सबद गाते हैं । सबद' का शुद्ध रूप गद्य होता है कि तु सत-काव्य में और भजना मण्डलियों में यह गेय पदा क रूप में रुढ़ हो गया है । प्राय सभी सत-कवियों ने गद्यों का रचनाएँ की हैं जिन्हें विभिन्न मौलिक और शास्त्रीय रागा में गाया जाता है ।

(इ) परिचयी—परिचयी स मूल तात्पर्य परिचय है । अनक सता के विषय में सम्बन्धित शिष्यो प्रशिक्ष्यो ने पञ्चात्मक रचनाएँ की, जिन्हें परिचयी कहा जाता है । परिचयी परक काव्यो में सता के जीवन और कार्यों के विषय में अनेक लौकिक और अलौकिक घटनाओं का समावेश होता है । परिचयी-काव्यो में अनकतदास वृत्त 'भक्त रैदास की परिचयी', 'मीरा परिचयी' और स्वामी रामरवरूप वृत्त "चरणदास का परिचयी" (वि० सं० १८४०-४१) आदि मुख्य हैं ।

(ई) भक्तमाल—अनक सत सम्प्रदायो की भक्तमालें उपलब्ध होती हैं । नाभादास जा ने अनकी भक्तमाल में सण्णापासक भक्तों का वर्णन किया है । नाभादास वृत्त भक्तमाल की भाँति राणवदास और ब्रह्मदास की भक्तमाला में दादू सम्प्रदाय व भक्तों का वर्णन है । निरजनी और रामरुही आदि अन्य अनक सत सम्प्रदाय की भक्तमालें भी उपलब्ध होती हैं ।

(उ) मगन-विवाहलो—अनक कवियों ने अनक मगन परक काव्यो की रचनाएँ की । कबीरनाम जी ने भी मगल गद्य लिखे । सत सम्प्रदायो में विवाह सम्बन्धी मगल रचनाएँ आध्यात्मिक अर्थ में लिखी गईं और इनमें आत्मा परमात्मा के विवाहों का वर्णन है ।

(ए) ककहरा वारहखड़ी—ककहरा वारहखड़ी में वर्णमाला व क्रम में उपनात्मक रचनाएँ लिखी गई हैं। कवि जायसी ने भी इस प्रकार की रचना 'मखरावट' व नाम से लिखी।

(३) श्लोको—श्लोक का शब्द का शुद्ध रूप श्लोक है। सत कवियों ने स्पष्ट उपदेशात्मक छन्द लिखे जिन्हें श्लोको कहा गया जस 'जादू जी रा श्लोको'।

४५ ४। सत कवियों की रचनाओं व संग्रह का 'वाणी' नाम दिया गया है। यदा शरीरनाम की बागी, दादू वाणी, रज्जब वाणी आदि। इन वाणियों में सान्नी सबद प्राणि मनक प्रकार की रचनाओं व संग्रह हैं।

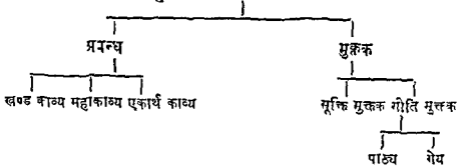
(ड) लोक काव्य

लोक काव्यों में प्रबन्ध के अतिरिक्त महाकाव्य और छन्दका य तथा मुक्तक व अतिरिक्त छुक्ति-मुक्तक और गीति मुक्तक का समावेश करना समीचीन होगा।

(च) आधुनिक काव्य

४६ ३। आधुनिक राजस्थानी काव्य में प्राचीन परम्परागत और नवीन पद्धतियों वाली से प्रभावित दोनों प्रकार की रचनाएँ हो रही हैं। आधुनिक राजस्थानी काव्य का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है—

आधुनिक राजस्थानी काव्य



आधुनिक राजस्थानी काव्य उक्त सभी रूपों में छोटे बड़े परमाणु व साथ लिखा जा रहा है।

(२) विवाह और विवाह सङ्गक रचनाएँ

(क) विवाह-सङ्कार

४७ ३। हमारे समाज का निर्माण अनेक मानव परिवारों से होता है और

समाज की पारिवारिक इकाई विवाह-सम्बन्धों पर ही आधारित होती है। हिंदू धर्म के अनुसार विवाह मानव-जीवन का एक विशेष संस्कार है जिसे धर्म द्वारा पति-पत्नी का पारस्परिक सामाजिक और धार्मिक सम्बन्ध स्थापित करना है।

४८ ३। विवाह शब्द की व्युत्पत्ति धि (उपसर्ग) + वह (धातु) में धञ् प्रत्यय मिलकर हुई है। इसकी व्याख्या पारपरिग्रह तज्जना के "यापार च" और "भार्यावसा म्पादकज्ञान विवाह" अर्थात् स्त्री का परिग्रहण और तत्सम्बन्धी कार्य विवाह कहा गया है।^१

विवाह के समानार्थी शब्द परिणय की व्युत्पत्ति परि (उपसर्ग) णी (धातु) के ण्यच् प्रत्यय लगा कर की गई है। परिणय शब्द की व्याख्या करने हुए लिखा गया है, "परिणयन तत्रार्थे न० परिणयते विवाहार्थत्वात् परिणीता इयादौ टुन विवाहा धार्याविगमः।" अर्थात् विवाह शब्द परिणय का समानार्थी शब्द है।^२

४९ ३। वेस्टर मार्क के मतानुसार— विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला सम्बन्ध है जो प्रथा अथवा कानून द्वारा स्वीकृत होता है।^३ विवाह की व्याख्या करते हुए राबर्ट गेनॉन् लावी न लिखा है— विवाह स्पष्टतः उन स्वीकृत सगठनों को प्रकट करता है जो काम सम्बन्धी सत्तों के उपरान्त भी स्थिर रहते हैं तथा पारिवारिक जीवन के कारण बनते हैं।^४ गिनिन के मतानुसार 'विवाह एक प्रजननमूलक परिवार की स्थापना हेतु समाज द्वारा स्वीकृत विधि है।^५ इस प्रकार पश्चिमी विचारकों के मतानुसार मुख्यतः स्त्री पुरुष के यौन-सम्बन्धों को नियमित करने की दृष्टि से विवाह नामक विधि का प्रचलन हुआ। विवाह एक ऐसी विधि बन गई जिसके द्वारा स्त्री पुरुष को अपने यौन सम्बन्ध स्थापित करने की स्वीकृति समाज, राज्य और राज्य नियमों द्वारा मिल जाती है। विवाह के बिना स्त्री पुरुष के यौन-सम्बन्ध अपराध ही नहीं होते बरन् प्रथमिक भी होते हैं। विवाह के पश्चात् स्त्री पुरुष को पारस्परिक अनेक कर्तव्यों का निर्वाह करना होता है। हिंदू धर्म में सामाजिक के लिए ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ भूत यज्ञ पितृ यज्ञ तथा नृपयज्ञ सम्पन्न करना आवश्यक माना गया है और इसके लिये विवाह कर सत्तानोत्पत्ति करना अपेक्षित होता है। हिंदू धर्म के अनुसार विवाह का मूल उद्देश्य काम तृप्ति नहीं बरन् धर्मपालन है—'विवाह का एक मात्र उद्देश्य काम वामना की तृप्ति नहीं माना जाता था।'^६ श्री वापडिया के मतानुसार प्रामाणिक रूप

१ - वाचस्पत्यम् धौगवा सस्कृत शिरोज्ज वाराणसी पृ ४८२१।

२ - वही, पृ० ४२-४७।

३ - दी हिस्ट्री ऑफ ह्यूमन मेरिज वी० १, पृ० २६।

४ - एसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशियल साइंसेज मेरिज, वी० १० पृ० १४६।

५ - बह्वचरल सोशियलोजी पृ० ३३४।

६ - श्री व० एल० बपतरी दी सोशियल इस्टीट्यूशन इन एसीयट इण्डिया १६४७, पृ १२०।

म कर्तव्यो की पूर्ति के लिए ही विवाह है इसलिए विवाह का मूल उद्देश्य धर्म ही है ।^१ शतपथ ब्राह्मण के अनुसार—

“पति का आदर्श वास्तव में पत्नी है इसलिए जब तक पुरुष पत्नी नहीं प्राप्त करता और सन्तान नहीं उत्पन्न करता तब तक वह पूर्ण नहीं होता ।”^२

भगवान रामचन्द्र को यज्ञ हनु सीता जो क धभाव में उनकी स्वयं प्रतिमा प्रतिष्ठित करनी पड़ी थी । कालिदास के मतानुसार—

तदृशनादमूच्छ भोभू यान् दाराधमादम् ।

क्रियाणा खलु धर्माणा स पत्नो मूल कारणम् ॥

धर्मान् कामदेव पर विजय पाने वाले शिव के समक्ष ग्रहणती आईं तो उसकी दयकर निरा की इच्छा विवाह करने की हुई क्योंकि पतिव्रता स्त्री ही धर्म सम्बन्धी क्रियाओं का मूल है ।^३

५१ ३ । विवाह का धर्म के प्रतिरिक्त दूसरा उद्देश्य सन्तान प्राप्ति होता है । ऋग्वेद में अमृतत्व का उपभोग करने का साधन सन्तान बताया गया है—“प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमस्याम् ।”^४ धनेक मंत्रों में पुत्र प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा व्यक्त की गई है ।^५

५२ ३ । हिन्दू जीवन में मुख्य संस्कार सोलह माने गए हैं—

(१) गर्भाधान, (२) पुंसवन, (३) सीमन्तो नयन (४) जातकर्म, (५) नाम करण । (६) निष्क्रमण (७) अन्नप्राशन, (८) चूडाकर्म, (९) कणावेध (१०) उपनयन (११) वेदारम्भ, (१२) समावर्तन, (१३) विवाह, (१४) ध्यानप्रस्थ, (१५) सन्यास, (१६) अत्येष्टि संस्कार ।

(१) गर्भाधान — हिन्दू जीवन में गर्भाधान प्रथम संस्कार है । गर्भाधान के लिए स्त्री की प्रवस्था सोलह और पुरुष की प्रवस्था पच्चीस बनाई गयी है—

पचविंशो ततो वर्षे पुमान्तरो तु षोडशे ।

समात्वाग्नवीर्यो तो जानीयान् कुशलोर्जनिपक ॥^६

१ - मेरिज एण्ड फेमिलि इन इण्डिया, १९५८ पृ० १६८ ।

२ - शतपथ ब्राह्मण, ५ । २ । १ । १० ।

३ - कुमारसंभव ६ । १३ ।

४ - ऋग्वेद संहिता, ५ । ४ । १०

५ - ऋग्वेद संहिता १ । ६१ । २० १ । ६१ । १३ ३ । १ । १२३ ।

६ - सुभूत सूत्रस्थान, पृ० ३५ ।

(२) पु सवन — पु सवन सस्कार गर्भाधान के पश्चात् तृतीय प्रपञ्च वृत्ताय मास सम्पन्न होता है —

“अथ पु सवन पुरास्य दत्त इति मामे द्वितीय तृतीये वा ॥”^१
यह सस्कार गन्ध का पुष्टि के लिए किया जाता है ।

(३) सीम नो नयन — इस सस्कार के लिए चतुर्थ मास निश्चित किया गया है — चतुर्थे गर्भमास सीम तोनयनम्^२ एक दूसरे मत में सीमन्ता नयन सस्कार छठे प्रपञ्च आठवें मास में सम्पन्न करना चाहिए—

“पु सवनवत्प्रथमग मासे षष्ठेऽष्टमे वा ।”^३

इस सस्कार में गन्धवती को उत्तम सतान की प्राप्ति के लिए आशीर्वात् दिया जाता है — ओ वारमूरत्व भव, जीवमूर्त्त्व भव, जीव पत्नात्व भव ।^४

(४) जातकर्म — गन्धवती की प्रसव-पाड़ा से लेकर-सतान जन्म तक के कार्य जातकर्म सस्कार के अन्तर्गत सम्पन्न होते हैं । सतान का जन्म होने पर उसको शुद्ध कर पिता अपनी गोद में लेता है और अशुचिचारण के साथ यन्त्रवेदी के समीप जाकर स्वणशलाका से नवजात शिशु को पाड़ा घृत और मधु छटाना है ।^५ तदुपरांत हवन कर सतान का गताशु होने का अंगारवात् किया जाता है ।

(५) नामकरण — शिशु जन्म के पश्चात् ग्यारहवें दिन शिशु का नामकरण सस्कार होता है ।^६ इस अवसर पर यन्त्र भाद्र और उत्सवादि होते हैं ।

(६) निष्क्रमण — इस सस्कार में बालक को अच्छे वस्त्र पहिना कर यन्त्रवादा के समीप ले जाया जाता है और यन्त्र के पश्चात् बाहर भ्रमण में उसको सूर्य और चन्द्र के दर्शन करवाए जाने हैं । यह सस्कार चतुर्थ मास में किया जाना चाहिए—

चतुर्थेमासि निष्क्रमणिका सूयमुदाक्षयति तच्चक्षुरिति ।^७

(७) अन्नप्राशन — अन्नप्राशन सस्कार शिशु जन्म के छठे मास में सम्पन्न होना चाहिए । इस समय पति पत्नी का थोड़े भात में घृत दही और मधु मिलाकर बालक को देना चाहिए—

- १ - पारस्कर १।१४
- २ - आश्वलायन सूत्र १।१।११ ।
- ३ - पारस्कर १।१५।१ ।
- ४ - गोमितीय गृह्यसूत्र २।३।१३ ।
- ५ - आश्वलायन गृह्यसूत्र १।१५।१ ।
- ६ - पारस्कर गृह्यसूत्र १।१७।१ ।
- ७ - पारस्कर गृह्यसूत्र १।१५।५ ।

“पठे माम्ब्रह्मप्रादानम् घृतौदन तेजस्काम”
 दधिमुद्युतमिश्रितमन प्राशयेत् ।”^१

(८) चूडाकर्म — इस मस्कार की मुण्डन भी कहा जाता है । यह मस्कार गिशु ज म क पश्चान् तीमरे वर्ष होना चाहिये— ‘तृतीय वर्ष नीलम् ।’^२ इस मस्कार म बालक का मुण्डन किया जाता है । मुण्डन व स्नान क पश्चान् बस्त्र भूषणा से सज्जित कर पति पत्नी बालक को यज्ञवेदी के समीप लाने हैं । पति पत्नी यन्तरा त वृद्धा और गृहजना से आगावा^३ प्राप्त करने हैं ।

(९) कर्णवेद्य—यह मस्कार गिशु ज म क तीमरे अथवा पावने वय करने की विधि है— ‘कर्णवेद्यो वर्ष तृतीये पचमे वा ।’^४

इस मस्कार के अरसर पर बालक को वस्त्राभूषणा^५ से सज्जित कर पति पत्नी यज्ञ संपादित करते हैं और किसी घन्त्रे वैद्य अथवा स्वणकार से बालक क गोनो कानों म ध्वन करवा कर उनमें सलाका पहनाते हैं ।

(१०) उपनयन मस्कार — उपनयन मस्कार का यज्ञोपवीत मस्कार भी कहते हैं । यह मस्कार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों क लिए मा व है । मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण का पचमवय में, क्षत्रिय का षष्ठ वय में और वैश्य का अष्टम वर्ष म उपनयन मस्कार होना चाहिये—

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पचमे ।
 राशो बलायिनं पठे वैश्वस्येहायिनोऽष्टमे ॥^६

यज्ञोपवीत मस्कार क अरसर पर पति पत्नी मिलकर यज्ञ करते हैं और पुरोहित यज्ञविधि सम्पादित होने पर बालक को यज्ञोपवीत धारण कराता है ।

(११) वेदारम्भ— बालक विद्याभ्ययन प्रारम्भ करता है तब यह मस्कार सम्पादित किया जाता है । पति पत्नी अपने बालक का गुरु के पास विद्याभ्ययन हेतु भेजते हैं । गुरु गायत्री मन्त्र से आरम्भ कर वेदा की शिक्षा हेतु अनेक नियम विद्यार्थी को धारण करवाता है । विद्यार्थी इस मस्कार क पश्चान् पूर्णरूपेण गुरु क प्राधीन रहकर अपनी शिक्षा आरम्भ करता है ।

१ - आश्वलायन सूत्र १।१६।१-३ ।

२ - आश्वलायन सूत्र १।१७।१ ।

३ - आश्वलायन गृह्यसूत्र १।२ ।

४ - मनुस्मृति २-१७ ।

(१२) समावनन — यह सस्कार दी शत सस्कार भी कहा जाता है। वेना के पूर्ण मध्यमन के उपरांत ही यह सस्कार सम्पन्न करने का विधान है— 'वेद समाप्ति वायतोव'। विद्यार्थी इस सस्कार के परवात् विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश हेतु प्राचार्य का प्रागोर्जा प्राप्त करता है और अपने घर लौटता है। घर पर पारिवारिक व्यक्ति उमक स्वागत में उत्सव आयोजित करते हैं।

(१३) विवाह — विद्या परत पूरा कर व्यक्ति का विवाह सस्कार किया जाता है। विवाह पाठ प्रकार के होते हैं—(१) ब्राह्म (२) देव (३) आर्षी, (४) प्रजापत्य (५) आधुर (६) गांधव (७) राक्षस और (८) पिशाच।

(ग) ब्राह्मविवाह — ब्राह्मविवाह हेतु कथा का पिता योग्य वर की खोज कर उसकी अने पर प्रामात्रिन करता है और धार्मिक विधिया का पालन करते हुए विवाह में कथा गा करना है। इस विवाह में सम्पूर्ण उतराणित्व वर और वधु की मातामा और रिनामा का होना है। कथा का बिना किसी प्रबोधन के योग्य वर का दान में लिया जाता है। दान प्राचीन काल में केवल योग्य व अधिकारी व्यक्ति को ही लिया जाता था।

(घ) देव विवाह — देव विवाह के अंतगत कथा का विवाह यज्ञकर्ता के साथ किया जाता है। प्राचीनकाल में प्रत्येक हिन्दु परिवार में यज्ञकर्ता यज्ञ करते थे। यज्ञकर्ता कथा के उपरुक्त समझा जाता त यज्ञ के उपरांत उमका कथा गान दे लिया जाता। डॉ० के० एम० प्रत्नेकर के अनुसार— 'वेदिक यज्ञ के साथ साथ देव विवाह भी लुप्त हो गए हैं'।^१

(ङ) आर्षी विवाह — षाण्ड्य विवाह में वर अपने समुर को धार्मिक कार्यों की पूर्ति हेतु एक गाय और एक बल मदवा इनका दान जाड़े देता था। प्राचीन काल में पशु मुख्यत गाय बल विनिमय के विनय साधन मान जाते थे। अनेक भारतीय आश्रितियों में वर का और स कथा क पिता का गाय बल देने की परिपाटी प्रागुनिक काल में भी प्रचलित है।

(च) प्रजापत्य विवाह — प्रजापत्यविवाह में वर और वधु का धार्मिक कृत्या में पूर्ण स्नेह सम्मिलित रहने का प्रतिज्ञा करना होती था। अनेक षण्ड्य में प्रजापत्य व ब्राह्मविवाह समान है।

(ज) आधुर विवाह — आधुर विवाह में कथा मूल्य के रूप में वर अथवा वर का पिता वधु के पिता को धन देता है। कथा के रूप और गुणा के अनुसार ही धन निश्चित किया जाता था। प्रागुनिक काल में भी विवाह की यह पद्धति आश्रितियों और अथ जातियों में प्रचलित है।

(झ) गांधव विवाह — गांधव विवाह युवक और युवती का इच्छा और प्रेम पर

१ - आश्रित्यन, १।२।१६।

२ - डॉ० लोकींग अरु वासन इन हिन्दु निर्विवाहजन १६५६, पृ० ८५।

साधारित है। माता पिता की स्वीकृति के बिना ही युवक और युवती प्रेम में बंध कर विवाह कर लें। यह शोधायन धर्मसूत्र में प्रशसनीय माना गया है— 'गांधर्वमप्येके प्रशमन्ति सर्वेषास्तेहानुगतःवात् ।'^१

राजा दुष्यन्त व शकुन्तला का विवाह भी गांधर्व विवाह कहा गया है।

(ए) राक्षस विवाह — युद्ध में विजय प्राप्त कर कन्या का हरण किया जाता था और तब उसके साथ विवाह होता था। कन्या को युद्ध विजय के पुरस्काररूप में ग्रहण किया जाता था। इस प्रकार के विवाह में गतिज्ञानी राजा युद्ध में विजय प्राप्त कर कन्याओं का विवाह हेतु हरण करने थे। श्रीकृष्ण और द्रुपदकी का विवाह भी किसी सीमा तक राक्षस विवाह कहा जा सकता है।

(ऐ) पिशाच विवाह — स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध मत्स्यपान भ्रमवाद्य किसी उपाय से सनाहान कर बनात् लाकर किये जाने वाले विवाह का पिशाच विवाह कहते हैं। इस प्रकार का विवाह निम्न-कोटि का माना गया है।

उक्त प्रकार के विवाहों में ब्राह्म, देव, भार्य तथा प्रजापत्य विवाह उत्तम कोटि के विवाह माने गये हैं। गांधर्व विवाह मध्यम कोटि का है और ग्रामुर, राक्षस, तथा पिशाच विवाह निम्न कोटि के मान गये हैं। ब्राह्म, प्रजापत्य और देव विवाह कन्यापान के रूप में भार्य और ग्रामुर विवाह कन्या विक्रय के रूप में, गांधर्व विवाह स्त्रीपुत्र के पारस्परिक सम्झौते के रूप में और राक्षस तथा पिशाच विवाह गतिप्रदर्शन रूप में हैं।

हिन्दू विवाह का प्रादुर्भाव उत्तम कोटि का है। विवाह को धार्मिक रूप में ही ग्रहण किया गया है। विवाह के धर्म-पानन, सत्तामोत्पत्ति और रति नामक तीन उद्देश्य प्रधान माने गये हैं। विवाह के भ्रमर पर यज्ञ आयोजित कर अनेक प्रकार की धार्मिक और सामाजिक प्रक्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं, तथा पवित्र अग्नि की साक्षी में मन्त्रों का उच्चारण धार्मिक कृत्यों के रूप में होता है। हिन्दू विवाह स्त्री-पुत्र के निष्ठा एक पवित्र बन्धन है जिसके द्वारा वर और वधु को आज्ञा अनेक कतव्यों का पालन करना आवश्यक होता है।

(स) विवाह-मङ्गल रचनाएँ

५३ ३। विवाह सम्बन्धी वाच्य मुख्यतः निम्नलिखित नामों से विभे गये—

(अ) मंगल।

(आ) विवाहनउ विवाहलो, विवाह।

(इ) त्रैलि।

(ई) हरण।

(उ) परिणय।

मगल काव्य —

५४ ३। मगल शब्द व अनेक अर्थ होने हैं—

१ मनोकामना पूरी होना, बरखाण और अभीष्ट सिद्धि होना ,

२ सौर जगत् का एक ग्रह,

२ सात वारों में से एक वार,

४ विष्णु,

५ अग्नि (हमीरनाममाला ८१, नागराज डिगल कोष २७ पवधान नाम माला १२६)

६ डिगल गीत छन्द का एक प्रकार,

७ मंदिरों में देवी देवताओं के पट बग्न करने के लिये व्यवहृत गान-प्रयोग जैसे—
‘पाठ मगल करना ।’

८ कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व ईश प्रार्थना

९ एक प्रकार का घोडा जिसके गठ ललाट और सिर पर भवरी (चक्र) हो । यह घोडा मांगलिक कहा जाता है ।

१० शुभ अवसरों पर गेय गीत,

११ रक्त वर्ण—(सूरजप्रकाश कविया करणीदान कृत भाग २ पृ० २१६)

मगल सम्बन्धी निम्न लिखित शब्द उल्लेखनीय हैं—

१ अष्टमगल—(सिंह, वृष, नाग, कलश, चामर, वैजयन्ती मेरी और दीपक अथवा ८ प्रकार के मोतियों की माला ।

२ मगल कलश,

३ मगल पाठ (नादी पाठ),

४ मगल झुल (आग की लपट),

५ मगलणो (जलना अथवा जलाना),

६ मगल-धवल (विवाह के गीत)

७ मगलवाद (आशीर्वाद),

८ मगलवारी (मगलवार सम्बन्धी),

- ६ मंगल बेला (शुभ बेला) ।
- १० मंगल सूत्र (शुभ अथवा मुहाग का सूचक अभूषण अथवा सूत्र) ।
- ११ मंगल स्नान (शुभ स्नान) ।
- १२ मंगला (पार्वती, श्वेन दूत, पतिव्रता, देवी, अग्नि हल्दी विष्णु और प्रान कालोन प्रथम आरती) ।
- १३ मंगलाचरण-मंगलाचार-मंगलारम्भ ।
- १४ मंगलाव्रत (शिव और पार्वती सम्बन्धी व्रत) ।
- १५ मंगला चौथ (किसी मास की मंगलवार को होने वाली चतुर्थी) ।
- १६ मंगल्य - (सुन्दर, साधु, बेल, नारियल, दही, सोना, चन्दन, सिद्धर) ।
- १७ मंगली ढोल (विवाह के अवसर पर बजने वाला ढोल) ।
- १८ मंगलिक वर (शुभ वर) ।
- १९ मंगल छन्द, इसका दूसरा नाम अरुण छन्द है जिसका प्रयोग महाकवि तुलसीदास ने पार्वती मंगल में किया है ।
- २० मन्दिरो म रात के पिछले प्रहर की आरती "मंगला आरती करी जाती है और इस समय गाये जाने वाली एक विशेष रागनी के गीतों को 'मंगल' कहा जाता है ।^१
- २१ शुभकामनाओं के साथ लिखी हुई रचनाओं को भी 'मंगल' कहा जाता है । यथा मीरा मंगल^२ और मरुधर-मंगल ।^३

(ग्रा) विवाहलउ, मिनाहलो, मिनाह —

५५ ३ । विवाह शब्द की व्युत्पत्ति वि उपसग वह धातु और घञ प्रथम

म भिन्नकर हुई है । विवाह शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

'दारपरिगृहे तज्जनके व्यापारे च । उहाह शब्दे, उपसग शब्दे चटुशप्रम ।

'भाषतिवसम्पादकज्ञानम् विवाह इति उद्धा० रघु भाषातिवस्वोपलक्षणतया निवेश ।

तेन नायोयात्रय "चरम सस्कारो विजातीय सस्कारो वा विवाह इत्यथे ।"^४

१- रावत जी प्रतापसिंहजी, मरुवाली, जयपुर, वय १, अंक ३ ।

२- ले० पुष्पोत्तम लाल मेनारिया, मरुवाली, जयपुर, वय १, अंक १ ।

३- ले० नात्रराम सस्कर्ता कलाप्रण, श्री शाबूल राजस्थानी रिसर्व इन्स्टीट्यूट, धोकानेर, पृ० ७४-८७ ।

४ वाचस्पत्यम, बलवत्ता, भाग ७, पृष्ठ ४६२१ ।

विवाह श ^२ का मूल अर्थ बहन करना है । प्राचीन विवाह मंगल सज्जक नामा का रूप 'विवाहलत' प्राप्त होता है ।

(इ) वेलि

५६ ३ । वेलि शब्द बलनी अथवा बल्लरी नामक संस्कृत शब्दों से 'युत्पन्न हुआ । 'वेल' प्रसार की प्रतीक मानी गई है । अतएव अनेक रचनाओं के नाम वेली परक रखे हैं । 'वेल' फलदायक भी होती है । अनेक वलि काव्य रूपक के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं । अराराज पृथ्वीराज ने अपनी काव्य कृति 'वेलि' का भी रूपक बताया है—

बल्लरी तसु बीज भागवत वायी, महि याणो प्रिष्टुदास सुख ।
मूल ताल जड अरथ मण्डहै, सुधिर करणि चडि छाह सुख ।
पत्र अकवर दल डाला जस परिमल, नवरस त तु त्रिधि अहो निसि ।
मधुकर रसिक सु भगति मजरी, मुगति फल फल मुगति मिसि ॥^१

वेली को वेल और वेलडी भी कहा गया है—

पसरी मुक्ति वेल रूपसी ।
गगा वहै इसी छवि गहरी ।^२
विण सरअर जिमि बेलडी, कठ बिना जिम माल ।
पुरुष विहणि पन्नो, किणी परि ठेलिसी काल ॥^३

वेल का अर्थ समुद्र, सागर, तरंग और सहर भी माना जाता है । समुद्र गहराई और अन्तार का चोकर है—

जिम मधुकर नइ कमलणी, गगा सागर वेल ।
लुवधा दोनउ माहवी, काम कतूहल बल ॥^४

वेल का एक अर्थ वन भी होता है—

वेल घघो म्हारे वाप री,
ज्यू माळी ज्यू दूर ॥^५

१— वेलि त्रिमन दक्षिणणी रो छन्द सं० २६१, २६२ ।

२— सुग्न प्रकाश, कविता करणीदान क्त, भाग १, पृ० १३७ ।

३— माधवानल काम बंदसा प्रबंध, गणकवाड ओरियटल लिरीज विश्वविद्यालय इण्डिया, पृ० २०६ ।

४— दोला माल रा दूरा सं० ५६२ ।

५— राज पाणी सोरुगीत भाग १ राजधाना रिमर्च सोमादटी, कलकत्ता गणगौर का शीत ।

प्रत्येक डिगल शैली की रचनाएँ वेनियाँ प्रथवा मिश्र वेनियाँ गीत नामक युद्ध में लिखी गई हैं इसलिये भी इन रानाम्रो का 'बलि' नाम सार्वक होना है। मया—'बेलि क्रिसा रुविमणी री', (महाराज पृथ्वीराज कृत) क्रिस्नजी री वेल, (कर्मसी सागला कृत) राजा रार्सिधजी री वेलि राजा सूरसिधजी री वेलि (गाडण चोलो रचित), राज कुमार अनूपसिंहजी री वेलि (गाडण वीरभाणु रचित), राठौड रतनसी खीवावत री वेल, राठौड देईदास जैतावत री वेल । बारहूठ अगाजी भाणीत रचित), राणा उदैसिध री वेल (सादू रामाजी रचित) और नाममाला वेल (हमार नामर कवि द्वारा वि० सं० १७७ में रचित कोरन्म) ।

(३) हरण

५७ ३ । प्राचीन काल में कन्या का विवाह के लिये हरण भी किया जाता था । वीर पुरुष अपनी प्रेमिका को प्रथवा खिन्न कुमारिया को युद्ध में शक्ति प्रयोग से प्राप्त करते थे । मंदिरों में दक्षिणा के लिये प्रथवा मेला में मनोविनोद के लिये आया हुई कुमारियों का भी हरण किया जाता था । अनेक प्रादिम जातियों में 'हरण' प्रथा आज भी विद्यमान है । भगवान् श्री कृष्ण ने रुविमणी का और पृथ्वीराज चौहान ने सयागिता का हरण किया था । अतएव सम्बन्धित विवाह सम्प्रदाय को अनेक काव्य 'हरण' परक कहे गये हैं ।

हरण और अपहरण में मुख्य अंतर यही है कि हरण बहुधा प्रेमिका की इच्छा और संकेत के अनुसार होता है और अपहरण में स्त्री की अनिच्छा होती है । कृष्ण द्वारा रुविमणी की और पृथ्वीराज चौहान द्वारा सयागिता की प्राप्ति 'हरण' ही कही गई है ।

५८ ३ । भारतीय भाषाओं में मगल-काव्य गैकडों की संख्या में उपलब्ध होते हैं । जानकी-मगल^१ पावती-मगल^२ और रुविमणी-मगल^३ जैसे मगल सप्तक हिंदी काव्यों से स्पष्ट होता है कि हिन्दी में मगल का य के अंतर्गत मुख्यतः विवाह-सम्बन्धी विषय ही लिया गया है । अथ भारतीय भाषाओं में मगल का य के अंतर्गत दत्त कथा, चरित्र स्तुति प्रादि अनेक विषयों का समावेश हुआ है । उदाहरणार्थ मराठी कन्नड तेलगु और आंध्र देशीय मगल-काव्यों का विवरण इस प्रकार है—

(क) मराठी मगल-काव्य

- १ अतूर्णस्तुति कर्ता— मोरोपत (शक सं० १६५१-१७१२) ।
- २ हरिहर प्रार्थना कर्ता— मोरोपत ।
- ३ गणपति प्रायना, कर्ता— मोरोपत ।
- ४ केकावली, कर्ता— मोरोपत, आवागमन से मुक्त होने की प्रायना ।

१ अ २— कर्ता— गोहरामी कुलसीवात जी ।

३ — कर्ता — विश्वदास, सुरदास १ रदाग प्रादि ।

- ५ वृष्टगस्तुति, कर्ता— मोरोपत ।
- ६ गदघ्न रामायण, कर्ता— मोरोपत ।
- ७ दुर्गास्तवन कर्ता— मोरोपत ।
- ८ व्यकटेश प्रार्थना, कर्ता— मारोपत ।
- ९ विश्वेश्वर-स्तवन कर्ता— मारोपत ।
- १० पादुरग स्तुति, कर्ता— मारोपत ।
- ११ अम्मा स्तवन कर्ता— तानाजी देशमुख सभक्त महाराज निवाजा क
प्रधान सेनापति ।
- १२ उप जाल स्तोत्र कर्ता— दामोपत, शीतहर्षी शती ।
- १३ वज्रपत्ररक्ताय, कर्ता— दामोपत ।
- १४ भगवद्गीता स्तोत्र कर्ता— दामोपत ।
- १५ शीतज्वर-निवारण स्तोत्र, कर्ता— दामोपत ।
- १६ शिव स्तोत्र, कर्ता— दामोपत ।
- १७ करुणाष्टक, कर्ता— रामदास (शक १५३०-१६०१) ।
- १८ मनोबाज, कर्ता— रामदास, आत्मज्ञान विषयक ।
- १९ गणेशाष्टक कर्ता— मध्वमुनि (शक १६११-१६५६) ।
- २० गंगाष्टक, कर्ता— मध्वमुनि ।
- २१ अम्बिकाष्टक कर्ता— गोसावी (गोस्वामी ?) नन्दन (शक १५८०-१६५०)
- २२ रेणुकाष्टक, कर्ता— गोसावीनन्दन ।
- २३ दत्तात्रेयस्तव, कर्ता— वामन, १७ वी शती ।
- २४ ब्रह्मास्तुति, कर्ता— वामन ।
- २५ शिव स्तुति, कर्ता— वामन ।
- २६ दत्तात्रेयाष्टक कर्ता— नारायण (शक १५६४) ।
- २७ महिम्नस्तोत्र, कर्ता— नारायण मुनि (सभक्त उपरोक्त ही है) ।
- २८ देवीअष्टक, कर्ता— वनाजी (ई० १८वी शती) ।
- २९ शिवाष्टक, कर्ता— वनाजी ।
- ३० निरजनाष्टक, कर्ता— रत्नाकर (ई० १७वी शती) ।
- ३१ पादुरग स्तोत्र, कर्ता— महीपति (१६३७-१७१२ शक) ।
- ३२ भाष्मस्तवराज कर्ता— माधव (शक १६२५) ।
- ३३ मल्लारि अष्टक, कर्ता— रगनाथ, (१७वी शती) ।
- ३४ मल्लारि स्तोत्र, कर्ता— दादो रगनाथ ।
- ३५ महिषासुरमर्दिनी स्तोत्र, कर्ता— विश्वनाथ ।
- ३६ मानण्डाष्टक, कर्ता— रगनाथ (उपरोक्त ही) ।
- ३७ बिटठलस्तुति, कर्ता— अन्न त फडी (शक १६९६-१७४१) ।

- १८ व्यकटाष्टक, स्तोत्रदशक, कर्ता—गिरिआत्मज (शक १६५८) ।
 १९ वेद-स्तुति कर्ता—व्यकटेश और गोविन्द (शक १६१०) ।
 ४० सरस्वती स्तोत्र, कर्ता—गिरधर, (ई० १७वीं शदी) ।
 ४१ हनुमन्ताष्टक, रचयिता—माणवेश्वर ।
 ४२ सोम मुन्दरस्तोत्र, कर्ता—ग्रज्ञातनामा ।^१

कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी मराठी काव्य एव नाटक—

नरेन्द्र कवि (शक स० ११६०-१२५०) भास्कर कवीश्वर, मुनि कृष्णदाम श्रीधर स्वामी, मोरोपंत, विट्ठल, एकनाथ, सामराज, जयराम स्वामी, चित्तामणि (रुक्मिणी हरण नाटक, र०का०ई०स०१६७५ से पूर्व), ताक्किसिंह (रुक्मिणी परिणय नाटक), चूडामणि राज दोक्षित (रुक्मिणी कन्याण), सरस्वती निवाम रुक्मिणी नाटक) और वरद कवि (रुक्मिणी परिणय नाटक) आदि अनेक कवियों तथा नाटककारों ने लिखे ।^२ उक्त रचनाओं में से एकनाथ का रुक्मिणी म्थववर और सामराज का रुक्मिणी हरण मुख्य है ।^३

(ख) कन्नड-मगल काव्य

- १ महिम्न स्तोत्र,
 २ मल्हण स्तोत्र,
 ३ अनामय स्तोत्र
 ४ भृ गिस्तव } गुरुदेव, सन् १३५० ।
 (घोर शैव कवि)
 ५ चन्द्रनाथाष्टक, मौक्तिक कवि (जैनकवि) सन् ११२० ।
 ६ जिन स्तुति कल्याण कीर्ति, सन् १५३६ ।
 ७ त्रैलोक्य चूडामणि स्तोत्र, ब्रह्मसिंह, सन् ११२५ ।
 ८ देवी स्तोत्र, गुरुसिद्ध अर्थात् इम्मडि मुरिगेच्च स्वामी सन् १५६० ।
 ९ नन्दो माहात्म्य, गोविन्द, (ब्राह्मण कवि) सन् १६५० ।
 १० उमा स्तोत्र या त्रिपुर-मुन्दरी स्तोत्र, गुरुनज, सन् १५०० ।
 ११ नरसिंह स्तुति, पतियण्ण, सन् १७०० ।
 १२ पद्मा, विरूपाक्ष शतक विजयनगर के राजाओं का कुलदेव हिरिपूररग, सन् १६५० ।
 १३ पार्वतीय सोवने, रामचन्द्र कवि, सन् १७०० ।
 १४ रगनायक रगनायकि, स्तुति (मगलदेवता) चित्रकुपाध्याय, सन् १६७२ ।

१- भारतीय साहित्य, हिन्दी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, छागरा, जावरी १९५६ ।
 २- डॉ० धानन्द प्रकाश दोक्षित, बेलि क्रिसन रुक्मिणी रो विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, सूमिका पृ० १६२-१६४ ।
 ३- वही, पृ० १६४-१७३ ।

- १५ अम्बिका विजय, प्रादि शबिन देवी ने राजयोगागुर का यथ किया । इना घटना की क्या इसमें वाणत है । बरूर २०, सन् १७१० ।
- १६ अम्बा स्तात्र महान्दिक, १६ वी सदी ।
- १७ गणाष्टक, महादर्शिन, १६ वी सदी ।
- १८ रेणुकायस्तात्र, महान्दिक १६, वी सदी ।
- १९ अण्ड कावेरी माहात्म्य मुम्माड कृष्णराज (मैसूर के नरेश) सन् १७४६ म १८६४ ।
- २० देवी माहात्म्य सप्तसती, (मार्षण्डेय पुराण की क्या) मुम्माड कृष्णराज सन् १७४६ म १८६४ ।
- २१ उपा परिणय, मुम्माड कृष्णराज ।
- २२ सागाधक परिणय, मुम्माड कृष्णराज, सन् १७४६ म १८६४ ।
- २३ जिनेश्वराष्टक, ? सन् १३०० ।
- २४ अनन्त जिनेश्वराष्टक ? सन् १५०० ।
- २५ अलमेल मण्ये लाता, निहानि वेक्टरमण का पत्नी लक्ष्मोदेवा क, नागियां श्रीमता चेनवावे, सन् १७२५ ।
- २६ तुनाकावेरी माहात्म्य (आग्नेय पुराणोक्त) श्रीमती चेनुवावे सन् १७२५ ।
- २७ अष्टोत्तर शत मगल गीतावलो, गिरिभट्टरतम्पटय १६ वी सदी ।
- २८ कावेरी पुराण गोरूर नरसिहाचार्य, १६ वी सदी ।
- २९ कावेरी माहात्म्य, रग्य, (मैसूर नरेश के सेनापति) सन् १७२० ।
- ३० गिरिजा देवी सक्रोतन, (पार्वती को स्तुति) शानवीर देगिक, सन् १६२० ।
- ३१ शक्राष्टक, नजुड (देवलपुर) सन् १८४१ ।
- ३२ त्रैलोक्य रक्षामणि स्तोत्र, ? , सन् १३०० ।
- ३३ देवी माहात्म्य (अत्यधिक प्रचलित ग्रन्थ) । संस्कृत देवा माहात्म्य का अनुवाद । इसमें ७१२ पत्र प्रौर १८ सग हैं । चिदानदावधूत (ब्राह्मण कवि) ।
- ३४ बगलावा स्तोत्र, (सिद्ध पर्वत निवासिनी अम्बा का स्तोत्र चिदानदावधूत, सन् १७५० ।
- ३५ पावता स्तुति, ? सन् १६५० ।
- ३६ गिरिजा कल्याण, (गिरिजा विवाह) सन् १७५० ।
- ३७ प्रभावना परिणय अन्वित लिगराज, सन् १८२३ १८७४ ।
- ३८ गिरिजा कल्याण, अन्वित लिगराज सन् १८२३ १८७४ ।
- ३९ जानकी परिणय सूर्यनारायण, १६ वी सदी ।
- ४० पद्मावती परिणय वालाचाय, १६ वी सदी ।
- ४१ मानाक्षी कल्याण, (मगल) इडगूरू रुद्रकवि, १६ वी सदी ।
- ४२ रुमिणी परिणय सांघार० वेल्म्भ, १६ वी सदी ।
- ४३ रुमिणी परिणय, ए० श्रानिवास सूभागा, १६ वी सदी ।

- ४४ सीता इत्याम्, श्रोमती हेलवन कट्टे गिरियम्मा, सन् १७५० ।
 ४५ सीता कल्याण, मेरसावे शातव्य मन् १८३० ।
 ४६ रेगुका माहात्म्य, यत्तो गुडडो कुलकर्णी, २० वी सदी ।
 ४७ रेगुका माहात्म्य, गु० भो० नामसेवी, २० वी सदी ।
 ४८ बनशकरी माहात्म्य, (स्कध पुराण के आधार पर) गलगनाथ, २० वी सदी ।

(ग) तेलुगु मगल-काव्य

- १ मवश्वर शतकमु यथावावकूल अ नमय्या, सन् १२४२ ई० के लगभग, कृष्णा नदी के किनारे, मयशाला नामक स्थल ।
 २ चैतूमल्लु सीसमुत्तु पानकुरिकि सोमनाथ, सन् १३२० ई० के लगभग (समय के बारे में मतभेद है बुद्ध समालोचको के अनुमार ११४०-११६६) यालकुरिकि काकतीय राजाओं के राज्यकाल में विद्यमान ।
 ३ वीरनारायण शतकमु, रावुरिसाजीव कवि, सन् १७३१ ई० भुवनेगिरी (तल्लगाना) ।
 ४ रमागिेश शतकमु, अडिदमु सूरकवि, सन् १७११-८५ ई० विजयनगर विशाल जिला के आस-पास ।
 ५ बालसुब्रमहण्य शतकमु गृहत्तारुम् नागशास्त्रा सन् १७४० के लगभग दक्षिण एतय आध ।
 ६ सिहाद्रि नारसिंह शतकमु गोमुलपाटि कूर्मनाथुडु सन् १७५० विजाय मडल में सिहाचल नामक यात्रा स्थल ।
 ७ आध्रनायक शतकमु, कामुन पुरपोत्तम कवि, सन् १७६१ ई०, पदप्रोलु (कृष्णा जिला) ।
 ८ रमणोमनाहर शतकमु गगाधर कवि, सन् १८५० ई० ।
 ९ ज्ञान प्रसूनाक्षिका शतकमु शिष्टसव शास्त्री सन् १८१०, काल हस्ति (त्रिचुर जिने का एक प्रसिद्ध यात्रा स्थल) ।
 १० नदनदन शतकमु, बडडादिसुब्बराय, सन् १८७७ रचनाकाल, जीवन १८५४-१९३८, राजमहेन्द्रवर । गोदावरी नदी के किनारे वसा हुआ है ।
 ११ कामेश्वरी शतकमु, चेल्लपिल्ल वेकट शास्त्री सन् १८७-१९५० कडियमु, (गोदावरी जिला) ।
 १२ सूयनारायण शतकमु, अजात, वराहोक्त नृसिंह कवि ।
 १३ विश्वेश्वर शतकमु विश्वनाथ सत्यनारायण जन्म स० १८८५ विजयवाडा ।
 १४ हनुमत्पंचविदाति, तिरनूर गोपाल कवि ।
 १५ वेकटाचल विहार शतकमु

(घ) आन्ध्र के मंगल-काव्य

- १ भोगिनो दण्डक, नम्रय भट्ट, १००१-१३८० ई० के मध्य ।
- २ विधनेश्वर दण्डक ।
- ३ श्री राम दण्डक, मादिन सभद्रम्या, १६५१-१८७५ ई० ।
- ४ राम दण्डक आडिद यूरत्रा, १६५१-१८७५ ई० ।
- ५ वृत्सिह दण्डक, येनुगु लक्ष्मण कवि १६५१-१८७५ ई० ।
- ६ पोलेरम्मा दण्डक ।
- ७ आजनेय दण्डक ।
- ८ सुयनारामण दण्डक ।
- ९ भास्कर शतक, भास्कर १००१-१२८० ई० व ग्रीच ।
- १० श्री काकुलाप्रनायक ।
- ११ मानस बोध शतक ।
- १२ सुमती शतक ।
- १३ कृष्ण शतक ।
- १४ कुमारी शतक ।
- १५ भैरव शतक ।
- १६ शरभाक शतक ।
- १७ दाशरथी शतक, गोपना, १६५१-१८७५ ई० । *

(ङ) गुजराती मंगल काव्य

- १ अष्ट पटराणी नो विवाह, दयाराम ।
- २ ईश्वर विवाह गोपीभान ।
- ३ ईश्वर विवाह देवीदास छोट्टा ।
- ४ ईश्वर विवाह, मुरारि ।
- ५ कानुडा नो विवाह अज्ञात ।
- ६ कृष्ण विवाह, राधा बाई ।
- ७ गोकुलनाथ जो नो विवाह, महीदास ।
- ८ गोपोकृष्ण विवाह, जीवनदास ।
- ९ जानकी विवाह, तुलसीदाम ।
- १० वली नो विवाह अज्ञात ।
- ११ तुलसी नो विवाह अज्ञात ।
- १२ तुलसी विवाह गिरधर ।

- १३ तुलसी विवाह, प्रभाशकर ।
- १४ तुलसी विवाह, प्रीतम ।
- १५ नरसिंह ना पुत्र नो विवाह, हरिदास ।
- १६ नरसिंह ना पुत्र नो विवाह, मोतीराम ।
- १७ नरसिंह ना पुत्र नो विवाह, प्रेमानन्द (बडा) ।
- १८ नरसिंह ना पुत्र ना विवाह, प्रेमानन्द (छाटा) ।
- १९ नागर विवाह, रणछोड ।
- २० नाम जती विवाह, दयाराम ।
- २१ महादेव विवाह, बल्लभ ।
- २२ महादेव विवाह, फूड ।
- २३ रघुनाथ जी नो विवाह, गोविन्द ।
- २४ राधा विवाह, रणछोड ।
- २५ राधिका विवाह, राजे कवि ।
- २६ राधिका विवाह, द्वारको ।
- २७ राम विवाह, इच्छाराम ।
- २८ राम विवाह, दिवालो बाई ।
- २९ राम विवाह, प्रभूराम ।
- ३० स्वमणी विवाह, त्रिकमदाम ।
- ३१ स्वमणी विवाह, कृष्णदास ।
- ३२ स्वमणी विवाह, गोविन्द दास ।
- ३३ स्वमणी विवाह, दयाराम ।
- ३४ स्वमणी विवाह, धनजी ।
- ३५ स्वमणी विवाह, मुक्तानन्द ।
- ३६ स्वमणी विवाह, रघुनाथ ।
- ३७ विठ्ठलनाथ जी नो विवाह, माधवदाम ।
- ३८ विवाह, खेल, बल्लभ ।
- ३९ विवाह, खेल, नारायण ।
- ४० विवाह, खेल, उत्तमराम ।
- ४१ वेणवत्तराज विवाहलउ, अमर, १९०७ लिखित प्रति ।
- ४२ सामल साह नो विवाह, नरसिंह ।
- ४३ सामल साह नो विवाह, बल्लभ ।
- ४४ सामलसाह नो विवाह, आधार भट्ट ।
- ४५ शिव विवाह, नाकर ।
- ४६ शिव विवाह, छोटम ।
- ४७ शिव विवाह, रणछोड ।

- ४८ निव विवाह, जग जीवन ।
 ४९ निव विवाह मयाराम ।
 ५० सत्यभामा विवाह दयाराम ।
 ५१ सोना विवाह, भालण ।
 ५२ सूरति विवाह, दयाराम ।
 ५३ सूरति वाई ना विवाह धेलाभाई ।
 ५४ सूरति वाई ना विवाह, धोरा ।
 ५५ सूरति वाई नो विवाह, निभय राम । १

(च) हिन्दी-मगल-काव्य

५६ ३। प्राय भाषाओं की भांति हिन्दी में भी विवाहमगन काव्य-रचन का सुगंध परम्परा रही है और विष्णुदास सूरदास तुलसी तथा नट्टास आदि अनेक प्रमुख कवियों ने विवाह-मगल मञ्जक रचनाएँ लिखी हैं जिससे यह काव्य-धारा हिन्दी के साहित्यिक इतिहास-ग्रन्थों में अद्यावधि सवधा उपक्षित रही है। उदाहरण स्वरूप उक्त भारतीय साहित्य आगरा में हिन्दी मगल काव्य का उत्तम नही है और सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्य कोश २ के अन्तर्गत ही भाग में मगल-काव्य-रूप का कोई विवरण प्राप्त नहीं होता। विवाह विषयक काव्या में भी निम्नलिखित काव्यों का ही परिचय मात्र दिया है—

- १ जानकी मगल, -गो० तुलसीदासजी । ३
- २ पावती मगल -गो० तुलसीदास जी । ४
- ३ रामलला नहलू, -गो० तुलसीदास जी । ५
- ४ रुक्मिणी मगल, -विष्णुदास । ६
- ५ रुक्मिणी मगल -नट्टाम । ७
- ६ डेलि क्रिसन रुक्मिणी री -पृथ्वीराज राठीठ (स० १९३७) । ८
- ७ रुक्मिणी मगल -नरहरी बदीजन (स० १५६२-१५८५) । ९
- ८ रुक्मिणी मगल -नवलसिंह । (स० १८७२-१९०७) । १
- ९ रुक्मिणी परिणय -महाराजा रघुराजसिंह । ११
- १० रुक्मिणी विवाहला -कृष्णदास । (स० १९६२) । १२
- ११ रुक्मिणी मगल, -हरिनारायण (लि०का० स० १९५५) । १३
- १२ रुक्मिणी मगल -ठाकुरदास (स० १८६५) । १६

१- प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा श्री अमरचन्द्र नाहटा भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर पृ० ६०-६२।

२- स० सख श्री धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान), अजेश्वर वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी और रघुवश (संयोजक) प्रका० ज्ञान-मण्डल लि० वाराणसी।

३- भाग २, पृ० २००।

८- भाग २ पृ० ३१५।

५- भाग २ पृ० ४६८।

९-से १६ - भाग २, पृ० ५०७।

- १३ हविमणी मगल, -मानमान, उपनाम कृष्ण चाब्रे ।^१
 १४ हविमणी मगल, -रामलाल (लि० का० म० १८६२ नगभग) ।^२
 १५ हविमणी मगल, -हरिचन्द्र द्विजदास, ।^३
 १६ हविमणी को व्याख्या, -पद्म भगत ।^४
 १७ स्वाम सगई, -न ददान ।^५

६० ३। उक्त "हिं नी साहित्य काण" म अनक विवाह विषयक एव मंगल सनक प्रथम रचनाका का परिचय नही प्राप्त होता। राजस्थान क मत्स्य नैम छांट भाग म हुए हिं नी हस्तलिखित ग्रन्थ सर्वेक्षण म ही इस प्रकार की दस द्वितीया का परिचय उपलब्ध होता है। इनका विवरण इस प्रकार है—

- (१) जानकी मगल, रामनारायण कृत, पृ० स० १३३, २६६ ।
 (२) जानकी मगल, हनुमत्त कवि, स० १६३४ ।

यह पुस्तक स्वयं लेखक ने लिपिवद्ध की। इस ग्रन्थ के छन्दो की सत्या ९६३ है। कवि नगर निवासी थे, उनका कहना है— "श्रीर नगर सब नञ्जल है नगर नगर सुख मोन ।" पृ० ६ ।

- (३) पार्वती मगल, रचयिता गुसाई रामनारायण, स० १६३८ ।

पठनार्थ पुजारी नारायण, पत्र स० ३६ । इस पुस्तक की एक प्रति श्रीर भी मिलती है जिसकी पत्र स० ८२ है। यह पुस्तक ५० जगनाथ जी डीग वाना के अधिकार मे है। प्रति म० १६४७ की लिखी हुई है। पृ० १०४, १३३ १५० २६६ ।

- (४) प्रलवत जी का विवाह, गणेश कृत पृ० २०६ ।
 (५) महादधजी को व्याहलो, रचयिता सोमनाथ स० १८१३ ।

पत्र म० ११८ श्रीर उल्लास ५ है। इसकी गौली ध्रुव विनोद क अनुसार है। महान्व जी क विवाह का वर्णन प्रात के जागिया क गीतो के अनुसार है। स्वान स्थान पर प्रकृति वर्णन भी मिलता है। पृ० २६, १२८ १४७ १५० १६८ २६६ ।

- (६) राधा मगल रचयिता गोसाई रामनारायण १६३३ ।

पार्वती मगल श्रीर जानकी मगल की तरह जिली गी यह पुस्तक एक सुन्दर प्रबन्ध-काव्य है जिनम मंगलाचरण भूमिका गुरु बन्दना आत्म परिचय आदि हैं। पुस्तक म ११ अध्याय हैं। इसमे किये गये वैवाहिक वर्णन बहुत सजीव हैं। रामनारायण कोमामी का रहने वाला था श्रीर यह ग्रन्थ भरतपुर कालवानी मे लिखा गया था। कवि ने इसका रचना

१ - से ४ हि० सा० को० भाग २ पृ० ५०७ । ५-वही, पृ० ६२७ ।
 ६ - मत्स्य प्रदेश की हिंदी साहित्य को देन, ले० डा० मोतीलालजी गुप्त, प्र० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ।

काल 'त्रतीस बहुरि उ नीस' लिखा है । पृ० स० ९, १२४, १३३, १४३, १४४, १४५, १६८, २६६, २६६ ।

(७) रक्मिणी मंगल, पृ० २६६ ।

(८) विनयसिंह जी की पुत्री का विवाह, रामलाल कृत, पृ० स० २०६ ।

(९) विवाह विनोद रचयिता रामलाल ।

विनयसिंह जी की पुत्री बीकानेर के राठोड सिरदारसिंह जी के साथ ब्याही गई थी । इस पुस्तक में वधाहिक कृत्य की बहुत सी बातें हैं । कविता साधारण कोटि की है, "श्री सिरदार महीपती की प्रति हृषित हू तनया निज दानी ।" पृ० स० १७१, २०६, २०७ ।

(१०) विवाह विनोद, रचयिता गणेश, सवत् १८८६ ।

पुस्तक में कवन ६० पद्य ही मिल सक । महाराज बलवतसिंह का यह विवाह "डींग क कपार वारे" महला में भूपति सुरूप का सकुटुम्ब बुलाकर दावान भोलानाय जी न सम्प न कराया । मुख्य चित्रों क रहने वाल थे । पृ० १७ ।

६१ ३ । विवाह-सम्बन्धी प्रथम हिन्दी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

हिन्दी साहित्य की विवाह सम्बन्धी प्रबोधनमय महत्वपूर्ण रचना नरसिंह दास कृत 'वीसल' रास उपलब्ध होती है । प्रभिकाश विद्याना ने इस काय को हिन्दी के प्रथमकाल का रचना माना है । बीसलदास राम म भ्रजमेर के राजा बीसलदेव का धार क परमार राजा भाज की राजकुमारी राजमती क विवाह का वयन है । इस कृति में लोकरीत्यानुसार विवाह का मरस चित्रण है—

माणिक मोती चउक पुराय ।

पाव पयान्या राव का राजमती दोई बीसलराव ॥

हुई सोपारी मनि हरप्यो छइ राव । वाजिय वाजइ नीसाणे घाव ॥

गण माहि गूढो उदनी । घरि घरि मंगल तारण च्यारि ॥ १

परणवा चाल्या बीसलराव । पच सखी मिली कलस वदावि ॥

मानो का प्रापा क्रिया । कू कू चदन पाका पान ॥

अमली समली आरती । जाई वधेरइ दिया मिलाण ॥ २

६२ ३ । महाकवि च कृत पृथ्वारज रासा म ६९ समय प्रयान् सग हैं इनमें से मनेक गण पृथ्वारज चोहान क विवाहा म सम्बन्धित हैं जस—

१ शृङ्गिनी ब्याह कया, मग सग्या १४ ।

२ पद्मावती ब्याह कया, सर्ग सग्या २० ।

१- बीसलदेव राम, ना प्र ग०, पृ० ८-९ ।

- यही पृ० १० ।

- ३ पृथा व्याह कथा, सर्ग सख्या २१ ।
- ४ इन्द्रावती व्याह, सर्ग सरया ३३ ।
- ५ विनय मगल नाम प्रस्ताव, सर्ग सरया ८५ ।
- ६ विनय मगल, सर्ग सख्या ४६ ।
- ७ सजोगिता नेम प्रस्ताव, सर्ग सरया ५० ।
- ८ विवाह सम्बन्ध, सर्ग सरया ६५ ।

यदि पृथ्वीराज रासो का हिन्दी की प्राचीनतम रचना माना जावे तो हिन्दी का नाम "मगल" शब्द का प्रयोग "विनय मगल" के रूप में सर्व प्रथम पृथ्वीराज रासो में ही मिलता है ।

पृथ्वीराज रासो में विभिन्न राजकुमारियों के सौ दश, नव शिव निरूपण शृंगार रक्षण, सदेग, सेना सहित पृथ्वीराज के आगमन, विरोधी पक्षों से पृथ्वीराज के युद्ध, पृथ्वीराज की विजय, और विवाह आदि के सरस चित्रण है। अनेक स्थानों में पृथ्वीराज ने कृष्ण द्वारा रत्नमणी हरण के आदेश का अग्रनाया है, जिसके विषय में कवि ने स्पष्ट रूपण लिखा है—

इहा— ज्यो रक्मनि कहर वरी, ज्यो वरि मभरि कात ।
शिव मडप पच्छिम दिसा, पूजि समय स प्रात ॥४५॥'

कवि ने पृथ्वीराज का वामुख कृष्ण का अवतार मानने हुए कृष्ण रत्नमणी विवाह से अनेक विवाह प्रसंगा में प्रेरणा ली है। श्रीमद्भागवत के श्रीकृष्ण दशमणी विवाह प्रसंग के अनुसार राजकुमारी के विवाह हेतु किसी भय राजा से समाई होना, राजकुमारी का पुरोहित अथवा "द्विज" (पक्षी या ब्राह्मण) के साथ पृथ्वीराज का मदेश भेजना पृथ्वीराज और राजकुमारी के मंदिर में मिलन का स्थान निश्चित होना, पृथ्वीराज का मंदिर में राजकुमारी का हरण करना, विरोधी पक्षों से युद्ध, पृथ्वीराज की विजय और सम्बन्ध राजकुमारा में विवाह आदि के प्रसंग सामान्य परिवर्तनों के साथ पृथ्वीराज रासो में चंद द्वारा चित्रित किये गए हैं। रासो का "अशावती समय" उक्त प्रसंग का एक उत्कृष्ट उदाहरण है ।

६३ ३ । भक्तिकाल में निर्गुण और सगुण दोनों गाथाओं के कवियों ने 'मगल' रूप में विवाह व्रतों को लिखा है। जाना गया उपयोग के निर्गुण कवियों ने आत्मा-परमात्मा का एक मानते हुए मूर्तत्ववादी सिद्धांत का प्रतिपादन किया। अनेक स्थानों में इन कवियों ने परमात्मा को दुलहन और परमात्मा का वर के रूप में चित्रित किया है। दुलहन का भाति आत्मा परमात्मा रूपी वर में विवाह के लिए 'याकुल रहती है। कबीर ने मृत्यु को मगलकार माना

१- अशावती विवाह कथा नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, छद्म सं० ४५ ।

है। मृत्यु व उत्तरांत ही आत्मा माया व बंधन में मुक्त होकर परमात्मा की वर में मिल सकती है—

जा मरने में जग दूरे भी मन बहू घात ॥
कब गरिहा कब पारिहा, पूरण परमान ॥ १

कबीर ने आत्मा का गुण व रूप में प्रकट किया है—

कबीर मुन्दरि या बहे गुणि हा बन मुजाण ।
वेगि मिला तुम घाद करि, नहीं तरतजौ पराण ॥^२
परिया पारि हिंझानना मल्या कौ मघाद ।
गाई नारि मुलपणा निन पति भूतण जाद ॥^३

कबीर व नाम में 'प्रणव भोजन' नामक कृति में गिनना है त्रिपद योगाभ्यास व साय आत्मा परमात्मा व गिनन का विवरण है ।^४

कबीर का अनुकरण करते हुए पाश्र्वयी उपासना व अथ पत्र निष्ठु गा कविया न भी आत्मा परमात्मा व सम्बन्ध को बर नू व रूप में चित्रित किया है ।

६४ ३। हिंदी में प्रनव सूफी कविया ने अपने सिद्धांतों व प्रचार इतु प्रपा रयानव का पा का निर्माण किया । सूफी सिद्धांतानुसार ईश्वर को गुंरा राजकुमारी व रूप में और बन्धु का राजकुमार के रूप में चित्रित किया गया है । बन्धु व रूप में राजकुमार माग दर्जाक शुक व द्वारा ईश्वर रूपी गुंरी व रूप-यौवन की प्रणसा मुनता है तो प्रमावेग में भर कर गुदरी को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है । राजकुमारी को प्राप्त करने में प्रनव प्रचार की बाधाओं का वरण भी किया गया है ।

वन्धु के माग में मुख्य बाधा गतान की होती है । यह बन्धु को भ्रमज्ञान का प्रयत्न करता है । सच्चा साधक आपतिया का सफलपूर्वक पार करता हुआ गुंरा ही ईश्वर के समीप पहुँच कर उसको प्राप्त करता है ।

सूफी कविया ने उक्त सिद्धांतों का निरूपण दादा बीपाई में रचित विवाह सम्बन्धी श्रवणों काया में किया है । सूफी कवियों में मृगावती (२० वा० १५५६) व कर्ता कुतबन, मधुमानता (२० वा० १५५५) व कर्ता मभक्त चित्रावली (२० वा० १६१३) व कर्ता उरमान और पद्मानता (२० वा० १५६७ तगभग) के कर्ता जायसी प्रमुख हैं । जायसी ही सूफी मार्गों

१- साली, मुदरी को अग ।

२- वही ।

३- वही ।

४- डा० रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, स० १६५८, पृ० २५० ।

हिंदी काव्यधारा व प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने चित्रकूट (चित्तौड़) के राजा रत्नसिंह का सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती से विवाह अनाउहीन क चित्तौड़ पर आक्रमण और चित्तौड़ में रत्नसिंह की मृत्यु व पश्चान् पद्मनी व सती होने का मुक्तिस्तुत और सरम निरूपण अपने काव्य में किया है। काव्य के अर्थ में अपने प्रभावशाली व रूपक की आध्यात्मिक बताते हुए इस प्रकार स्पष्ट भी कर दिया है—

तन चितउर मन राजा कीन्हा । हिय सिधन, बुधि पदमिनि च.हा ॥
गुरु मुग्धा जेइ पय देखावा । विनु गुरु जगन को निरगुन पावा ?
नागमती यह दुनिया घघा । बाचा मोई न एहि चित बघा ॥
राघव दूत सीई सैतानू । माया अलाउदी मुलतानू ॥

६५ ३। रामभक्ति गाला में महाकवि तुलसी (१७वीं वि०) केशवनाम (ज० का० स० १६१२) स्वामी घण्टास (ज० का० स० १६३२) नाभानाम (ज० का० स० १६५७) मेनाराम (ज० का० स० १६४६), प्राणचंद्र चौडान (स० १६६७) श्रीकृष्ण मट्ट (ज० का० १७६६), महाराज विश्वनाथसिंह (ज० का० स० १७६०), रामगुलाम द्विवेदी (ज० का० स० १८७०) आदि प्रमुख कवि हो गए हैं ।^१ होने अपनी रचनाओं में राम जानकी विवाह का अपनी अपनी छवि और सामर्थ्य व अनुसार निरूपण किया है। राम का जानकी से विवाह हेतु प्रतिपक्षिया से किसी प्रकार का युद्ध नहीं करना पडा किन्तु स्वयंवर में शिव धनुष का तोड़कर अपनी शक्ति का प्रदर्शन अवश्य करना पडा। राम जानकी विवाह व अवसर पर कोई युद्ध नहीं हुआ, किन्तु राम जानकी विवाह राम शरण युद्ध का एक कारण अवश्य बना।

६६ ३। रामभक्त कवियों में तुलसीदास का स्थान सर्वोच्च है। तुलसीनाम का नाम से ३७ कृतिया उपलब्ध हुई हैं।^१ इन कृतियों में से केवल बारह कृतिया प्रामाणिक माने गई हैं।^२ महाकवि तुलसी कृत इहा बारह पद्यों का प्रकाशन तुलसी प्रभावशाली व अन्तगत ११ भागों में काशी नागरी प्रचारिणी सभा में किया गया है। तुलसी कृत महाकाव्य 'रामचरित मानस' में प्रसंगानुसार राम-जानकी विवाह का सरम वर्णन तो है ही। साथ ही तुलसीकृत 'रामललानहूँ', 'पार्वती मंगल' और 'जानकी मंगल' नामक कृतिया द्वारा महा कवि तुलसी ने हमारे साहित्य की विवाह सम्बन्धी मंगल मंत्रक काव्य-परम्परा को पृष्ट प्रदान का है।

रामनला नहलूँ —

१ - डा० रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आतावनात्मक इतिहास पृ० ३६६-७१ ।

२ - क-रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, स० २०१२ पृ० १४४ ।

स-साता सीताराम, सलेखनास काम हिंदी मिठरेचर भाग २, पृ० ८ से १६ ।

६७ ३। रामलला नहछू के रचना काल के विषय में निम्नलिखित संकेत मिलता है—

मिथिला मे रचना किए, नहछू मगल दोग ।
मुनि प्राचे मंत्रित किए, सुख पाये सब कोय ॥^१

बेणुमाधव दाम कृत गोसाईं चरित व अनुमार तुलसीदास की मिथिला यात्रा सन् १६४० के पूर्व हुई थी इसलिए रामलला नहछू का २० का० स० १६४० में पूर्व निश्चित होता है। यह तुलसी की प्रारम्भिक एवं अपरिमाजित रचना है। यह विवाह के अवसर पर गान व लिए लिखी गई है। इसका निर्माण 'मानस' में बहुत पहले का माना जाता है।

६८ ३। रामलला नहछू में कवन बास छत्र सोहर जाति व है। इनमें बारह घोर दस व विश्राम से २२ मात्राएं हैं अवध घोर विहार में विवाह व अवसर पर नहछू गाने की परम्परा है। तुलसीदास जा न इसे वास्तव में विवाह के समय में नहछू का व स्थान पर गाने के लिए बनाया है।^२ इस कृति का उदाहरण निम्न लिखित है—

आज अवधपुर आनंद नहछू राम क हो ।
चलहु नयन भरि देखिय सोभा धाम क हो ॥
गोद लिहे कौशल्या बैठि रामहि वर हो ।
सोभित दूलह राम सोस पर आचर हा ॥^३

पार्वती मगल—

६९ ३। पार्वती मगल के रचना-काल के विषय में भी बेणुमाधवदास ने लिखा है—

मिथिला मे रचना किए नहछू मगल दोग ।
मुनि प्राचे मंत्रित किए, सुख पावे सब कोय ॥^४

तदनुसार पार्वती मगल का रचना काल १६४० से पूर्व निश्चित होता है। तुलसीदास ने स्वयं पार्वती मगल का रचना काल इस प्रकार लिया है—

जय मवत फागुन सुदि पाचे गुरु दिनु ।
अश्विनि विरचेउ मगल मुनि सुख छिनु छिनु ॥^५

१ - बेणुमाधवदास कृत गोसाईं चरित छंद स० ६४ ।

२ - श्यामसुन्दरदास और डा० पीताम्बर बन बडमाल हिन्दुस्तानी एकदमी, इलाहाबाद १९३१ पृ० ६६ ।

३ - रामलला नहछू, छंद १३ ।

४ - गोसाईं चरित्र छंद स० ६४ ।

५ - पार्वती मगल छंद स० ५ ।

सुधाकर द्विवेदी श्रीर डा० जार्ज प्रियसन ने स० १९४३ का जय सवन् होना लिखा है।^१ इसलिये पार्वती मंगल का रचनाकाल भी सवन् १९४३ ही है। यह ग्रन्थ १४८ मंगल भर्षान् ग्रहण छटा में श्रीर १६ हरिगीतिका छटा में पूर्ण हुआ है भर्षान् इसकी पूर्ण छटा-सख्या १६४ है। मंगल छटा में ११ श्रीर ६ क विश्राम में २० मात्राएँ हैं श्रीर हरिगीतिका छटा में सातह श्रीर बारह क विश्राम स २८ मात्राएँ हैं। पार्वती मंगल में ब्राह्मण क वेग में शिवजी द्वारा पावती की परीक्षा सेन श्रीर गिब-पार्वती क विवाह का राचक वर्णन है। विवाह सम्बन्धी लौकिक प्रथाओं क चित्रण से वाक्य में यथार्थ का समाधान हुआ है। पार्वती मंगल की रचना प्रथमी भाषा में हुई है।

जानकी मंगल—

७० ३। वेल्लीमाधव दास के मतानुसार जानकी मंगल की रचना भी सवन् १९४० से पूर्व मभव है।^२ वेल्लीमाधव दास अपने कथन में स्पष्ट नहीं हैं। 'नह्यू मंगल गीय से नह्यू श्रीर मंगल दो रचनाओं का भी बाध होता है, ऐसी अवस्था में मंगल में नात्वर्ष जानकी मंगल लिया जाय भववा पार्वती मंगल यह निर्दिचन नहा हाता। 'नह्यू मंगल गीय, से नह्यू श्रीर दोनो मंगल भर्षान् पावती मंगल क जानकी मंगल लन पर ही स्पष्ट ग्रन्थ का बाध होता है। डा० रामकुमार वमा ने जानकी मंगल क रचनाकाल के विषय में लिखा है, "जानकी मंगल श्रीर पावती मंगल सम्पूर्ण सादृश्य रखन के कारण एक ही काल की रचनाएँ मानी जानी चाहिए। कथा ली श्रीर वर्णन गली तथा छटा प्रयोग में दोनो समान है। अत जानकी मंगल की रचना भी सवन् १९४३ में माननी चाहिए।^३ यह आवश्यक नहीं है कि कोई कवि सादृश्य रखने वाली रचनाएँ एक ही समय में कर। ऐसी अवस्था में डा० वर्मा का मत युक्ति संगत नहीं लगता।

७१ ३। जानकी मंगल में राम श्रीर जानकी का विवाह १६८ मरुण भर्षान् मंगल छटा में श्रीर २४ हरिगीतिका छटा में भर्षान् २१६ छटा में वर्णित है। हमने प्राठ मंगल छटा के उपरान एक हरिगीतिका छटा का क्रम रखा गया है। पावती मंगल की कथा मानस में वर्णित गिब-पार्वती विवाह प्रसंग से नहा मिलती उसी प्रकार जानकी मंगल श्रीर मानस क राम जानकी विवाह प्रसंग में भी भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। मानस की भांति जानकी मंगल में पुष्पवाटिका प्रसंग जनकपुर बखेन् श्रीर लक्ष्मण क दप का निरूपण गही है। साथ ही परगुराम का प्रागमन भी मानस की भांति तथा में नहा बतानकर बराह के लीटत समय मांग में बताया गया है। जानकी मंगल की कथावस्तु वाक्योक्ति रामायण क अनुसूच है।

१ - एगिडियन एण्टिक्वेरी भाग २२ (१८६२ ई०), पृ० १५-१६।

२ - मूल गोसाईं चरित् छटा स० ६४।

३ - द्विवेदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास सवन् १९५८, पृ० ३७८।

७२ ३। तुलसीदास ने रामचरित मानस में प्रसंगानुसार शिव पार्वती विवाह और राम जानकी विवाह वर्णन का समावेश किया है। १ मानस की विवाह-प्रधान काय नहीं कहा जा सकता किंतु इसमें माया हुआ राम जानकी विवाह-वर्णन किसी स्वतंत्र रचना से कम नहीं है। कवि ने पुरुषवाटिका प्रसंग का समावेश कर नायक नायिका में प्रवाचन प्रारंभ किया है। धनुष भंग के प्रसंग में नायक की शक्ति का प्रदर्शन भी समुचित रूप में हुआ है। महारवि तुलसी ने भगवान राम के द्वारा रावण और परशुराम जैसे दूरबीरो का गव खण्डन जनक की सभा में बतारकर मौलिक सूक्त का परिचय दिया है।

७३ ३। कृष्ण भक्ति गाथा व कविता ने कृष्ण भक्ति व सिद्धांतानुसार धार्ष्ट्य बालरूप वर्णन का प्रधानता दी है। इन कवियों ने श्रीकृष्ण का बाल लीलाया वर्णन कटाक्ष वत्सासुर घटासुर धेनुकासुर, प्रलम्भासुर, और कंस वध मन्व धी लालाभा का वही पूतना वध कालीय मर्दन गोवर्धन धारण रासलीलादि प्रसंगों को ही विषय महत्व में ही प्रस्तुत किया है। श्रीकृष्ण ने सातह हजार एक सौ आठ विवाह किये थे किंतु सभी गार्हस्थ्य ध्यान के पश्चात् ही इसलिये कृष्णभक्ति सम्प्रदाय के कवि इन विवाहों का विस्मृत निरूपण करने का अवसर नहीं प्राप्त कर सका।

७४ ३। रामद्विभागवत में श्रीमदानुसार श्रीकृष्ण व विवाहों का उल्लेख है और श्रीमद्विभागवत ही कृष्ण भक्ति-कविता का प्रधान उद्देश्य सात है मन्त्रिय कवियों ने श्रीकृष्ण व विवाहों और उनकी पटरानिया व विषय में सबत प्रसंग लिखे हैं।

७५ ३। श्रीमद्विभागवत के आधार पर ब्रजभाषा में भक्ति परक काय रचना करने वाले प्रथम कवि विष्णुदास हुए जिन्होंने मूरगास के ज म पचास वर्ष पूर्व और बल्लभाचार्य के कृतज्ञान प्रागमन के पूर्व वर्ष प्रथम रचनाओं प्रस्तुत की। जब तक हमारे साहित्यिक इतिहासकार बल्लभाचार्य और मूरगास की ही ब्रजभाषा में काव्य लेखन प्रारम्भ करने वाले का श्रेय देते रहें हैं। विष्णुदास का कृतियाँ इस प्रकार हैं - (१) महाभारत कथा (२) कवणी मगन (३) स्वर्गरोहण और (४) स्नेहलीला (धर्मगीत)। विष्णुदास द्वारा प्रारम्भ की गई मगलजाय व और धर्म गीत प्रसंग लेखन-परम्परा का अनुसरण मूरगास तथा नन्ददास धार्ष्ट्य कृष्ण भक्तों ने ही नहीं किया अपितु धार्ष्ट्य रूप में मन्त्रिय तुलसी ने भी किया। विष्णुदास मन्त्रियदर नरैण दूत गुरुद्विह (राज्याचार्यकाव्य १४५१ वि०) के सनकान्ति व धर्मका रचनाकाव्य वि०स० १४८२ है। २

७६ ३। कृष्ण भक्त कवियों में मूरगास प्रमुख हैं। मूरगास की महान् रचना मूरगास है जिसमें रामद्विभागवत के आधार पर ब्रजभाषा पद्यों में श्रीकृष्ण का धार्ष्ट्य वर्णन है। मूरगास का एक कृति 'ध्यातलो' भा उपलब्ध है। ३ ध्यातलो की पद्य संख्या २३ है किंतु यह कृति का प्रामाणिकता नहीं सिद्ध होता।

१ - बालवाण्ड।

२ - बागी नागरी प्र. गिरणी सभा की सोज रिपोर्ट सन् १८९२ ई. पृ० २५२।

३ - बही सन् १८०६-७ पृ० ३२३।

७७ ३। "सूरसागर" में श्रीमद्भागवत का भाषार ग्रहण किया गया है किन्तु भा कृष्ण सम्बन्धा प्रसंगो को हा विस्तार दिया गया है। उदाहरण स्वरूप पंचम और षष्ठ स्कंधो मे श्रीकृष्ण सम्बन्धी कथा नही है इसलिए इनमे केवल चार चार पत्र है। सूरसागर के दशम स्कंध मे कृष्णार्घ्यान का समावेश है इसलिए इसके पूर्वार्द्ध मे ३४६४ पत्र और उत्तरार्ध मे १३८ पद है। पूर्वार्द्ध मे अधिक पद-संख्या का कारण यह है कि बल्लभ सम्प्रदाय मे शीक्षित सूरदास बाल श्रीकृष्ण के उपासक थे जिनके चरित्र का समावेश इस दशम मंग के पूर्वार्द्ध मे हुआ है। उत्तरार्द्ध मे द्वारिका गमन से भक्त तत्क का श्रीकृष्ण का चरित्र है जिसका वषण्ड मक्षिप्त रूप में हुआ है। दशम मंग के उत्तरार्द्ध मे ही श्रीकृष्ण के अनन्त विवाहा का वर्णन किया गया है, जिनमे रुक्मिणी विवाह पर आधारित 'रुक्मिणी मंगल' मुख्य है।

७८ ३। बल्लभ सम्प्रदाय के धर्तर्गत मास्वामी विठ्ठलनाथ ने अष्टछाप नामक कवि मण्डल की योजना की। अष्टछाप मे सूरदास, नन्ददास कृष्णदास, परमानन्द राम, कुम्भनाथ चतुर्भुज दास छीतस्वामी और गोविन्द स्वामी का समावेश किया। नन्ददास ने "रुक्मिणी मंगल" नामक कृष्ण रुक्मिणी विवाह विषयक काव्य लिखा। इसमे ६० पद्या का समावेश हुआ है।^१ नन्ददास की विवाह विषयक अन्य रचना ६३ पद्य परक 'श्यामा-श्याम सगाई' है। इस रचना में श्यामा और श्याम की सगाई का वर्णन है।^२

७९ ३। भकबर के दरवार में नरहरि व दीजन नामक कवि थे जिनका रचित 'रुक्मिणी मंगल' प्राप्त होता है। कालांतर में अनेक कवि विवाह मंगल सजक काव्य लिखते रहे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा आयोजित हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थ-सर्वेक्षण, गिबसिंह सरोज, मुन्शी देवीप्रसाद, जाधपुर के लेखा और डा० प्रियर्त्तन के "माहन वर्नाकुलर लिटरेचर मादि के आधार पर प्रस्तुत "मिथत्रघु विनोद" के अनुसार हिन्दी एवं राजस्थानी विवाह मंगल सजक रचनायें इस प्रकार हैं—

- १ अगाध मंगल, कबीर, कवि संख्या (छ १५८)।^३
- २ अनिरुद्ध विवाह फलसूत्र कवि सं० (२२३०)।^४
- ३ अनिरुद्ध स्वयंवर, फूलचंद, कवि संख्या (ज०प० २ ६३)।^५
- ४ आदिमंगल, महाराजा विश्वनाथसिंह, कवि सं० (१७८४ १)।^६
- ५ आनंद मंगल, मनोराम कवि सं० (छ २६०)।^७
- ६ उषा अनिरुद्ध, रामदास, कवि सं० (६७६ १)।^८

१—काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट १९१२, १३, १४, १९०८ ७ व ८ और १९१७ १८ व १९।

२—वही।

३—पहला भाग, पृ० २२०।

४—तृतीय भाग पृ० १२२५।

५—प्रथम भाग पृ० ८।

६—तृतीय भाग पृ० १०२३।

७—प्रथम भाग १२।

८—द्वितीय भाग पृ० ६१६।

- ७ उषा हरण, हरखनाथ झा, कवि स० (२२६०) । १
 ८ उषा अनिरुद्ध भारतशाह कवि स० (छ-१४८) । २
 ९ कृष्ण विवाह उत्कण्ठा, श्रीहितवृंदावनदासजी, कवि स० (७२६) । ३
 १० गुणविजय विवाह, मुरारोदाम (दान), कवि स० (१६३४) । ४
 ११ गीरा परिणय नाटक, लाल झा मैथिल, कवि स० (१०३०) । ५
 १२ गीरी स्वयंवर भगवानदास कवि स० (२३२०) । ६
 १३ जानकी जू का विवाह मणिमदन मिश्र कवि स० (३५८) । ७
 १४ जानकी जू को मंगलाचरण, रघुवर शरण कवि स० (छ-३०६ए) । ८
 १५ जानकी मंगल, अयो यानाथ शर्मा, कवि स० (८४४०) । ९
 १६ जानकी मंगल, रामलाल, कवि स० (२२८२) । १०
 १७ जानकी मंगल, शीतलाप्रसाद निवारी, कवि स० (२५०८) । ११
 १८ जानकी मंगल परमानन्द प्रधान, कवि स० (छ प १ ७५) । १२
 १९ जानकी स्वयंवर हनुमान प्रसाद वैश्य, कवि स० (४०६२) । १३
 २० जानकी स्वयंवर, ठाकुरप्रसाद, कवि स० (२४४०) । १४
 २१ द्रौपदी स्वयंवर, रामजी शर्मा, मधुवती कवि स० (४२६६) । १५
 २२ धनुष भंग मन द्विवेदी, कवि स० (३८६१) । १६
 २३ धनुष यज्ञ, रामनाथ प्रधान, कवि स० (१२४५) । १७
 २४ धनुष यज्ञ, (नाटक) शिवबालकराम पाडे, कवि स० (४०५८) । १८
 २५ नेमिनाथ राजल विवाह, विनादीलाल कवि स० (५२२१) । १९
 २६ पाचाली परिणय, सदाशिव दीगित्त कवि स० (४२१८) । २०

- | | |
|-----------------------------|----------------------------|
| १ - तृतीय भाग, पृ० १२३५ । | २ - पहला भाग पृ० १७ । |
| ३ - द्वितीय भाग पृ० ६६० । | ४ - तृतीय भाग, पृ० १०७६ । |
| ५ - द्वितीय भाग पृ० ८१६ । | ६ - तृतीय भाग, पृ० १२४१ । |
| ७ - द्वितीय भाग पृ० ४४३ । | ८ - पहला भाग, पृ० ५३ । |
| ९ - द्वितीय भाग, पृ० ६०३ । | १० - तृतीय भाग पृ० १२३८ । |
| ११ - तृतीय भाग पृ० १३११ । | १२ - पहला भाग, पृ० ६ । |
| १३ - द्वितीय भाग, पृ० ४३३ । | १४ - तृतीय भाग, पृ० १२६५ । |
| १५ - तृतीय भाग, पृ० ५१४ । | १६ - धनुष भाग पृ० ३४५ । |
| १७ - तृतीय भाग, पृ० ६२६ । | १८ - धनुष भाग पृ० ४३० । |
| १९ - तृतीय भाग पृ० ५१५ । | २० - धनुष भाग पृ० ४६८ । |

- २७ पार्वती मंगल, भ्रयोध्यानाथ शर्मा, कवि स० (४४४०) । १
 २८ व्याहलो, ध्रुवदाम, कवि सख्या (२७६) । २
 २९ व्याहलो, रमिव बिहारी दास, कवि स० (३७४) । ३
 ३० व्याह विनोद गणेश कवि स० (२०२८ १) । ४
 ३१ वना रघुबरशरण, कवि स० (२३०२ २) । ५
 ३२ बाल त्रिवाह, खगबहादुर, कवि स० (२०४१) । ६
 ३३ भवानी मंगल, चतुर्भुजदास स्वामी, कवि स० (३८४६) । ७
 ३४ मंगल, कृष्णदाम, कवि स० (६८८) । ८
 ३५ मंगल, लल्लुदास स्वामी, कवि स० (१११ १) । ९
 ३६ मंगल पचासा, जवाहिरसिंह कायस्थ, कवि स० (१२६७) । १०
 ३७ मंगल मुहूर्ते, रामानन्द शर्मा, कवि स० (४४६१) । ११
 ३८ मंगलेश बदरीनारायण चौधरी, कवि स० (२३४३) । १२
 ३९ मंगलसार, स्वामी चतुर्भुजदास, (ग्रन्थ छाप वाले नहीं) कवि स० (२८०) । १३
 ४० मंगलशतक, रामसखे, कवि स० (८६०) । १४
 ४१ मंगलशतक त्रिलोचन झा कवि स० (३७४०) । १५
 ४२ मुगल मंगल स्तोत्र, बदरीनारायण चौधरी, कवि स० (२३४३) । १६
 ४३ रुक्मिणी जी रो व्याहलो, पदम भगत, कवि स० (२४६) । १७
 ४४ रुक्मिणी मंगल मिहिरचन्द, कवि स० (३३८ १) । १८
 ४५ रुक्मिणी हरण, चक्रपाणि व्यास, कवि स० (३६ २) । १९
 ४६ रुक्मिणी मंगल, हीरालाल कायस्थ । २०
 ४७ रुक्मिणी मंगल, हित रामकृष्ण कवि स० (७४७) । २१
 ४८ रुक्मिणी हरण, महाराजा रामसिंह जी, कवि स० (६०० ३) । २२

- | | |
|-----------------------------|-----------------------------|
| १ - चतुर्थ भाग, पृ० ६०३ । | २ - तृतीय भाग, पृ० ४०१ । |
| ३ - द्वितीय भाग, पृ० ४५६ । | ४ - तृतीय भाग, पृ० ११०२ । |
| ५ - तृतीय भाग पृ० ६६८ । | ६ - तृतीय भाग, पृ० १२२८ । |
| ७ - चतुर्थ भाग, पृ० ३११ । | ८ - तृतीय भाग, पृ० ८०६ । |
| ९ - पहला भाग, पृ० ३३४ । | १० - द्वितीय भाग, पृ० ६६४ । |
| ११ - चतुर्थ भाग, पृ० ६०६ । | १२ - तृतीय भाग, पृ० १२४८ । |
| १३ - द्वितीय भाग, पृ० ४०२ । | १४ - तृतीय भाग, पृ० ७२० । |
| १५ - चतुर्थ भाग, पृ० २६० । | १६ - तृतीय भाग, पृ० १२४८ । |
| १७ - पहला भाग, पृ० ४४१ । | १८ - पहला भाग, पृ० ४०० । |
| १९ - पहला भाग, पृ० २४२ । | २० - पहला भाग, पृ० ४२८ । |
| २१ - द्वितीय भाग, पृ० ६८५ । | २२ - चतुर्थ भाग, पृ० ५२ । |

- ५६ रुक्मिणी विवाह काव्य, जनप्रवीण कवि स० (६६२ २) । १
 ५७ रुक्मिणी विवाह मुक्तानन्द स्वामी, (११७० २) । २
 ५८ रुक्मिणी विवाह हरिवंश नारायण, कवि स० (३४६४) । ३
 ५९ रुक्मिणी परिणय (नाटक), भयोध्यासिंह उपाध्याय कवि स० (३४७१) । ४
 ६० रुक्मिणी मंगल, बरजार प्रधान वायस्य (कवि स०) (१५६५) । ५
 ६१ रुक्मिणी स्वयंवर, रघुराजसिंह, कवि स० (१८८०-१६३६) । ६
 ६२ रुक्मिणी मंगल, रामलाल कवि म० (२०११ १) । ७
 ६३ रुक्मिणी मंगल द्रवक्षो न दन त्रिपाठी कवि स० (२२२१ १) । ८
 ६४ रुक्मिणी मंगल, ठाकुरदास कवि स० (२३६८) । ९
 ६५ रुक्मिणी मंगल, नरहरि, कवि म० (१-११) । १०
 ६६ रस विवाह भाजन परमानन्द हित । ११
 ६७ राम स्वयंवर अजरतनदाम, कवि स० (१६७४) । १२
 ६८ रामलाल, देवकवि काष्ठजिह्वा, कवि स० (१७६०) । १३
 ६९ राधा मंगल, रसिक सुन्दर, कवि स० (२०४८) । १४
 ७० राधाजी को व्याह आ हप जी कवि स० (२३३७) । १५
 ७१ रामस्वयंवर, महाराज रघुराजसिंह । १६
 ७२ लग्नाष्टक महारत्ना नागरोदाम महाराजा कवि स० (६४६) । १७
 ७३ लगन पचासी कृपानिवास, कवि स० (६७२) । १८
 ७४ वधु विना कालिदास, कवि मन्था (१-१७८) । १९
 ७५ वैदिक विवाहाङ्गा, आत्माराम, कवि सख्या (३६५०) । २०
 ७६ विवाह प्रकरण, कृपानिवास कवि स० (६०६) । २१
 ७७ विवाह समय कृपानिवास, कवि स० (६७२) । २२

- | | |
|------------------------------|---|
| १ - अनुप भाग पृ० ६८ । | २ - अनुप भाग, पृ० ८० । |
| ३ - अनुप भाग पृ० १३६ । | ४ - अनुप भाग पृ० १७५ । |
| ५ - द्वितीय भाग, पृ० ६८६ । | ६ - द्वितीय भाग पृ० १०४६ । |
| ७ - द्वितीय भाग, पृ० १०६५ । | ८ - द्वितीय भाग पृ० १०२३ । |
| ९ - तृतीय भाग, पृ० १०८६ । | १० - अनुप भाग पृ० ७५ । |
| ११ - अनुप भाग, पृ० ८५ । | ११ - अनुप भाग पृ० ४०२ । |
| १२ - द्वितीय भाग पृ० १०२८ । | १२ - द्वितीय भाग, पृ० ११०७ । |
| १३ - द्वितीय भाग, पृ० १२४४ । | १३ - क-वृत्ता भाग पृ० १४,
ख-द्वितीय भाग पृ० १०४६ । |
| १४ - द्वितीय भाग पृ० ५६६ । | १४ - द्वितीय भाग पृ० ७६९ । |
| १५ - क-वृत्ता भाग, पृ० २३ । | २० - अनुप भाग पृ० २३४ । |
| २१ - द्वितीय भाग पृ० ७१५ । | २२ - द्वितीय भाग, पृ० ७६८ । |

- ७१ विवाह-विलास, कृष्णावती, कवि स० (१३६० १) ।^१
 ७२ सत्यभामा-मंगल, वृजन-दन सहाय कवि स० (३५४३) ।^१
 ७३ सदाशिव-विवाह, रणछोत्रो, कवि स० (१६६० १) ।^३
 ७४ सयोगिता स्वयंवर श्रीनिवाम दास कवि स० (२१७८) ।^४
 ७५ सीताराम विवाह, मून कवि स० (११'५) ।^५
 ७६ सीता-स्वयंवर, नवलमिह कायस्थ, कवि स (११३३) ।^६
 ७७ सीता-मंगल प्रियादास महाराजा, कवि स (१२१८ २) ।^७
 ७८ सीता-स्वयंवर गिरिधर महाराष्ट्र, कवि स० (५३०-अ) ।^८
 ७९ सिधा स्वयंवर, गोगालजी मोढाराम कवि स० (२६८४ अ) ।^९
 ८० सीता स्वयंवर, अपिदेव श्रीभा कवि स० (५७५) ।^{१०}
 ८१ सीता-स्वयंवर, क्षमापति चंद्रिकाप्रसाद सिंह, प्रवीण कवि स०
 (३५५६ अ) ।^{११}
 ८२ सिध स्वयंवर [नाट्य] अम्बिकादेव त्रिपाठी, कवि स० (३६७८) ।^{१२}
 ८३ मिथ-स्वयंवर, रमेशचंद्र मिश्र कवि स० (४३६३) ।^{१३}
 ८४ सिधा-स्वयंवर, कालिका प्रसाद, कवि स० (अ० प० २ २२) ।^{१४}
 ८५ सीता-स्वयंवर-रामनारायण, कवि स० (४११४) ।^{१५}
 ८६ सीता-स्वयंवर, वृंदावन कायस्थ, कवि स० (२५०१) ।^{१६}
 ८७ शम्भु-विवाह, भगवान दीन मिश्र, कवि स० (४१०३) ।^{१७}
 ८८ शिव परिणय, जानकी प्रसाद द्विवेदी, कवि स० (३८८३) ।^{१८}
 ८९ श्री राम धनुष यज्ञ भगवान दीन मिश्र कवि स० ४१०३) ।^{१९}

१ - तृतीय भाग पृ० ६६५ ।

२ - चतुर्थ भाग, पृ० २३८ ।

३ - तृतीय भाग, पृ० ६६ ।

४ - तृतीय भाग पृ० ११६६ ।

५ - द्वितीय भाग पृ० ८५१ ।

६ - क-प्रथम भाग पृ० ७६ ।

ख - द्वितीय भाग पृ० ८३० ।

७ - द्वितीय भाग पृ० ८६४ ।

८ - चतुर्थ भाग पृ० ४६ ।

९ - चतुर्थ भाग पृ० १२१ ।

१० - चतुर्थ भाग पृ० १८८ ।

११ - चतुर्थ भाग पृ० २४८ ।

१२ - चतुर्थ भाग पृ० ४०३ ।

१३ - षष्ठी पृ० ५८५ ।

१४ - प्रथम भाग पृ० १ ।

१५ - चतुर्थ भाग, पृ० ८८४ ।

१६ - तृतीय भाग पृ० १३०३ ।

१७ - चतुर्थ भाग, पृ० ४४० ।

१८ - चतुर्थ भाग पृ० ३३६ ।

१९ - चतुर्थ भाग पृ० ४४० ।

- १७ गुणरत्न सूरि विवाहला, गा० १०, पद्म मंदिर, १६ वी शती ।
 १८ चंद्रप्रभ विवाहलउ गा० ४१, उदयवर्धन, १६०४ ।
 १९ जलु अतरग विवाहला, गा० ६३ सहजमु दर, १५७२ ।
 २१ जम्बूस्वामी विवाहला, गा० १५, अज्ञान ।
 २० जम्बूस्वामी-विवाहलो गा० २५ हीरानंद सरो, स० १४८५ ।
 २२ जिनचंद्र सूरि विवाहलो, गा० ५, सहजज्ञान, स० १४०६ ।
 २३ जिनेश्वरसूरि विवाहला गा० ३३, सोममूर्ति, स० १३३१ ।
 २४ जिनीदयसूरि विवाहला गा ८४, मेरुनंदन स० १४३२ ।
 २५ नेमिनाथ विवाहलो, अज्ञात ।
 २६ नेमिनाथ विवाहलो, धवल ढाल ४८, ब्रह्मविनय देवसूरि स० १६१५ ।
 २७ नेमिनाथ विवाहला, महिमसुदर स० १६६५ ।
 २८ नेमिनाथ विवाहला, गरवा ढाल २२ वीर विजय, स० १२६० ।
 २९ नेमिनाथ विवाहलो ऋषभविजय १८८६ ।
 ३० नेमिनाथ विवाह ववलचंद्र १६२६ ।
 ३१ पार्श्वनाथ विवाहलो गा ३६ ६/ अज्ञात, स० १४१२ वे० सु० ११ ।
 ३२ पार्श्वनाथ विवाहलो पथी, १६ वी शती ।
 ३३ पार्श्वनाथ विवाहलो गा० ८, क्षमराज जैमलमेर भंडार १६ वी शती ।
 ३४ पार्श्वनाथ विवाहलो ढाल ४६, ब्रह्मविनयदेव सूरि, स० १६१७ सावण ।
 ३५ पार्श्वनाथ विवाहलो, रग विजय स० १८६० ।
 ३६ पार्श्वनाथ विवाहलो, गा० ६१, विजयरत्नसूरि भण्डार १८वी शती ।
 ३७ पिथलगच्छ गुरु विवाहलो गा० ५, अज्ञान १६वी शती ।
 ३८ मंगलकलश विवाहलउ गा० १७०, धनराज, स० १४६० ।
 ९ महावीर विवाहलउ, कीर्तिराज, १५ वी शताब्दी ।
 ४० महावीर विवाहलउ, गा० ३२२ अज्ञात अतनाथजी भण्डार १७वी शती ।
 ४१ वीरचरित्र विवाहलो, ढाल ३७ ब्रह्मविनयदेव सूरि १७वी शताब्दी ।
 ४२ विवाहलउ, गा० २५ अज्ञात १५वी शताब्दी ।
 ४३ शालिभद्र विवाहलो, गा० ४४, उदमण, स० १५६८ लिखित ।
 ४४ शांतिनाथ विवाहलउ हर्षधम, १६वी शताब्दी ।
 ४५ शांतिनाथ विवाहलउ धवल, अज्ञात स० प्रमोद स० १४६१ ।
 ४६ शांतिनाथ विवाहलउ, सहजकीर्ति म १६७८ ।

- ४७ शांतिनाथ विवाहलउ बलरिन्मय गूरि, १७ वी शती ।
 ४८ सुमान्य जिन विवाहलउ धरल १४, तिनवदन गूरि स० १६१२ ।
 ४९ हम रिमन गूरि विवाहलउ गा० ७१ १६वी शताब्दी ।
 ५० मुमनि साधु गूरि विवाहलउ गा० ८१ सावधममव, १६ वी शताब्दी ।
 ५१ श्री महावीर विवाहलउ ह्य रम्य गूरि १४ शिष्य, स० १४१८ ।
 ५२ शांतिनाथ विवाहलउ ।
 ५३ शांति विवाहलउ, गा० २७, तपोरत्न १६वी शती ।
 ५४ महाशय पार्वती रो वल रिमनाजी वि०स० १६६० १७०० ।
 ५५ रुविमणी मगल ।^१

८१ ३ । उक्त रचनाओं के अतिरिक्त विवाह मंगल विदयक निम्न
 निम्न रचनायें भी प्राप्त हुई हैं —

- १ ईश्वर विवाह दवीदास, लि० का० स० १६१८ ७८८८ गुक्ता २ ।^१
 २ बरणा रिमणी रो, अज्ञात कवि कृत ।^२
 ३ जानजी विवाहलो, अज्ञात कवि कृत ।^३
 ४ किसन किलोल, २० वा० स० १७८७ ।^४
 ५ कृष्णजी रो विवाहलो, अज्ञात जैन कवि कृत लि० का० स० १७८९ ।^५
 ६ कृष्ण जी रो बेलि, कर्मगो सायसा, लि० का० स० १६१६ ।^६
 ७ कृष्ण रुविमणी मगल, वायसय बवरचंद मूलचर्चोत कृत स १६०६-
 भेडता ।^७
 ८ गौर व्यावलो सत गौवधन ।^८
 ९ जानकी मगल महताबासह अलख स० १६०६ कार्तिक कृष्णा १०
 रविवासरे ।^९

१ श्री अमरचन्द जी नाहटा, बीकानेर की सूची, प्राचीन काव्यों की रूपपरम्परा,
 पृ० ५८ ६३ ।

२ राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची, भाग १, पृ० ५ ।

३ -४ लेखक के निजी सवह में ।

५-श्री अमरचन्द नाहटा मह भारतो मय १० अङ्क २, जुलाई १९६२ ।

६-राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

७-अनुप सस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर ।

८-राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

९-श्री सूर्यशंकर पारोक का निबंध, वरदा विज्ञान, वर्ष ४ अङ्क २, पृ० ६४ ।

- १० महादेव विवाहलो, कर्ता अज्ञात । १
 ११ रामदेव जी की व्यावलो, प० पूनमचदजी सुखवाल कृत । २
 १२ रुक्मिणी कृष्णजी रो रासो तिमरदास कृत । ३
 १३ रुक्मिणी बारामासिया, हलोराम पुजारी । ४
 १४ रुक्मिणी मगल, बेसाराय, वि०स० १७५० ।
 १५ रुक्मिणी मगल, समय मुदर । ५
 १६ रुक्मिणी मगल, रूपमति कृत । ६
 १७ रुक्मिणी मगल सहसमन कृत, वि स० १७०१ । ७
 १८ रुक्मिणी मगल हृदयराम कृत ।
 १९ रुक्मिणी मगल प्रियादास कृत । ८
 २० रुक्मिणी मगल, इंदरमन कृत । ९
 २१ रुक्मिणी मगल, हीरामणि कृत ।
 २२ रुक्मिणी मगल, ऊदो । १०
 २३ रुक्मिणी मगल महाचद द्विज, २० का० वि० स० १७७६ पीप शुक्ला
 १, सोमवार ।
 २४ रुक्मिणी मगल ख्याल, प० बशीधर शर्मा । ११

१-लेखक का निजी संप्रह, यह ग्रंथ महादेव-विवाहलों से भिन्न एक लघु रचना है ।

२-प्रकाशक शिवदयाल लखारा बुकसेलर, मुकाम लाम्बिया, पोस्ट भानवपुर
 (कालू मारवाड) ।

३-जयपुर ग्रंथ-मन्थार सूची, श्री कासलौवाल की मूद्रिका पृ ३-४४ ।

४-श्री दारुका मजन संप्रह भाग १ हिंदी पुस्तक एजेन्सी कलकत्ता ।

ज रुक्मिणी मगल, हिंदी पुस्तकालय मयुरा ।

५-राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर प्रथाक १८५३ ।

६-श्री दीनदयाल श्रीभा का निबध धरवा विसाऊ पब्लिशर १९६३ ।

७-राजस्थान भारती, बीकानेर ।

८-पत्र सं० ६८, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर प्रथाक १ १०० ।

९-धर्मय जन प्रवालय बीकानेर ।

१०-प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा, श्री भगरचन्द्र नाहटा पृ० ६३ ।

११-प्रकाशक, प० बशीधर शर्मा विज्ञानगढ़ ।

- २५ हविमणी मंगल, उमादत्त । १
 २६ हविमणी राम, न दनाल २० का० रि० म० १८७६ । १
 २७ हविमणी 'बलाम घन' न नि १००० १८६६, 'हालगुन कृष्ण,' १
 २८ गीमाला विवाहला प्रथम अनात कवि कृत । १
 २९ हविमणी विवाहली द्वितीय, अज्ञान कवि कृत । २
 ३० हविमणी हरण कु भोजी भूना । ६
 ३१, हविमणी हरण विद्वलदास स० १८११, फागुण वदा ६ अदीतवार,
 निखी । ७
 ३२ हविमणी हरण रत्नभूषण । ८
 ३३ हविमणी हरण सावलदाम वारहठ । ९
 ३४ हविमणी हरण अनात कवि कृत प्रथम । १
 ३५ हविमणी-हरण अज्ञान कवि कृत द्वितीय । १
 ३६ हविमणी हरण सू' कृत वि० स० १९०४ में निधि कृत । १३
 ३७ हविमणी हरण, सायाजी भूला [वि० स० १९३२ १७०३] । १
 ३८ शिवजी रो विवाहली शंभुराम, जोधपुर निवासी कृत वि० स०
 १९०७ । १४
 ६ हरजी रो हुडमडी, अनात कवि कृत । १४

- १-हविमणी मंगल गीतावली १० कृष्णानन्द व्यास कलकता द्वारा प्रकाशित ।
 २-विन चारित्र सग्रह, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान गाला बीकानेर ।
 ३-पत्र स० १०३ ।
 ४ - लेखक के निजी सग्रह में ।
 ५ - लेखक के निजी सग्रह में ।
 ६ - चारणो अने चारणी साहिब श्री भवेरच' मेघाली पृ० १८८ ।
 ७ - राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, प्रयाग २०१०९, अग्रध वीठलदास
 रो कह्यो अमरकोट रोड़ा रे रहिता ।
 ८ - जयपुर अथ मण्डार सूक्ति, धी कामलीमाल जन प्रतिशय दर्शन महावीर जी
 जयपुर ।
 ९ - राजस्थानी गा। सन्धान, जोधपुर ।

१०-११ - लेखक के निजी सग्रह में ।

- १२- राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर प्रयाग प्र० २७३ ।
 १३ - राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से लेखक के सन्धान में प्रकाशित ।
 १४ - पत्र स०, १५, २० का० १९०७, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर,
 प्रयाग १९०४ ।
 १५ - लेखक के निजी सग्रह में । यह विशाह क अक्षर पर गार्ई जाती है ।

८२ ३ । विवाह सप्त काव्या का परम्परा राजस्थानी साहित्य में चौतहरी गताङ्गी से प्रारम्भ होती है । विवाह मञ्जक राजस्थानी रचनाया में भागमिक मञ्जकिय जिन प्रभसूरि कृत "अंतरग विवाह" प्राचीनतम माना गया है । ^१ "अंतरग विवाह" में प्रमाद की पत्न मर्यान् नगर के रूप में जीव की वर के रूप में चतुर्वि स्नाया का जाभउत्र मर्यान् चारानिया के रूप में और शीलाया का माहना व रूप में चित्रित किया गया है । तथा क अत में जीव रूपी वर की मुक्ति में विवाह करवा वर मिद्धुरी पहुँचा दिया गया है । इस कृति के मर्यान् अत इस प्रकार है—

प्रारम्भ—पमाय गुण अणु पाटण तहि अह भवि योजित निरुवमु वसण ।
चउविह सधु जान उत्रकीय, अह वाटण सटस सीलग ॥१॥

अत—इण परि परि गण जो अजगि अहे लहइ सो सिद्धि पुरिवासु ।
मगलिकु वीर जिण प्रभह अहे मगनिकु च चउवीह मघ ए ॥२॥

८३ ३ । इस कायकी पुथिका में प्रकृत हाता है कि यह काय राज व न में गेय है, साथ ही इसका विवाह और धवल जाना ही मनाओं में गई है । ^३ धवल मया भा "मगल" सत्ता की तरह विवाह सम्बन्धी काव्यों के लिए प्रयुक्त होती रहती है । परवर्ती सहज सुन्दर कृत 'अन्तु अंतरग विवाहली' भी इसी प्रकार का काव्य है । तदुपरान्त सवत् १३३१ में रचित सोममूर्ति का 'जिनेश्वर सूरि समय श्री विवाह वर्णन राम उपलब्ध होता है । इस राम में जिनेश्वर सूरि नामक अन्तर गच्छीय आचार्य का दीक्षा वर्णन करते हुए कवि ने लीला कुमारी समय श्री का कथा मानन हुए विवाह का रूपक प्रस्तुत किया है । जिनेश्वर सूरि मरवाट मर्यान् मारवाट के भविष्य द भण्डारी के पुत्र थे । इनका मूल नाम अम्बड कुमार था और इनका ज म वि० म० १२८५ में हुआ था । अम्बड कुमार की लीला जिनिवत्ति सूरि द्वारा लड नगर में सम्पन्न होती है जिसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

अभिनव ए चानिय जानउत्र अंबड तणई वीवाहि ।
आपुणु ए धम्मह चक्कवइ हुयउ जानह माहि ॥१६॥
आवही आवहि रग भरी, पच मट्ठवयराय ।
गायहि गायहि महर सरि, अट्टय मट्ठवयराय ॥१७॥

- १ - क साङ पत्रोप प्रति, वि० म० १३०० के लगभग लिखित जन प्र ध भण्डार पाठ्य ।
ख-श्री अणरचंद नाहंग, प्राचीन काव्यों की रूप-परम्परा पृ० ४८ ४९ ।
२ - वही ।
३ - 'अंतरग विवाह धवल वसत रागेण भगनीय ।' वही ।

के प्राचीन विवाहहले भी उपलब्ध हाते हैं, जिनका रचना काल १५ वीं से २० वीं शदी तक) माना गया है।^१

८६ ३। उक्त विवेचन से प्रकट होता है कि हमारे साहित्य में विवाह-सम्बन्धी काव्यों की सुदीर्घ परम्परा अतः सन्ध्या के रूप में उपलब्ध होती है। मानव जीवन में विवाह एक विशेष आनन्द और उत्साह का अवसर होता है। विवाह के अवसर पर घर और बंधु दोनों ही पक्षों के परिजन और परिचित व्यक्ति अनेक दिनों तक उत्सव की आयोजना करते हैं। विवाहोत्सव में नृत्य, समीप और काव्यरूपी निवेष्टी का सगम होता है तथा अनेक व्यक्तियों को उत्साहयुक्त हार्दिक अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है।

८७ ३। हमारे कवियों ने विवाह सम्बन्धी प्रसंगों में विशेष रुचि ली है। नायक नायिकाओं के विवाहा का वर्णन हमारे कवियों ने पूर्ण हार्दिकता के साथ किया है। अनेक काव्यों में विवाह प्रसंग प्राप्त किन्वा कथा के रूप में सन्निविष्ट हुआ है। साथ ही विवाह सम्बन्धी अनेक स्वतंत्र रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं। हमारे कवियों को विवाह के अवसर पर होने वाले प्रेमालापों, सद्गुणों के आदान प्रदान, सनापों के प्रयाण, युद्ध पाण्डिग्रहण, नायक-नायिका मिलन, नख शिख वर्णन, पटशत्रु वर्णन आदि प्रसंगों में आत्मनिव्यक्ति का अमूर्त अवसर उपलब्ध होता रहा है। विवाह सम्बन्धी प्रसंगों में कविता का रुचिगत विषय प्रकार को आत्मिक अभिव्यक्ति के अवसर मिल जाते हैं जिनमें ज्ञात, शृंगार और वीर आदि रसों की निष्पत्ति सम्भव होती है।

८८ ३। संक्षेप में सेहत है कि निम्नलिखित कारणों से विवाह सम्बन्धी अवसर कवियों के लिए विशेष रुचिप्रद हुए हैं—

- [१] नायिका की बाल लोला, वयः सौम्य, नव शिव निरूपण प्रिय नायक के प्रीत सदेश-प्रेरण, नायक नायिका मिलन, प्रेमालाप, पटशत्रु आदि के वर्णन का प्रसंग प्राप्त होना।
- [२] भक्त कवियों के लिए नायक के प्रति और श्रम्य देवी देवताओं के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने के प्रसंगों की प्राप्ति होना।
- [३] वीर रस के कवियों को युद्ध के लिए भूमिका प्राप्त होना। मेना की साज-सज्जा अथवा गज रथादि वाहनो, विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों, सैनिकों की वेशभूषाओं, रण वाद्यो, सेना प्रयाण, शस्त्रास्त्रों के प्रहार, वीरों की हुंकार, कायरो की भाग-दौड, घायलों की कराहट, शिव, काली, भूत प्रेतों, योगिनियों आदि की लालायणो, जलचर पशु पक्षियों दुर्ग भेदन और विजयोपरात आनन्ददायक परिस्थितियों के चित्रण का अवसर प्राप्त होना।

१ - प्राचीन काव्यों की रूप-परम्परा, श्री अमरवन्द नाहटा, पृ० ५२।

[४] विवाह प्रसंग में निहित गर नारियो की आनन्दपूर्ण अभिव्यक्ति, यथा भूपणो, और विविध श्रु गारो वा वर्णन, नगर, हाट, पर, द्वार और आगन की साज-सज्जा, दीपमालिका, प्रातिपद्योजी, सामूहिक भोज आदि के प्रसंग उपलब्ध होना ।

[५] कवियों को विवाह रूपक के अतर्गत वर वधु के रूप में परमात्मा आत्मा, साधु-समयत्री ^१ और धीर विजयत्री ^२ आदि क वरण वर्णन के अन्वय उपलब्ध होना ।

८६ ३ । इस प्रकार हमारे कवियों को विवाह दर्शन इतने प्रिय रह हैं कि पशु पक्षियों, ^४ वाक सन्धियां ^५ और पन पत्ता ^६ आदि क काल्पनिक विवाह वर्णन भी उपलब्ध होते हैं ।

१ - क - बुलहनी गायहु भगसावार । पद, कबीरदास ।

स - गायहु गायहु याणी बियेक विचार । पद, गुरु नानक, आदि ।

२ - क - जिनेश्वर-सूरि बीसा विवाह-वर्णन रास, सोमसूनि कृत, जन गुर्जर कविभो मो० द० देसाई भाग १ पृ० ७ ।

स - जिनोदयसूरि विवाहलज, भेदन-दन कृत, वही, पृ० १८ १६ ।

ग - सुमति सूरि विवाहलो, सावभ्यसमय कृत, वही, पृ० ८५ ।

३ - शठोठ रतनसी खीबावत री बेल, धूवो, सं० ११४ लगभग, सं० श्री नारायणसिंह भाटी, राज० शो० सं०, धोमपुर ।

४ - जनावर भी जान, नवलराम कृत और पखीबा भी विवाह, गुजराती साहित्य भा स्वरूपो, पद्य विभाग, प्रो० मजूमदार, पृ० ३६५ ।

५ - क - बेंगल न सर घोडे, वही पृ० ३६६ ।

स - 'करेला री आई है बरात' लेखक का निजी सग्रह ।

६ - 'जेसा रो हुई है सगाई', वही ।

चतुर्थ अध्याय

श्रीकृष्ण चरित्र और श्रीकृष्ण-रुक्मिणी
विवाह सम्बन्धी काव्यों के प्रेरणा स्रोत

१-श्रीकृष्ण-चरित्र

२-श्री कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह सम्बन्धी काव्यों के
प्रेरणा स्रोत

- (क) श्रीमद्भागवत का श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह वर्णन
- (ख) विष्णु पुराण और हरिवंश पुराण का श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह वर्णन
- (ग) श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी संस्कृत रचनाएँ
- (घ) श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी अथर्वश एव जैन रचनाएँ
- (ङ) श्रीकृष्ण रुक्मिणी-विवाह विषयक ब्रज भाषा की रचनाएँ—

- (१) विष्णुदाम कृत रुक्मिणी भगल
- (२) महाकवि सूरदास कृत रुक्मिणी भगल
- (३) कविवर नन्ददास कृत रुक्मिणी भगल
- (४) नरहरि महापात्र कृत रुक्मिणी भगल
- (५) रघुनाथ सिंह कृत रुक्मिणी-परिणय
- (६) श्री वृष्णानन्द व्यास कृत रागीत रुक्मिणी भगल
- (७) प्रभूदास कृत रुक्मिणी-भगल

(च) कृष्ण रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों की प्रेरक परिस्थिति

चतुर्थ अध्याय

श्रीकृष्ण-चरित्र और श्रीकृष्ण-सुखिणी-क्रीडा-सम्बन्धी

राजस्थानी काव्यों के प्रेरणा-स्रोत ।

(१) श्री कृष्ण-चरित्र

१ ४ । भगवान् श्रीकृष्ण क मद्भुत चरित्र में प्रेक बाल लीलाप्रो वा चापत्य रास-लीला की रसिकता, वधोदादन और भ्वाल नृत्य का कला प्रम, कुजविहार वा श्र गार, गोप लीलाप्रो वा माधुय, शकटासुर, वत्सासुर, कप्यासुर देनुक, प्रलम्बासुर, वक्यासुर और वस मादि वा मारने की वीरता, श्रीमद्भगवद्गीता का पान, महाभारत की नीतिकता तथा राजसी ऐश्वय मादि लौकिक एव अलौकिक तत्व हैं अतएव इससे प्रेक कवि कीर्तिद और कलाकार युग युगांतर से प्रेरित होत रहे हैं । श्रीकृष्ण पूर्वाह्न परमे वर होते हुए भी मा की रूप धारण कर विभिन्न लीलाप्रो वा प्रसार करने वाले हैं, प्राजीवन गृहस्थ रूप में रहते हुए भी योगे-वर हैं और देवराज इन्द्र को पराजित करन में समर्थ होते हुए भी नीतिदश रण छोड़ हैं । श्रीकृष्ण की अमक्यता में कोई अय चरित्र नहीं प्रस्तुत किया जा सकता जिसमें सर्वा गण प्रभाव से युक्त ऐसी विविधता हो ।

२ ४ । भारतीय साहित्यक परम्परा के साथ ही संगीत, चित्रकला, नृत्य, शिल्प, स्थापत्य वेश भूषा, साज सज्जा और सम्पूर्ण भारतीय दशन एव विचार धारा पर श्रीकृष्ण का प्रभाव स्पष्टरूपेण ललित होता है । इस प्रकार श्रीकृष्ण भारतीय जनता के लिए एक मजस प्रेरणा-स्रोत हैं और लोक रक्षक के साथ ही लोकरजक रूप में प्रतिष्ठित हैं ।

३ ४ । श्रीकृष्ण नाम वा प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद में एक स्तोता ऋषि के रूप में प्राप्त होता है । महा श्रीकृष्ण सोमपान के लिए अश्विनिकुमारो वा प्राह्वान करते हुए बताये गये हैं —

'आ मे हव नासत्याश्विना गच्छत युवम् । मध्व सोमस्य पीतये ॥१॥
 इम मे स्तोममश्विनेम मे शृणुत हवम् । मध्व सोमस्य पीतये ॥२॥
 अय वा कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीबसू । मध्व सोमस्य पीतये ॥३॥
 शृणुत जरितुर्हव कृष्णस्य स्तुवतो नरा । मध्व सोमस्य-पीतये ॥४॥
 छर्दिर्यनमदाम्य विप्राय स्तुवते नरा । मध्व सोमस्य पीतये ॥५॥
 गच्छत दागुपो गृहमित्या स्तुवतो अश्विना । मध्व सोमस्य पीतये ॥६॥
 यु ज्जाथा रासभ रये वीङ्गमे वृषण्वम । मध्व सोमस्य पीतये ॥७॥

त्रिवधुरेण त्रिवृता रथेनायातमश्विना । मध्व सोमस्य पीतये ॥८॥

तूमे गिरो नामत्याश्विना प्रावत युवम् । मध्व सोमस्य पीतये ॥९॥ १

मर्षान् अश्विनिकुमारो । मेरा ब्राह्मण सुन कर मेरे यज्ञ में ह्यप्रद सोम के पात्र प्राप्नो ॥१॥

हे अश्विद्वय । इस ह्य प्रदायक सोम को पीने हेतु मेरे स्तोत्र रूप ब्राह्मण को सुनो ॥२॥

हे अश्विद्वय । तुम मन्त्र-धन से सम्पन्न हो । मैं कृष्ण ऋषि तुम्हें हर्ष प्रदायक सोम के

लिये ब्राह्मण करता हू ॥३॥

अश्विद्वय ह्यप्रदायक सोम को पीने हेतु मुझ कृष्ण का ब्राह्मण सुनो ॥४॥

हे अश्विद्वय । मुझ विद्वान् स्तोता कृष्ण ऋषि के लिये ह्य प्रदायक सोम के

निमित्त प्राप्नो ॥५॥

हे अश्विद्वय । मुझ हविष्मता के घर में ह्य प्रदायक सोम को पीने हेतु प्रागमन करो ॥६॥

हे अश्विनिकुमारो । ह्यप्रदायक सोम के लिये दृढ़ भागो वाले रथ मे घोड़े जोतो ॥७॥

हे अश्विद्वय । तीन फलको वाले त्रिकोण रथ पर हर्ष प्रदायक सोम पीने हेतु प्राप्नो ॥८॥

हे अश्विद्वय । मेरी स्तुति रूपी वाणी के प्रति भाकृष्ट हो कर सोम पीने हेतु शीघ्र

प्रागमन करो ॥९॥

४ ४ । ऋग्वेद मे ही श्रीकृष्ण के पुत्र विश्वक का भी उल्लेख है—

अवस्यने स्तुवते कृष्णाय ऋजूयते नासत्या शचीभि ।

पशु न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्व ददधुविश्वकाय ॥२३॥ २

मर्षान् हे अश्विदेवो । तुम्हारी रक्षा चाहने वाले श्रीकृष्ण ऋषि के पुत्र विश्वक को तुमने पशु के समान खोए हुए पुत्र विष्णामू से मिला दिया ।

५ ४ । ऋग्वेद में कृष्ण को एक स्थान पर वैश्य बताया है इन्द्र द्वारा कृष्ण की प्रजा के विनाश का वगण हुआ है । यहाँ कृष्ण से इन्द्र की घेष्ठता प्रतिपादित की गई है—

प्र मदिने पितुमदचता वची य कृष्णगर्भा निरह नृजिश्वना ।

अत्रस्यवो वृषणा वज्रदक्षिण मरुत्वत सख्याय हवामहे ॥१॥ ३

मर्षान् हे मित्रो । इस प्रसन्न हुए इन्द्र के निमित्त मन्त्रयुक्त स्तुतिवा मर्षण करो जिसने राजा "कश्चित्वा व साप कृष्ण दैत्य की प्रजाप्रा का विनाश किया । हम उस वज्रधारी, बोर्यवान् इन्द्र का मरुतों सहित रक्षा के लिये ब्राह्मण करते हैं ।

६ ४ । कृष्ण घोर इन्द्र का एक दूसरे से बड़ कर बताने का विवाह कानांतर में मनेत्र

१—ऋग्वेद मण्डल ८ वा सूक्त ८५ वा (मन्त्र १ से ६) गायत्री तपोभूमि, मथुरा ।

२—ऋग्वेद, मण्डल, १, सूक्त ११६, मन्त्र २३, गायत्री तपोभूमि, मथुरा । -

३—ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १०१, मन्त्र १, गायत्री तपोभूमि मथुरा ।

सताशियों तक चलता रहा। अन्त में श्रीमद्भागवत्कार ने गोवर्द्धन पर्वत-धारण जैसे प्रसंगों में श्रीकृष्ण की महत्ता इन्द्र से बढ़कर ही नहीं सर्वोपरी रूप में प्रकट की।

७ ४। देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण का नाम सर्व प्रथम छांदोग्य उपनिषद् में प्राप्त होता है जहाँ घोरसांगिरस देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण को विनोद ज्ञान प्रदान करते हैं।^१ देवकी पुत्र वासुदेव कृष्ण की महत्ता सर्वप्रथम महाभारत में प्रतिपादित होती है। महाभारत-युद्ध के लिये अर्जुन इन्द्र की अपेक्षा श्रीकृष्ण के सहयोग को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। अर्जुन श्री कृष्ण को इन्द्र से अधिक पराक्रमी बताते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने भोज राजाओं को नष्ट किया, हस्तिमल्ली का हरण किया, नगार्जित के पुत्रों को पराजित किया, राजा पाण्डव का सहार किया, काशी नगरी का उद्धार किया, निपाद-राज एकलव्य का वध किया और उपमन के पुत्र सुनाम को मारा। साथ ही अर्जुन कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने बान्धावस्था में ही हैहयराज और अन्य राक्षसों को मारा, जनदेवता को परास्त किया तथा इन्द्र के नन्वनन में सत्यभामा की प्रसन्नता हेतु पारिजात ले धाये, प्रादि।^२

८ ४। जैनमतानुसार वासुदेव, बलदेव और प्रतिवासुदेव में से प्रत्येक की सख्या ६ है। यथा—

वासुदेव-त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ स्वयंप्रभ, पुरुषोत्तम प्रगट पुण्डरीक, दत्त लक्ष्मण और कृष्ण, बलदेव-अचल, मद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, शुभमति, रामचन्द्र और बलमद्र, प्रतिवासुदेव-अश्वप्रीण, तारक, मेरुक, मधुयशा, निशुम्भ, वल्लय, प्रल्हाद, रावण और जरासंध।^३

९ ४। श्री भार० जी० भाण्डारकर का मत है कि वासुदेव कृष्ण सभक्त सात्वत जाति के प्रसिद्ध राजकुमार थे और मृत्यु के उपरांत इसी जाति द्वारा सर्वप्रथम पूज्य हुए। सात्वत जाति के अनुकरण में श्री कृष्णोपासना का प्रचार अन्य जातियों में हुआ।^४

प्रियसन, केनेडी और वेबर प्रादि विद्वानों ने अपना अनुमान प्रकट करते हुए लिखा है कि क्राइस्ट के बाल-चरित् क अनुकरण में ही गोपाल कृष्ण का बाल-चरित् निरूपित किया गया है।^५

१० ४। श्री कृष्ण-चरित्र का पूर्ण विकास श्रीमद्भागवत् महापुराण में उपलब्ध होता है। श्रीमद्भागवत् में श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं को विशेष महत्त्व दिया गया है किन्तु प्रसंगानुसार श्रीकृष्ण के उत्तरकालीन ऐश्वर्यमय स्वरूप अर्थात् महाभारत-कालीन चरित्रों को

१—छांदोग्य उपनिषद् ३। १७। ४-६।

२—महाभारत, उद्योगपर्व।

३—कलिकाल सयज्ञ आचार्य हेमचन्द्र त्रिपिटकालाकारुष्यचरित्रम्।

४—ए रिपोर्ट आन सच फार सस्कत मे युक्तिवत्तस, १८८३-८४, पृष्ठ १८८७, पृ० ७४।

५—डा० अजेश्वर वर्मा, हि० सा०, भाग २, पृ० ३२२।

भी निरूपित किया गया है। इस प्रकार श्रीमद्भागवत् में ऋग्वेद के स्तोत्र कृष्ण, सारवता के गोपाल कृष्ण और महाभारत के राजनीतिज्ञ कृष्ण, तीनों ही प्रतिनिधि रूपों का समावेश विनय हुआ है।

भागवत् के कृष्ण पूण ब्रह्म पुरोहित हैं एव परम उदास्य हैं। हमारी विभिन्न साहित्यिक विधायाँ "र श्रीमद्भागवत् के कृष्ण का प्रभाव है और यह महान् ग्रन्थ कवि क्रीडितों मत्तो तथा रसज्ञा का परम प्रिय और उदास्य बन गया है एव धर्म, प्रय काम और मोक्ष के दाता रूप में सुरतिष्ठित है। श्रीमद्भागवत् के विषय में लिखा गया है 'भागवत ने श्रीकृष्ण चरित्र के माधुर्य का लोगो जा रसाम्बादन करा कर कृष्णोपासना के वष्णव पण द्राविड, महाराष्ट्र गुजरात राजपूताना, उत्तर हिन्दुस्तान और बंगाल में स्थापित किये।' १

११ ४। श्रीकृष्णोपासना का पुरातात्विक दृष्टि से प्राचीनतम प्रमाण राजस्थान में माध्यमिक (नगरी चित्तौड़) के वासुदेव मन्दिर-सम्बन्धी भग्नावशेषों में नारायण वाटिका में प्राप्त होना है। २ मथुरा में प्राप्त एक शिवा पर वासुदेव की नवव्रत कृष्ण सहित यमुना पार करते हुये उत्तीर्ण किया गया है। यह मूर्तिगुट्ट अनुमानत प्रथम शताब्दी ई० का है। ३ मथुरा से प्राप्त एक पथ शिलानट्ट पर कालियदमन का दृश्य प्रदर्शित किया गया है। ४ राजस्थान में मारवाड़ की प्राचीन राजधानी मण्डौर से एक शिलानट्ट उपलब्ध हुआ है जिस पर श्रीकृष्ण लीला सम्बन्धी गोवन्द न गरण मात्रन चोरी, चक्रमज्जन और कालियदमन के दृश्य बताये गये हैं। इस शिला का समय ४ वी व ५ वी शताब्दी ई० माना गया है। ५ राजस्थान में मूलतः (बीकानेर) से मिट्टी की ऐसी पट्टिकायें प्राप्त हुई हैं जिन पर ज्ञेय न धारण और दान लीला व दृश्य बताये गये हैं। इसी प्रकार दक्षिण भारत में बाम्नामी गुफाओं में श्रीकृष्ण जन्म पूतना वध, गङ्गा भ्रंजन प्रनव वध, धनुक वध, कंस वध आदि के दृश्य प्रदर्शित किये गये हैं जिनका निर्माणकाल ५ वी ७वी शताब्दी ईस्वी है। ६

१२ ४। विविध प्रकार के काव्यों में श्रीकृष्ण चरित्र का निरूपण प्रथम शताब्दी ई० में ही प्राप्त होने लगता है। उदाहरण स्वरूप मत्स्यपुराण (प्रथम शताब्दी ई०) का सप्ततम काव्य "बदयति" और प्राकृत भाषाबद्ध हाल सातवाहन के काव्य "गाहा सतवर्ष" में श्रीकृष्ण की विविध लीलायाँ का विनय हुआ है। दक्षिण भारतीय मालवार् सत्यों में भी १वी से ६वा

१—मराठी ब्रह्मण का इतिहास ले० ला० रा० पांगारकर, प्रथम खण्ड पृ० ११०।

२—राजस्थान में मालवत धम का प्राचीन मन्दिर डा० वासुदेवगण अग्रवाल, ला० प्र० प० प० २०१४ पृ० २-३।

३—इतिहास आर्यसोत्रिकस सत्र रिपोर्ट वय १९२५-२६।

४—पुराण स प्रहालय मथुरा में यह पट्ट मुरलिन है।

५—इतिहास आर्यसोत्रिकस सत्र १९०५-९।

६—आर्यसोत्रिकस सत्र १९०२-२६।

शताब्दी पद्य त श्रीकृष्ण-सम्ब की अनेक भावपूर्ण पदा को रचनायें की। मालवार भक्ता द्वारा रचित चार हजार भावपूर्ण गीत 'प्रथम' नाम से सग्रहीत हैं। इन पदों में विष्णु, नारायण एवं वासुदेव और इनके भवतारों व प्रिय प्रेम भाव प्रकट किया गया है। भगवान् श्री कृष्ण की प्रेम लीलाओं का वर्णन राधा के रूप में हुआ है। नायिका-राधा गोपी का वर्णन राधा के रूप में हुआ है। नायिका-राधा को लक्ष्मी का भवतार बताया गया है। सुप्रसिद्ध राजा यशोवर्मा (आठवीं शताब्दी ईसवी) के सभा कवि वररतिराज ने अपने प्रारम्भ महाकाव्य 'पञ्च-वहो' के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण का ही स्तुति गान किया है—

सो जयइ जामङ्गलायभाण मुहलालि वलय परिमाल ।
लच्छि विवेस तेउर-वइ व जोवहइ वण माल ॥
बालतणम्मि हरिणो जयइ जसो आए चुम्बिय वयण ।
पडिसिद्ध नाहि मग्गुद्ध णिग्गय पुण्डरोयब ॥
एहणेहा राहा कारणाओ कएण हरन्तु वो सरसा ॥
वच्छट्यलम्मि कौत्थुह किरणा अनीओ कण्हस्स ॥
त णमह जेण अज्जवि विलूण कण्ठस्स राहुणो वलई
दुक्ख मनिच्चरियच्चिय अभूण लहुम्महि सामेहि ॥ १

मान द्रव्यनाचाय रचित ध्वयानोक २ (९वीं शताब्दी) और कवीन्द्र-वचन समुच्चय (१०वां शताब्दी) ३ में श्री कृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण हुआ है।

१३ ४। जन आचाय हेमचन्द्र (१२वीं शताब्दी ई०) ने अपने सुप्रसिद्ध प्राकृत व्याकरण में कतिपय राधा कृष्ण सम्बन्धी पद्य उद्धृत किये हैं। जयदेव ने गीत-गोविन्द में राधाकृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं का सरस निरूपण किया, जिसका प्रभाव कालान्तर में अनेक कवियों पर लक्षित होता है।

(२) श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों के प्रेरणा-स्रोत

(क) श्रीमद्भागवत् का कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-वर्णन-

१४ ४। श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध में राजा परीक्षित शुक्रदेव जी से निवेदन करते हैं— हमने सुना है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने राजा भीष्मक की परम सुदरी कन्या

१—मगलाचरण छ० स० २०-२३।

२—२-६-१०, २-५-६।

३—छंद स० ५१०।

रुक्मिणी का वनपूजन हरण किया और उमर साय राक्षस विधि न विवाह किया । १ शुभ देवजी महाराज । जरामय और शान्त्व घाति का जीवनर रुक्मिणी-हरण करने की क्या हम सुनना चाहते हैं । श्रीकृष्ण की लाजायें स्वयं तो पवित्र हैं हा सारे सत्कार व वातुष्य की दूर कर उसको भी पवित्र करने वाली हैं । उनमें ऐसी लाजोत्तर मापुरी है, जिसे दिन रात्र सेवन करने पर उमर निरय नवीन रम मिलता है । ऐसा जीवन रक्षिण और मर्मन है जो उन्हें सुनकर श्रुत न हो । २

१५ १ । तदुपरान्त श्री कृष्णजी को कहते हैं कि राजा भीष्मक विदर्भदेश न मयिपति थे । उनका क्रमण रुक्मी स्वमरण, रत्नबाहु, रत्नेश और रुक्मिणी नामक राजकुमार हुए । उनकी एक पुत्री थी जिसका नाम रुक्मिणी था । रुक्मिणी न श्रीकृष्ण व मोक्षार्थ, बराक्रम, गुण और वैभव की प्रसन्ना सुनी । रुक्मिणी व प्रागे प्रागन प्रतिवि प्राय श्रीकृष्ण की प्रसन्ना गायी करते थे । ऐसी अवस्था में रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण का ही पति रूप में वरण करने का निश्चय किया । ३

१६ ४ । श्रीकृष्ण ने भी रुक्मिणी के सौन्दर्य गुण, कीलस्वभाव और सुम सदागु को प्रशंसा सुनी तो उससे विवाह करने का निश्चय किया । ४ रुक्मिणी का बड़ा भाई हरमी श्रीकृष्ण से द्वेष रखता था इसलिये उसका छाठकर सभी रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण से ही करना चाहते थे । रुक्मी न रुक्मिणी का विवाह शिशुगान से करने का निश्चय किया । यह जानकर रुक्मिणी ने एक विश्वासपात्र ब्राह्मण को अपने सन्देशवाहक के रूप में दारिका श्रीकृष्ण के समीप भेजा । ५

१७ ४ । रुक्मिणी के सन्देश में रुक्मिणी द्वारा श्रीकृष्ण को पति रूप में वरण करने का दृढ़ निश्चय व्यक्त किया गया है । सन्देश में नगर के बाहर कुलश्री के दर्शन के समय पहुँच कर रुक्मिणी को ले जाने का और राक्षस विधि से पाणिग्रहण का संकेत दिया गया है । ६

१८ ४ । श्रीकृष्ण रुक्मिणी के प्रति अपने अनुराग को प्रकट करते हुए यथा समय पहुँच कर रुक्मिणी को ले जाने का निश्चय प्रकट करते हैं । ७ तदुपरान्त तीसरे ही दिन सप्त-तिथि जानकर सारथी शक द्वारा शैव्य, सुग्रीव, मेघगुण और बलाहक नामक तीव्रगामी घोड़े अपने रथ में जुनवा कर और ब्राह्मण को साथ लेकर एक रात में विदर्भ देश पहुँच जाते हैं । ८

१ अध्याय ५२ श्लोक सं० १८ ।

२ अध्याय ५२, श्लोक सं० १९-२० ।

३ अध्याय ५२ श्लोक सं० २१-३२ ।

४ अध्याय ५२ श्लोक सं० २४ ।

५-अध्याय ५२ श्लोक सं० २६ ।

६-अध्याय ५२, श्लोक सं० ३७-४३ ।

७-अध्याय ५३ श्लोक सं० २-३ ।

८-अध्याय ५३, श्लोक सं० ४-६ ।

१६ ४। तदुपरान्त रुक्मिणी के विवाहोत्सव की तैयारी और कुण्डिन नगर की सजावट आदि का बखान है । ^१ वेदि-भरण राजा दमघोष भी अपने पुत्र शिशुपाल को लेकर अपनेक राजाभा और चतुरगिणी सेना सहित कुण्डिनपुर पहुचन हैं । ^२ विदभराज भीष्मक सबका स्वागत करते हैं ^३ और सभी राजा शिशुपाल के समर्थन में द्वावश्यकतानुसार श्रीकृष्ण से युद्ध करने की तैयारी करते हैं । ^४

२० ४। बलराम भी श्रीकृष्ण की सहायता हेतु चतुरगिणी सेना सहित कुण्डिनपुर पहुच जाते हैं । ^५ प्रागे श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा में रुक्मिणी क चिन्तापुर होने का वर्णन है । ^६ तदुपरान्त ब्राह्मण देवता भाकर रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के प्रागे का मन्देश देते हैं और कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को ले जाने की प्रतिज्ञा की है । ^७

२१ ४। राजा भीष्मक ने, श्रीकृष्ण-बलराम का यह जानकर कि व विवाह देखने प्राये हैं, विधिपूर्वक पूजा अर्चना क उपरांत प्रातिपद्य-सत्कार किया । ^८ विदभराज के नागरिका ने श्रीकृष्ण के रूप गुण से प्रभावित हाकर कामना प्रकट की- श्रीकृष्ण ही रुक्मिणी का पाणिग्रहण करें । ^९

२२ ४। प्रागे रुक्मिणी के घ त पुर से प्रस्थान कर देवी-मन्दिर की ओर जान का और उनकी सुरक्षा का वर्णन है । ^{१०} रुक्मिणी मन्दिर में प्रवेश कर देवी पूजा करती है और श्री कृष्ण की पति रूप मे प्राप्त करने की कामना करती है । ^{११} तदुपरांत श्रीमद्भागवत में रुक्मिणी के मोहक सोर्ष्य और शृंगार का निरूपण है जिसको देखकर विरोधी राजा वेमुष हो गये और उनके शस्त्र हाथों से छूट पड़े । ^{१२} इसी समय रुक्मिणी की श्रीकृष्ण के दर्शन हुए । रुक्मिणी श्री कृष्ण के रूप पर चढ़ना ही चाहती थी कि श्रीकृष्ण ने स्वयं विरोधियों को भौड में से उनको उठा कर रूप में बैठा दिया । तदुपरान्त श्रीकृष्ण रुक्मिणी का लेकर बलराम और अपनी सेना सहित वहां से चल दिये और राजागण अपने प्रा की धिक्कारते हुए रह गये । ^{१३}

२३ ४। तत्पश्चान् शिशुपाल के समर्थक राजाओं की पराजय और श्रीकृष्ण रुक्मिणी-परिणय का बखान हुआ है । श्री गुणदेव जो परीक्षित की श्री कृष्ण और विरोधी राजाओं के मध्य होने वाले युद्ध का वर्णन करते हुए बताते हैं कि राजाओं ने कृष्ण पर आक्रमण किया और रुक्मिणी ने चिन्ता प्रकट की तो श्रीकृष्ण ने सुरत ही राजाओं को

१-अध्याय ५३ श्लोक सख्या ७-१३ ।

३-अध्याय ५३, श्लोक सख्या १६ ।

५-अध्याय ५३ श्लोक सं० २०-२१ ।

७-अध्याय ५३, श्लोक सं० २७-३० ।

९-अध्याय ५३, श्लोक सं० ३६-३८ ।

११-अध्याय ५३, श्लोक सं० ४४-५० ।

१३-अध्याय ५३, श्लोक सं० ५४-५७ ।

२-अध्याय ५३ श्लोक सख्या १४-१५ ।

४-अध्याय ५३, श्लोक सं० १७-१९ ।

६-अध्याय ५३, श्लोक सं० २२-२६ ।

८-अध्याय ५३ श्लोक सं० ३२-३४ ।

१०-अध्याय ५३, श्लोक सं० ३९-४३ ।

१२-अध्याय ५३ श्लोक सं० ५१-५३ ।

पराजित कर भगा दिया । ^१ भागे जरासंध शिशुपाल को समझाते हैं कि श्रीकृष्ण से वे १७ बार पराजित हुए कि तु प्रयत्नशील रहने से १८ वीं बार विजयी बनें । ^२ शिशुपाल उदास हाकर युद्ध से बचे हुए सायियो सहित अपनी राजधानी का लूट गया । ^३

२४ ४ । स्वामी ने एक प्रक्षोभित शिवा सेना लेकर श्रीकृष्ण का पीछा किया । स्वामी ने श्रीकृष्ण को ललकार कर शरणाग्र किया कि तु श्रीकृष्ण ने मुस्कुराते हुए उसके सभी शस्त्र बाट गिराये । श्रीकृष्ण ने शिवमण्डली की प्राथना पर स्वामी को मारने का विचार छोड़ कर उसकी दानी मूछ और मस्तक के वेग मूछ कर उसको उसीके दुपट्टे से बाध दिया । ^४

२५ ४ । बलराम ने स्वामी को दयनीय अवस्था में देखा तो उसको मुक्त कर दिया और स्वामी के प्रति किये गये व्यवहार को निन्दनीय बताया । ^५ तदुपरांत बलराम ने शिवमण्डली का भागे शत्रु धर्म की यात्रा करते हुए कहा कि तुम्हारे भाई प्राणियों के प्रति दुर्भाव रखते हैं इसलिए हमने उनके मगल हेतु ही समस्त काय किया है । तुम शत्रुता की भाँति इस कार्य को समगल मत मानो । यह शरीर नाशवान है और 'मृत' का कारण शत्रुता को जन्म मृत्यु के चक्र में पड़ना होता है आदि । शिवमण्डली ने तदुपरांत विवेक बुद्धि से अपने दुःख का समाधान किया । ^६ स्वामी ने शिवमण्डली को शिराना हाकर भोजकट नामक नवीन नगरी का निर्माण किया और वही रहने लगा क्योंकि उसने श्रीकृष्ण को मारकर अपनी बहिर्ना को लूटा कर ही कुण्डिनपुर में प्रवेश करने की प्रतिज्ञा की थी । ^७

२६ ४ । श्रीकृष्ण ने द्वारिका लूट कर विधि पूर्वक शिवमण्डली का पाणि प्रहण किया । द्वारिका में श्रीकृष्ण शिवमण्डली विवाह के अवसर पर उत्सव हुए और शिवमण्डलीहरण को गाया गाई जाने लगी । द्वारिकावासी लक्ष्मी को शिवमण्डली के रूप में लक्ष्मी पति भगवान् श्रीकृष्ण के साथ देखकर मानसित हुए । ^८

२७ ४ । तदुपरांत प्रद्युम्न जन्म की कथा वर्णित है । इस अध्याय के प्रारम्भ में बखान है कि कामदेव भगवान् वासुदेव के ही अंग हैं । इन्होंने शिवमण्डली के गर्भ से उदयन हाकर अपना प्रद्युम्न-नाम प्रसिद्ध किया । ^९

२८ ४ । प्रद्युम्न जब दत्त त्रिनेत्र के हुए तब गम्बरागुर इन्हें अपना शत्रु जानकर शपथ में उठा ल गया और समुद्र में फेंक दिया । समुद्र में एक मगर मच्छ ने प्रद्युम्न को

- १-अध्याय ५४ श्लोक सं० १-९ ।
 २-अध्याय ५४ श्लोक सं० १७ ।
 ५-अध्याय ५४ श्लोक सं० ३६-३९ ।
 ७-अध्याय ५४ श्लोक सं० ५१-५२ ।
 ९-अध्याय ५४ श्लोक सं० ५४-६० ।

- २-अध्याय ५४ श्लोक सं० १०-१६ ।
 ४-अध्याय ५४ श्लोक सं० १८-३५ ।
 ६-अध्याय ५४, श्लोक सं० ४० ५० ।
 ८-अध्याय ५४ श्लोक सं० ५३ ।

निगल लिया। मनुष्य ने सयाग से उसा मण्ड का पकड़ा और गम्बरामुर को समर्पित किया। रसोइया ने मन्त्र का वादते समय उनक पट मे दानक प्राप्त किया ता उस दानक को शम्बरामुर की दासी मायावती ने ले लिया। नारद मुनि ने आकर दासी का प्रद्युम्न सम्बन्धी वृत्तान्त कह सुनाया।^१ यह मायावती कामदेव का पत्नी रति ही थी। प्रद्युम्न के धुवा होन पर मायावती उनक आगे कामिनी मट्टग हाव भाव प्रदर्शित करने लगी।^२ प्रद्युम्न ने उसका अपनी माता के समान समरू कर भावति की। मायावती ने नारद द्वारा मुनी हुई घटनाएँ बताकर प्रद्युम्न को सभी प्रकार की मायाया का नाग करने वाली 'महामाया' नामक दिखा दी।^३ प्रद्युम्न ने महामाया दिखा प्रान्त कर गम्बरामुर का ललकारा। प्रद्युम्न पर गम्बरामुर ने क्राधित होकर अपनी गदा चलाई। प्रद्युम्न ने भी अपनी गदा चलाकर उसकी गटा की गिरा दिया। तब शम्बरामुर आकाश से उडकर गम्भा की वर्षा करने लगा। प्रद्युम्न जी ने महामाया का प्रयोग कर शम्बरामुर की अनेक मायाया का विनाग किया और गम्बरामुर का अपनी तलवार से बध किया।^४ तदुपरांत मायावती प्रद्युम्नजा की ले कर आकाशमाग से द्वागिका चनी गई।^५ रत्नाणा और मत्तपुर की अय नारिया इस तब दम्पति को देखकर आश्चर्य चकित हो गई।^६ बमण्णी अपन छोए हुए पुत्र का ध्यान करने लगी।^७ इसी समय नारदजा ने आकर सबको शम्बरामुर-सम्बन्धी कथा सुनाई।^८

२६ ४। प्रद्युम्न को देखकर सभी बहुत आर्त्ता दत हुए। प्रद्युम्न का रूप-सौन्दर्य श्रीकृष्ण से मिलता हुआ था अतएव मत्तपुर में स्त्रियों का कभी-कभी भ्रम भी हो जाता था। प्रद्युम्न श्रीकृष्ण के अग और कामदेव क अवतार थे इसलिये यह आश्चर्य की वृत्त नहीं थी।^९

३० ४। श्रीकृष्ण रुक्मिणी-सवाद क य तगत वणन है कि एक समय श्री कृष्ण ने रुक्मिणी से कहा—“मैंने जरासंध और सिंगुपालादि का गव भजन करन हतु ही तुम्हारा हरण किया है। मैं एक सामान्य पुरुष हू और मेरे गम कोई बडा राय नहीं है। इसलिए अब तुमको अपनी इच्छानुसार पति का वरण कर लेना चाहि।”

३१ ४। रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण की महानता बताते हुए उनके प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की। श्रीकृष्ण ने भी रुक्मिणी क अगा प्रेम के लिए अपनी कतनता प्रकट की।^{१०}

(ख) निष्णुपुराण और हरिवंश-पुगण का श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-परान्

३२ ४। विष्णुपुराण^{११} और हरिवंशपुराण^{१२} में वर्णित रुक्मिणी-हरण प्रमग

१-अध्याय ५५, श्लोक सं० ३-६।

२-अध्याय ५५, श्लोक सं० ११-१६।

३-अध्याय ५५, श्लोक सं० २४-२५।

४-अध्याय ५५, श्लोक सं० ३१-३७।

५-वशामस्कथ अध्याय १०।

६-अध्याय ५६, ६०।

७-अध्याय ५५, श्लोक सं० ७-१०।

८-अध्याय ५५, श्लोक सं० १७-२३।

९-अध्याय ५५, श्लोक सं० २६-३४।

१०-अध्याय ५५, श्लोक सं० ३८-४०।

११-अध्याय ५६, अध्याय ३८।

में श्रीमद्भागवत जसी सुविस्तृत कथा योजना और रोचकता नहीं है। विष्णुपुराणगत कथा में यह विशेषता है कि कनैया श्रीकृष्ण द्वारा क्विमणी हरण क पश्चात् युद्ध में जान सम श्रीकृष्ण को पराजित किये बिना कुन्दनपुर में नहा प्रणय करन की प्रतिज्ञा करता है। विष्णु पुराण में कनैया को श्रीकृष्ण द्वारा शिये गय दण्ड का वरान् नहीं है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण क्विमणी का राक्षस विवाह होने की ओर गकत मान है कि तु विष्णुपुराण^१ में इस विवाह को स्पष्ट ही राक्षस विवाह लिखा गया है—

निजित्य क्विमण सम्मगुणयेमेह क्विमणीम् ।
राक्षसेन विवाहेन संप्राप्ता मधुसूदन ॥

३३ ४। क्विमणी के गर्भ स प्रसुम्न के उत्पन्न होने का प्रसंग भी विष्णु पुराण में वर्णित है। इस पुराण में क्विमणी को श्रीकृष्ण की छाटा परराजियों में प्रसुप्त बताने हुए श्रीकृष्ण की देह क साथ ही क्विमणी का दाह सस्कार सूचित किया गया है—

अष्टौ महिष्य कथिता क्विमणी प्रमुखास्तु या ।
उपगुह्य हरेर्देह विविशुस्ता हृताशनम् ॥^२

३४ ४। हरिवंशपुराण के अनुसार श्रीकृष्ण और बलराम क्विमणी का विवाह देखने हेतु कुन्दनपुर में जाते हैं। इन्द्राणी के मंदिर में पूजन के लिये प्राप्त क्विमणी क रूप सो न्य पर मुग्ध हो कर श्रीकृष्ण बलदेव के परामर्शानुसार मंदिर के बाहर क्विमणी का हरण करते हैं। कनैया श्रीकृष्ण से युद्ध में पराजित हो कर अभयज्ञान की प्रार्थना करता है और श्रीकृष्ण के क्षमादान पर कुन्दनपुर में प्रवेश नहीं करने के विचार से अपने निवास हेतु भोजकटपुर का निर्माण करता है। हरिवंशपुराणगत प्रसंग का दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) क्विमणी हरण^३ और (२) कनैया की पराजय।^४

३५ ४। श्रीमद्भागवत् वष्णुव भक्तों का प्रधान उपास्य ऋष है और समस्त वैष्णव-सम्प्रदाया का साधारण रूप है। महाभारत में मानव धर्म का सम्मय निरूपण करने के उपरान्त भी महर्षि व्यास को शान्ति लाभ नहीं हुआ तो देवपि नारद क निर्देशानुसार श्यास जो न भगवान् की प्रेममयी लीलाओं का वर्णन कर प्रकृत प्रमरस के साधारण भगवान में सम्पूर्ण रूप में सात्य समर्पण की दृष्टि स श्रीमद्भागवत् की रचना की।^५ भारतवर्ष में मुस्लिम विजेताओं ने इस्लाम के सिद्धांतों के अनुसार सासन संचालन कर हिंदू धर्म और सभ्यता का उच्छेद करना चाहा तो हमारे धर्माचार्यों ने श्रीमद्भागवत् से प्रेरित होकर ही देश

१-भागवतस्य अध्याय ५२, श्लो० १८।

२-अश ६ अध्याय ३८, श्लो० २।

३-अध्याय ५६।

४-अध्याय ६०।

५-श्रीमद्भागवत्, प्रथम अध्याय, ५। ८। ६। ४०।

में भक्ति धारा प्रवाहित की और सम्यक् रूपेण मार्ग दर्शन कर जनता को प्राश्वस्त किया। श्रीमद्भागवत में सर्वजन-सुखभ्र भक्ति का, पूणब्रह्म परमेश्वर की विविध लीलाभा के साथ सरस वर्णन हुआ है और भगवान् के काव्यमय एवं भावपूर्ण कीर्ति गान के कारण ही श्रीमद् भागवत का व्यापक प्रचार हुआ है।

ग श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी संस्कृत रचनाएँ —

३६४। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह प्रसंग में शृ गार, भक्ति और वीरता-सम्बन्धी अनेक नायक भावों का समावेश हुआ है इसलिए श्रीमद्भागवतादि पुराणों के आधार पर संस्कृत में अनेक रचनाएँ हुईं। यथा—

(१) रुक्मिणी-वलयाण नाटक चूडामणि कृत।^१

(२) रुक्मिणी-चम्पू घनश्याम-पुत्र गोवर्द्धन कृत।^२

(३) रुक्मिणी-नाटक, सरस्वतीनिवास कृत।^३

(४) रुक्मिणी-परिणय नाटक, रामचन्द्र कृत।^४

(५) रुक्मिणी परिणय वरद कवि कृत।^५

(६) रुक्मिणी विजय काव्य।^६

(७) रुक्मिणी विजय, चादिराज तीर्थ कृत।^७

१ - लिट्टस आफ संस्कृत मेयूस्क्रिप्टस इन प्राइवेट लायब्ररीज आफ सदर्न-इण्डिया, गस्ताव ओपेट, वी० १ मद्रास १८८० ई० स० २६८८, ३४७१ वी० २, मद्रास १८८५ ई०, स० १६०००, ६६०० टीकाए, वी० १ स० ४७२, वी० २ स ६००१।

२ - कर्ता की घटवर्षरा टीका मे उद्घृत-केटलोगस केटलोगोरम एन प्रोफाबेटिक्स रजिस्टर आफ संस्कृत बक्स एण्ड प्रायस, मिश्रीडोर प्रोफेक्ट, भाग १, फ्रेञ्ज स्टोनर वरलोग वी० एम० वी० एच० विएसवडेन, पृ० ५२७।

३ - क - वही। ल - केटलाग आफ संस्कृत मेयूस्क्रिप्टस एविजस्टिग इन बी सेटल प्रोविन्सेज, स० एफ० कील्हान, नागपुर १८६४ ई०, स० ७४।

४ - अपार्ट की दक्षिण भारतीय ग्रन्थ सग्रह सूची, स० २६६०, ४५७।

५ - ए कलासिकाइड इ डेक्स द्वी संस्कृत मेयूस्क्रिप्टस एण्ड वी पेटेस एण्ड तजोर, स० ए० सी० ब्रॉन, लन्दन, १८८० ई० स० १७२ वी० १।

६ - ओपेट की दक्षिण भारतीय ग्रन्थ सग्रह सूची भाग १ स० २५३४, भाग २, स० ५५५६, टीका १, स० २६८६।

७ - क - रिपोर्ट ग्रान बी सच फार संस्कृत मेयूस्क्रिप्टस इन बी वान्से प्रोविन्सेसो क्यूरिंग वी ईयर १८८२ ८३, आर० जी भटारकर बायवे १८८४, स० ६३२।

ल - प्राइवेट की दक्षिण भारतीय ग्रन्थ सग्रह सूची वी० २, स० ५५८।

- (८) रुक्मिणी स्वयंवर काव्य ।^१
- (९) रुक्मिणी-परम नाटक, दोर वि नामणि कृत ।^१
- (१०) रुक्मिणी-बन्ध्याल-नाटक गजप्रहामणि कृत ।^१
- (११) रुक्मिणी-परिणय काव्य मधुमलपुत्र गोविन्द कृत ।^१
- (१२) रुक्मिणी परिणय नाटक रामयमन कृत ।^१
- (१३) रुक्मिणी परिणय नाटक कवि कातिक'सिंह कृत ।^१
- (१४) रुक्मिणी बन्ध्याल गीत, विद्यानभशतिन ।^१
- (१५) रुक्मिणी-बन्ध्याल-गीत, परमानन्द ।^१
- (१६) रुक्मिणी कल्याण गीत गोविन्दरम ।^१
- (१७) रुक्मिणी कृष्ण विवाह ।^१
- (१८) रुक्मिणी परिणय आग्नेय वर ।^१
- (१९) रुक्मिणी-परिणय, विश्वेश्वर ।^१
- (२०) रुक्मिणी-परिणय बरसराज ।^१
- (२१) रुक्मिणी परिणय, अर्णव दीशित ।^१
- (२२) रुक्मिणी-परिणय, वक्त शान्तिन ।^१
- (२३) रुक्मिणी-परिणय, एडवेडिक्काट्ट नरूद्रि ।^१
- (२४) रुक्मिणी परिणय, गोविन्द ।^१

१-क-बेटलाग आफ मस्वत मे'पुलिश्रप्त कन्टेड इन दी प्राइवेट लाइब्रेरीज आफ गुजरात, काठियावाड, बच्छ, सिध, एण्ड खानदश, कम्पाइन्ड अडर दी सुपरिन्टेन्डेस आफ जी० बुन्द०, बाम्बे १८७१ ७३ ई०, सं०, २, स० १०४ ।

स-ओपेट की बसिए भारतीय प्रथम सग्रह सूची न० २६६० ११७६ ।

२ - क- रिपोट ऑन दी सच फोर सस्कृत मे'पुलिश्रप्त इन दी बाम्बे प्र सीडेन्सी ड्यूरिंग दी ईयर १८८०-८१, एक० कौन्हाल बाम्बे १८८१, सं० ६२ १०४ ।

स- ओपेट की उक्त सूची स० २६६०, ६१७६ ।

३ - गवर्नमट ओरिएण्टल लायब्रेरी, मद्रास स० ७८

४-५-६ - प्राइवेट डूत बेटलोपत बेट गीषार, भाग २, पृ० १२३ ।

७ - हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर एम० कृष्णमाचारी, तिरुमलार, निरुपति, देवस्वाम प्रेस मद्रास १९३३, इन्डिक्स पृ० १०५७-१०५८ ।

- ८ - वही ।
- १० - वही, ४६ ।
- १२ - वही, २१२ ६०६ ।
- १४ - वही ।
- १६ - वही, ६३६ ।
- ९ - वही ।
- ११ - वही, जी० ७७७ ।
- १३ - वही, एड० जी० ओ० एस० ।
- १५ - वही, ६४३ ।
- १७ - वही २५३ ।

- (२५) रुक्मिणी परिणय चम्पू, धम्मालू ।^१
 (२६) रुक्मिणी परिणय चम्पू वैकटाचार्य ।^२
 (२७) रुक्मिणी परिणय चम्पू, रामराय ।^३

घ. श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी अथवा श एव जैन रचनाए

३७ ४। श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह के संकेत नमिनाय, गज मुकुमाल और प्रद्युम्न विषयक जन रचनाओं में भी उपलब्ध होत हैं । जैन मतानुसार नेमिनाथ अपर नाम रिष्टनेमि अथवा रिष्टनेमि बाईसव तीर्थङ्कर और श्रीकृष्ण के चचेरे भाई माने गये हैं । गजमुकुमाल श्री कृष्ण के सहायक भ्राता और प्रद्युम्न श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के पुत्र थे । यादव-कुल में नेमिनाथ परम शक्तिशाली थे जिनका विवाह उग्रसेन की रात्रकुमारी राजकुलदेवी से निश्चित हुआ था । विवाहोत्सव में भाग्य पदार्थों हेतु वध किये जाने वाले जीवा का कष्टण भ्रन्दन गुन कर नेमिनाथ ने सासारिक सुख-वशवो का पूर्ण स्वेण त्याग कर वैराग्य ग्रहण कर लिया । साथ ही राजकुल देवी ने भी धराग्य ग्रहण कर लिया । नेमिनाथ ने प्रभावित होकर गजमुकुमान ने भी बायकाल में वैराग्य धारण कर लिया ।

३८ ४। प्रद्युम्न कुमार कामध्वज भवतार और श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के पुत्र थे । प्रद्युम्न कुमार ने भी वैराग्य धारण किया था । प्रद्युम्नकुमार सम्बन्धी रचनाओं के प्राग्भ में रुक्मिणी-हरण सम्बन्धी प्रसंग दिया गया है । नेमिनाथ, गजमुकुमाल और प्रद्युम्न सम्बन्धी कतिपय जैन रचनाए निम्नलिखित हैं—

- १। नेमिनाथ चतुष्पदिका, विनयचन्द्र सूरि (वि० स० १३२५) कृत ।^४
- २। नेमिनाथ रास, पुण्यरत्नकृत ले० का० १६३६ ।^५
- ३। नेमि रास वि० स० १६७५, धमकीर्ति कृत ।^६
- ४। नेमि फाग वि० स० १६६५ रत्नसागर सूरि शिष्य कृत ।^७
- ५। नेमिराजुल बारामासा, वि० स० १६८६, लामोदय कृत ।^८
- ६। नेमिनाथ सिलोको, उदयरत्न कृत ले० का० स० १८७१ ।^९
- ७। नेमिजिन गीत लि० का० २० वी शताब्दी ।^{१०}

१ - हिस्ट्री ऑफ़ क्लासिकल सांस्कृत लिटरेचर एम० कृष्णमाचारी, तिरुपति देवस्थान प्रेस, मद्रास १९३३ इडेक्स १५०, १४४ ।

२ - वही । ३ - वही ।

४ - जन गुजर कविप्रो, भाग १, पृ० ६० देसाई, जन श्वेताम्बर फाऊंडेशन, बम्बई, पृ० ५ ।

५ - वही पृ० २४३ । ६ - वही पृ० ४६१ ।

७ - वही पृ० ४०३ । ८ - वही, पृ० ५३४ ।

९ - राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थांक ४८३७ ।

१० - राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची भाग २, स० पुष्पोत्तमलाल मेनारिया, प्र० राजस्थान प्रा० वि० प्र० जोधपुर, पृ० २१ ।

- (८) नेमिनाथ गीत, बर्ता प्रजोत भागर, वि० का० १६ यी दातादी ।^१
 (९) गजसुकुमाल सधि, वि० स० १५३५, मूलप्रभ कृत ।^२
 (१०) गज सुकुमाल रास वि० स० १६१७ तावण्यकीर्ति कृत ।^३
 (११) गजसुकुमाल रास, वि० स० १६९६ ।^४
 (१२) प्रद्युम्नचरित्र, रविसागर कृत, र० का० १२०७ वि० ।^५
 (१३) प्रद्युम्न चरित, मधाक भद्रवान कृत, रचनाकाल वि० स० १४११ ।^६

३६ ४। श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह के प्रसंग में जैन रचनाओं के मूल प्ररणा-स्रोत पुराण ग्रन्थ ही हैं। जैन रचनाओं में नारद-विद्या का विशेष महत्कार बनाने हुए जैन सिद्धांतों का महत्त्व प्रतिपादित करने की दृष्टि से श्रीकृष्ण की तुलना में नेमिनाथ, रात्रुमन्थी और प्रद्युम्न आदि की तपस्या का विशेष चित्रण किया गया है।

क श्री कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-निपयक ब्रज भाषा की रचनाएँ —

४० ४। श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी ब्रज काव्यात्मक भाषा की रचनाओं में विश्वगुदास कृत रुक्मिणी मंगल और महाकवि सूरदास कृत रुक्मिणी-मंगल प्राचीनतम हैं। भागे बन कर ब्रज और राजस्थानी दोनों ही भाषाओं में इस विषय पर काव्य रचना होती रही। ब्रज प्रदेश और राजस्थान में पारस्परिक सम्पर्क होने से ब्रज और राजस्थानी दोनों ही भाषाओं की रचनाएँ परस्पर प्रभावित होती रही। ब्रजभाषा के प्रसार और प्रभाव के साथ ब्रज रचनाओं का प्रभाव भी बढ़ता गया। हिन्दी विवाह-मंगल एवं श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह-सम्बन्धी काव्य-लेखन की परम्परा साधुनिक काल में खड़ी बोली में भी उपलब्ध होती है।

(१) विश्वगुदास कृत रुक्मिणी-मंगल

४१ ४। ब्रजभाषा में कृष्ण सम्बन्धी काव्य रचना प्रारम्भ करने का समस्त धर्म प्रब तक श्री बल्लभाचार्य और सूरदास आदि षष्ठद्वय के कवियों को लिया जाता रहा है—

१ - वही, प्रत्याक ८४००० (२६)।

२ - जन गुजर कविमो, भाग १, मो० १० इसाई जन दशैताम्बर कान्क्रेन्म, बम्बई, पृ० ७६५।

३ - वही, पृ० २१७। ४ - वही, पृ० ४०८।

५ - रुक्मिणी-हरण संपुष्टात्तम ज्ञान मेनारिया, सत्पादकीय भूमिका।

६ - शास्त्र मन्डार, श्री विरधीचन्द मन्दिर, जयपुर।

“ब्रजभाषा में कृष्ण-काव्य की रचना का समस्त श्रेय श्री बल्लभाचार्य को होना चाहिये, क्योंकि उहाँ के द्वारा प्रचारित पुष्टि मार्ग में दीक्षित हो कर सूरदास आदि अष्टाशय कवियों ने कृष्ण-साहित्य की रचना की।^१ विष्णुदास की रचनाओं से प्रमाणित होता है कि ब्रजभाषा में कृष्ण-सम्बन्धी काव्य-रचना का प्रारम्भ बल्लभाचार्य के वृंदावन-प्रागमन और सूरदास के जन्म से अर्द्धशताब्दी पूर्व हो चुका था। विष्णुदास का जीवन परिषय उपलब्ध नहीं होता है। काशी-नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित खोज रिपोर्ट में प्रस्तुत विष्णुदास कृत महाभारत-कथा के विवरण में इसका रचना काल १४३५ ई० सूचित किया गया है।^२ विष्णुदास खालियर-नरेश दूंगरे त्रिभिह क समकालीन थे, जिनका राज्यारोहण १४२४ ई० में हुआ था।^३

४० ४। विष्णुदास कृत निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध होती हैं —

- (१) महाभारत कथा २० का० १४३५ ई०
- (२) रुक्मिणी मंगल,
- (३) स्वर्गारोहण अथवा स्वर्गारोहण पर्व, और
- (४) स्नेहलीला (अमर गीत)।

४३ ४। उक्त रचनाओं में रुक्मिणी मंगल मंगल काव्य-परम्परा में और स्नेह-लीला अमर गीत परम्परा में लिखित हैं। कृष्ण-काव्य में प्रचलित इन दो प्रधान परम्पराओं के प्राचीन रूप भी विष्णुदास की रचनाओं में ही उपलब्ध होते हैं।

४४ ४। १९१२ ई० की खोज रिपोर्ट में रुक्मिणी मंगल का अन्तिम पद इस प्रकार है—

महलन मोहन करत विलास ।
 कहा मोहन कहा रमन रानी और कौत नहीं पास ।
 रुक्मन चरण सिरावत पिय के पूजो मन की आस ॥
 जो चाहे धि भी अत्र पायो हरि पति देवकी सास ।
 तुम बिनु और कौन थो मरो घरत पताल अकास ॥
 पल सुभिरन करत तिहारो मसि पूस परगास ॥
 घट घट व्यापक अतर्थांसी सब सुखरासी ॥
 विष्णुदास रुक्मन अपनाई जनम जनम की दासी ॥४

- १ - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ५११।
- २ - हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों की रिपोर्ट, १६०६८, सं० २४८ पृ० ६२।
- ३ - सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, डा० गिबप्रसाद सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी, पृ० १५२।
- ४ - गोस्वामी श्यामसुन्दर कृष्णदास की प्रति, खोज रिपोर्ट, पृ० २५२।

४५ ४। उक्त व १६२६-२८ की तौर रिपोर्ट में निम्नलिखित रूप में प्राप्त होता है—

मोहन महान करत तिलास ।
 वनक मंदिर म केलि करत है और कोउ नहि पास ।
 रुक्मिणी चरन सिरावे पो व पूजी मन की प्राप्त ।
 जो चाहो सो अबे पावो हरि पति दवकी सास ॥
 तुम विनु और न कोऊ मेरो घरणि पताल अकास ।
 निस दिन सुमिरन करत तिहारो सब पूरन परकास ॥
 घट घट व्यापक अतरजामी त्रिभुवन स्वामी सब सुतरास ।
 विष्णुदास रुक्मन अपनाई जनम जनम की दाम ॥^१

४६ ४। श्री कृष्णानंद व्यास न रविमणी मगन विषयक विष्णुग्राम के अनेक पदों को संकलित किया है^२ जिनके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

गौरी निन्तारा

प्रथम ही गुरु के चरणन वन्दत गौरी-पुत्र मनाइये ।
 आद ही विष्णु जुगादहि ब्रह्मा संकर ध्यान लगाइये ।
 देवी पुजन कर वर मागत बुध अरु भ्यान देवाइये ।
 ताते सुख अति हावे अबे आनंद मंगल गाईये ॥
 गौरी लक्ष्मी सुरहि सरस्वती इन हैं सीश नवाइये ।
 चंद सुरज दोउ गगा जमुना जिनतें अति सुख पाइये ॥
 सत महतन की पद-रज ले मस्तक तिलक चढाइये ।
 विष्णुदास प्रभु प्रीया प्रीतम को रुक्मिणी मंगल गाइये ॥

कृष्ण विरह रुक्मिणी को

नही आयो री वे श्याम मुदर ब्रजवासी अजहु अरी ।
 अब कोन सुते कासो कहा सदन निशदिन रहत उदासी ॥
 अरी म राह तकेदा तकते रहिहु हरि दरशन की प्यासी ।
 हे कोइ राहो आन मिलावे पुरण ब्रह्म अबनाशी ॥
 अरी बाहे सेश महेशे सुरेश रटत है ब्रह्मा पार न पासो ॥
 इन्द्रादिक की कोन चलावे शकर करत खवासी ।
 एरी जात न लगे सीइ तन जानत अनजानत की हासी ॥
 विष्णुदास प्रभु के बिन देखे लेहु करवत काशी ॥

१ - प० गणपतिलाल दुबे, गडवापुर ग्राम, जिला सीतापुर, खोज रिपोर्ट, सं० ४६८ ए०, पृ० ७२६ १० ।

२ - सागीत रुक्मिणी मंगल, कृष्णानंद व्यास, बड़ी बाजार के घाता, कालगिज के पास, बलकला, सं० १६३ (१-६) १ पृ० ४ ।

४७ ४। श्रीकृष्णानन्द व्यास द्वारा संकलित संगीत रविमणी मंगल में विष्णु दास क ४१ पदा का समावेश हुआ है।

४८ ४। विष्णुदास कृत रविमणी मंगल की एक प्रति अनूप सस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में ^१ और एक प्रति राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर के केन्द्रीय पुस्तकालय में ^२ भी उपलब्ध है। जोधपुर की प्रति में प्रारम्भ क १४ पत्र प्राप्त हैं। जोधपुर की प्रति का प्रतिम अक्षर इस प्रकार है—

पद राग परञ्ज

मोहन करत विलास महल में ।

देक— कनक मन्दिर म खेल करत हैं । और कोई नहीं तीजा पास ॥

स्वमनि चरन पलोत्त पीय के । पूजा मेरे मन की आस ॥१॥

जो चाहे थो साईं पाईयो । प्रभु पति देवकी सास ॥

तुम बिन और कोन था गरे । धरनि पताल अकास ॥

पल पल मुमरन करत तिहारो । सुनि पूरन परकास ॥

घट घट व्यापक अतरजामी । त्रिभुवन स्वामी सुख की (सुख की)

रास ॥

विष्णुदास स्वमनि अपनाई । जाम जनम की अपना दास ॥

जो कोई सुनि प्रीति सो । मंगल पूरे सब ही मन की आस ॥

ठडीराम सुप दियो कृपा कर । विष्णुदास कू आप प्रकास ॥१२॥

इति श्री विष्णुदास जी की रविमणी मंगल लिख्यते ॥ शुभ भूयात् वाचै त्वाने राम राम ॥

यादृश पुस्तक दृष्टवा तादृश लिपितं मया ।

यदि शुद्ध अशुद्ध वा मम दोषो न दीयते ॥१॥

बोहा

कर कुबजा कटि कूचरी, उध मुषो द्वि नैन ॥

इन कष्टन करि पुस्तक लीयो, तुम नेके रखीयो सैन ॥२॥

हस्ताक्षर बलदेव कृत मलवर नम मध्ये । शुभ भवतु ॥

४९ ४। विष्णुदास कृत रविमणी मंगल की उक्त जोधपुर की प्रति से प्रकट होता कि यह रचना विभिन्न रागों में गेय १२१ पदों में पूर्ण हुई है ।

१- प्राचीन काव्यों की रूप-परम्परा, श्रीधरचन्द्र नाहटा पृ० ५३ ।

२- प्रायश्चित्त १२६०० ।

५० ४। विष्णुदास द्रष्टृ रश्मिणा मगल की प्राक्त प्रतिमों में अनेक पाठांतर हैं जिनसे पाठ होता है कि इन रचना का आगम प्रकार रहा है। १०- गणपतिनाम दुर्, गङ्गापुर की प्रति को न (प्रभु) मानते हुए रचना न प्रतिम प न पाठांतर रूप प्रकार हैं

‘मोहन महलन’ १ करत विलास २ ।

३ कन मंदिर ३ में वे लि करत ४ हे श्रीर कोउ नहि १ पास ।

रश्मिनी ११ चरन मिराव १२ १ यो के १३ पूजी मन की आस

जो चाहो १४ सो १५ अवे पावो १६ १ हरि पति १७ देवकि १८ सास ।

सुम बिन १९ श्रीर २० २१ न कोऊ २२ मेरो २३ धरणि २४ पताल बवास २५

२६ जिस दिन २७ सुमिरन २८ करत २९ तिहारो ३० सब ३१ पूरन ३२ परकास ३३

घट घट व्यापक ३४ अंतरजामी ३५ त्रिभुवन स्वामी ३६ सब ३७ सुनराम ३८

विष्णुदास ३९ एकमन ३८ अपनाई ३६ जनम जनम की दास ४० ।

१-ख०प० महलन मोहन ग० मोहन करन । २-ग० विलास महलन में ; प्रागे ग० प्रति मे टेक' पाठ है । ३-ख० कहां मोहन । ४-ख० कहां, ग० य । ५-ख० रमन, ग० घ० बेल । ६-ख० शानी । ७-घ० है, ख० प्रति मे यह रूप नहीं है । ८-ग० श्रीर । ९-ग० कोई, घ० कोई । १०-ख० घ० नहीं, ग० नहीं तोजा । ११-ख० एकमन, ग० एकमनि घ० एकमनीयो (यो) के । १२-ख० मिरावत ग० पयोदत, घ० सरावत । १३-ख० पिय के, ग० पीव के घ० में यह रूप नहीं है । १४-ख० ग० चाहे, घ० मांगा । १५-ख० पि तो ग० यो सोई, घ० सोई । १६-ख० सब पावो ग० पाईयो, घ० प्रभु बिन । १७-ख० प्रभु पति । १८-ख० ग० घ० देवकी । १९-ख० बिनु । २०-ग० श्रीर । २१-ख० कौन यो, ग० घ० कौन था । २२-ग० मेरे, घ० में यह रूप नहीं है । २३-ख० धरत, ग० धरनि घ० धरन । २४-ख० घ० प्रकाश । २५-ख० पल पल, ग० घ० पल । २६-ग० घ० सुमरन । २७-घ० करू । २८-ग० तिहारो, घ० तिहार । २९-ख० सति ग० सुनि घ० पुरण ३०-ख० पूस, घ० पुद । ३१-ख० परगास, घ० प्रकाश । ३२-ख० ग० घ० व्यापक । ३३-ख० अंतर्यामी घ० अंतरजामी । ३४-ख० में यह रूप नहीं है, घ० भुवन स्वामी । ३५-ग० में यह रूप नहीं है घ० सब । ३६-ख० सुनरासो ग० सुन की 'सुन की' पाठ की लि०क० ने भूल से दो बार लिखा है । ३७-ग० विष्णुदास ३८-ग० घ० एकमनि । ३९-ग० यों बोनी । ४०-ख० दासी ग० अपनी दास ।

५१ ४। प्राप्य समस्त प्रतिमों के आधार पर ब्रजभाषा के प्रथम महात् कवि की श्रीकृष्ण रश्मिणी विवाह सम्बन्धी प्रथम ब्रजभाषा-कृति का विधिवत् सम्पादन अपेक्षित है ।

१- प्रति परिचय—

ख० - हिंदी खाल टिपोट का० ना० प्र० समा, १९१२ ई० की प्रति ।

ग० - राजस्वान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति ।

घ० - श्रीकृष्णानंद व्यास द्वारा सञ्चित, सगीत रश्मिणी मगल का पद ।

विष्णुनाम ने "रुक्मिणी मंगल" और स्नहनीता के रूप में भ्रमरगीत काय लेखन की परम्परा प्रारम्भ की जिसका पालन सूरदास, तुलसीदास, नानादास, पृथ्वीराज, नरहरिदास, और रघुराजसिंह आदि अनेक कवियों ने किया।

(२) महाकवि सूरदास कृत रुक्मिणी-मंगल

५२ ४। महाकवि सूरदास ने अपने सूरसागर ग्रंथ में कृष्ण रुक्मिणी विवाह प्रसंग का समावेश "रुक्मिणी मंगल" नाम तर्गत किया है।

५३ ४। सूरदास जी ने मंगल के प्रारम्भ में मंगलाचरण के अन्तर्गत लिखा है

अथ रुक्मिणी मंगल, राग विलावल
हरि हरि हरि हरि सुमरन करा हरि चरणारविंद उर धरो।
हरि सुमरन जब रुक्मिन बरो। हरि किरपा कर ताही तब बरो।

५४ ४। सूरदास जी ने मंगल के प्रारम्भ में ही इस प्रकार कथा के फल का संकेत दे दिया है। तदुपरांत इसी पद में कथा का प्रारम्भिक भाग भी दे दिया है, जिसमें शिशुपाल द्वारा बरात जोड़ कर घाने तक का वर्णन है।^१

५५ ४। राग सारंग के अन्तर्गत रुक्मिणी की ओर से ब्राह्मण के द्वारा पाती भेजने का वर्णन है।^२

५६ ४। श्रीमद्भागवत में रुक्मिणी का सन्दर्भ मौखिक है। सूरदास जी ने रुक्मिणी द्वारा पत्रिका भेजने का चित्रण किया है, साथ ही मौखिक संदेश भी मन्ना गया है—

पाती दीजी स्याम सुजाने।
मुख सन्देश सुनाय दीजिओ विनय सुनो हरो काने ॥
बाचत वेग आप जदुनायक धीर धरो मेरे प्राने।
समझत नाहि दीन दुख कोऊ सिंह भक्ष शृगाल के पाने ॥
मन मर्कत कू देत मूढ मन मृगमद रज म माने ॥
कब लग दोस सहू दरशन विन होब मीन विन पाने ॥
सूरदास प्रभु अघर सुधाधर हरपि दोश्री जी दाने ॥^३

५७ ४। भागे सूरदास जी ने रागविलावल (३ पद) और राग जैत श्री के आठ पदों

१-सूरसागर, अध्याय ५२, पद सं० १।

२-वही, पद संख्या २।

३-वही, पद संख्या ३ ॥

तब पत्रिका प्रमग की हा बनाया है । इस प्रमग म ताह पत्र पर सन्म लिखार भी भेजा गया है । लिखित सन्म का प्राप्ति के बिना वर का माता नियमित नहीं माना जाता इनलिए गूरनाम जो ने यह योजना की है ।^१

५८ ४ । गूरनामजी ने श्रीकृष्ण क प्रति इविमण। के प्रम का विवरण करने हुए इविमणी से बटलाया है कि उत्तम पात्र हा ता यह श्रीकृष्ण म मित्रने के लिए उठ जाने । उसने यन्त्रु ने श्रीकृष्ण से धैर किया इस्तिए वह बन्धु क पात्र नहीं ठहरना चाहता । इविमणी दुख क कारण विष सा सेना चाहती है अथवा परती फे ता उसने समा जाता चाहती है—

राग सारग

सखी री पर हों तो उड़ि जाऊ ।
जहा व बसत नन्द के डोटा दू ड लेऊ सोई गाऊ ॥
कीजै खेद भइ जो ऐसी कहो तो विष फल खाऊ ।
हिरदै मरे दोऊ जरत है गहरी म गी ठाऊ ॥
बधु वैर कियो जदुपति सो ठाडी हू न ठराऊ ।
सूरदास प्रभु असुर विवाहे घरनी फाट समाऊ ॥^२

३६ ४ । श्रीकृष्ण इविमणी का स देश सुनते ही ब्राह्मण की रूप म साय लेकर चल पडते हैं । श्रीकृष्ण बार बार भाला में धामू भरकर इविमणी क विषय म पूछने हैं और बलदेव से सुरत सेना लेकर पहु चने के लिए कहते हैं ।^३

६० ४ । श्रीकृष्ण कुल्हनपुर पहु चते हैं तो इविमणी सहित नगर के सभी नर-नारी बहुत प्रसन्न होत हैं । राजा भीष्मक भी श्रीकृष्ण का स्वागत-सत्कार करत हैं ।^४

६१ ४ । इविमणी ने धूप दीप और पूजा की सामग्री लेकर दबी के मंदिर में पहुंच, पूजा कर देवी से कृष्ण की वर रूप में प्राप्ति के लिए प्रार्थना की । पूजा कर इविमणी बाहर आयी तो उसकी सुन्दरता देखकर समस्त सुभट माहित हो गए और उनके धनुष नीचे गिर गए । इसी समय कृष्ण ने आकर इविमणी को अपने रूप में बेठा लिया । इस विषय में कवि ने लिखा है—

शिव की पूजा कवरि आय, कर गहि हरि तब लई उठाय ।
हरि भुज भरि भेटि भली मान, सकल सभा देखइ पछतात ।
कौस मारे कौउ गए जु भाज, शिशुपाल कवर मुखमिसै लाज ।

६२ ४ । युद्ध में गिगुगान और जरासन्ध सहित सभी राजा हार गये । कृष्ण और बलदेव के सामने उनकी एक न चली । इन्म सडने के लिए कृष्ण को और चना, माती पतग

१- पद सख्या ८ ।

२- पद सख्या ६ ।

३- पद सख्या ११ ।

४- पद सख्या १२, १३ ।

दासक व पाय जा रहा है। श्राद्धपूजा स्वयं लेकर उसको मारने लगे तो रविमणी ने क्षमापत्र क लिए विनय की। स्वयं ने भी श्राद्धपूजा की विनती की। श्राद्धपूजा ने उसको क्षमा पत्र दिया। स्वयं लज्जा के कारण अपने नगर में नहीं गया और वन में रहने लगा। राजा भालम ने आकर स्वयं को उस स्थान का राज्य दे दिया। श्राद्धपूजा द्वारिका चला आया।^१

६३ ४। विजेता श्राद्धपूजा को रविमणी सहित भ्रान्त हुआ दक्षिण द्वारिकावासी बहुत प्रसन्न हुए। घर घर बत्तनवार और स्वयंकरलगा सजाए गए, चौक पूरे गए और बदला स्तम्भ बड़े किए गए। सारे नगर में उत्साह का वातावरण छा गया।^२

६४ ४। तदुपरांत श्राद्धपूजा रविमणी क विवाह का वरण है। श्राद्धपूजा रविमणी श्राद्धपूजा कर विवाह मण्डप में प्रवेश करते हैं, रीति पूर्वक विवाह होता है और ब्राह्मणों का दान दिया जाता है। रविमणी मंगल क अंत में वद्वि न लिखा है कि विवाह क प्रवसर पर दी जाने वाली 'गार' श्राद्धपूजा का वधा कह कर दी जाय—

राग सोरठ-

तोहि गार कहा कहि के दीजिए ।
 ५। जगत काको नाम लीजै सान गीत बिन जान ही ॥
 बिन रूप बिन अनुहार औराह कयो बन्धानही ।
 जब सुख रही तहा सोय पायो बिन सुने कहा कीजिए ॥
 कल जाउ जादापति विहारे गार का कहि दीजिए ।
 तरो माय सकल जग खोयो सो को जो मिलके न विगोयो ।

६५ ४। मूरगाणर क श्रम स्वयं के ५५ वें अध्याय में राग मारु क अंतगत प्रथम जन्म का वरण है। इसी पद में असुर द्वारा प्रथम जन्म का उठा न जान समुद्र में डाल दान और मत्स्यों क निानन प्रादि का वरण है—

राग मारु

प्रथम जन्म पुन घडी हुआ हो काम औतार लियो ।
 विधिवत यह बात जग तात समूल रहै रूप दोऊ ।
 पृथ्वी पै असुर सभ्रम भयो अति प्रवल पुन समुद्र ते डार दीनो ।
 मच्छ लियो मक्ष सो मच्छ मच्छो कहो असुर पति कू सोल बहुत कोना ,
 मच्छ के उदर तें बाल परगट भयो वहीरि असुर कामवता हाय दीनो ।
 कहो यह काम परनाम तेरो पुरप बचन नारद सुमिर श्रुत सू लोना ।

भयो तव लक्षण जब नारि तामू कस्यो श्रमनी मात हरि तात तेरो ।
नाम मम रित विदित पात जानन जगत काम तो नाम तू पुरय मैरो ।
अमुर कुमार पर दार देह विद्या में तुम्है बतार्ई ।
बिना बिद्या उम जोन सब नहि भेद की बात सब कहि मुनार्ई ।
प्रद्युम्न सकल विद्या समझ नारि मू अमुर मू जुद्ध मागो प्रचारी ।
बाढ तरवार लिया भार तामू तुरत गुरत आकाश जघुनि उचारी ।
वहरि आकाश मग जय हागवती मात मग अनि ही बढायो ।
भयो जदुवग अति रहस मगो जम लियो मूरजत मंगलाचार गायो ।

६६ ४ । मूरदास जा न श्रीमद्भागवत क दशम स्कंध क ६० वें अध्याय क अनुसार रविमणी का भक्ति पराधा का वर्णन भी किया है ।

६७ ४ । इस प्रकार पात होना है कि मूरसागर क अतगत 'रविमणी मंगल' एक स्वतंत्र रचना की भांति महारूपण है । श्रीमद्भागवत रचना का मूनाधार है किंतु कवि का मौलिक उद्भावनाएं भी कम नहीं है । यथा रविमणी का सदाग मौखिक क साथ ही पत्रिका रूप में होना, श्रीकृष्ण का लम्बे पत्र प्रेषित करना रविमणी का उद्भव श्रीकृष्ण क समीप पहुँचने की इच्छा व्यक्त करना और श्रीकृष्ण को विवाह क अवसर पर 'गार' मुनाने हुए लौकिक विधि का निर्वाह करना, आदि ।

महाकवि मूरदास ने विभिन्न शास्त्रीय रागा में गेय रविमणी मंगल की रचना कर विष्णुदास द्वारा प्रारम्भ का गई काव्य-परम्परा को आगे बढ़ाया है ।

(३) नन्ददास कृत रविमणी मंगल

६८ ४ । कविवर नन्ददास ने श्रीमद्भागवत के आधार पर १३३ दोहा छन्दों में 'रविमणी मंगल' की रचना की है । प्रारम्भ में मंगलाचरण के अतगत क्रमग गुरु स्तुति और श्रीकृष्ण का स्मरण किया गया है ।*

६९ ४ । रविमणी मंगल का अन्त नाम कवि ने 'रविमणी हरन दिया है और इसरी महिमा इस प्रकार बतलाई है—

रविमणी हरन पुनीत, चित्त दै सुन मुनार्दै ।
जाहि मिटे जम पास बास हरि के पद पावै ॥२

७० ४ । कवि न रविम द्वारा 'शिशुपालहि को दैत' की बात सुनने पर रविमणी की अवस्था का चित्रण प्रारम्भ में किया है । रविमणी इस आवात को न तो सहन

कर सकता है और न किसी से इस विषय में कह सकती है। कवि न रुक्मिणी की इस प्रवस्था का विस्तृत और मार्मिक चित्रण किया है ।^१

७१ ४। रुक्मिणी ने अग्य कोई उपाय न देखकर श्रीकृष्ण के नाम पत्र लिखा ।^२ रुक्मिणी ने ब्राह्मण का बुलाकर अपनी बात समझा कर कही और पत्रिका कृष्ण के पास भेजी ।^३ ब्राह्मण रुक्मिणी की दुःखित प्रवस्था देखकर और श्रीकृष्ण के चरणों से प्रीति रखता हुआ पवन वेग से द्वाराका पहुँचा । कवि ने प्रसंगानुसार द्वाराका का रमणीय चित्र प्रस्तुत किया है ।^४

७२ ४। विप्र न बिना किसी रोक टोक के कृष्ण के महनाम प्रवण किया । कृष्ण न उठ कर ब्राह्मण की पग बन्दना की और ब्राह्मण के पैर धोय । विप्र को स्नान करवा कर उत्तम वस्त्र पहिनाये ।^५ कृष्ण न मानपूर्वक स्नान पान करवाकर ब्राह्मण से पूछा कि वह कहाँ से आया है ? तब ब्राह्मण न श्रीकृष्ण को वस्त्र के किनारे से खोलकर पत्र पिया और उन्हाने पढ़ना प्रारम्भ किया—

श्री हरि हियो सिरावत लावत लै लै छानी ।
लिखी विरह के हाथ सुपाती अजहूँ तानी ॥
हिय लगाय मचु पाय, बहुरि द्विजवर कौ दीनी ।
रुक्मिनि अमुवन भोनी पुनि हरि अमुवन भोना ॥

७३ ४। श्रीकृष्ण अपनी अध्रुघारा के कारण रुक्मिणी का पत्र नहीं पढ़ सक इसलिए ब्राह्मण ही पत्र पढ़ने लगा । रुक्मिणी ने प्रारम्भ में अपनी परिचय देकर कृष्ण से निवेदन किया कि वे रुक्मिणी का उद्धार करें ।^७

७४ ४। रुक्मिणी ने आगे लिखा कि अन्तर्गत् गिमुपान के साथ उनका विवाह करना चाहना है तथा उसके माता पिता भी विवाह हो गये हैं । यदुवग में उ पत्र कृष्ण रूपी इस । आप अपने बन्धु का विचार करें और गिमुपान रूपी कोवे को नष्ट करें । अन्त में रुक्मिणी ने अपने पत्र में लिखा—

जो नगधर, नन्दलाल मोहि नहि करिहो दामी ।
तो पावक पर जरिहो बरिहो तन तिनका सी ।
जरि मरि घरि घरि नेह न पैहो सुन्दर हरि बर ।
पै यह कबहु न होय म्याल सिमूपाल न्युए कर ॥^८

१-छन्द स० ११, १२ ।

२-छन्द स० २४ ।

३-छन्द स० २५-२६ ।

४-छन्द स० २७-३६ ।

५-छन्द स० ५० ।

६-छन्द स० ५४-५५ ।

७-छन्द स० ५६-६१ ।

८- छन्द स० ६६-७० ।

७५ ४। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का पत्र सुनकर अपना हाता व नगाया और रुक्म पर प्रीणित होने हुए सारथि में रख मगाया।^१ श्रीकृष्ण पवन व धनान गति धारण कर कुन्त पर आये।^२ यहाँ दुक्लिन रुक्मिणी घर आगन म घूमता हुई इस प्रकार तडप रहा वी जैसे घोडे जन मे सू- की गरमी म मछना तडपती है।^३ रुक्मिणी अट्टालिका पर बार बार चल्ती हुई भरोत्रे स भाकती है, माना तृणित चकारी चंद्र व उदय हुए बिना आतुर होती है।^४

७६ ४। ब्राह्मण चलना हुआ अंत पुर मे पहुँचा। रुक्मिणी न उसने प्रसन्न मुख की तबकर धोज धारण किया। रुक्मिणी ब्राह्मण मे पत्र नहा सफती है और विचार करती है कि ब्राह्मण अमृत सीचेगा अथवा विष म शरीर जलावगा।^५ ब्राह्मण न जब हरि ने अंत की सूचना दी तब माना रुक्मिणी के आण लट पाये। रुक्मिणी ब्राह्मण के परा पड़ी। कवि इस विषय म कर्ता है—

‘दिग्धी चहे कतु द्विजहि, नही देया निहि लायन ।
तब उठि पायन परी, भरी आन द मटा इक ॥
सुर भर जाको सेवत, सेवतहू नहि लहिये ।
सौ लक्ष्मी जिहि पाय परत, उनताकी का कहिये ॥’

७७ ४। नगर व लोगो न श्रीकृष्ण का आया हुआ सुनकर उनके दान क्रिये। श्रीकृष्ण व गील और सौंदर्य म लोग बहुत प्रभावित हुए और रुक्मिणी के घर रूप म श्रीकृष्ण को हा योग्य समझने लगे। लाग न रुक्मी, सिंगुपाल और जरासंध की निन्दा की।

७८ ४। रुक्मिणी नगर व बाहर अश्विक्ता दवी की अर्चना हेतु चली। रुक्मिणी न विधिवत देवा का अर्चना करना और प्रायश्चित्त का। रुक्मिणी तारो और स सुभट सैनिको द्वारा सुरा निन्दा।^६

७९ ४। अश्विक्ता न भी प्रम न होकर रुक्मिणी स कहा कि वह अभी गोविन्द द का प्राप्त किया। रुक्मिणी अनारथ प्राप्त कर प्रम उतापूर्वक मंदिर मे निवली। रुक्मिणी ने बार बार मृत म घुषट पट गाना ता मुह की गामा इस प्रकार प्रवृट हुई जैसे आकाश मे चंद्र उदित हुआ हो। रुक्मिणी क कटाक्षपूर्वी सारा म घायन हाकर राजा गिर पडे। श्रीकृष्ण न इसा समय समाप आकर रुक्मिणी का हरण किया। राजा लोग टक्के लगा कर दलते रह गये माना उह न ‘दगमूरि’ काई हा।^७ कृष्ण रुक्मिणी को अपन रख में बठा कर म चन।^८

- | | |
|----------------|--------------------|
| १-दृ० म० ७१ । | २-दृ० म० ७५ । |
| ३-दृ० म० ७३ । | ४-दृ० म० ७७ । |
| ५-दृ० म० ८१ । | ५-दृ० म० ८१ । |
| ६-दृ० म० ८५ । | ६-दृ० म० १०३-१०४ । |
| ७-दृ० म० ११७ । | ७-दृ० म० ११६-११९ । |

८० ४। जराम ३ जैम राजा कृष्ण व पीछे दोड़ जम पागल कुत्ते सिंह व पाछ गीदत हैं। गजुर्षों का भारी दन दलकर बलव न इम प्रकार युद्ध किया जैसे मस्त हाथी तानाब में प्रवेश कर कमल दन का रों डालता है। जगसन्ध और गिगुपाल का मान मर्दन हान पर स्वमी कृष्ण स लडन व लिए आगे धटा। कृष्ण न उसका परास्त कर लिया और मस्तक सू ड कर उस छाटा। १ इस प्रकार सब राजाओं को जीत कर कृष्ण रुक्मिणी को ले आये और उन्नत विधिवत्क विवाह किया। इस विषय में कवि ने लिखा है—

इहि विधि सब नृप जीति, हरी रुक्मिनि लै आये ।
 विधिवत् कियो विवाह, तिहू पुर मगल गाये ।
 जो यह मगल गाय चित दे सुनै सुनावै ।
 सो सब मगल पावै, हरि रुक्मिनि मन भावै ॥
 हरि रुक्मिनि मन भावै, सा सबके मन भाव ॥
 न ददास अपने प्रभु को, नित मगल गावै ॥ ८

८१ ४। कविवर नन्ददास न अपनी रचना में विष्णुनाम और मूरदास का पद पढति व स्थान पर दाहा छ दा का प्रयोग कर नवानता उपस्थित की है। कवि १ रचना का नाम 'रुक्मिणी मगल व साथ ही रुक्मिणी हदन' भी दिया है। ३ द्वारका-वर्णन कवि की कला का एक उत्तम उदाहरण है। ४ श्री कृष्ण की प्रतीक्षा में रुक्मिणी की विवसता का चित्रण भी मार्मिक हुआ है। ५ नन्ददास न रचना व अंत में श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी के "विधिवत् कियो विवाह" का भी स्पष्ट निर्देश किया है। ६

(४) नरहरि महापात्र कृत रुक्मिणी-मगल

८२ ४। नरहरि का जन्म गांव पलरोली (राय बरेला) में सन् १५०५ ई० में माना जाता है। इनका सम्पर्क बादशाह हुमायूँ, सोरगाँ, सजीमगाह, भकवर धार रीवा नरैय रामचन्द्र आदि कई शासकों से रहा था। सम्राट भकवर न इनका विनाय सम्मान किया और इन्हें महापात्र की उपाधि प्रदान की। कहते हैं कि नरहरि व अनुरोध से ही भकवर न गाँव बं कर लिया था। ७ नरहरि की मृत्यु सन् १६१० ई० में मानी जाती है।

१ छंद स० १३० ।

२ छंद सत्या १३१-१३३ ।

३ छंद स० २ ।

४ छंद स० ३१ २० ।

५ छंद स० ७६-७७ ।

६ छंद स० १३१ ।

७ हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास भा० रामकुमार वर्मा पृ० ६०१ ।

८३ ४। भरहरि महापात्र वृत्त रुक्मिणी — 'गण' और 'मन' शब्द 'घ' प्रबिद्ध हैं। 'इतकी 'सत्य नीति' और 'कवित्त संग्रह' नामक रचनाओं का बड़ा ज्ञानी है। इन रचनाओं के नामों में जाना जाता है कि ये 'भरहरि' के शब्द हैं। बड़ा शब्दज्ञ है।

८४ ४। रुक्मिणी मंगल के प्रारम्भ में गणवति, गौरा और सरस्वती का बन्धन है। सुन्दरानन्द कुन्दपुर में राजा भीष्मराय द्वारा सारिबार बैठकर रुक्मिणी के विवाह के विषय में विचार करने का बखाना है। स्वयंवा श्रोत्रिणी की नि । करता हुआ तैय्य-वग में जयपाल की लगाव-वग भेजता है।

८५ ४। शिशुपाल मंगल राजाघा और मन्त्रिकों सहित विवाह के लिये कुन्दपुर पहुँचता है तो रुक्मिणी बहुत दुखी हो जाती है और श्री कृष्ण के पास शरण भ्रमती है —

बैठि एकांतहि रुकुमिनी विप्र बोलाऐउ ।
दवन मान निहोर साशु बुलाऐउ ॥
जदुपति कहकर मुदरी पाती दी हेउ ।
सजल नऐन पगु लागि सो विनती की-हेउ ॥

८६ ४। विप्र रुक्मिणी की पत्रिका लेकर कृष्ण के पास पहुँच जाता है और कृष्ण कुन्दपुर के लिये प्रस्थान करते हैं। विप्र लौट कर सकेत में ही रुक्मिणी को धानीर्वा देता है। इस प्रसंग में रुक्मिणी की अवस्था का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है —

हिय विचारे मुख निहारे सकुचि मन ही म रहे ।
दुख सुख मिलन विप्रोग अब दुहु विप्र मोसो का कहे ।
दिज कहा सोन बुलाय सुन्दर पाइ पति शुख पाइया ।
जनु रग पाऐउ रतन रुकुमनी प्रगट जदुपति आइया ।

८७ ४। श्री कृष्ण के कुन्दपुर में प्रागमन पर राजा भीष्मक और नागरिकों ने उनका स्वागत किया। कृष्ण ने बहुत सुख माना और जरासंध शिशुपाल का मत्त समझा—

आएउ भीष्म निकट सो माथ नवाबउ ॥
रहेउ दौड कर जोरि चरन चित दी-हेउ ।
मोर जम हरि आहु कीतारथ की-हेउ ।
रुकुमहि दुष्य न लाइ सो हरि परितोखउ ।
कहेउ भरम सब भेद गोवि-दहि तोखेउ ।
हरि पुनि की-ह सतोख बहुत सुख मानेउ ।
जरासंध शिशुपाल काल वश जानेउ ।

८८ ४। श्रीकृष्ण की प्राया हुआ जानकर स्वमेया ने सनिका का तैयार रहने का आज्ञा दी और गौरी का मण्डप बेर लिया। स्विमली न गौरी-पूजन क समय घर रूप मे कृष्ण को प्राप्त करने का प्रार्थना की ता गौरी ने प्रम न हाकर स्विमली को उसकी मनो-कामना पूरी होने का वरदान दिया। गौरी मण्डन में स्विमली कृष्ण की प्रतीक्षा मे धारे धारे बत रही थी तब कृष्ण ने आकर उसकी बाह पकड़ी और उसको रथ में बैठा लिया। इस समय का वणन कवि ने इस प्रकार किया है —

पायो जो सोभ सतोख मन महा अतिहि बस देखहि खरो ।
जनु जुय जबुक मध्य नरहरि सिघ आपन बलि हरी ।
शशि दूरी तजे से तिमिर पसरै अ धु घुघर सुभई ।
लै चाल रथहि चढाइ रुकमिनो एक ऐकहि बूभई ॥

८९ ४। स्वमेया ने कृष्ण का सनिका सहित पीछा किया तब जरास थ ने उसका समझाया किन्तु वह नही माना। स्विमली युद्ध की आज्ञा का से विचलित हो गई। कृष्ण ने नाग पाश से स्वमेया को बाध लिया। कृष्ण स्वमेया का मस्तक काटने लग तब स्विमली ने कृष्ण के पैरो मे मस्तक रखत हुए क्षमा की प्रार्थना की। श्रीकृष्ण ने दया कर उसकी प्राणी मूछी और मस्तक का मुण्डन कर उन छोड दिया।

९० ४। नरहरि ने कृष्ण स्विमली विवाह का गाचर्व विवाह माना है —

हरि रुकमिनि ले राग दुवारिका आएउ ।
कीहो गघन व्याह शुजस जग छाएउ ।

९१ ४। यह रचना दोहा और चौपाई छंदो मे लिखित है। लिपिकार क दाव स मनेक रचना में दरय 'स' के स्थान पर तानव्य 'श' का प्रयोग हुआ है। कवि ने क्या क मारि रसंगा की सवया उपमा की है। इस विषय में डा० मान-दप्रकाश जी दीक्षित का मत उल्लेखनीय है—“नरहरि का स्विमली मगन विशिक्त रूप से एक साक्षिप्त रचना है, जिसम घटनाओं का उल्लेख मात्र है। उनका भावात्मक सौन्दर्योद्घाटन की मनोरम उष्टा नही के बराबर ही है।” कवि की कतिपय काव्यगत विषयताए भी हैं। यथा—

१ कवि ने दोहा चौपाई छंदो का प्रयोग कर एक नवीनता उपस्थित का है।

२ नरहरिस एक दरबारी कवि थे इसलिये दरबारी परम्परा का उन्हें पूर्ण अनुभव था। तन्नुसार प्रस्तुत काव्य के समस्त वर्गन् राजदरबारी मर्यादों के सर्वथा अनुसृत है।

३ कवि ने श्री कृष्ण स्विमली क विवाह को 'गघन व्याह' बनाया है।

१ - वेत्ति कितन रुकमली रो विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर सम्पादकीय मुमुक्षा
पृ० १४८।

(५) रघुराजसिंह कृत रुक्मिणी-परिणय

६२ ४। रघुराजसिंह राधा का महाराजा थे। पौर इच्छा जन्म पाय १८२३ ई० तथा मृत्यु काय १८७६ ई० है। रघुराजसिंह का पिता महाराजा विद्यनाथ सिंह भा. कवि थे। रघुराजसिंह की रचनाओं का नाम इन प्रकार है—

सुन्दर गीत, (सन् १८४७ ई०), पविता (१८५० ई०), रुक्मिणी-परिणय (१८४६ ई०) आनन्दाम्बुनिधि (१८४३ ई०) आनन्दभागवत माहात्म्य (१८४४ ई०), भक्तिविलास (१८६६ ई०) रहस्य पञ्चाध्याया, भक्तमान रामम्बयवर (१८५६ ई०), यदुराज विलास (१८७४ ई०) दिनय माना, राम रसिकावली, (इसका रचनारम्भ १८४३ ई० में हुआ था किन्तु पूरा १८५६ ई० में हुई), गणनाटक, चित्रकूट महात्म्य, भृगुशासक, पदावली, रघुराज विलास दिनय प्रकाश, रामभूषणाम रघुपति शाक गणनाटक, धर्मविलास, सम्भुशासक, राजरजन हनुमान चरित्र, भ्रमर-गीत परम प्रबंध और जगन्नाथशासक।

६३ ४। उक्त रचनाओं में रामम्बयवर, राम भूषणाम और रुक्मिणी-परिणय प्रमुख हैं। रुक्मिणी परिणय का रचना काय भाद्रपद शुक्ल सप्तमी शुक्रवार दि० म० १६०७ है—

ओनइस से अरु सात, भाद्रपद सित गुरु सप्तमी ।
रच्यो अथ अथदात रुक्मिणी परिणय नाम जहि ॥

६४ ४। परिणय नाम का रचना काय भाद्रपद शुक्ल सप्तमी शुक्रवार दि० म० १६०७ है—

प्रथम सर्ग-प्रथम सर्ग में महाशय्या के अन्तर्गत बैठा, गणपति, सरस्वती गुरुदेव और गुरु का वन्दन है। इसी सर्ग में कवि ने अपना प्रसाम्य और गुरु कृपा का महत्त्व बताया है—

मम गति नही अथन रचन पै, कछु मति अनुसार ।
वरणहु रुक्मिणी परिणयो लहि गुरु कृपा अपार ।

कृष्ण का मथुरा भागमन तक की कथा प्रथम सर्ग में वर्णित है।

द्वितीय सर्ग द्वितीय सर्ग में कालवदन का मथुरा पर आक्रमण, मुषकु का कथा, जगन्नाथ का भागे कृष्ण का रणदांड होना और कृष्ण वनद्वय का द्वारिका प्रस्थान वर्णित है।

तृतीय सर्ग इसमें द्वारिका का विस्तृत वर्णन है।

चतुर्थ सर्ग—बलराम और रवती का विवाह वर्णन।

पंचम सर्ग—पंचम सर्ग से काव्य की मूल कथा प्रारम्भ होती है। यदुकुल के पुरो हन गर्ग—
मुनि कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह का प्रस्ताव करने है। दामया प्रस्ताव का विरोध
करता है। इस सर्ग में दामया की क्रूरता का वर्णन किया गया है।

षष्ठ सर्ग—इस सर्ग में नारद जी रुक्मिणी के हृदय में कृष्ण का प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिये
कृष्ण की वीरता गुण गौण और गौरीरिक सौन्दर्य का वर्णन करते हैं।

सप्तम सर्ग—सप्तम सर्ग में दामया शिशुपाल का रुक्मिणी के लिये जन्म पत्रिका भेजना है।
शिशुपाल राजाघ्रा सहित सेना सजा कर कुन्तिपुर पहुँचना है। रुक्मिणी विप्र के
द्वारा भेजा पत्र कृष्ण के पास द्वारा भेजती है।

अष्टम सर्ग—ब्राह्मण का द्वारका पहुँचना। नारद भी इसी समय द्वारका पहुँचते हैं और
श्राकृष्ण के प्रागे रुक्मिणीका नक्षत्र गिख निरूपण करते हैं।

नवम सर्ग इस सर्ग के प्रसंगत विप्र द्वारा श्रीकृष्ण के दरवार में रुक्मिणी का पत्र पढ़ना और
कृष्ण द्वारा रथ में बैठ कर कुन्तिपुर पहुँचना और विप्र में रुक्मिणी के विस्तृत
समाचार प्राप्त करना प्राप्ति वर्णित है।

दशम सर्ग—इस सर्ग में बलराम का सेना सजा कर कुन्तिपुर पहुँचना, भीष्मक द्वारा कृष्ण-
बन्धुत्व का स्वागत करना, कृष्ण के दर्शन में प्रजा का मानसिक होना तथा कृष्ण
के प्रागमन की सूचना प्राप्त कर रुक्मिणी द्वारा विप्र की पत्र पढ़ना प्राप्ति का
वर्णन है।

एकादश सर्ग इस सर्ग में दामया का क्राधित होत दृग् शिशुपाल के गिरिवर में जाना शिशुपाल
के सम्पर्क की गर्वोत्थिता सनिक लैषारी, रुक्मिणी का अपनी सखियों, माता और
रक्षकों के साथ पत्र प्राप्त कर हुए अम्बिकालय जाना और कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का
हरण प्राप्ति प्रसंग वर्णित है।

द्वादश सर्ग—द्वादश सर्ग में बलराम और दशु सेनाघा का वर्णन तथा युद्ध का वर्णन है।

त्रयोदश सर्ग—इसमें राजाघ्रा के द्वन्द्व-युद्ध का वर्णन है।

चतुर्दश सर्ग—इस सर्ग में बलराम द्वारा शिशुपाल का परास्त कर भाषाण में पँवना बनाया
गया है।

संजय का - रास सर्ग में युद्ध के पदपार् युद्ध भूमि का बलान रामदा की क्रोध करी हुए कृष्ण को परास्त करने का प्रतिज्ञा करना। बलराम न सामना न कर भागे मार्ग में देखा तब पर पहुँच कर कृष्ण का धरना तथा श्री कृष्ण द्वारा रामदा का पराजित कर दण्ड देने का और बलराम द्वारा कृष्ण के समीप पहुँचने का वर्णन है।

योद्धा सर्ग-द्वारिका में कृष्ण रुक्मिणी के स्वागत की मायाजना और कृष्ण रुक्मिणी विवाह आदि का वर्णन है।

सप्तदा सर्ग-कृष्ण और बलदेव का राज-सभा में आगमन उपमेन द्वारा युद्ध-वर्णन, रुक्मिणी का शृंगार, संध्या के शान्त्य, रास क्रीडा और कृष्ण के अंतर्धान होने का वर्णन है।

अठारदा सर्ग-कृष्ण के अंतर्धान होने पर रुक्मिणी और मत्स्य का विफलता कृष्ण का पुनः प्रगट होना तथा राम क्रीडा और जलविहार आदि का वर्णन है।

एकोविंश सर्ग-इस सर्ग में रात्रि कृष्ण रुक्मिणी मिलन प्रभात पट अश्रु विहार आदि का वर्णन है।

विंश सर्ग-इस सर्ग में कृष्ण रुक्मिणी से विनोद वार्ता करते हुए रुक्मिणी की भक्ति परीक्षा करते हैं। रुक्मिणी मूर्छित होकर गिर पड़ती है तो कृष्ण उसका उपचार कर पुनः उसका अपने प्रेम से प्राप्ति करते हैं।

एवम् सर्ग-इस सर्ग में सध्यात्त भागवत कथा वर्णित है।

६५ ४। इस प्रकार परिणयकार ने रचना को महाकाव्य रूप देने का प्रयत्न किया है। रास क्रीडा जैसी नवीनताएँ भी परिणय में दृष्टिगोचर होती हैं। वीर रस की ओर कवि का अधिक झुकाव है जो अनेक सर्गों में युद्ध वर्णन किये गये हैं। रास जनक्रीडा और कृष्ण रुक्मिणी मिलन में शृंगार भी है। अथ रस गीता रूप में है। परिणय के कतिपय उदाहरण रस प्रकार हैं। —

रुक्मिणी की विकल्पता

अनि दास्यति मोचति आमुन को गुणी व्याहृति जै शिशुपालहि को।
क्षण तो रही बावरी सीतह ब्रान, बिचारि दिया पुनि लालहि को ॥
त। म्नेरु छयो मुख सूखि गयो को कइ रुक्मिणी के हालहि को।
मरिहो विप सो बरिहो शिखि को बरि हो बिम्बे बीम गुपालहि को ॥

रुक्मिणी का पत्र लेखन

स्वजन नयनन रजन काजर प्रेम के आसुन धी मसि वीनी ।
 कोमल आपुरी की कलमें करि काग' ध वन का करि लीनी ॥
 नेह ते सान लिखे बर आसर रुक्मिणी केशव के रस भोनी ।
 प्रीति भरी बतिया पतिया लिखि छिप्रहि विप्रहि क वर दनी ॥

रुक्मिणी का नख गिल निरूपण

के मृगमा के सरोवर को विक्रमो अरवि द अनूपम भावे ।
 रावरे आनन देखिबे को विधो आरसी आन'द की छवि छावै ॥
 वेगव की तुव नयन चकोर का रूप मुवानिधि इ दू मुहावै ।
 भाखै मुनि रघुराज विधो मुख रुक्मिणी सिधु बढावै ॥

कंधो मुवा के सरावर के डिग मौहैं मृगाल उभय अति भाये ।
 कंधो मयूख मगूरन के पान को पलग पीत द्वैअरध घाये ॥
 भाखै मुनि रघुराज किधौ युग हेम के दण्ड अण्णड सुहाये ।
 कंधो तसै सुवमा की लता किधौ रुक्मिणी के भुज द्वै छवि छाये ॥

पुद्ग-वर्षा-रूपक

कार नाग मघ राजें दु दुभी अवाज गाजें वाजे वेश बासूी विराजें मोर शेर है
 चमकें कृपाण तेई दामिनी दमकै दौरि बाद वृ'द वृ'दन की भई कृष्टि घोर है ॥
 फहरें पताकै व्योम उहरें ते बकपाति मारी पानो घायल त चातुक वा ठोर है ।
 इद्र चाप चाप भिल्ली भिलिम भनकति है,

फैली रणपावस की शोभा चहु अर है ।

बसंत बरण

हरिना हरिनी हरण्यी हरुये हारन मे जहरे ।
 छवि छाव छपाकर की मु'टा छपा मै क्षिति छोड़ लुप छहरे ।
 पिक्वाणी पिसुप सी पूरति कान सू मानिन के मन मान हरे ।
 सू संयोगिनी को है बसंत सूधा वै वियोगी विचारिन को जहरे ॥'

६६ ४। इस प्रकार ज्ञात होता है कि परिणामकार वस्तु वर्णन में परम कुशल है ।
 कवि की अलंकार निरूपण में भी पूरा सफलता मिली है । पुद्ग वर्णन में अवश्य ही त पा

१ - धोपुन ३० धान'दप्रकाश जो दीक्षित, वेति क्रिस्तन रुक्मिणी री सम्पादकीय मूनिषा
 से उद्धृत ।

और देखा कि रूप में कुरानपाठी मुसलमानों का वर्णन कर कवि काण दाप में वर्णित नहीं रह सता है। कवि के प्रत्यय में तत्कालीन अनेक कवियों की भांति मुस्लिम शासक कृषी राक्षसी से कविमणी रूपी भारत लक्ष्मी के उद्धार की भावना रही है। अपनी रचना को महा वाक्य रूप प्रदान करने का प्रयत्न करना कवि की प्रधान विशेषता है।

(६) श्रीकृष्णानन्द व्यास कृत 'सगीत रविमणी मंगल'

६७ ४। श्रीकृष्णानन्द व्यास लिखित 'सगीत रविमणी मंगल' अनेक राग रागिणियों में गेय है। प्रस्तुत 'मंगल' में श्रीकृष्णानन्द ने स्वरचित पदा के प्रतिरिक्त अपने समय में प्रचलित पद्य, विष्णुशास और उमादत्त क पदा को कथा क्रम के अनुसार "रागकल्पद्रुम" के अन्तर्गत रुचलित किया है। प्रारम्भ इस प्रकार है—

श्री गणेशायनम । श्रीरविमणीवल्लभायनम । अथ श्रीकृष्णानन्द व्यास देव रागसागरोद्भव सगातराग कल्पद्रुमे श्रीकृष्ण जी श्रीरविमणीजी को विवाह मंगल अनेक राग रागिणी संयुक्त प्रारम्भ ।

६८ ४। श्रीरविमणी नारदजी के पैरा लगी तब नारद जी ने वरदान दिया कि श्रीकृष्ण वर मिलें। नारद मुनिने भीष्मक से भी कहा—

नारद मुनि भीष्म से कहत है सुन कुंजपुर के राज ।
श्रीकृष्ण देव बाको नाम भणीजे जाक बलभद्र हे भाई ।
द्वारामती बाको धाम कहोजे अई लोकनाथ जादोराइ ।
बनुदय देवकी नन्दन कह्यो परब्रह्म प्रगटाई ॥
भुव भार उतारन कारण प्रगटे श्रीकृष्णानन्दन सुखदाई ।^१

६९ ४। राजा भीष्मक और रानी परस्पर विचार करत हैं कि नारद के वचन का पालन करना चाहिए और रविमणी का विवाह श्रीकृष्ण से करना चाहिए।^२ नारदजी और मातापिता के वचन को सुनकर स्वयंसेवा काधित हुआ और कहने लगा मैं अपनी बहिन मावनधारी बनन वाल का कभी नहीं दूंगा। स्वयंसेवा कहता है राजकुमारी का विवाह किसी राजकुन से ही होना चाहिए। राजा भीष्मक अपने पुत्र को सममान का प्रयत्न करते हैं कि कृष्ण वास्तव में पूर्णब्रह्म परमात्मा का अवतार हैं।^३ स्वयंसेवा अपने पिता राजा भीष्मक के वचनो की उपेक्षा करना हुआ गिणुगान को सम-वत्रिका प्रपित करता है।^४ शिशुपाल ने

१ - प्रका० श्रीकृष्णानन्द व्यास आना कालगिज बडा बाजार कसकता वि० स० १६२ (१-६)।

२ - पृष्ठ सख्या ७।

३ - पृष्ठ सख्या ७।

४ - पृष्ठ सख्या ६।

५ - पृष्ठ सख्या १२।

मपानुना और क्रूर ग्रहा की चिंता न करत हुए रुक्मिणी स विवाह करना स्वीकार कर लिया ।^१ शिशुपाल क पास लगन-पत्रिका लेकर सूरज भट्ट पहु चता है । मन्त्री ने लगनपत्रिका देखी तो पात हुआ कि उसमें राजा भीष्मक का नाम नहीं है । सूरजभट्ट ने स्पष्टीकरण किया कि राजा भीष्मक का विचार कृष्ण के साथ है । रुक्मिणी का विवाह करने का है ।^२

१०० ४ । शिशुपाल न अनक देगा क सहयोगी राजाभा का बरात में सम्मिलित होने क लिए निमन्त्रण पत्र भेजे । शिशुपाल बरात मजा कर कुन्डपुर पहुँचा । रुक्मिणी की विफलता का वगन इस प्रकार है -

वचन पाती फटत छाती सुरत रुक्मिणि म गई ।
लेन माम उमास जलधर नैन मासू बहावई ॥
विधोग रुक्मिणी के भए उर उमग उमग भूमी भरी ।
प्राण कु दनपुर ही माही देह द्वारवा रही खरी ॥
कतिन प्रात की रित माघो रुक्मिणी कृष्ण से इतनी कही ।
कृष्णान द म मासू बहत है जाहे लागे सोइ लही ॥^३

१०१ ४ । कृष्ण न ब्राह्मण का विधिवक स्वागत सत्कार किया । उसको चन्दन की चौकी पर बैठाया और रत्नजटित थाल में रुचिकर अन्न परासे । कृष्ण भगवान ने ब्राह्मण की महिमा का बखान किया और उसको रथ में बैठाकर कुन्डपुर वा ओर चले । पीछे से बन्देव जी बरात मजा कर चले ।

१०२ ४ । शिशुपाल को उसकी भाभी कुन्डपुर नहा जान क लिए समझाती है और कहती है कि रुक्मिणी वास्तव में हरि की प्यारा है वह हरि क साथ ही विवाह करेगी और तुमको पड़ताना पड़ेगा ।^४ शिशुपाल बरात लेकर कुन्डपुर भा गया । शिशुपाल का कुन्डपुर में माना राजा भीष्मक और रुक्मिणी का अच्छा नहीं लगा । रुक्मिणी अपनी बहिन को समझाकर अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करता है कि तु उसकी सफलता नहा मिलती है । रुक्मिणी ने भरौखे स देखा कि एक ब्राह्मण जा रहा है । रुक्मिणी न ब्राह्मण का अपने पास बुलाया और पत्र दकर कृष्ण क पास भेजा ।^५

१०३ ४ । ब्राह्मण द्वारका क लिए रवाना हुआ कि तु माग में रात ज्ञान पर सा गया । प्रात जाल होने पर ब्राह्मण ने अपने आपको द्वारका में पाया । द्वारपाल से सूचना प्राप्त

१ - पृष्ठ संख्या १३ ।

३ - पृष्ठ संख्या २५ ।

५ - पृष्ठ संख्या २२ ।

२ - पृष्ठ संख्या १८ ।

४ - पृष्ठ संख्या १५-१६ ।

कर कृष्ण भगवान ने उसका अग्रम पास बुल या । ब्राह्मण ने कृष्ण को रविमणी की पत्रिका दी । कृष्ण ने पत्र को हृदय से लगा लिया और कुम्भपुर के लिये प्रस्थान किया ।

१०४ ८ । रविमणी अपनी सखी के आगे कृष्ण के प्रति प्रेम प्रकट करती हुई उनको प्रतीक्षा करती है—

परज तितारा । सखी प्रति वचन रकमनिजी ।

कहो रो सखी भय कैमो किजीये ।

लोक-लाज बुल कान सौ तो जीये ।

कृष्ण विरह मे भई हु बावरी हरि अपनी कृपा ते दरश दीजिये ॥

तन मन नैन म मोहिनी मूरतो नारद नवन सौ हृदय पतीजीये ।

कृष्णानन्द में मगन भई हु चरण शरण धनु अपने लीजिए ॥*

१०५ ४ । रविमणी अपने भाई हनुमैया से कहती है कि शिशुपाल का बुनावर उसन बुरा किया वह तो कृष्ण से ही विवाह करणी—

सोरठ ति० हकमनी वचन भैया प्रति ।

अरे बंधु मौसे बुरो रे करि तुम लाय ।

शिशुपाल चढाई कहा गई तेरो अकल बुरि ।

मुख मातो है मतबारी अपनी अकल करि ।

मेरे तो मन कृष्ण दिहारि वाके शरण परि ।

तन मन नन में मोहो मूरत बोही मोकू बरी ।

कृष्णानन्द मे रहू निशि बासर वाकी वाकी शरणशरण परो रे ।*

१०६ ८ । प्रस्तुत रविमणी मगन म एक पद पजाबी भाषा का भी उपलब्ध होता है जिसमें श्री कृष्ण का कुम्भपुर प्रागमन चित्रित किया है —

भूमोटी तितारा ।

हकमन दे राणी विरहण दा मेडा स्याम मिनी नी पाव ॥

झारका नगर मे प्राया लडका नद दी उसदे हगा मे ।

सोहै हतीमारामे आनन्द रलीया नीवे ॥

कुण्डल चमक चट भृकुटी मटन अन मुकटनक ।

मटने द्रग साहन कर पीन पर छनडा ननडावे ।

बाकडा तीखडा नाकडा मोहणा मोहना ।

गवम्दिलाद महरमसा बलधार मेणु भलीया नीवे ॥
 रेंदडीया उसदो यादडीया आखडीया उनदेशी सूर म देवड्या ।
 उस दे घोलडीया नधनडीया रतडीया पाछदयोया नोकिनडीया ।
 यादडीया मानु भादडीया सदने करेडीया जिदडीया कुरबानडीया ।
 मापलकर सानु घायल कीदा हुण लीता चित चोर सोडा यारानन धुली
 पानी शेर ।

नग मरी देख के कहने लगे यो हकोम ।
 स्याम देखने की चाह इस्क की बिमारी हेति ।
 सना लागी तिसकी तिसवी नार हेन जाय ग्रान मिलावे ॥
 स्याम को तिम देखे तिस जाया मणु प्यारा मिलिया लीवे ८० ॥^१

१०७ ४ । रुक्मिणा अत्रिणा पूजन क सार ही वर क रूप में कृष्ण की प्राप्ति
 प्राथना करती है । इस पत्र में द्वारिकाधीश कृष्ण के माय ही यगोनी माता और बलदेव
 देवर की कामना भी करती है ।^२

१०८ ४ । 'सगीत रुक्मिणा मगन म उमान्त कवि क पद भी हैं । एक पद मे
 ग और रुक्मिणी के विवाह की कामना की गई है-

अज्ञेवन्तिति

कु इनपुर के लोग लगाई देयन चने हैं वरात के ताइ ।
 प्रथम ही निरख चँध्य को भव के मन कु बहु सोचि नहि घाइ ।
 यह मरकट क सोहे सूरत रुक्मनि लक्ष्मी रूप बनाइ ।
 रुक्मनि लायक यह वर नाहि स्वमैया बहा करी हे सगाइ ।
 फिट फिट कहे प्रागे कु जावे पहाचै तहि जहा जादुराइ ।
 सु २२ १ म मनो हर मुरत देखेत हि सत्र गए हे लोभाइ ।
 ऐसो वर रुक्मनि हि जाइये धाता जु यह बनाइ ।
 गौर सावल सोभा हो बेना मेघ स्याम दामनि चमकाइ ।
 रुक्मनि कृष्ण विवाह करो प्रभु हमरि किजी मे सब पुरताइ ।
 उमादत रुक्मनि बडभागिन बलकृष्ण जाइ मन भाई ।"^३

१०६ ४ । हविमीणी नगन म कवि न रुक्मिणा की कामना इस प्रकार व्यक्त की है

मोरठ तितारा

नमन वरू देवी को नमन गुरु जगदाश ।
भरतार तो दाज गोपाल जु हो मेरे जनम जनम के इग ।
पुरा तो दाज दारमिता है गामती नदी के तीर ।
ब्रह्मणानन्द म भगन रहू हा विहृष्ट सिन्धु तीर ॥^१

११० ४। कवि कृष्णानन्द ग्यास नरना-पूजन, रुक्मिणी हरण, गद्य नरेशों और
रुक्मिणी भी पराजय रुक्मिणी की दुर्गा ग्यास का ब्यान एक हा पत्र म कर दिया है ।^२

१११ ४। रुक्मिणी की विनाई का वर्णन लोकरीखानुसार करत हुए कवि ने
मासिक प्रयोग उपस्थित किया है ।^३

११२ ४। 'रुक्मिणी मंगल' विषयक पत्रों से श्रीकृष्णानन्द का सगात गद्य के
साथ ही भाषा और विषय पर भी समीकार प्रकट होता है। जान हाता है कि कवि ने
रागकान्तुम^४ का सफलन करते समय ही प्रसंगानुसार घवने पत्रों की रचना की है ।

(७) प्रभुदाम कृत "रुक्मिणी-मंगल"

११३ ४। डा० सत्ये द्रजी और चन्द्रमानजी रावत न ब्रज प्रयोग में विवाह के
भवसर पर गाये जाने वाले 'रुक्मिणी मंगल' को निविबद्ध किया है। रचना के प्रारम्भ में
बताया गया है कि रुक्मिणी पूजक में सीता की और उसने गानाल में प्रवेश कर राजा
भीमक के यहा जम लिया था —

सीता गई ममाई लच्छि म्वा भुलमन नागे ।
दरसन पाइ नाइ, करम के बडे अभागे ।
डोक फौरि के लच्छिमन रोण, भेठे कठ लगाई ।
आपुन जाइ पतालै बैठी बैस रहे फौराइ ।
सीता गई ममाई जनमु भोखम घर लीयो ।
घरती घरयो न पाउ नाम रुक्मिनि धरि दीयो
ऐसी बेटो में जनु ऐसी जानें न कोई ।
घरते निकरी अगन भई ठाडी सृज की सी लोई ।^५

१-पृ० म० ४८ ।

२-पृ० म० ५० ।

३-पृ० म० ६३ ।

४-प्रथम संस्करण १८४३ ई०, द्वितीय संस्करण १९१४ ई०, स० ननेन्द्रनाथ वसु, प्रका०
बंगीय साहित्य परिषद, २४३ । १ अपर सकल रीड कलरता ।

५-भारतीय साहित्य वय २, अंक २, अप्रैल १९५७ हिन्दीविद्या पीठ, वि० वि०, आगरा
पृ० १५१ ।

६-अक्ष संख्या १४ । २ ।

११४ ५। प्रागे बताया गया है कि एक समय रुक्मिणी मानसरोवर में नहाने के लिए चली। सहेलिया ने मनभाया कि रुक्मिणी का देर तक खड़े हुए केग नहीं सुखाना चाहिए। चारों ओर जगन है और कोई बाह पकड़ कर रथ में बैठा ले जावेगा।

११५ ४। रुक्मिणी ने ब्राह्मण के द्वारा श्रीकृष्ण को मदश भेजा। ब्राह्मण ने रुक्मिणी द्वारा एक कगन मिलने पर लालच से दूसरा कगन भी माग लिया। ब्राह्मण फिर द्वारका नहीं पहुँच कर मार्ग में एक तालाब के किनारे सो गया।

११६ ४। भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण का साथ छोड़ा जान कर नारदजी के साथ अपना रथ भेजा और ब्राह्मण को लेकर द्वारिका के फूलबाग में मुखा दिया। ब्राह्मण अपने भाप को प्रजापति स्थान में पाकर चिंता करने लगा—

उठिकें बैठ्यो भयों करे त्वाने मनि पछित्याए ।
 ऐसी बरियो कौन म्वाते मोइ या लै आए ।
 आजु मेरो ब्राम्मनि रोइ मरेगी, जाने कौन की सरनि गहैगी ।
 रुक्मिनि तैने बादर फारे, मेरे घरते त्रिम्मा तारे ।
 करता ने बदन दुराए माघी के जोरें आए ।
 सुनि लीजी अरजी मेरी मैने सरनि लई ए तेरी ।
 म्वा असुरन की भीर घनेगे, म्वा डरपे वरनी तेरी ।
 बन्दूक धडाधड बाजे । बम्मन में डका गाजे ।
 आजु कहा छिपे गुफा में जाई, आजु मेरो खबरि लेउ जादा राई ।

११७ ४। प्रागे द्वारका का वर्णन है—

छीपी बसे सुनार, पीरि पे छतिया मारे,
 कोरी बसे चमार किनक के छत्रे उसारे ।
 बेबस हेरे बसत ऐ, विन के अटा अगास,
 माघी ने द्वारामति देखी सिरीकिस्न के साथ ।
 महल बने नीरग रग विच मारें भाई,
 नचें पातुरा द्वार किस्न घर बजे वधाई ।
 कुविजा तो चदन धिमे घरे किस्न के हाथ,
 माघी ने पाती दई, सिरीकिस्न के हाथ ॥

११८ ४। द्वारका में ब्राह्मण को प्रच्छा भोजन कराया गया और लोक प्रथा के अनुसार गात्री भी गाकर सुनाई गई। श्रीकृष्ण बरात सजाकर कुण्डनपुर पहुँचे। कोई

सुखपाल मे सवार होकर श्रीर काई हाथी, उट तथा घोडे पर बैठ कर कृष्ण की बरात म आया । श्रीकृष्ण जी ने शिशुपाल को कहा—

बडो कठिन की चोट मिलैगी रकिमिनि रानी ।
बिज्जवारे की माग ऐ, तरी क्या उनमानि ।^१

११९ ४ । शिशुपाल को गानी सुनाती हई कुण्डलपुर की स्त्रिया कहती है—

तेने गरब कियो बजमारे, मेरे हरिजी ते पहिले आयी ।
अब माढ म मू ड मजा मारतु श्री कौरु मातु नाइ खायो ।
व्याहन कह तो वो हरिकी रकिमिनी बाधि सेहरो आयी ।
दस हजार की भीर सजी ऐ अब तेने नेक खीपु नाउ खायो ।^२

१२० ४ । प्रस्तुत रचना म श्रीकृष्ण द्वारा हरण नहा होकर रकिमिणी को तारद जी भयट कर श्री कृष्ण के रथ म बठाते हैं ।^३

१२१ ४ । श्री कृष्ण ने रक्मैया को बाध लिया । रकिमिणी ने कृष्ण से निवेदन किया कि यदि रक्मैया को नही छोडा गया तो कुण्डलपुर मे कोई उहें पीने के लिए दूकना नही देगा श्रीर काई उनकी चिलम पर आग नही रखगा—

वे जगुला बगुला नही, वेमारे ससूरारि,
छोडो मुसक मेरे बीर की ।
को तुमे हुका देइगी का धरे चिलम पे आच
छोडो मुसक मेरे बीर की ।
सुम सामन में जाउगे हम जागे हरियाली तीज,
छोडो मुसक मेरे बीर की ।^४

१२२ ४ । रक्मैया क यादाभा ने श्रीकृष्ण मे युद्ध किया कि तु म्रत मे उनकी हार हई ।^५ कृष्ण स निवेदन किया गया कि वे रकिमिणी का कु बारो न ले जायें श्रीर उसके साथ बिधिन् विवाह कर लें—

मनि बवारि ले चलै मनो मेरी ताम धरावै,
हारि भमरिया हारि, रकिमपुह नयो बसावै ।

१-दृ० म० २१ ।

२-दृ० म० २२ ।

३-दृ० म० ३१ ।

२-दृ० म० २७ ।

४-दृ० म० ३६ ।

द्वापर ओर निरेना म सबु कोई जनिर्यीं धीप्र ।
क्वारिन कू वे खेचि लै जाइ सूनि करता जगदीस ॥^१

१२३ ४। श्राद्धपूण ने तदुपरा त रुक्मिणी से विधिवत् विवाह किया। अत मे प्रयुक्त प्रभुदास नाम से जात हाता है कि प्रस्तुत रचना का कर्ता प्रभुदास है—

सौलह से सहस नाम हरि के कहत म सूख पाइए
कहे प्रभुदास प्रभु के रहमि मगल गाइये ।

१२४ ४। प्रस्तुत 'रुक्मिणी मगन' मे ग्राम्य और पिछड़ी जातियो की भावनाए कवि ने सफलता पूर्वक 'यत्' की है। सन्देश वाहक ब्राह्मण को लानची बताया गया है और रुक्मया की हत्या करने पर कृष्ण को जाति से बहिष्कृत कर उनका हुक्का पापी बंद करने का धमका भी दी गई है। रचना का प्रारम्भ भी नवीनता लिये हुए है।

(च) कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-मन्मन्वी राजस्थानी काव्यो की प्रेरक परिस्थिति

१२५ ४। कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्ध या राजस्थानी का या मे मुख्यत वीरता, शृंगार और भक्ति का सम वय हुआ है। मध्यकालीन राजनातिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियो के परिणामस्वरूप ही हमारे कवि अपनी रचि के प्रनुसार, वीरता शृंगार और भक्ति के तत्व अपना कर, उनका निरूपण अपनी रचनाप्रा मे करते रहे हैं।

१२६ ४। भारतवर्ष पर होने वाले मुस्लिम आक्रमणो, भारतीय नरेशो की पराजया और भारत मे मुस्लिम साम्राज्यो की स्थापनाप्रा ने भारतीय जनता को आतंकित कर दिया था। भारतीय जनता में मुस्लिम शासन को उखाड़ फेंकने की भावनाए उत्पन्न होती रही। पृथ्वीराज चौहान को तराईन युद्ध मे पराजय के पश्चान् भारतवर्ष में क्रमश गुलाम, तुगलक खिलजो, लोदी और मुगल सल्तनतें स्थापित हुई और इन सभी सल्तनतो को छोटे मोट अनेक विद्रोहो का सामना करना पडा।

१२७ ४। मध्यकालीन मुस्लिम शासन क युग में हमारा जन समुदाय मुस्लिम शासनो की बमब और विनास सम्बन्धी भावनाप्रा से भी वचित नहीं रह सका। इस युग मे नारी को भोग विनास की वस्तु मान लिया गया। मुस्लिम शासनो के महला में अनेक देशो की स्त्रिया रहती थी और राज्य का प्राय का बहुत बडा भाग इन स्त्रियो के लिए खर्च होता था।

१२८ ४। मुस्लिम शासकों के अनुकरण में इनके आश्रित राजपूत राजा भी अधिक से अधिक सुन्नी के धर्म के अपने महलो में रहने के लिए तत्पर रहते थे। किसी राजा द्वारा विवाह के अवसर पर पहुँच कर किसी के शासक अनुकरण करना इस काल की सामान्य घटना हो गई थी। राजपूत राजाओं में पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष और संघर्ष भी प्रायः सुन्नी कर्माओं के विषय में होते रहते थे।

१२९ ४। कृष्ण कविमयी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी काव्यात्मक हमारे जन प्रतिनिधि कवियों की स्वाधीनता और वीरता सम्बन्धी भावात्मिक भी झूठी अभिव्यक्ति हुई है। कविमयी भारत लक्ष्मी के रूप में चित्रित हुई है जिसका उदार धर्म-सहायक भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा हुआ। कृष्ण बलदेव और यादव वीरों की युद्ध में प्रकट की गई वीरता के रूप में मूलतः हमारे कवियों की मुस्लिम शासन को उखाड़ फेंकने की भावनाएँ हैं।

१३० ४। अनेक मुसलमान शासक हिन्दु राजकुमारियों से विवाह सम्बन्ध स्थापित करने में गौरव का अनुभव करते थे और कतिपय राजपूत राजा भी प्रलाभन में पड़ कर अथवा नीतिवश अपना कुल कर्माओं का विवाह मुस्लिम राजपरिवारों में करने लगे थे। अनेक हिन्दु राजकुमारियाँ ऐसे विवाह सम्बन्धों की अपनी इच्छाओं के विपरीत समझती हुईं ऐसी परिस्थितियों से भ्राण पाते या उपाय भी करती थीं। प्रसिद्ध है कि रूपनगर की राजकुमारी का विवाह सम्बन्ध औरगजेब से निश्चित हुआ तब राजकुमारी न उदयपुर के महाराणा राजसिंह को कविमयी की भाँति सदेव भेजकर औरगजेब से भ्राण पाते की प्रार्थना की। राणा राजसिंह न भी विवाह के अवसर पर सत्ता सहित पहुँचकर औरगजेब का भाग अवश्य किया और विधिपूर्वक रूपनगर की राजकुमारी से विवाह किया। इस विषय का एक राजस्थानी गीत इस प्रकार है —

गीत बड़ो साहौर

घरा बँध चत्र खेत चत्रकोट गढ़ डेलडा,
पुराव नखत्र सुवरख प्रमाणो ।
साह अवरग अवतार सिसिपाल रो
राजसी किसन अवतार राणी ॥१॥
माँडियो ज्याग कमधा घरै माढहो,
लिखत वर सुवर ईसवर लिम्बायो ।
कथन सून द्वारका हूत आयो किसन,
उदपुर हूत इम राण आयो ॥२॥
धुरत सद नगौरा सभे हिक साथ धण
सेहरा बाधि बे वर सनेही ।
चाव कर कुणपुर एम चवरी चदे,
जगारो किसनगढ़ जोध जेही ॥३॥
एक अघकार हीनू तुरक ईसना
जकी तो बान ससार जाणी ।

किसन धरि रुक्मणी ले गयो कवारी,
 अमर रे कलोधर पराण आणो ॥४॥
 धरा धक धूण गढ कोट चाढे धकै,
 देस रावणतणें दिये खगदाह ।
 पैलकै गयो सिसपाल माथो पटकै,
 पटकी सिर हमरकै गयो पतसाह ॥५॥
 राजरा विरद वागवाण गुण रायवर
 कथन सुणि दिलीचे वचि कहसी ।
 राजसी राण हिदवाण धम राजता,
 राण बाखाण जुग ज्यार रहसी ॥६॥ १

- १ पूर्वनिक्षत्र युक्त शुभ समय पर धरा का वेध करने तथा क्षत्रियों को खेद पहुँचाने के लिए दिल्ली से बादागाह औरगजेब शिशुपाल क भवतार क रूप मे भ्राया तो चितौड के महाराणा राजसिंह कृष्ण क भवतार के रूप में पहुँचे ।
- २ आज राठीडा के घर लक्ष्मी का विवाह है और यज्ञ आयोजित हुआ है । ईश्वर ने राजकुमारी के भाग्य में उत्तम दर लिखा है इसलिए रुक्मिणी का सन्देश प्राप्त कर द्वारिका स श्रीकृष्ण भ्राये उसी प्रकार उत्पपुर से महाराणा राजसिंह भ्राये हैं ।
- ३ नवरात्रो का नाद हो रहा है, और कुन्दनपुर रूपी क्लिष्णगढ स महाराणा जगतसिंह का वंशज राजसिंह और बादशाह औरगजेब दोना ही बर सेरा बाधकर एक साथ तैयार हुए हैं । दोनो बर उत्साह पूर्वक विवाह मङ्गल की ओर चल ।
- ४ हि दुमो और मुसलमाना का अधिकार समझते हुए आज समस्त ससार यह जान गया कि कृष्ण तो रुक्मिणी को कुवारी ही हरण कर ले गये कि तु महाराण । अमरसिंह का वंशज राजसिंह विवाह करके राजपुत्री को लाया ।
- ५ दुर्ग और कोट महित पृथ्वी को सम्पाद्यमान बर राणा राजसिंह ने रावण रूपी बाद शास के दण का खड्गरूपी अग्नि से दग्ध कर दिया । पहिले शिशुपाल जिस प्रकार कृष्ण के समक्ष मस्तक नुका कर चला गया उसी प्रकार अब बादागाह हतात्माह होकर मस्तक धुनता हुआ चला गया है ।
- ६ महाराणा राजसिंह के विरुद्ध और दुष्टो का वर्तन मुन बर दि ली मे लोग कहेंगे कि हि दुधर्म की रक्षा करने से महाराणा राजसिंह का यश चारो युगो मे स्थाई रहेगा ।

१३१ ४। उग पाग कस्मात् कृतं कृता जाता ? । कस्मात् मारवाट र्म दुःखान्त
मे न मीन पाण्डुकात् सामज रगू र्गता क पाण्डु के पाव क निरापा माने यप है ।^१

१३२ ४। इम प्रहार मरु है कि लक्ष्मणन परिमिति म हमारे समान एव
कविता का क्या मत्र है। आह्वान कविता विना म व ही पाव प्रमंग की घोर साहित्य
दुःख तथा साक्षात् की घोर कीलकनाम क निःश्रीकृष्ण कविता की विना म व
मनुकरणीय पाण्डु का मया । गुलामात्क मया मे भी गुलामात्क घोर परमात्मा विना म व
सुचना श्रीकृष्ण दामिनी विना म व की म ? —

‘ज्या दामिनी कटर म’ ज्या मरि म ,रि का ।’

१३३ ४। घनेर कविता ने वातवतन निगुनात घोर तरागधामि की मरु कान
मुमलमान मानन हुए कविता की भारन ममी मया कि दुःख का मया श्रीकृष्ण
द्वारा उदार होने का विना म व है । मया—

हात्ति मुन मुन लमटि घनेरे । जनु छता मधु मानि केरे ॥
कोई कुरान वाचहि नृप पागे । कहु गणिता बहु करटि तमामे ॥
यवन लसो सब श्याम पोगार्वे । मनहु नील घन रहित यलारे ॥
कोई आशिर सुनि श्रवण कुराना । उग्रहहि भूमहि मनुहु शिवाता ॥^३
मिले म्लेच्छ भीर जिने म्र ग मोटा, मिले दागवा व म दाढी कदाटा ।
मिले साहजाना जिने मिले सूर। मिलयेह बाणी जिने म्र ग पूरा ।
मिले कोड पैकवरा कोड बाजी मिले कोउ गोरवरा कोउ गाजी ।^३

१३४ ४। मुस्लिम शासनकाल की विना म व युगो मे एव मात्र मपुर सहायक
कहनामय परमात्मा का ही मवलम्बन रह गया था और ऐसी ही मवस्था में हमारे कविता ने
अन हार्तिक उद्गार श्रीकृष्ण कविता विना म व परव कायो मे व्यक्त किये ।



१-महाराष्ट्र मन्मथान, म० ठाकुर मूरसिंह रेखावत, मलतीसर, जयपुर ।

२-महाराज रघुराज सिंह कविता-परिणय, द्वितीय मग ।

३-कवि विठ्ठलदास, कविता हरण, घ० सा० ३०-३१, धानद प्रकाश जी कीलित का
निबध ‘शतमहिहरण’, बीठलदास री कहु, गोप पत्रिका उदयपुर, भाग ११, म १।

पंचम अध्याय

श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी

राजस्थानी चारण काव्य

१-कर्मसी सांखला कृत श्रीकृष्ण जी री वेलि

२-महाराज पृथ्वीराज कृत वेलि कृष्ण रुक्मिणी री—

क कथा ममीचा

ख. वेलि का रचना काल

ग रम यजना

घ मापा गैली

ङ पस्तु पणन

च अलकार मोन्दर्य

छ. छन्द प्रयोग

ज वेलि का काव्य रूप

झ पृथ्वीराज रचित वेलि और कर्ममिह माखला रचित वेलि

ञ. "किमन रुक्मिणी री वेलि" की टिकाए —

(१) लाखाजी चारण की टीका

(२) कवि सारंग कृत सस्कृत टीका

(३) कवि कनक लिपिन सस्कृत टीका

(४) श्री सार रचित सस्कृत टीका

(५) शिव निधान कृत राजस्थानी टीका

(६) जय गीति कृत टीका

(७) कुशलवीर कृत टीका तथा अय प्रतिभा और टीकाए

ट वेलि की सस्तुति

३-सायां जी भूला कृत रुक्मिणी हरण

सूर कृत रुक्मिणी हरण

५-मुरारीदान वारहट कृत 'विजय विवाह'

६-विट्ठलदास कृत रुक्मिणी हरण

७-किशन किलोल

पंचम अध्याय

श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी-चारण-काव्य

१ ५ । राजस्थानी साहित्य के विकास में चारण साहित्यकारों की विशेष भूमि है । चारण शब्द की व्याख्या चारयन्ति कीर्तिम् इति चारण " अर्थात् कीर्तिमान् करने वाला के रूप में की गई है । चारणों का उल्लेख बाल्मीकि रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत पुराणों में भी माना जाता है ।^१ चारणों की मुख्य गणना चार हैं - १ मारु, २ काञ्चना, ३ सोरठिया और ४ तुम्बेन तथा उपगणना १२० तक हैं ।^२ चारण मुख्यतः शाक्तमतानुयायी हैं और इनके रीति रिवाज खान पान तथा रहन-सहन राजपूतों के अनुकूल हैं ।

२ ५ । चारण मुख्यतः राजदरबारी कवि रहे हैं । चारणों और क्षत्रियों का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । इस विषय में एक गीता प्रसिद्ध है—

चारण क्षत्री भाइया जा घर ख्याग तियाग ।

ख्याग तियागा बाहिरा, तामु लाग न भाग ॥

३ ५ । चारण कवि वीरा के प्रणेतृ और काव्य के कटु पालोचक रहे हैं । चारण कवियों ने अपने आश्रयदाताओं अथवा मय शासकों में किसी प्रकार के अविश्वस लेने अथवा उनके द्वारा कोई अनुचित कार्य होते देखे तो निडर होकर प्रभावशाली बाली में उनकी भर्त्सना की है ।^३ अनेक चारण कवियों ने सासारिक सुखोपभोगों को तुच्छ समझते हुए शक्त-स्तवन के रूप में ही अपनी काव्य रचनाएँ प्रस्तुत कीं । अनेक चारण कवि सरस्वती युक्त होते हुए युद्ध भूमि में अपनी वीरता से महाकाम शिव को रिक्तान वाला हुए हैं । चारण कवि शासकों के मेलापति, प्रभु परामर्शदाता और विद्यागुरु रहते हैं तथा अपनी गण-गणना में अविधि विषयक रचनाओं से मय का अनेक प्रभावशाली काम कर रहे हैं । इस प्रकार चारण कवियों की भावा शैली का प्रभाव राजस्थान में अन्य कवि-वर्गों पर भी हुआ । अनेक

१-बहिराजा श्यामल दास लिखित वीरविनोद, प्रथम भाग पृ० १६८ ।

२-महाकवि सूर्यमल कृत बग मास्कर, भाग १, पृ० ८४ ।

३-श्री सीताराम जी लालस, राजस्थानी शब्दकोष प्रस्तावना, पृ० १०७-११३ ।

राजपूत कविया न ता पारण गती का पूरा कव मे अगावृत किया है और यही कारण है कि श्री कृष्ण रविमणी विवाह-मन्त्रों का कारण भी क का र्ग पारणा क माप हा म य कवि ने भी सपन्नता पूर्वक सिंगे है ।

१-कर्मसी मायला कृत श्रीकृष्ण जी री वेलि

४ ५ । कर्मसा कर्मान् कर्मसिंह मायला कृत श्रीकृष्ण जी री वेलि चारण गता में रचित श्रीकृष्ण रविमणी विवाह मन्त्र भी काव्या में एक महत्वपूर्ण रचना है । कवि कर्मसी का 'रुणात् भी कहा गया है —

‘सापुला करमसी म्णुचा’

५ ५ । सम्भवत इनके पूर्वज हुए नामक स्थान क निवासी म इक्षीसिय य म्णुना कह सये । कर्मसिंह उदयपुर क महाराणा उदयसिंह और बीकानेर क राव कल्याणमल क समका लीन थ । कवि का विनय परिचय “वेलि क पुष्पिका लख म कयवा किसी म य स्रोत म प्राप्त नहीं होता है ।

६ ५ । ‘श्रीकृष्णजी री वेलि का एक मात्र प्रति मनुष्य सङ्कृत पुस्तकालय बीकानेर में उपलब्ध है ।^१ प्रति के पुष्पिका लख से ज्ञात होता है कि इसका लखन वि० स० १६३४ वैशाख शुक्ल तृतीया रविवार को सावलदास न बीकानेर महाराजा श्री राधासिंह जा के सनिक पढाव म बूसी नामक स्थान पर किया—

‘इति सापुला करमसी रुणेचा कृत श्रीकृष्ण जी री वेलि । लिपित सावलदास सागाहुत । सागी ससारचदउत । सासारचद वोदाबुत । वीदो महाराजाधिराज महा राय श्री जोधइ रो ॥ लिपित ग्राम बूसी मध्य सवत् १६३४ वर्षे वैशाख श्रुदि ३ दिने रविदासरे घटी ८ । ४१ मृगसिर नक्षत्रे घटी ४० । ४६ गुकम्मनाममोय । घटी ५१ । १६ महाराजाधिराइ महाराइ श्री राधासिंह जी रइ साधि थकइ सावलदासि पोथी लिपी कटक माह ।” २

७ ५ । वेलि का लिपिकर्ता उक्त सावलदास बीकानेर राज्य क सस्थापक राव बीका

१- मनुष्य हास्कृत पुस्तकालय, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति संख्या १६६, पुष्पिका ।

२- क-हस्तलिखित प्रति संख्या १६६ ।

ख-वार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल सर्वे आफ राजपूताना, ए इस्ट्रिप्टिड वेटलम, खण्ड २, भाग १, डा० एल० पी० तेल्सीतोरि, एग्निटाडिक सोसायटी, कलकत्ता, पृष्ठ ४५ ।

क भाई बादा के पोत्र सागाजी का पुत्र था। राव जेलमी न द्राणपुर पर चढ़ाई कर सागाजी का वहा पर नियुक्त किया था। वि० स० १६३४ में बलि का लिपिबद्ध किया जा चुका था, जिससे प्रकट होता है कि बलि को रचना इससे पहले ही चुकी थी। वैलि की प्रति स यह नहा जात होता है कि इसकी प्रतिनिधि किसा प्राचीन प्रति के आधार पर हुई भयवा इसको मौलिक रूप में किमो ने मुन कर लिपिबद्ध किया गया। यह भी सम्भव है कि इस कृति मे इसक नाम व अनुसार कृष्ण दक्षिणा विवाह वृष्ण कुञ्ज विस्तार म रहा हो। विद्वानो ने सवन् १६०० क लगभग इसकी रचना काल अनुमानित किया है।^१

८ ५। इस बलि का नाम किसन जा रा बलि दिया गया है किन्तु पुष्पिका में इसका नाम श्री ब्रम्न जा रा वैलि" उपलब्ध होता है। इस बलि म 'वैलिया गात' क बाईस दोहने ही उपलब्ध होने हैं। डा० हीरानाल माहेश्वरा न लिखा है, 'प्रतीत होता है कि जम सम्पूर्ण रचना का यह अन्तिमांग है।'^२ किन्तु नख गण निरूपण सम्बन्धी अनेक दाहले अन्तिमोश न होकर रचना क प्रारम्भिक भाग के भी हो सकत हैं। महाराज पूष्पीराज ने भी अपना वैलि म दक्षिणो का नख गण नर्तन काव्य क प्रारम्भ मे ही किया है। इस काव्य का प्रतिमाश प्रद्युम्न जम भयवा सयाग शृ गार युक्त पटञ्चतु वरण ही अधिक सम्भव है। यह भी सम्भव है कि लिपिकर्ता ने जिस क्रम से जितना इस रचना को सुना भयवा जिस क्रम से जितनी उमरा य या" रहा उसी क्रम स उसन उसका लिब लिया। 'इति सापुल करमसी रूपेवा इत श्री वृस्न जी री वैलि" से स्पष्टरूपेण जात होता है कि इसका रचना साखला कर्मासिंह रूपेवा द्वारा हुई किन्तु इस विषय में डा० सावित्री सिन्हा न बहुत ध्रामक मत प्रकट किया है - राव याग की सार वाली रानी-कृष्ण जी री वैली' क नाम से डिगल काव्य मे अनेक रचनाए का गई। इसी नाम को एक हस्तलिखित प्रति की रचयिता श्री देवी टोरी ने इस रानी का माना है जिसको प्रथम पति है, "अनापम रूप सिगा" अनोपम भूपण भग।'^३

९ ५। जात होता है कि डा० सावित्री सिन्हा न न तो इस कृति की हस्तलिखित प्रति देखी है और न डा० तैसीतोरी क कथन का ही समझने का प्रयत्न किया है। वैलि क कर्ता साखला कर्मासिंह का नाम तयोतारा को टिप्पणी में स्पष्टरूपेण लिखित है- "किमनजा री वैलि साखला करमसी रूपेवा रा वही"^४

१- डा० हीरानाल जो माहेश्वरी राज रानी भाषा और साहित्य पृष्ठ १६२।

२- वही, पृ० १६२ १६६।

३- वही, पृ० १६६।

४- मध्यकालीन हिन्दी कविविज्रिया प्रथम संस्करण-१९५३ ई० पृ० ३५।

५- भांडिव एण्ड हिस्टारियल सर्वे आफ राजपूताना ए इन्डिक्विटिव केटलाग, एण्ड २ भाग १, पृष्ठ ४५।

१०. ५। डा० सावित्रा सिन्हा ने नाय्य की प्रथम पंक्ति भी अशुद्ध रूप में उद्धृत की है। उसका शुद्ध रूप इस प्रकार है— 'अनोपम रूप सिंगार अनोपम अबल अ गि।'^१

११. ५। वेत्ति के प्रारम्भ में कवि ने हविमणी व शृंगार का वर्णन करते हुए लिखा है कि चन्द्रमुखी हविमणी अनुपम रूप, अनुपम शृंगार और अनुपम आगिब नक्षत्रों से युक्त है। उसका श्रीकृष्ण व समीप घान्तापभाग हेतु लाया गया—

अनोपम रूप सिंगार अनोपम अबल अनोपम लक्षण अ गि।
सहि एता आणिय ससि वदनी रे धीरग माणिया रगि ॥^१

धामे कवि ने हविमणी की पद्यतलयों में छलक पढ़ने वाली लालिमा और दर्पण्य अवस्था दीप पंक्ति की भाँति उमरने वान तबो का वर्णन किया है।^३

तदुपरांत कवि न नूपुरा की भकार को कामदेव के बाध यन्त्र के रूप में निरूपित किया है।^४

कवि ने हविमणी की पिडलिया को कृष्ण से युद्ध करने हेतु गयावलि के रूप में बताया है।^५

तदुपरान्त कवि ने सुवती की मुगल जयामो का वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके स्पर्श से कामदेव ही उत्पत्ति होती है।^६

कवि न नायिका व रोम रहित कठिन नितम्ब हाथी के कुम्भस्थल के रूप में निरूपित करते हुए प्रकट किया है कि कामदेव को शिव ने भस्म कर दिया किन्तु वह इस स्थान को गहन जान कर यहाँ निवास करता है।^७

कवि ने नायिका के नाभि मण्डल को रूप के रूप तथा रठिरस व कुम्भ के रूप में निरूपित किया है और रोमावली की जल सौंवने वाल माली के रूप में बताया है।^८

१-वही पृ० ४५।

२-अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर हस्तलिखित प्रति सं० १६६ छन्द सं० १।

३-वही, छन्द सं० २।

४-वही छन्द सं० ३।

५-वही, छन्द सं० ४।

६-वही, छन्द सं० ५।

७-वही, छन्द सं० ६।

८-वही, छन्द मन्त्रा ७।

कवि ने रुक्मिणी का गयना का वर्णन करने हुए उन्हें प्रति चचन 'काजल युक्त', रतनारे एव त्रिभुज बनाया है।^१

नायिका सालह शृंगार धारण कर गाभित है और वह भिलमिताता "याति क ममान त्रिभुज मान है। वृग का मन रूपा विह्वल वक्ष में करन के लिय उसन माना जान फना दिया है।^२

कवि न रुक्मिणी का मस्तक त्राफन क समान बतात हुए लिखा है कि उसक भान पर माता और सिंदूर भरा हुआ है। वह माना नक्षत्र माला के समान देदीप्यमान है और चन्दन का तिलक चंद्रमा क समान है।^३

नायिका क मुह पर रत्न जडित रखडा मुग्धाभित है। उसका वणी सरलता से धन खाती हुई सप क समान है, जो अमृत का आहार करन क लिए मुख रूपा चंद्रमा क समीप थाया है।^४

लावण्य गुण पूरित लक्ष्मा राजहस क समना चलकर कर्मासह क श्यामवण स्वामी मदन मुरारा श्राकृष्ण से सज पर मिलो।^५

कवि न अन्त में लिखा है कि रुक्मिणी क रूप, लक्षण और गुण कवन में कौन समथ हा सकता है। मैंने गाविन्द को राना क गुण जान बस हा कहे है।^६

१२ ५। रचना नाम क अनुसार इसमें श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह का प्रद्युम्न जन्म सहित वर्णन हाना चाहिये किन्तु अर्धघट हस्तलिखित प्रति में रुक्मिणी का नक्ष शिख निरूपणमात्र उपलब्ध होता है।^७

१३ ५। प्रस्तुत छंदो में वर्णित विषय से यह शृंगारिक रचना प्रतीत हाती है। विषय क शृंगारिक होत हुए भा कवि ने जनोचित मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है। 'धनी का रचना बेलिया गीत नामक छन्द में हुई है और यह भी एक कारण है कि यह रचना "बलि" कहा गई।

१-वही छंद सं० १७।

२-वही, छंद सं० १८।

३-वही, छंद सं० १६।

४-वही, छंद सं० २०।

५-वही छंद सं० २१

६-वही, छंद सं० २२।

७-वही।

१४ ५। रचना में प्रलकार मोर्त्य सवत्र दर्शनाय है। यथा—अनुप्रास, 'त्रैमा उपमा' व्यतिरेक, 'रूपय' 'भ्रातिमान' स'ह धोर वसुमगई।

१५ ५। प्राकार प्रकार का दक्षत हुए प्राप्त रचना का श्राकृष्ण जा री गति क स्यन पर नख मिल निरूपण वलि कहना सवथा उपयुक्त है। नायिकामा का नख शिख निरूपण करने की हमारे का-यो म सुदोर्ध परम्परा रही है और 'नख शिख निरूपण' विषयक अनक स्वतंत्र रचना भी उपलब्ध होती है।^३ राजस्थानी नख शिख निरूपण विषयक रचनाया में प्रस्तुत वलि एक सर्वोत्कृष्ट रचना है।

७-महाराज पृथ्वीराज कृत "बेल क्रिमन रुक्मिणी री"

१६ ५। राठोड पृथ्वीराज कृत "बेला क्रिमन रुक्मिणी री" राजस्थानी साहित्य का उत्कृष्टतम काव्य कृति मानी गई है। यह बेलि मक्त जना क लिए 'मुगति तणा नीस रणी' सरस्वता कृष्णश्री और रमिकी हनु रसमयी है। वलि का लगभग एक सौ प्रतिशत विभिन्न हस्तलिखित ग्रंथ भण्डारो म उपलब्ध हा चुकी है।^१ मरुत, ब्रज राजस्थानी और खड़ी बोनी की अनक प्राकाण हा चुकी है^२ तथा ६ विभिन्न विद्वाना द्वारा सम्पादित सस्करण प्रकाशित हो चुक है।^३

१-उत्स स० १ ६ आदि।

२-छन्द म० ३ ६ प्रादि।

३-छन्द स० ८ १२ आदि।

४-छन्द म० १५।

५-छन्द स० १६ १८ आदि।

६-छन्द न० १६।

७-छन्द स० २।

८-सभी छंदों में।

९-क-नख-शिख केशव कृत।

ख-नख-शिख बलभद्र कृत, डा० रामकुमार वर्मा हिंदी साहित्य का प्रातोच नात्मक इतिहास पृ० ४६३, ४६६ और ५६३।

ग-नख-शिख, पृथ्वीराज राठोड कृत, प० नरोत्तमदासजी स्वामी स्व सम्पादित बेलि प्रस्तावना पृ० २८।

१० - बेलि छन्द स० २६४।

११ - बेलि छन्द स० २७६।

१२-बेलि छन्द स० २६८।

१३ - राजस्थान भारती, बीकानेर पृथ्वीराज विशेषांक, भाग ७ अंक १-२ और राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर की श्रम्य सुविधा।

१४ - राजस्थान भारती बीकानेर, मई १९६१।

१५-१- सप्पा० डा० एल० पी० तेस्तीतोरी एगियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, बलकता स० १६१६।

२- स० टाकुर रामसिंहजी और सूर्यकरणजी पारोक हिन्दुस्तानी एवउमी, प्रयाग, १९३१ ई०।

३-स० डा० भानुद प्रकाशजी दीक्षित विषयविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, १९५३।

४-स० प० नरोत्तमदासजी स्वामी, श्री राममेहरा एण्ड क० धारा १९५३ ई०।

५-स० श्रीकृष्ण शंकर शुक्ल, साहित्य निबन्धन, दानपुर १९५४ ई०।

६-स० श्री नटवरलाल इच्छाराम दसाई, कावस गुजराती सभा बम्बई, गुजराती दोका साहित, १९५५ ई०।

(क) कथा समीक्षा—

१७ ५। महाराज पृथ्वीराज राठौड ने अपनी 'वनि किम्बल स्वमणी री' क प्रारम्भ में मगनाचरण के अन्तर्गत परमेश्वर, सरस्वती सद्गुरु और मगलरूप माधव का स्मरण किया है।^१ कवि ने तदुपरान्त अपने अन्तर्गत और कथा की महता का कलात्मक निरूपण करते हुए लिखा है कि वह गुणहीन होते हुए भी गुणनिधि का गान करना चाहता है, मानों काष्ठचित्रित पुतली अपने हाथ में चित्रकार का चित्रण करना चाहता है अथवा किसी वाग्विहान व्यक्ति न वाग्देवता सरस्वती को विजित करने के लिए विवाद प्रारम्भ किया है। कवि अपने मन को कहता है कि, मूख ! सरस्वती भा जिसका नहीं लेस पाती उसका तू देखना चाहता है तू वातरोग में पीड़ित है अथवा पागल हो गया है। पशु चलकर पहाड़ पर कैसे पहुँच सकता है ?^२ आगे कवि गोपनाग और अपनी तुलना करता हुआ कहता है कि गोपनाग ने भी परमेश्वर के चरित्र का पार नहीं पाया तो उस जैसे मेढक के बचना का क्या बस हो सकता है ?^३

१८ ५। कवि ने काव्य में निहित शृंगार की ओर मकत भी प्रारम्भ में हीकर दिया है—

श्रीवराण पहिली कीजे तिरिण, शु धिये जेणि सिंगार ग्रन्थ ॥^४

कवि ने काव्यगत शृंगार की ओर संकेत करते हुए उसकी मर्यादा का भी सूत्ररूप में चित्रण कर मातृत्व की महता बताई है। महाकवि तुलसी ने जनकनिदिनी सीता का शृंगार और सौन्दर्य का वरण मातृरूप में किया है उसी प्रकार महाराज पृथ्वीराज ने रत्नमणी के मातृत्व की ओर संकेत किया है—

'पूत हेत पसता पिता प्रति, वली विसेखै मात वडी' ॥^५

१९ ५। कवि ने विदर्भपति राजा भाष्मक और उसका सत्ताया का संक्षिप्त वर्णन करते हुए रत्नमणी के बालरूप सौन्दर्य का और वयसधि का रमणीय, कल्पनारजित और कलापूर्ण चित्रण किया है।^६

२० ५। रत्नमणी बालरूप के समान राजा के आगम में क्रीडण करती है, बत्तीत सक्षरों से युक्त है, शुद्धिमा सेनती है और समान शील, कुल और भवस्या की सक्षियों में इस प्रकार गतिष्ठ होती है माना बाराभों में चंद्र है। उसकी बाल्यावस्था व्यतात हा चुकी है

१— छन्द सं० १।

१— छन्द सं० ५।

१— छन्द सं० ६।

१— छन्द सं० १२-१८।

२— छन्द सं० २-४।

४— छन्द सं० ६।

५— छन्द सं० १०-११।

घोर युवावस्था प्रारम्भ हो रही है। अपने अंगों को छिपाने में वह लज्जा करती हुई भी नञ्जित हो रही है।^१

२१ ५। प्रागे कवि न लिखा है कि रुक्मिणी का नेत्रों की शिगिर व्यतीत हो गया है और युवावस्थारूपी ऋतुराज का अपने परिग्रह सहित प्रागमन हो गया है। इस प्रसंग में कवि ने सागन्धर्व के अतगत रुक्मिणी की युवावस्था का सरस चित्रण किया है। कवि का शिखर नख वगन् बनूठा है।^२

२२ ५। रुक्मिणी ने पूजा गिशा प्राप्त की जिसके विषय में कवि न लिखा है—

व्याकरण पुराण समृति सामिन्न विधि, वेद च्यारि छट अंग विचार।
जाणि अनुरदम चौसठि जाणो, अनन अनत तसु मधि अधिकार।^३

२३ ५। रुक्मिणी ने गुणप्रवण के द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है और वह श्रीकृष्ण का वर रूप में प्राप्न करन की इच्छा में गौरी और हर की वन्दना करती है।

२४ ५। राजा भात्मक रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से करना चाहत हैं^४ किन्तु उनका पुत्र रुक्मया श्रीकृष्ण का विरोध करता हुआ शिशुपाल का विवाह निमंत्रण भेजता है।^५ रुक्मया कृष्ण का अहीर एव वाला कहना हुआ राजपरिवार में कृष्ण का विवाह सम्बन्ध करना उचित नहीं मानता है।

२५ ५। शिशुपाल लम्पारिका प्राप्त कर अनेक राजाओं के साथ बरात सञ्जित कर प्रसन्नतापूर्वक कुन्दनपुर प्राता है। कवि ने इस अवसर पर कुन्दनपुर की गोमा का विशेष वर्णन किया है।^६

२६ ५। कवि ने शिशुपाल के कुन्दनपुर में जाने पर रुक्मिणी की विकल दशा का चित्रण करने हुए श्रीकृष्ण के पास ब्राह्मण के द्वारा रुक्मिणी का सन्देश भिजवाया है। ब्राह्मण माग में रात जाने पर सा जाना है और प्रात जागने पर आपको द्वारिका में पाता है। कवि ने द्वारिका का मनोरम वर्णन किया है।^७

२७ ५। सान्नेवाहन ब्राह्मण कृष्ण के पास पहचता है। कृष्ण उसका विधिपूर्वक स्वागत प्रकार करने के और फिर ब्राह्मण रुक्मिणी का पत्र कृष्ण के सम्मुख प्रस्तुत करना है।^८

१-छन्द स० १८।

३-छन्द स० २८।

५-छन्द स० ३१-३८।

७-छन्द सख्या ५०।

२-छन्द स० २०-२७।

४-छन्द स० ३०।

६-छन्द स० ४०-४१।

८-छन्द स० ५२-५६।

श्रीर प्रियमिलन क लिए रुक्मिणी के शृंगार करन श्रीर दवर्गन के लिए सबिया एवं मरभक मैनिका सहित प्रस्थान करने का विम्वृत वगन् किया है । १ रुक्मिणी का श्रार स एक मिखाई हुई मखो न राना म अम्बिका-पूजन की स्वाकृति ली श्रीर स्वीकृति मिलने पर ही रुक्मिणी ने शृंगार प्रारम्भ किया । कवि ने रुक्मिणी क स्नान श्रीर नख सिख मोत्य का पूर्ण हात्किता क साथ निरूपण किया है ।

३२ ४ । श्रीकृष्ण ने अन्तरिक्ष मार्ग म अम्बिकालय की श्रीर रुक्मिणी का अनुगमन किया । सनिका ने मन्िर के द्वारा श्रीर मुरग्या के लिए धरा डाल दिया । रुक्मिणी ने मन्दिर में प्रवेश कर अपने हाथों देवी का पूजन कर मनवाछित फल अपने हाथ मे कर लिया । देवी पूजन के उपरांत रुक्मिणी ने जैम ही मरधिक्रा सना पर दृष्टि फेरी वस ही सेना मूर्छित हा गई । २

रुक्मिणी न हृत्य की आकषित करने वाली चितवन, माहित एव वशीकन करन वाली मुस्कान उमा उद्वग्न करन वाली अगभगिमा हृदय का द्रवित करन वाली गति श्रीर चतना हर लन जाने मकोव रूपी नापण के साथ तोटते समय मन्दिर क द्वार मे प्रवेश किया । कवि ने उक्त वरान् में कामन्द की गति का पाच बाणा क रूप मे निरूपण किया है । कामदेव क पाच बाण निम्नलिखित हैं —

ममोहना-माद्री च शायणस्तापनस्तथा ।
स्तमनश्चेति कामस्य पच बाणा प्रकीर्तिता ॥

३४ १ । कवि न सम्मान के स्थान पर वशीकरण, तापन के स्थान पर द्रविण श्रीर स्तम्भन क स्थान पर आकर्षण का विषेय प्रयाग किया है । कृष्ण न आकाशमाग म मन्दिर क समीप प्रवेश कर रुक्मिणी का हाथ पकड कर उसको अपने रथ म बैठा लिया । १ कवि ने प्रागे वीरा द्वारा युद्ध क लिए तयार होने का श्रीर युद्ध का वरान् किया है । युद्ध वर्णन् करत हुए कवि न साय रूपक के अतगत वर्परूपक का सफल प्रयोग किया है । कवि स्वयं कुशल सनिक एव मेनारति या घतएव मुगलकालीन युद्ध पद्धति की स्पष्ट झलक इम वर्णन् में उपलब्ध हाती है । वेनी का यह युद्ध वर्णन् अपने आप म पूर्ण है एव युद्धापरान्त हीन वाली वीभत्स स्विति का भी निरूपण हुआ है । काव्य कला का दृष्टि मे युद्ध वर्णन् का अंग 'वेलो' का प्रमुख भाग है । ४ कृष्ण ने प्रागे कामा का निरायुध कर रुक्मिणी को उद्वगन रन्दा समझते हुए उसक वग उतार कर मुक्त कर दिया । बलराम न कृष्ण का इस विषय म यगमय वचन कहे तो कृष्ण ने अपना हाथ स्वयं का सिर पर पर कर वग पुन लगा दिए । ५

१-छंद सं० ७१-१०५ ।

२-छंद सं० १०१-११० ।

३-छंद सं० ११३-११२ ।

४-छंद सं० ११३-१३३ ।

५-छंद संख्या १३८ ।

३५ ५। प्रागे कवि ने द्वारिका व माग मे श्रीकृष्ण का मिलने वाली विजय को बधाई देने बानो का वर्णन भी किया है।^१

विजयी श्रीकृष्ण व रुक्मिणी सहित द्वारिका मे प्रवेश करने पर द्वारिका वासिया के मानन्दोत्साह, द्वारिका की सजावट और उत्सव का वर्णन कवि न हविपूर्वक किया है।^२ द्वारिका नगर श्रीकृष्ण व स्वागत में इस प्रकार लहरें लेने लगा जस पूर्णिमा व दिन वः बर्षन स ज्वारयुक्त समुद्र लहरें लेता है।

३६ ५। ज्योतिषियो स विवाह का मुहूर्त पूछा गया तो उन्होंने कम्पित चित्त से कहा कि एक ही स्त्री के साथ पुन पुन पाणिग्रहण कैसे हो सकता है ? रुक्मिणी हरण व साथ ही पाणिग्रह हो गया, दत्त यह निश्चय हुआ कि शय सरकार ही प्रागे हान उचित है।^३

३७ ५। कवि न प्रागे विवाह सरकार का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण रुक्मिणी के शयनगृह प्रसंग का चित्रण किया है।^४ श्रीकृष्ण रुक्मिणी की मिलन रात्रि व पूव स घ्या का और कृष्ण रुक्मिणी का मिलन सम्बन्धी प्रानुरता का कवि न विशेष वर्णन किया है।^५

३८ ५। कृष्ण रुक्मिणी की रति काटा का वर्णन मर्यादित हुआ है।^७ सुरतात वर्णन भी कवि न किया है।^८ कवि ने प्राग प्रभात वर्णन मे लिखा है—

सयोगिणि चीर रई कैरव श्री,
पर हट ताल भमर गोघोष ।
दिएपर ऊगि एतना दीघा
मान्विया बध बधिया मोन
बाणिया वधू गो वाद्य असइ विट
चोर चक्रव विप्र तीरथ बल ।
सूर प्रगटि एतला ममपिया,
मिनिया विरह विरहिया मेन ॥^९

१ - दश संख्या १३८ ।

३ - दश संख्या १४६-१४७ ।

५ - दश संख्या १३८-१६१ ।

७ - दश संख्या १७३ ।

८ - दश सं० १८५-०१८६ ।

२ - दश संख्या १३६-१४८ ।

४ - दश संख्या १४३-१४७ ।

६ - दश सं० १६७-१६४ ।

८ - दश सं० १७४-१८१ ।

३६ ५। वलि म पटऋतु वर्णन् भी कवि न मनायोग पूर्वक किया है। ग्रीष्म, वर्षा शरद, हेमन्त, शिशिर हम त और वस त का वर्णन् क्रमश किया गया है। वसत वर्णन् बिस्तार स हुआ है।^१ प्रागे कवि न प्रद्युम्न जन्म का वर्णन् किया है।^२ तदुपरा त कवि न वेलि का माहात्म्य वर्णन् किया है।^३ कवि ने श्रीमद्भागवत का वलि का मूल स्रोत बताया है—

बल्ली तसु बीज भागवत वायी,
महि याणी प्रियुदाम मुख ।
मूल ताळ जड अरथ मण्डह,
मुधिर करणि चढि द्याह मुख ॥
पत्र अकखर दळ द्वाळा जस परिमळ
नव रस तन्तु त्रिधि ओहनिमि ।
मघुकर रसिक सु भगनि मजरी
मुगति फूल फल भुगति मिसि ॥^४

४० १। अन्त म वलि का रचनाकाल वनात हूए जिया गया है कि वलि का श्रवण करने वाते और कठस्य करन वाल मगर था और भक्ति का फल प्राप्त करते हैं।^५

(ख) वेलि का रचना काल—

४१ ५। वलि क रचना काल क विषय में अनेक मत है। वेलि की प्राचीनतम प्रति वि० स० १६६६ में लिखित प्राप्त हुई है जिसका प्रशस्त-लेख यह है— 'इति श्री कृष्ण वदे रूपमण वेलि सपूर्ण समाप्ता ॥ राठीड श्रीकिल्याणमल सुत प्रधिराज तत्त ॥ बधव सुरताणजी गागरोण गढ मध्ये ॥ स० १६६६ वष माह सुदी ४ दिन लिपत रामा ॥ फूलखेडा मध्ये ॥ शुभ भवतु किल्याण ॥'^६

४२ ५। उक्त प्रशस्ति स नात हाता है कि यह प्रति गागरोनगढ मे लिखित प्रति की प्रतिलिपि है। गागरोनगढ महाराज पृथ्वीराज की जामोर के रूप में मुगल सम्राट अकबर की ओर से मिला था और सभवत पृथ्वीराज की उपस्थिति में उनके भाई सुरताण की प्रेरणा मे लिखित प्रति से ही उक्त प्रतिलिपि की गई है इसलिये विवशनीय है। इस प्रति म ३०१ पद्य ही हैं और रचना काल विषयक पद्य नहा है। रचनाकाल सम्ब धी पद्य पीछे से विभिन्न प्रतिया मे विभिन्न रूपो में जुड गये हैं। रचनाकाल सूचक पद्य सर्वप्रथम सारग कृत सुबाधमजरी नामक ससृष्ट टीका की वि० म० १६८३ में लिखित प्रति में उपलब्ध होता है। उक्त टीका का रचनाकाल वि० स० १६७८ है।

१-छंद स० २२६-२६८ ।

२-छंद स० २६६-२७६ ।

३-छंद स० २७७-३०४ ।

४-छंद म० २६१-२६२ ।

५-स० ३०५ ।

४३ ५। वेनि का रचनाकाल 'बरसि घषम (७ मा ८) शुण (३) मंग (६) ममि (१) मवति' (वि० म० १६३७ वा १६३८) मनेव प्रकाशित मंरवरणः' घोर १० वि० प्रतिवा म मूचित किया गया है। यहाँ घषम का मय ७ घोर ८ दाना हा किया जा मरना है। डा० तम्बीगारी^१ श्री सूर्यकरण पारीक,^२ मंजुवान मञ्जुमार^३ डा० रामनुमार ममी^४ घोर डा० घामी^५ घानि न 'घषम का मय ७ मान कर वेनि का २० का० वि० हा १६३७ मिया है। इमक विरराज दुगवघोर^६ घोर जतरानि^७ ने घषम का मय ८ करते हुए वेनि का २० का० वि० म० १६३८ माना है।

४४ ५। वेनि की कतिपय प्रतियों में रचनाकाल मूषक निम्नलिखित पद्य उपम्लष जाना है जिसमें मर्य हा वि० म० १६३८ मूचित किया गया है—

वमू (८) सिव नयन (३) रस (६) ममि (१) वच्छरि,
विजय-समी रवि रिम्य वरप उत ।
क्रिसन हविमणी वेनि कलप-तर,
की वमघज कलिवाण उत ॥^१

४५ ५। मनेव प्रतियों में वेनि का रचना काल वि० म० १६३६ भी मूचित किया गया है—

१—प्रकाशित मस्करण—

- क—एगियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता म० डा० एल० पी० तेस्मीतोरी ।
ख—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद म० डा० रामसिंहजी घोर म० मूयकरणजी पारोक ।
ग—विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर, म० डा० धानन्द प्रसादजी दीक्षित ।
घ—श्रीराम महरा एण्ड कम्पनी धागरा, म० प० श्री नरोत्तमदासजी स्वामी ।
२—स्व सम्पादित वेनि, एगियाटिक सोसाइटी कलकत्ता, प्रस्तावना, पृ० ६ ।
३—स्व सम्पादित वेनि मूषिका, पृ० ६७—६६ ।
४—मुजराती माहित्य ना स्वमपी, मध्यकाव पृ० ३७५ ।
५—हि० सा० का घानीघनात्मक इतिहास, द्वितीय मस्करण पृ० २५७ ।
६—बीकानेर राज्य का इतिहास भाग १ पृष्ठ १६१ ।
७—महिमा भक्ति जन मण्डार' बीकानेर ह० प्र० म० ३३। ५६० ।
८—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति, घर्षांक ३६५३ ।
९—क—वही घर्षांक १८३५ ३५५७ । २, ३५४८, २०६६, २०७०, ४०७६ ४०७७, ४०७८, ४८३८ ८२५३ ६१४४ ६२५२, ११०६० ।
ख—प्राचाय विनयचन्द्र ज्ञान मण्डार लाल भवन, जयपुर की प्रति, कमाक २२२२ ।

सोलहसे सवत छत्रीसा वरखे, सोम श्रीज वैसाखे समधि ।

रुकमिणि कृसन रहस रग रमता, कही वेलि पृथ्वीराज कमधि ॥^१

४६ ५ । प० नरात्मदासजी स्वामी क मतानुसार उक्त प्र श शेषक है क्योंकि यह प्रथम समाप्ति और प्रशस्ति लक्ष के बाद जाडा गया है ।^२

४७ ५ । राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान उज्जयपुर गांधी के प्र तगत सरस्वती भण्डार पुस्तकालय मे सुरक्षित वेत्ति की प्रतिया मे रचनाकाल वि० स० १६४४ लिखित है—

१ सालह से सवत चमाले वरमे, साम तीज वेमाल मुदि । (प्रति स० १७०१)

२ सोलह से सवत चमाले वरये सोम ताज वसाल समधि । (प्रति म० १७२८)

३ सालस से सवत चौमालीसे वरम, साम ताज वसाल मुदि । (प्रति म० १७६५)

उक्त लखा क आधार पर डा० धान प्रकाश जी दीक्षित^३ और डा० हारालाभजी माहेश्वर^४ ने वेलि का रचनाकाल वि० म० १६४४ माना है । प० मातीलालजी मनारिया का यह अनुमान मात्र प्रतीत होता है कि वि० स० १६३७ वेलि का प्रारम्भ सवत् है और वि० म० १६४४ वलि की पूर्ण करने का सवत् है ।^५

४८ ५ । वास्तव मे गगरोनगढ वाली वि० स० १६८६ मे लिखित उक्त प्राचीन तम प्रति मे रचनाकाल सम्बन्धी पद्य उपलब्ध नहीं होता इसलिए बिना किसी प्रमाण से मर्मयित हुए वि० स० १६३६, १६३७ १६३८ और १६४४ मे स किसी एक सवत् क पक्ष में मत प्रकट करना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता । इस विषय में अभी निश्चितरूपमे यही कहा जा सकता है कि वेलि की रचना १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई है ।

(ग) रसव्यजना—

४९ ५ । वलि का अपर नाम “रुक्मिणी मगल” है—

१ मन सुद्धि जपता रुक्मिणि मगल, विधि सम्पत्ति चाई कुशल नित ।

२ मुख कहि कृसन रुक्मिणी मगल, काइ र मन कल्पति कृपणा ।^६

१—क—बडा उपाध्य श्रीकानेर क्रमांक ३५।५७७ ।

स—धर्मय जन प्रयागय श्रीकानेर क्रमांक ७४०५ ।

२—वेलि की सम्पादकीय प्रस्तावना, पृ० ७७ ।

३—वेलि, सम्पादकीय सूचिका, पृ० ५१ ।

४—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १६१ ।

५—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १२४ ।

६—द्वद स० २८६ ।

७—द्वद सख्या २८६ ।

भाधार श्रीमद्भागवत^१ को मानने हुए कवि ने कृष्ण को मगलरूप,^२ कमलापति,^३ श्रीकम,^४ श्रीपति,^५ जगतपति^६ अतर्थामी^७ हरि^८ पुरुषोत्तम^९ त्रिभुवनपति^{१०} आदि तथा रुक्मिणी को रामा अवतार^{११} और श्री आदि लिखा है। रुक्मिणी ने अपने पत्र में राम सीता, विष्णु लक्ष्मी और आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध के रूप में अपना और कृष्ण का सम्बन्ध बताया है।^{१२} द्वारिका का वणु अमरावती के रूप में है। वेलि को मगल-काव्य^{१३} लिखते हुए इसकी पाठ विधि का भी वर्णन है।^{१४} वेलि का माहारम्य एक धार्मिक ग्रन्थ के रूप में वर्णित है।^{१५}

५२ ५। वेलि में वीर रस का निरूपण भी यथोचित रूप में हुआ है। प्राचीन काल में विवाह शक्ति प्रदान के अवसर होते थे और वीर पुरुष ही सुयोग्य सुदरी से विवाह करने का अधिकारी होता था। कवि ने सफलता पूर्वक युद्ध के हेतुमा की सृष्टि की है और युद्ध का सांगोपाग वर्णन युद्ध-वृत्ति रूपक के अंतर्गत किया है। युद्ध में होने वाली मारकाट, भग भग और रक्त प्रवाह के दृश्य वीरों के लिए आनन्ददायक होने हैं। युद्ध में प्राप्त होने वाली मृत्यु तो महान मगलकारिणी मानी गई है। इसलिए आसूयकरण पारोक द्वारा उपस्थित रस विरोध^{१६} की स्थिति नहीं मानी जा सकती। वेलि में युद्धगन् नलकार^{१७} शास्त्र संचालन^{१८} और सैन्य संगठन^{१९} आदि का चित्रण वीर रस का सर्वथा अनुरूप हुआ है। वेलि के अनेक स्थलों में शास्य की सृष्टि भी हुई है।^{२०}

(घ) भाषा शैली—

५३ ५। वेलिकार का भाषा और शब्दों पर पूर्ण अधिकार है जिसके बल पर उसने काव्य के भावपक्ष और कला पक्ष में सफल सतुल्य रखते हुए अपरिमित काव्य-सौंदर्य की सृष्टि की है। कवि ने संस्कृत के तरयम तद्भव शब्द रूपों का राजस्थानी भाषा की

१ - पद्य सं० २६१ २६२।

३ - पद्य सं० ३।

५ - पद्य सं० ६।

७ - पद्य सं० ५४, ६१।

८ - पद्य सं० ६६।

११ - पद्य सं० १०।

१३ - पद्य सं० २८६।

१५ - पद्य सं० २७८।

१६ - वेलि हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, संपादकीय भूमिका, पृ० ७६-८७।

१७ - पद्य सं० ११२ ११४।

१८ - पद्य सं० ११४ ११७।

२ - पद्य सं० १।

४ - पद्य सं० ५।

६ - पद्य सं० ५४।

८ - पद्य सं० ६१।

१० - पद्य सं० ६८।

१२ - पद्य सं० ५६ ६६।

१४ - पद्य सं० २८०।

१८ - पद्य सं० ११८ ११६।

२० - पद्य सं० ११३-१३५।

मर्यादा के अनुसार प्रयोग किया है। अनेक प्रसंगों में लोकोक्तियाँ और मुहावरों का भी प्रयोग किया है।^१ कवि ने स्वयं को सोनानामी,^२ मकर राशि के लिए काम बाहन^३ आदि लिख कर "कूट शैली" भी अपनाई है। कवि ने प्रसंग के अनुसार शृंगार वर्णन में कोमल कांत पदावली और वीरता वर्णन में भोजमयी शब्दावली का प्रयोग किया है। सिलह, हवाई, जोर, बरकाब, हव जैसे भरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग भी किया गया है किन्तु इनसे भाषा की मर्यादा कहीं भंग नहीं हुई है।

(इ) वस्तु वर्णन—

५४ : ५। कवि की वस्तु वर्णन में विषय रुचि है। हरिमहिमा-वर्णन^४, नगर-वर्णन के अतर्गत मुन्दनपुर वर्णन^५ और द्वारिका वर्णन^६, नायिका का नख शिख और सौन्दर्य वर्णन^७, युद्ध वर्णन^८, प्रकृति वर्णन व अतर्गत संध्या^९, प्रभात^{१०}, धीम^{११}, वर्षा^{१२}, शरद^{१३}, शिशिर^{१४}, हेम त^{१५} और वस त^{१६} में कवि ने अपने विशद सांसारिक अनुभव, शास्त्रीय ज्ञान और भावुकता का पूर्ण परिचय दिया है। बेलिगत प्रसंगों में कवि के ज्योतिष और वाकुन^{१७}, वैद्यक^{१८}, सगीत-नृत्य और नाट्य शास्त्र^{१९}, योगशास्त्र^{२०}, पुराण^{२१} काव्य^{२२}, राजनीति^{२३}, कर्मकाण्ड^{२४} भाषा^{२५}, कृषि^{२६}, बुनाई^{२७} लुहारी^{२८}, मुनारी^{२९}, सिक्लीगरी^{३०}, सामाजिक रीतियाँ^{३१}, आभूषण^{३२}, व्यापार^{३३}, रंग^{३४},

- | | |
|--|------------------------------|
| १ - पद्य सं० ३, ४, ४५, १२६, १३०, १६८। | २ - पद्य सं० १३४। |
| ३ - पद्य सं० २२२। | ४ - पद्य सं० १-७। |
| ५ - पद्य सं० ३८-४०। | ६ - पद्य सं० ४८-५१। |
| ७ - पद्य सं० १२-२७। | ८ - पद्य सं० ११३-११३। |
| ९ - पद्य सं० १६२-१६४। | १० - पद्य सं० १८२-१८६। |
| ११ - पद्य सं० १८७-१९४। | १२ - पद्य सं० १२, १९४-२०५। |
| १३ - पद्य सं० २०६-२२५। | १४ - पद्य सं० २२६-२२८। |
| १५ - पद्य सं० २२८। | १६ - पद्य सं० २२९-२६८। |
| १७ - छंद ७०, ९३, ९६, १८८, १९३, २१२, २२२, २२६, २८६। | १९ - छंद २४६, २४८। |
| १८ - छंद २८५, २८५। | |
| २० - छन्द १५, १८०, १८५, २०८। | |
| २१ - छंद ८४, ९८, १०६, २१६, २६६। | |
| २२ - छंद २७३, २७४, २७५, २७६। | |
| २३ - छंद २४९, २४५। | |
| २४ - छंद २९७। | २५ - छंद २८०। |
| २५ - छंद १७१। | २६ - छंद १२३, १२४। |
| २६ - छंद १७५। | २८ - छंद १३२। |
| २७ - पद्य १४०, १४२, १४३, १४८, २०९, ४१०, २१३, २१४, २२७, २२९, २३८। | ३० - छंद ८६। |
| २८ - पद्य १६३, १६४, २०९, २१०, २२६। | |
| २९ - छन्द =? ९९। | ३१ - छंद १६५, २००, २०३, २५७। |

आदि के ज्ञान का भी परिषय मिलता है। काव्यगत वणन कथा-प्रवाह में कहीं बाधक नहीं हैं और इनमें काव्यगत क्षी-दय की सफल सृष्टि हुई है।

(च) भलकार सोदय—

५५ ५। वेलि का प्रत्येक पद सम्पूर्ण रूप में भलकृत है। कवि के भलकार निरूपण में सर्वत्र स्वाभाविकता है और भलकारों का प्राचुर्य होते हुए भी प्रत्येक पद में भाव-पस को कहीं हानि नहीं हुई है। भलकारों के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

धनुप्रास— १ तेज कि रतन कि तार कि तारा,
हरि हस-सावक सस-हर हीर ? ^१

२ बहु विलखी वीछडतइ बाला, बाल साधाती बालपण ।^२

३ कामणि कुच कठिण कपोल करी किरौ,
वेस नवी विधि याणी वखाणी । ^३

अमक— १ सिखर-सिखर मइ मन्दिर सिर । ^४

२ हरि-धुग मणि ऊपनी जिक्का हरि । ^५

३ कलस सीस करि करि कमल । ^६

४ आदर करे जु आदरी । ^७

५ गुण-मोती मखतल-गुण । ^८

धनेव— १ कत-सजोगणि किमुल कहिया, विरहणि कहे पलास बग ^९ ।

संयोगिनी— (१) ढाक को देखकर उल्लसित होकर बोल उठी—

(२) कि मुख । कैसा सुख है ?

वियोगिनी— (१) ढाक को देखकर तन में क्षीण होकर बोली

(२) पलाश भास को खाने वाला राक्षस है ।

२ सूरिज ही दिख—आसरित ^१

१ - छन्द २७ ।

३ - छन्द २४ ।

५ - छन्द सं० २६ ।

७ - छन्द सं० ३ ।

८ - छन्द सं० २५६ ।

२ - छन्द २७ ।

४ - छन्द सं० २०४ ।

६ - छन्द सं० ४६ ।

९ - छन्द सं० ८१ ।

१० - छन्द सं० १८८ ।

मर्यादा के अनुसार प्रयोग किया है। अनेक प्रसंगों में लोकांतिका और मुहावरों का भी प्रयोग किया है।^१ कवि ने स्वयं को सोनानामो,^२ मकर राशि के लिए काम वाहन^३ आदि लिल कर "कूट लौली" भी अपनाई है। कवि ने प्रसंग के अनुसार शृंगार वर्णन में कोमल काँठ पदावली और बीरता वर्णन में श्रीजमयी या ढावली का प्रयोग किया है। सिलह, हवाई जोर, बरकाव, खव गये भरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग भी किया गया है कि तु इनके भाषा की मर्यादा कहीं भंग नहीं हुई है।

(४) वस्तु वर्णन—

५४ : ५। कवि की वस्तु वर्णन में विशेष रुचि है। हरिमहिमा-वर्णन^४, नगर-वर्णन के अंतर्गत कुन्दनपुर वर्णन^५ और द्वारिका वर्णन^६ नायिका का नल शिव और सौन्दर्य वर्णन^७, युद्ध वर्णन^८, प्रकृति वर्णन के अंतर्गत सध्या^९ प्रभात^{१०} प्रीत्य^{११}, वर्षा^{१२} शरद^{१३}, शिशिर^{१४}, हम त^{१५} और वसंत^{१६} में कवि ने अपने विशद सांसारिक अनुभव शास्त्रीय ज्ञान और भावुकता का पूर्ण परिचय दिया है। वेलिगत प्रसंगों में कवि क व्याप्ति और वाकुन^{१७}, बचक^{१८}, सगीत-मृत्यु और नाट्य शास्त्र^{१९}, योगशास्त्र^{२०}, पुराण^{२१} काव्य^{२२}, राजनीति^{२३}, कर्मकाण्ड^{२४}, भाषा^{२५}, कृषि^{२६}, बुनाई^{२७}, लुहारी^{२८}, सुनारी^{२९}, सिक्लीगरी^{३०} सामाजिक रीतियाँ^{३१} आभूषण^{३२}, व्यापार^{३३}, रग^{३४},

१ - पद्य सं० ३, ४, ४५, १२६ १३० १६८।

३ - पद्य सं० २२२।

५ - पद्य सं० ३८-४०।

७ - पद्य सं० १२-२७।

८ - पद्य सं० १६२-१६४।

११ - पद्य सं० १८७-१९४।

१३ - पद्य सं० २०६-२२५।

१५ - पद्य सं० २२८।

१७ - छंद ७०, ६३, ६६ १८८ १९३ २१२ २२२ २२६, २८६।

१८ - छंद २८५, २८५।

२० - छंद १५, १८०, १८५, २०८।

२१ - छंद ८४ ६८ १०६ २१६, २६६।

२२ - छंद २७३, २७४, २७५, २७६।

२३ - छंद २४६ २४५।

२४ - छंद २९७।

२७ - छंद १७१।

२९ - छंद १७४।

३१ - पद्य १४०, १४२ १४३ १४८ २०६, २१० २१३ २१४, २२७ २२६, २३८।

३२ - पद्य १६३ १६४ २०६, २१० २०६।

३४ - छंद १ ६६।

२ - पद्य सं० १३४।

४ - पद्य सं० १-७।

६ - पद्य सं० ४८-५१।

८ - पद्य सं० ११३-११३।

१० - पद्य सं० १८२-१८६।

१२ - पद्य सं० १२, १६४-२०४

१४ - पद्य सं० २२६-२२८।

१६ - पद्य सं० २२६-२६८।

१६ - छंद २४६, २४८।

२४ - छंद २८०।

२६ - छंद १२३, १२७।

२८ - छंद १३२।

३० - छंद ८६।

३६ - छंद १६४ २००, २०३, २४७।

आदि के ज्ञान का भी परिचय मिलता है। काव्यगत बलान कथा-प्रवाह में कहीं बाधक नहीं हैं और इतने काव्यगत सौंदर्य की सफल सृष्टि हुई है।

(च) अलंकार सौंदर्य—

५५ ५। वेलि का प्रत्येक पद सम्पूर्ण रूप में अलंकृत है। कवि के अलंकार निरूपण में सर्वत्र स्वाभाविकता है और अलंकारों का प्राचुर्य होते हुए भी प्रत्येक पद में भाव पक्ष की कहीं हानि नहीं हुई है। अलंकारों के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

अनुप्रास— १ तेज कि रतन कि तार कि तारा,
हरि हस-सावक सस-हर हीर ? ^१

२ बहु बिलम्बो वीछडतइ बाला, बाल सघातो बालपण ।^२

३ कामणि कुच कठिण कपोल करी किरौ,
वेस नबी विधि वाणी बलाणी । ^३

श्लोक— १ सिखर-सिखर मइ मन्दिर सिर । ^४

२ हरि-गुण भणि ऊपनो जिका हरि । ^५

३ कलस भीस करि करि कमल । ^६

४ आदर करे जु आदरी । ^७

५ गुण-मोती मखतूल-गुण । ^८

श्लोक— १ कत-साजोगणि किमुख कहिया, विरहणि कहे पलास बण ^९ ।

सयोगिनी— (१) ढाक को देखकर उल्लसित होकर बोली उठी—

(२) कि सुख। कैसा सुख है ?

वियोगिनी— (१) ढाक को देखकर तन में क्षीण होकर बोली

(२) पलाश मास को खाने वाला राक्षस है।

२ सूरिज ही त्रिख—आमरित^१

१ - छन्द २७।

२ - छन्द २४।

५ - छन्द सं० २९।

७ - छन्द सं० ३।

९ - छन्द सं० २५६।

२ - छन्द १७।

४ - छन्द सं० २०४।

६ - छन्द सं० ४९।

८ - छन्द सं० ८१।

१० - छन्द सं० १८८।

[सूरज ने (१) वृष राशि का आश्रय ले लिया है। मानों गर्मी से डर कर (२) वृष का आश्रय ले लिया है।]

“वयण सगाई” का दालवार का प्रयाग भी सबत्र हुआ है। उसके माधारण और प्रसाधारण दोनों ही रूप देखे जा सकते हैं—

साधारण— १ कस छूटी छुद्र घटिका । ^१

२ चल-पत्र-पत्र थिउ दुज देखे चित । ^२

३ जाणे सदनि-सदनि सजोयी । ^३

प्रसाधारण—१ तिणी आप ही करायउ आवर । ^४

२ लाजवती अ गि अहेह लाज विधि । ^५

३ हेक बडउ हित हुबइ पुरोहित । ^६

मुद्र, कृपि वसन्त यौवन सोहार वृष्ण-बुलाहा आदि वर्णित रूपक के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

५६ ५। पृथ्वीराज के अलंकार निरूपण क विषय में उल्लेखनीय है कि वे अपनी उपमाओं में न केवल उपमेय उपमान का साधर्म्य कथन करते हैं प्रत्युत दोनों के आसपास के पूरे वातावरण को ही शब्दों में सा उतारते हैं जिससे भाव मजबूत होकर जगमगाने लगता है। यथा—

साग सखी सील कुल बेस समाणी पेखि कली पदिमणी परि ।

राजति राजकु अरि राय अ गण उडियण बीरज अम्बहरि ॥ ^७

यहां पर कवि ने रूिमणी की उममा चन्द्रमा से देकर ही अपने काय की इतिश्री नहीं करदी है, वरन् रूिमणी की सखियों की समता तारो से दिनाकर दोनों के आसपास के समूचे वातावरण का गन्द चित्र सामने सा रखा है। ^८

१ - छंद सं० १७८ ।

२ - छंद सं० ७१ ।

३ - छंद सं० १०१ ।

४ - छंद सं० १६८ ।

५ - छंद सं० १८ ।

६ - छंद सं० ३५ ।

७ - छंद सं० १० ।

८ - राजस्थानी भाषा और साहित्य द्वितीय संस्करण, पृ० १६६ १६७ ।

(छ) छन्द प्रयोग—

५७ ५। वेलि के मालोचको न वेलि क उच्चारण का 'वेलियो गीत' के आधार पर परीक्षा करत हुए पृथ्वीराज द्वारा नियम भंग होना लिखा है अथवा इसका विषय में मोन धारण किया है। स्वर्गीय सूयकरण जी पारीक न स्व मपाणित वेलि की भूमिका म लिखा है—

वेलि के सब छन्दो की सूक्ष्म ध्यानबर्न करने पर जात होगा कि कवि ने इस शास्त्ररिति के जटिल बन्धन को कर्क स्थाना पर भंग किया है।^१ डा० भानुद प्रकाश जी दीक्षित ने "रघुनाथ रूपक गीतारो" के अनुसार छोटा साणोर का लक्षण बताते हुए लिखा है— 'इसके प्रयोग म कवि ने पूरी स्वतन्त्रता बरती है। विषम चरण का नियम पालन करते हुए भी सम चरणो की १३-१४ तथा १५ मात्राओ का भी रखा है। किंतु दूसरी और चौथी पक्तियों की सम मात्रिकता कभी नष्ट नहीं होने दी है। भल ही १५ मात्राओ तथा अत म गुरु लघु के स्थान पर लघु लघु के साथ १३ मात्राए तथा लघु गुरु के साथ १४ मात्राओ का प्रयोग करके स्वतन्त्रता प्रदर्शित की है।^२ श्री मोतीलाल जी मेनारिया न वेलि का समीक्षा करत हुए इसका वेलियो गीत म रचित बताया है।^३ श्री नरोत्तमदास जा स्वामी न लिखा है— वेलि में गीत का प्रयोग नहीं हुआ है किंतु गीत के आधार पर बने हुए छन्द का प्रयोग हुआ है।^४ इस प्रकार श्री स्वामी जी ने वेलि में प्रयुक्त छन्द का नाम नहीं बताया है। डा० हीरानाल जी माहेश्वरी ने भी इसी प्रकार लिखा है— "इस वेलि में चारण साहित्य के 'छोटी साणोर गीत के एक भेद 'वेलियो' के आधार पर बने हुए छन्दो का प्रयोग हुआ है।^५ श्री सीताराम जी सालस ने वेलि की समीक्षा करते हुए इसमें प्रयुक्त छन्द के विषय में मोन धारण कर लिया है।^६ श्री भूतारामजी साकारिया ने लिखा है— "छोटा साणोर छन्द के मुख्य चार भेदो म से वेलियो और खुड्ड साणोर दो भेद हैं। वेलि में दोनो छन्दो का सुन्दर प्रयोग हुआ है अतएव यह कहना गलत होगा कि वेलि केवल वेलियो छन्द में ही लिखी गई है। यह अधिक समुचित रहेगा कि वेलि के छन्द को हम छोटा साणोर ही माने।"^७ इस प्रकार श्री साकारियाजी का मत अस्पष्ट है।

१ - स्व मपाणित वेलि हि दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद भूमिका पृ० १२०।

२ - स्व मपाणित वेलि विश्व विशालय प्रकाशन, गोरखपुर, भूमिका पृ० ६७-६८।

३ - राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १२४।

४ - स्व मपाणित वेलि, प्रस्तावना, पृ० ७१।

५ - राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १५६।

६ - राजस्थानी हिंदी पाठकोष प्रस्तावना पृ० १३८ १४१।

७ - राजस्थान भारती बीकानेर भाषण ७, भाग १, पृ० १२३ १२४।

१८ ५ । चारण कवियों में 'गीत' नामक छन्द का परिचय मनाया है । "रघुवर जस प्रकाश" नामक राजस्थानीय एक * शास्त्राचार्य ग्रन्थ में गाथा क १४ प्रकारों का चारण घोर उदाहरण महिा वर्णित है । किन्तु एक प्रकार लोटा साणार' भी है । लोटा साणार नामक न त चारण कविता को बहुत प्रिय रहा है । लोटा साणार क चार भेद माने गये हैं—

चार भेद तिए रा चये, कवियण चह सोहूब ।
समझ वेलियो सोहणी पूद, जागडा, पूब ॥^१

१९ ५ । कवि किसनाजी झाड़ा ने लोटा साणार क सहाय्य बगान हुए उमक भद इस प्रकार कहे हैं—

ब्रह्मा— कहुजे गुण माहरा कठे, वण कठेव लघुवत ।
सुज छाटा साणार सो, कवि मत प्रथ कहत ॥
भेद च्यार जिणरा भणी घाद वेलियो १ अग्र्य ।
कवी सोहणी २ छुडद ३ कहु यल जागडी ४ विसव्य ॥^२

किसनाजी झाड़ा ने वेलियो गीत का एक भेद "मिख वेलियो" भी बताया है—

अथ गीत मिख वेलियो लछण

ब्रह्मा— समिल वेलियो सोहणा, सभ फिर खुडद समेळ ।
मिख वेलियो कवि मुणी, भल जागडो न मेळ ॥^३

अर्थ—वेलियो १ । सोहणी २ । खुडद ३ । तीन ही गीत थेना वणी जिण गीतरो नाम मिख वेलियो कहीजे । यां गीतो जागडा रो इहो वणी नहा ने वणे तो जान बिरोध दोष कहीज । यू सारो समझ सेणी ।

अथ गीत मिख वेलियो उदाहरण ।

गीत— बू डनां सरवर फील उवारे, गुण ते वेद उघारे गाय ।
धना नामदे सदना उघारे, नेक जना तारे रघुनाथ ॥
गणका अजामेल सवरीगण, दुख अथ ओष मिटाय दिया ।
किता अनाथ सुनाथ कपाकर, कोसलराज कु वार किया ॥

१ — किसनाजी झाड़ा विरचित, सं० सीताराम जी लालस, प्रका० राजस्थान प्राण्य विद्या-
प्रतिष्ठान जोधपुर, पृ० ११६ ३२४ ।

२ — कवि मठाराम कृष्णनाथ रूपक गीतारो, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

३ — रघुवरजस प्रकास, पृ० १६८, छंद सं० ६४, ६१ ।

४ — वही, छंद सं० ६६, पृ० १६८ ।

सोता हरण भभीखण रिक्सुत, लख जटाय कोसिक मियलेम ।
 हेर हेर लज रखी हुलासा, घणियप कर दासा अरवधेस ॥
 रख जन अमै नास जमहरण, सुज ऊवरणा जगत सहै ।
 सू पी सरम चरण तो सरणा करणनिघ किव 'किसन' कहै । १

६० ५ । किसना जा झाडा ने मिश्र बेलिया गीत म बेलिया, सोहणा घोर खुड^३
 मामक साणोर के तीन उपभेदा का मिश्रण होना बताया है और जागडो के त्रिण निष्ठा है—
 "मल जागडो न भैळ । इय प्रकार पृथ्वीराज न अपनी बेलि म जागडा साणोर का
 प्रयोग नही करते हुए बेलियो, सोहणा घोर खुड^३ साणोर के मिश्रण से बने 'मिश्र बेलियो'^३
 गीत का प्रयोग किया है । किसना जो भाटा ने बेलियो, माहणा घोर खुड^३ क चरण रस
 प्रकार लिये है —

दूहा—धुर तुक अठार मत, बीजी पनरह बेख ।
 तीजी सोलह चतुरथी, पनरह मता पेख ॥
 सोलह पनरह अन दुहा गुरु लघु अ त ब्याण ।
 कहै एम सुकवी सकल जिकी बेलियो जाण ॥^२

परम—जिण गीत र पेहना तुक मात्रा १८ होय, दूजी तुक मात्रा १५ होय, तीजा
 तुक मात्रा १६ होय चौथी तुक मात्रा १५ होय । दूजा भाग दूहा मात्रा १६।१।१।१।१।१।
 तुक के अत मात्र गुरु अ त लघु आवे जिण गीत रो नाम बेलियो साणोर कहीजे ।

अथ चौथा सूहणा साणोर को लक्षण

दूगो—धुर तुक मह अठार मत, चवद सोल चवदेण ।
 सोल चवद लघु गुरु मोहर, जाण सोहणा जेण ॥^३

परम—धुर कहता पहली तुक मात्रा १८, अठारे होवे । दूजी तुक मात्रा १४, चव^३,
 होय । तीजी तुक मात्रा १६, सोन, हावे । चौथी तुक मात्रा १४, चवद होवे । पछे दूजा दूहा
 मात्रा १६, साल, १४, चवदे, ई क्रम होवे जी क मात्र लघु अ त गुरु तुका होवे जा गीतको
 नाम सोहणा साणोर कहे थै ।

अथ सातमो गीत खुडद छोटो साणार लक्षण ।

दूहो—धुर मता अठार घर, तदस साल तदसेण ।
 दु लघु अ त माणोर लघु, जप खुडद किव जेण

१ - रघुवर जस प्रकार, छ^३ सं० ६७, पृ० सं० २०० ।

२ - वही, छ^३ सं० ६८ ६९, पृ० २०० ।

३ - वही, छ^३ सं० ७१, पृ० २०१ ।

५८ ५। चारण कवियों ने "गीत" नामक छंद का प्रथम घटनाया है। "रघुकर जस प्रकाश" नामक राजस्थानी छंद नास्थाय प्रथम गीत क ६४ प्रकारों का मक्षण घोर उदाहरण सहित वर्णन है। जिनमें एक 'प्रकार छोटा गाणार' भी है। छाटा गाणोर नामक गत चारण कविया को बहुत प्रिय रहा है। जो। गाणार क चार भेद माने गये हैं—

चार भेद तिए रा चये कवियण बढ प्रीतूब ।
समझ वेलियो, सोहणी पूद, जागडा, पूब ॥^१

५९ ५। कवि किसना जी माड़ा न छाटा साणोर क मक्षण बतान हुए उसक भद दस प्रकार कहे हैं—

ब्रह्मा- बहजे गुरु माहरा कठे, वण कठेक लघुवत ।
सुज छाटा साणोर सो, कवि मत ग्रथ कहत ॥
भेद च्यार जिणरा भणी, भाद वेलियो १ अथव ।
कवी सोहणो २ खुडद ३ कह वल जागडो ४ विसक्ख ॥^२

किसना जी माड़ा न वेलिया गीत का एक भेद "मिख वेलियो" भी बताया है—

अथ गीत मिख वेलियो लक्षण

ब्रह्मा- समिल वेलियो सोहणा, समझ फिर खुडद समेळ ।
मिख वेलियो कवि मुणो, भल जागडो न मेळ ॥^३

प्रथम-वेलियो १। सोहणी २। खुडद ३। तीन ही गीत भेला कणी जिण गीतरो नाम मिख वेलियो कहोजे। यां भेला जागडा रो दूही कणे नही ने बखे तो जात बिरोध दोष कहीज। यू सारी समझ लेणो।

अथ गीत मिख वेलियो उदाहरण ।

गीत- बू डतो सरवर फोल उबारे, गुण तै वेद उचारे गाय ।
धना नामदे सदना उधारे, नेक जना तारे रघुनाथ ॥
गणका अजामेल सबरीगण, दुख अध ओध मिटाय दिया ।
किता अनाथ सुनाथ कृपाकर, कोसलराज कु वार किया ॥

१ - किसनाजी माड़ा विरचित, सं० सीताराम जी लालित, प्रका० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ० ११६ ३२४ ।

२ - कवि मठाराम कृत रघुनाथ रूपक गीतारो, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

३ - रघुवरजस प्रकाश, पृ० १६८, छंद स० ६४, ६५ ।

४ - बहो छन्द स० ६६, पृ० १६८ ।

सीता हेरणा भभोखण रिबसुत, लख जटाय कासिक मिथलेस ।
 हेर हेर लज रखी हुलासा, घण्डियप कर दासा अबधेस ॥
 रख जन भ्रमै त्रास जमहरण सुज ऊबरणा जगत सहै ।
 सू पी सरम चरण तो सरणा करणनिध किव 'किसन' कहै ।^१

६० ५ । किसना जी भाडा ने मिश्र वेलियो गीत मे वेलियो, सोहणा और खुड नामक साणोर के तीन उपभेदा का मिश्रण होना बताया है और जागडो के लिए लिखा है—
 "भल जागडो न भैळ" । इस प्रकार पृथ्वीराज ने अपनी उल्लिखित जागडा साणोर का प्रयोग नहीं करते हुए वेलियो, साहणा और खुड साणोर के मिश्रण से बने 'मिश्र वेलियो' गीत का प्रयोग किया है । किसना जी भाडा ने वेलियो, माहणा और खुड का लक्षण इस प्रकार दिये हैं —

दूहा—मुण धुर तुक अठार मत, बीजी पनरह बेख ।
 तीजी सोलह चतुरथी, पनरह मता पेख ॥
 सोलह पनरह अन दुहा गुरु लघु अ त बन्वाण ।
 कहै ए म सुकवी सकल जिकी वेलियो जाण ॥^२

परम—जिण गीत र गेहली तुक मात्रा १८ होय, दूजी तुक मात्रा १५ होय, तीजा तुक मात्रा १६ होय चौथा तुक मात्रा १५ होय । दूजा मात्रा दूहा मात्रा १६।१५।१६।१।
 तुक के अत प्रा गुरु अ त लघु भाव जिण गीत री नाम वेलियो साणोर कहोजै ।

अथ चौथा साहणा साणोर को लक्षण

दूतो—धुर तुक मह अठार मत, चवद सोल चवदेण ।
 सोल चवद लघु गुरु मोहर, जाण सोहणो जेण ॥^३

परम—धुर कहता पहली तुक मात्रा १८, अठार होवे । दूजी तुक मात्रा १४ चवद, होवे । तीजी तुक मात्रा १६ सोल, होवे । चौथी तुक मात्रा १४, चवद होवे । पछे दूजा दूहा मात्रा १६, साल १४, चवद, ई क्रम होवे जी क मात्रा लघु अ त गुरु तुका होवे जी गीतको नाम सोहणी साणोर कहे छै ।

अथ सातमो गीत खुडद छोटी साणोर लक्षण ।

दूहो—धुर मता अठार धर, अदस साल अदसेण ।
 दु लघु अ त साणार लघु जप खुडद किव जेण

१ - रघुवर जस प्रकास, ख० सं० ६७, पृ० सं० २०० ।

२ - वही, ख० सं० ६८ ६९, पृ० २०० ।

३ - वही, ख० सं० ७१, पृ० २०१ ।

४ - वही ख० सं० ७७ पृ० २०४ ।

घरप-जीके घात कुछ मात्रा धठारे हाय । दूरी कुछ मात्रा तरे हाय । तारी कुछ मात्रा
 मोन हाय । पीयो कुछ मात्रा तेरे होय । पदवां दूरी पना सोन मात्रा । पन तरे मात्रा, केर
 भीने, पर तरे ई कमगू हाये । मुहात गेय पयु होये या गात का नाम साटा सांगार
 फसमग बपान ।

६१ ५ । 'बेलि बिसन दबिमगो रो' मे 'मिग बेलिया' भाषण प त व स तगत
 बनिदा माहगा प्रोर मुह सागोर नापण उरभग का विवण इन प्रकार हुआ है—
 ? बेलिया - जाइ जळद पटळ दळ सापळ ऊमळ, [१८]

धुरइ निसाण साइ घण घार । [१५]

प्रोळि प्राळि तोरण परटीजइ, [१६]

महइ किरी तडव गिरी मार [१५] ॥ १

२ सोहणो - काळी बरि वाठळि ऊमळि वारण, [१८]

घारे म्वावण घरहरिया । [१८]

गळि चालिया दया दिसि जळप्रभ, [१९]

पमिन, विरहणि नइण घिया [१५] ॥ १

३ शुद्ध साणोर - जिणि सस सहस फण फणि फणि बि बि जिह । [१८]

जोह जोह नव नवउ जस । [१९]

तिणि हो पार न पायउ त्रीकम, [१६]

बयण डेडरा कितउ वस ॥ १ [१३]

६२ ५ । महाराज पृथ्वीराज जैसे काव्य ममज्ञ प्रोर शास्त्र राति का सपूर्ण रूप में
 पालन करने वाले कवि अपनी बनि 'असी वृति में छन्द शास्त्र सम्बन्धी नियम का भंग कर
 स्वतन्त्रता नहीं रख सके थे । वेनि को प्राचीनतम प्रतिया क माधार पर प्रामाणिक युद्ध पाठ
 प्रकाशित होने पर पात होगा कि पृथ्वीराज ने 'बेलि' मे 'मिस्त्र बनियो गीत' नामक छन्द
 का प्रयोग किया है जिसकी प्रोर सभी तक हमारे मालोचकी का ध्यान धारकित नहीं हुआ है ।

गीत" सम्बन्धी शास्त्रीय नियम के अनुसार गीत में नूतनतम तीन 'दावा' का प्रयोग होना
 चाहिये ५ प्रोर अधिकतम दानों की कोई सीमा नहीं है । 'बलि' के छन्द प्रयोग के विषय में
 उल्लेखनीय है कि सम्पूर्ण प्रबन्ध काव्य ३०५ द्वालो के एक ही छन्द 'मिस्त्र बेलियो' में पूर्ण
 हुआ है ।

१ - पद्य सं० ५० ।

२ - पद्य सं० १६५ ।

३ - पद्य सं० ५ ।

४ - श्री नरोत्तमदास श्री स्वामी स्व सम्पादित बेलि, प्रस्तावना, पृ० ७० ।

१ (ज) बेलि का काव्य रूप—

६३ ५। महाकाव्य के लक्षण निर्धारित करने हुए प्राचार्य दामो ने लिखा है कि अनेक सर्गों में निबद्ध काव्य को महाकाव्य कहा जाता है।^१ हेमचन्द्राचार्य ने इस विषय में लिखा है— महाकाव्य संस्कृत भषाप्रयोग और प्राण्य भाषाओं में होते हैं, यह मग, प्राश्नास, सधि और भवस्कंधक वच्य होता है, इनमें सर्गों के अंत में अति बृहत् होते हैं और यह गण्य वचि-य से युक्त होता है।^२ प्राचाय विश्वनाथ ने महाकाव्यात् विशेषतः इय प्रकार बनाई है—“जिसमें सर्गों का निबन्धन हो उसको महाकाव्य कहते हैं। इसमें नायक देवता भववा सद्वशोत्तम अत्रिय होता है, जिमें घोरोगातत्वादि गुणों का समावेश हो। कही एक वश के सत्कुनीन अनेक राजा भी नायक होते हैं। महाकाव्य में शृंगार, चोर भववा शांता रसा में से एक भगीरथ होता है और भव रथा का गीणुका ये समावेश होता है। महाकाव्य में नाटक की समस्त मरिशा रता है। महाकाव्य का कवचतुर्ग— य पद, काम और मोक्ष में से कोई एक होना चाहिए। महाकाव्य के प्रारम्भ में प्राचीर्वाद, मनकार और वय वधु का निर्देश होना चाहिए। इसमें कही खना की निरा और सभना का गुण वचन भी होता है। महाकाव्य में न बहुत छोटे और न बहुत बड़े कम से कम प्राठ सर्ग होते हैं। सर्ग में एक ही छंद होता है किंतु अतिम अय अतिम अय में होना चाहिए। कहीं कहीं सर्ग में अनेक छंद भी होते हैं। सर्गों में प्राचीर्वाद का समावेश होना चाहिए। महाकाव्य में सभ्या भूम चंद्र रात्रि दीप, अंधकार अति प्रात काल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, पट्टकतुर्णन सनुद मयग, विधोव मुनि, स्वग, नेर, यत्न, सजान, यात्रा, विशाह मत्र पुत्र अग्युप प्राति का वश तक सभव हो सागोराग वलान् होना चाहिए। महाकाव्य का नायक रग कवि, चरित्र भववा अरिचनायक के पाजार पर होना चाहिए। महाकाव्य का नाम इसके प्रतिरिक्त भी होता है। सर्ग का नायकरण सर्गगत कथा पर होता है। काव्य में सर्गों का नाम प्राश्नास भी होता है। प्राक्त काव्या में सर्गों का नाम प्राश्नास होता है जिसमें एक रता एव गतिरुत्तर ररुते हैं। अत्रयश काव्यो में सर्गों का नाम कुडकह होता है और छंद भी अत्रयश के योग्य अनेक प्रकार के होते हैं।^३

१ - सगध बो महाकाव्यमुच्यते, १ १४।

२ - काव्यानुशासन, अध्याय ६।

३ - साहित्यदर्पण, पऽ परिच्छेद, दशोक्त सं० ३१५ ३२६।

६४ ५। वाचार्थ विरचनाने लक्षणात् के लक्षण निवारित करते हुए निम्ना है
 (क) काव्य के एक अंग का अनुकरण करने वाला लक्षणात्म्य होता है।^१

६५ ५। पृथ्वीराज वृत्त वेत्ति में महाकाव्यगत कवन निम्नलिखित लक्षण
 मिलते हैं—

- १ नायक श्रोत्रेण नायकोविन गुणा से सम्पन्न होने हुए पूर्ण ब्रह्म परमे
 श्वर हैं।
- २ वेत्ति में शृंगार का विस्तृत निर्याग होने हुए भी भक्ति का प्राधान्य है
 और अय रसो का गौण रूप में समावेश हुआ है।
- ३ काव्य की शैली पूर्ण रूपेण अलङ्कृत है।
- ४ काव्य का नामकरण सम्बन्धित कथावस्तु के आधार पर हुआ है।
- ५ "मिस्र त्रैलियो गोन" नामक छंद में रचा गया है।
- ६ वेत्ति के पारम्भ में मातावरण, आशोर्बचन और वस्तु निर्देश आदि हैं।
- ७ वेत्ति की कथा वस्तु लोक प्रसिद्ध और सज्जनाश्रित है।
- ८ वेत्ति में मन्त्रणा, सन्देश, सेना युद्ध, यात्रा नगर, प्राण, सन्ध्या, विवाह
 आदि के वर्णन हैं। वेत्ति धर्म, अय, काम और मोक्ष प्राप्ति में सहायक
 मानी गई है।

६६ ५। वेत्ति में महाकाव्यगत उक्त प्रकार के लक्षण होते हुए भी महाकाव्य जैसा
 कथा विस्तार नहीं है और यह सगर्भ भी नहीं है। परन्तु प्राचाय विश्वनाथ द्वारा निर्देशित
 लक्षणा के अनुसार वेत्ति को लक्षणात्म्य कहना ही उचित होगा।

(क) पृथ्वीराज रचित वेत्ति और कर्णामह माखला रचित वेत्ति

६७ ५। प० नरोत्तमरायणजी स्वामी ने पृथ्वीराज रचित वेत्ति की द्विगल में लिखित

वैलियों में प्राचीनतम माना है।^१ किंतु पृथ्वीराज की वैलि से पूर्व सादू रामा रचित वैलि राणा उष्मसिंह री २ की रचना वि० स० १६२८ मयवा इससे पूर्व मानी गई है।^३ पृथ्वीराज और कर्मसिंह की वैलियों की तुलना करते हुए डा० हीरालाल माहेस्वरी ने लिखा है— “महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कर्मसी की वैलि का राठौड़ पृथ्वीराज ने अनुकरण किया है, उन्होंने सीधी प्रेरणा वही से पाई है। अपनी वैलि को लिखते समय, पृथ्वीराज के सम्मुख एक आदर्श के रूप में यह वैलि अवश्य रही है।^४ पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि उक्त दोनों ही वैलिमा के रचनाकाल अद्यावधि अप्राप्य है। प्रतिलिपि काल प्रथम ही कर्मसिंह कृत वैलि का वि० स० १६३४ मिलता है।^५ और यह प्रतिलिपि काल पृथ्वीराज कृत वैलि के उपलब्ध प्राचीनतम प्रतिलिपि काल वि० स० १६६६ से^६ प्राचीन है। प्रतिलिपि काल के आधार पर ही किसी कृतिका रचनाकाल निर्धारित नहीं किया जा सकता और न इसी आधार पर किसी कृति को किसी इ. स. कृति से पूर्ववर्ती कहा जा सकता है। ऐसी अवस्था में डा० हीरालाल माहेस्वरी द्वारा कर्मसिंह कृत वैलि का अनुकरण पृथ्वीराज कृत वैलि में निर्धारित करना समीचीन नहीं माना जाता। कर्मसिंह कृत वैलि का अंतिम २२ वा “दाला” पृथ्वीराज कृत वैलि के २०४ श्लोक “दाले” के रूप में उपलब्ध होता है। यह दाला शेषक मयवा लिपिकर्ता को भूल प्रतीत होता है। उक्त दोनों ही वैलिया काव्य कला, भाव और भाषा की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं।

ज. किसन रक्षिमण्यो री वैलि की टीकाए

६८ ५। महाराज पृथ्वीराज कृत “किसन रक्षिमण्यो री वैलि” की लोक प्रियता और प्रसिद्धि का प्रमाण इस पर लिखी गई विभिन्न टीकाओं से मिलता है। वैलि का जैन धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है तथापि श्री मगरचन्द नाहटा के मतानुसार जैन कवियों द्वारा रचित दो संस्कृत और चार राजस्थानी टीकाए उपलब्ध होती हैं।^७

६९ ५। वैलि की प्रधान टीकाएँ इस प्रकार हैं—

- १ - स्व संपादित वैलि, संपादकीय प्रस्तावना, पृ० २३।
- २ - ए डिस्ट्रिक्टिस केटलाग आफ इण्डिक लिटरेचर डा० तेस्तीतोरि, खण्ड २, भाग, १ पृष्ठ ६।
- ३ - डा० हीरालाल जी माहेस्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १६२।
- ४ - वही पृ० १६२।
- ५ - अनूप संस्कृत साइबेरी, बीकानेर, ह० प्र० स० ६६।
- ६ - समय जन प्रयालय, बीकानेर की प्रति।
- ७ - राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १६२ १६६।
- ८ - राजस्थान भारती, बीकानेर, पृथ्वीराज राठौड़ जयंती विनोबाय का परिनिष्ठाक, मई १९६१, पृ० २६।

१ साक्षा जी चारण की टीका

साक्षा जी चारण ने राजस्थान की दू टाड़ी बोली म वेति की टीका मयत् १६७३ में लिखी थी। इस टीका का उल्लेख बाघव सारग ने सयत् १६७८ विजयमी म पालनपुर म रचित अपनी सरकृत टीका में भी किया है। साथ ही बाघनाथार्य जयकीर्ति ने सयत् १६८६ माघ मास म रचित अपनी टीका में भी साक्षा चारण की टीका का उल्लेख किया है। जिसी टीका मे साक्षा चारण का नाम बर्ता रूप मे उपलब्ध नहीं था जिससे साक्षा चारण की टीका अप्राप्य मानी जाती थी। श्री ६५२६ द नाहटा क प्रयत्न से साक्षा जी चारण नाम सहित यह टीका उपलब्ध हो चुकी है।^१ इस टीका का प्रारम्भिक म ग निम्नलिखित है—

ध्यात्वा श्रीगुरुपादपद्मयुगल श्रीमन्पुरारे पदां ।
 वत्या प्रारभत जनप्रियकरी टीकां सत्साम्य कवि ॥
 दृष्ट्वा हृत्सरसी बहुतर तोष कवीशा दधु ।
 दोषो न प्रतियाति यत्र पटुता ता नदसूनुर्भृशम् ॥१॥

साक्षाजी चारण की यह टीका प्रकाशित हो चुकी है।^२

२ कवि सारगकृत सरकृत—टीका

कवि सारग ने 'सुबोध मजरी' नाम से वेति की सरकृत टीका वि० स० १६७८ म पालनपुर नामक स्थान म लिखी। टीकाकार के गुरु पक्षसु दर भी विद्वान घोर कुगत कवि थे जिनकी रचनामा का परिचय जैन गुजर कविप्रो भाग १ ३ मे उपलब्ध होता है। सारग कवि कृत बिल्हण पचाशिका चौपाइ, भाग छतीसी, सोपमकृति (जालोर मे स० १६७५ मे रचित) घोर जगदम्बा छ द भादि उपलब्ध हो चुके हैं।^३

सुबोध मजरी टीका के आद्यत म ग इस प्रकार है—

श्रीपाश्वजिनमनम्य गोपेज्य दशजमकम् ।
 पृथ्वीराज शुभावल्ली विवद्रेर्ष्यफलाप्तये ॥१॥
 गुणिनो बहव सति सस्कृतज्ञा महाशया ।
 पर प्राकृतलोकोक्ति भापास्वल्पधियो बुधा ॥२॥

१ - सातभवन, जयपुर का हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रह।

२ - वेति ब्रिहत्तन शक्तिमणोरी श्री, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, परिशिष्ट, क।

३ - समय जन प्रयास्य, बीकानेर।

प्रतिम प्र श—

अथ प्रथन्ति मंगलार्थं स्वामिस्वामि-योनमिग्रहणम् रुक्मिण्या रूप लक्षणानि गुणाश्च वक्तुं स्तोतुं च समर्थं तर्गोऽस्ति न कोऽपि पर मया स्वमत्यनुसारत यादृशा ज्ञाता गोविन्दस्य राज्ञी तस्या गुणा तादाशा अथ अर्थे कथिता निबद्धा जलिपता इति यावत् । तेन मुग्धस्यापि ममापरि कृपा कतव्या इति यदुक्तम्—

ब्रह्मा—

वेण विसम्मा केसवा के अमरम्भ मरम्भ ।
घाट न जोवइ जग घहन जोवइ प्रम परम्भ ।

सुबोध मजरी नाम्ना टीकोपक्रतिकारणम्
गुणिनामर्थवत्येषा चिर नन्द्यात्सुसौख्यदा
इति सुबोधमजरी टीका सपूर्णा (सपूर्णा) कृता वाचक सारणेण ।
संवत् १६८३ श्री वीशाखेमासे कृष्ण त्रयोदश्या लिखित सम्पूर्णम् ।

३ कवि कवक लिखित सस्कृत टीका

बेलि पर एक अन्य सस्कृत टीका भी प्राप्त हुई है । इसका टीकाकार यनात है । कन्नडमुत्र में कवि 'कवक' द्वारा स० १७५० वि० में लिखित इस टीका की प्रति प्राप्त हुई है । जिससे प्रकट होता है कि इस समय से पूर्व इसकी रचना हुई अथवा स्वयं लिपिकार ने ही इस टीका की रचना की है । टीका को प्रगति से ज्ञान होता है कि कवक स्वयं सस्कृत का विद्वान एव कवि था ।

४ श्रीसार रचित सस्कृत टीका

श्रीसार अरतरगच्छीय रत्नहप के शिष्य थे । उनके रचित भान द सभि घादि अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं ।^२ श्री सार ने यह टीका शाहजहा के राज्यकाल में लाहौर में द्राविड कृष्णानन्द क लिये विजयादशमी स० १७०३ वि० (?) में पूरी की थी । टीका का प्रारम्भिक और प्रतिम भाग इस प्रकार है ।

प्रतिम— सवज्ञमोश्वरमन्तनमनेकमेक नि स्त यमव्ययमनगमसगमय ।

सिद्धार्थमर्थप्रतिमथरत समर्थं निर्माय करमोशमह नमोमि ॥१॥ । ९

अन्त— कृष्णान दाज्ञया यज्ञे या कृशानन्ददायिनी ।

वल्लीवृत्ति सका चन्द्रार्कीयाव जयताद् भुवि ॥६॥

१ - राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, केन्द्रीय पुस्तकालय, जोधपुर, प्रथ स० ११४ ।

२ - युगप्रधान जिनघट्ट सूरि, सपादक श्री अमरबन्द नाहटा, अभयजन प्रचालय, बीकानेर पृ० ३०७

चिकिपति मन स्थाणु महाराजसदस्युषे ।
कुर्वतु से कायन् जतु ममता पजिका हृदि ॥७॥

इति श्रेयसदाऽ । इदत् १८१६ वर्ष मिति फागुण सुदि ५ दिने ॥ लिखित ।
१० । समय कमल मुनि । श्री पुष्कर मध्य ॥ श्रीरतु । कल्याणमस्तु ॥ १

५ शिवनिधान कृत राजस्थानी टीका

उपाध्याय शिवनिधान ऊरतरगन्धीय जैन विद्वान् थे । इन्का रचनाकाल स० १९१२ से १९६२ तक है और इन्क रचित मनेक ग्रन्थ उपलब्ध हात हैं ।^१ इस प्रकार दिशि धान - त टीका का समय भी स० १९५२ से १९६२ ई० के मध्य मानना चाहिये । टीका का भाषि और मूल इस प्रकार है —

धारि— श्री हर्षसार सद्गुरु चरण जुगोपास्ति लब्धि विज्ञान
विदधाति शिवनिधानो ग्रन्थ वल्ला बालावबोध कृते ॥१॥

टीका— राज श्री कल्याणमल पुत्र राज श्री पृथ्वीराज जी राठौड बन्दी प्रथमी कादि
मंगल निमित्त (श्री कृष्ण रकमणी मंगल बेलिनी आदि इ ग्रन्थोष्ट) इष्ट
देवता ने नमस्कार करइ ।

ग्रन्थ— बस्ती विशरणमत्तत् रचितखरतराशिवनिधाने ।
शीघ्र सद्मि दुष्टा शिष्ट समा भवतीह ॥ १ ॥

शिवनिधान कृत टीका की मूल प्रतियां उपर्युक्त होठि है, यथा—

१ बेलि (बालावबोध), पन् ८१, लेखन स० १-३८, सन् ३०४, राजस्थान प्राच्य
विद्या-प्रतिष्ठान, जाधपुर, ग्रन्थांक ३६४२ ।

२ श्री सता (सतबार्ध) पन् ३३, लेखन स० १७६६, पन् ३०६, राजस्थान प्राच्य
विद्या-प्रतिष्ठान, जाधपुर, ग्रन्थांक २०६६ ।

१ - गोविन्द पुस्तकालय, बीकानेर ।

२ - क - श्री धनरत्नाय माहटा, बाग श्री जिनदत्त सूरि ।

क - राजस्थान भारती, पृथ्वीराज राठोड जयन्ती विधेयांक का परिशिष्टांक, सार्वल
राजस्थानी विश्वविद्यालय, बीकानेर, वर्ष १९६३, पन् ३० ।

३ वेलि (सहनबक) पत्र २८, लेखन सं० १७८६, पद्य ३०४, राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थांक ४०७७ ।

४ श्री कृष्ण हृदयणी वेनि, पत्र २७ लेखन सं० १७०६, सरस्वती भंडार उदयपुर, ग्रन्थांक ८०२ ।

६ जयकीर्ति कृत टीका

जयकीर्ति कृत टीका का नाम "वनमाली बल्छो बालावबोध" दिया गया है । वाचनाधाय जयकीर्ति खरनरपञ्चोय महोपाध्याय सनपतु रर क प्रशिष्य थे । इनकी प्रथम रचनाएँ इस प्रकार हैं —

- (१) जिनराज सूरि रास (सं० १६८१),
- (२) सहायस्यक बालावबोध (सं० १६९३) और
- (३) कानकावाय कथा ।

जयकीर्ति ने अपनी टीका वाचनाय के पुत्र पारस को प्रायः १६८६ वि० के प्रायः मास में बोकानेर के महाराज सूरसिंह जी के राजमहल में की । टीका के प्रादि और प्रथम के प्रथम इस प्रकार हैं —

प्रादि— सरपति माना सपरि नइ प्रपनो सइ गुह पाव ।
 बनमाली बल्छो तणो, बात कहु विगताय ॥१॥
 चावड जाभापा चतुर, चारण लाखड चग ।
 कीधड पहिली वारतिक, अरथि न उपजई रग ॥२॥
 बानेरी भाषा गुपिन, मद अरथ मनि भाव ।
 बात नव क्रिय भासा-विनु, समकणु तिय समभाव ॥३॥

प्रथम— युग प्रधान जिणचद, इद परि दीप्यड दीवड ।
 शीश प्रथम तसु सकलचद इण नामई चावड ॥
 बह भागी उमकाय शीश मुनिवरे शिरोमणि ।
 समयसु दर सिरदार महो प्रतपइ जु दिनमणि ॥
 वादिया राय वाचक प्रवर हरपनदन धण काय चै ।
 सुविनीत वेलि विवरण सुगम वाणारिस जयकोरति वइइ ॥१॥

॥ इति श्री वनमाली बल्छी बालावबोध सपूर्ण ॥ - -

कवि जयकीर्ति कृत टीकाओं की श्रेय प्रतिपाद इस प्रकार हैं —

१ वेलि(बालावबोध), पत्र ३५, लेखन सं० १७६८, पद्य ३०६, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, ग्रन्थांक ३६४३ ।

२ वेन (बालाबोध) पत्र ७३, लेखन सं० १७६६, पृष्ठ ३१२, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रन्थाक ३५४८ ।

३ किसन रकमणी री वेलि (सटीक) पत्र ३६, लेखन सं० १६८३, छंद ३०५, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाक १८१६० ।

७ कुशलधीर कृत टीका

कुशलधीर खलणेश्वरी त्रिनमालिङ्गय मूरि की परंपरा में कल्याणनाम के सिद्ध थे । इ होने वेलि की बालाबोध टीका धरने गिण्य भावनिह के चिद् त्रिनमालिङ्गमी सब् १२३६ विष्णु ने बनाई था । इस टीका का मूल १६६८ में त्रिविध प्रति स्वर्गोत्त पूरण नाहर सग्रह, कन्नडा में सुरलिन है । कुशलधीर रविन टीका के प्राणि धीर म त व उद्धरण इस प्रकार है—

प्राणि—प्रणितात्प्राम्प सरस्वती सदगुह्यव मस्मृत्य ।
 कुर्वे मुरारिवल्पा वातिक मनि सुगममलिनगुण ॥१॥
 प्रतिपदमनुपमवनिपुनमर्ष या वेलि तस्य शोभा स्यात् ।
 मरवेति सकन सुतद निरुपयाम्पर्यमाक्षेपात् ॥२॥

म त — श्रीवृष्ण वेलि विवरण सफल कुशलधीर वाचक कहइ ।
 जे भणइ गुणइ मन मुधि गुणइ लोला लक्ष्मी ते लहई ॥५॥
 इनि श्रीवृष्ण वेलि बालाबोध प्रशस्ति ॥

सवन सोन घडाएवे वप कागुन वरी ६ दिने सुखारे । श्री खरतर गच्छा धीश्वर मडारक री त्रिनमालिङ्गयमूरि राजान सिण्य वाचक वर था कल्याणधीर गणि गिण्य वाचनार्थ श्री क रागनामगणि सिण्य पंडित कुशलधीर-गणित राठउइ कुनावतम पुधोराज कुन श्री नारायण वल्ली बालाबोध कृत गिण्य पंडित भावनिह मुनिना लेवि पंडित तत्रमो प्रमुच मुनि जनेवाच्यमाना विद न दनु ॥ शुभभवतु ॥

कुशलधीर कृत टीका की कविता म य प्रतिया इस प्रकार है—

१ वल्ली, (सविवरण) पत्र ४३, लेखन सं० १८२६, पृष्ठ ३०६, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, ग्रन्थाक ४०७६ ।

२ श्रीवृष्ण वनि, पत्र ५३, लेखन सं० १७१८, छंद ३०५, यहा उदाहरण, रोगही चोक बोकारेण ग्रन्थाक ३३४८० ।

८ सदारग कवि की कुछ टीकाएँ इस प्रकार हैं —

१ क्रिसन चरमणो री वेली (सटीक), पत्र ४१, लेखन सं० १६८३, प्रनूप संस्कृत साइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, प्रयाक ६ । १३ ।

२ क्रिसन चरमणो री वेलि, पत्र १६१-१८३, लेखन सं० १७१८ प्रनूप संस्कृत साइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, प्रयाक ७८ । ७८ ।

९ महान सूरदास द्वारा लिखित टीका —

१ क्रिसन चरमणो री वेलो (मूल) प्रनूप, रचना काल सं० १९६९, प्रनूप संस्कृत साइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, प्रयाक ३८ । ३८ ।

१० सारग कवि की प्रथम टीका —

१ क्रिसन चरमणो री वेलि (संगेक), रचनाकाल १६८३ प्रनूप संस्कृत साइब्रेरी, प्रयाक ६ । १३ ।

११ मधेण गुह द द्वारा मुहना मुकु ददास पठनार्थ लिखी गई —

१ क्रिसन चरमणो री वेलि पत्र १०-११८, रचनाकाल १७१२, प्रनूप संस्कृत साइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, प्रयाक ४५ । ४६ ।

१२ मोहकर्मसिध द्वारा लिखित टीका —

१ क्रिसन चरमणो री वेलि (मूल) पत्र ९१-११३, रचना काल १७२४, प्रनूप संस्कृत साइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, प्रयाक ६ । ६ ।

१३ पेमराज द्वारा लिखित टीका —

१ क्रिसन चरमणो री वेली (मूल), पत्र ९९-१२० रचना काल सं० १७२४, प्रनूप संस्कृत साइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, प्रयाक ७ । ७ ।

१४ मोहनलाल द्वारा हनुमानगढ़ (भटनेर) में लिखित टीका —

क्रिसन चरमणो री वेली, पत्र १६, रचनाकाल १७४०, प्रनूप संस्कृत साइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर प्रयाक ५ । ५ ।

१५ परिभाषा विष्णुविरि द्वारा बाकानेर में लिखित टीका —

१ क्रियत वामणी रो वेनी (मूल), पत्र २०, रचनाकाल १७७८, मद्रास संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, प्रयाग ४।४।

१६ कुशानसिंह द्वारा चुरू में लिखित टीका —

१ क्रियत वामणी रो वेति, पत्र ३७ (५६ ६५), मद्रास संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, प्रयाग ६।६।

१७ वरमलपुर में टीकाकार पुरोहित लक्ष्मण द्वारा लिखित —

१ क्रियत वामणी रो वेति (सटीक), मद्रास संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, प्रयाग २०।२०।

१८ टीकाकार लक्ष्मीवचन द्वारा रचित टीका —

१ वेति (बालावबोध), पत्र ३०, पृष्ठ ३०५, श्री धर्मज जन प्रयाग, बाकानेर।

१९ पं. दानचन्द्र द्वारा रचित राजस्थानी में टीका —

१ पुरोराज वेति (संस्कृत), पत्र ५१, पृष्ठ ३०५ मद्रास संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, रचनाकाल १७२७, प्रयाग ३३।४८५।

२० अज्ञात कर्तृक टीकाएँ —

वेति की ऐसी टीकाएँ भी उक्त होती हैं जिनके साथ कवियों के नाम नहीं मिले हैं। वेति की काव्य प्रतया का विवरण निम्नलिखित है —

१ वल्लो संस्कृत टिप्पण सहित पत्र २०, पृष्ठ ३०१, लेखन सं० १७१०, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जायपुर प्रयाग, ६१४।

२ वेति (मूल), पत्र १५, पृष्ठ ३०४, रचनाकाल १६३७ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जायपुर, लिपि १६ की गना, प्रयाग ८८०।

३ वेति (मूल) पत्र ३४, पृष्ठ ३०६, लिपि सं० १८२७, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जायपुर, रचना सं० १६३७, प्रयाग ८६४।

४ वेति (रस-विनास टीका पत्र २८) पृष्ठ २०, पृष्ठ ३०६, लिपि सं० १८३८, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जायपुर, रचना सं० १६३८, प्रयाग ९८३५।

- ५ वेल (सटीक), पत्र ६६, पद्य ३०४, रचनाकाल १६३८, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, लिपि स० १७६१, ग्रन्थाक ३५५७। २।
- ६ वेलि (साध), पत्र ६७, पद्य स० ३१३, लिपि १७६२ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचनाकाल १६३७, ग्रन्थाक १८६८। ४।
- ७ वेल (साध), पत्र ४६, पद्य ३०२, लिपि स० १७२२, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचनाकाल १६३८, ग्रन्थाक २०७०।
- ८ वेल (साध) पत्र २७ पद्य २६६, लेखन १८ वीं शती, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, रचना स० १६३८ ग्रन्थाक ४०७८।
- ९ वेल (साध), पत्र १६, छंद ३०९, लेखन स० १८१७, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाक ४४५२।
- १० वेल (सटीक), पत्र २४ पद्य ३०४, लेखन स० १७४५, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचना स० १६३८, ग्रन्थाक ४८३८।
- ११ वेल कृष्ण रक्मणी जसवाद् (सटीक), पत्र ४०, पद्य ३०६, लेखन स० १८०० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचना स० १६३८, ग्रन्थाक ८२५३।
- १२ हरिवेल (सार्थ), पत्र ३२, पद्य ३०१, लेखन स० १७४७, राजस्थान प्राच्य- विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचना स० १६३८, ग्रन्थाक ६१४४।
- १३ वेलि राधाकृष्ण चरित्र (मूल), पत्र १६ छंद ३०६, लेखन स० १७८१, राजस्थान प्राच्य, विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाक ६२५२।
- १४ वेलि (मूल), पत्र ४२, (२६-७०), छंद ३०६, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, लेखन स० १७२७ ग्रन्थाक ६२६६।
- १५ कृष्ण रक्मणी शुण्ण भगलाचार वेल (सटीक, सचित्र), पत्र ८२, छंद ३०४, लेखन १८ वीं शती, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, ग्रन्थाक ६४२०।
- १६ वेलि (सभासावबोध) पत्र ३०, पद्य ३०६, लेखन स० १७६६, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, ग्रन्थाक ११०६०।
- १७ वत्सी मूल, पत्र २१ (५६-७६), छंद ३०२, लेखन स० १७१४, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाक ११५८४।

- १८ क्रिसन रुक्मणी रुरु वेलि (सटीक), पद्य १०८, लेखन स० १७४५, राजस्थानी शोध सस्थान, चौपासनी, जोधपुर ।
- १९ क्रिसन रुक्मणी री वेलि (सटीक) पत्र २६४, लिपि स० १६७३, अनूप सरकृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रथाक १८ । १८ ।
- २० क्रिसन रुक्मणी री वेलि (सटीक, सचित्र) पत्र, ३८, लिपि स० १६६७, अनूप सरकृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रथाक ८ । ७ ।
- २१ क्रिसन रुक्मणी री वेलि (सटीक), पत्र १४१ लिपि स० १६६६, अनूप सरकृत लाइब्रेरी, लालगढ बीकानेर, ग्रथाक ६ । १४ ।
- २२ क्रिसन रुक्मणी री वेलि, लिपि स० १७५३, अनूप सरकृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, १६ । १६ ।
- २३ क्रिसन रुक्मणी री वेलि (सटीक, सचित्र) छ द ३००, लिपि स० १८०८, अनूप सरकृत लाइब्रेरी बीकानेर, ग्रथाक ११ । ११ ।
- २४ क्रिसन रुक्मणी री वेलि (सटीक), पत्र ८१, लिपि स० १८२६ अनूप सरकृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रथाक १० । १० ।
- २५ क्रिसन रुक्मणी री वेलि (सटीक), पत्र २३-४६, अनूप सरकृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रथाक १२ । १२ ।
- २६ क्रिसन रुक्मणी री वेलि, पत्र ११५, अनूप सरकृत लाइब्रेरी लालगढ बीकानेर, ग्रथाक १५ । १५ ।
- २७ क्रिसन रुक्मणी री वेलि (सटीक) पत्र १३५, अनूप सरकृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रथाक १६ । १६ ।
- २८ क्रिसन रुक्मणी री वेलि, अनूप सरकृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रथाक ५२ । ५२ ।
- २९ श्रीकृष्ण देव रुक्मणी वेलि (मूल), पत्र २१८ से २२७, लिपि स० १६६६, पद्य स० ३०१, अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर ।
- ३० वेलि रुक्मणीजी वृष्णजी री (सटीक) पत्र ४२ से १२३, पद्य २८७, लिपि स० १७०५, श्री अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर ।
- ३१ क्रिसन रुक्मणीजी री वेलि, पत्र ३०, पद्य ३०३, लिपि स० १७४१, श्री अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर, रचनाकाल १६३६, ग्रथाक ७४०५ ।

- ३२ प्रथोराज कृत वेलि (सटीक, सचित्र), पत्र ८२, लिपि स० १८०७ श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर ।
- ३३ वेलि (सटीक, बालात्रयोध) पत्र २४, पद्य २६६ लिपि स० १८१६, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, ग्रन्थांक ७४०६ ।
- ३४ श्री किसन जी री वेलि, पत्र २१, पद्य ३०४, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, ग्रन्थांक ७४०४ ।
- ३५ किसन रुक्मणी री वेलि, पद्य ३०२, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर ।
- ३६ श्री कृष्ण वेलि (मूल) पत्र ३५ पद्य ३००, लिपि स० १७१६, खजाञ्ची कला भवन पुस्तकालय बीकानेर, ग्रन्थांक २८ ।
- ३७ किसन रुक्मणी री वेलि (सटीक) पत्र ३८, पद्य ३०५ लिपि स० १७४५, खजाञ्ची कला भवन पुस्तकालय, बीकानेर ।
- ३८ श्रीकृष्ण वेलि (सटीक) पत्र २२, पद्य ३०६, लिपि स० १७७२, खजाञ्ची कला भवन पुस्तकालय, बीकानेर ।
- ३९ श्री प्रथोराज वेलि (मूल), पद्य २६५, खजाञ्ची कला भवन पुस्तकालय बीकानेर ।
- ४० किसन रुक्मणी री वेलि (मूल), पद्य १२०, (अपूर्ण) खजाञ्ची कलाभवन पुस्तकालय, बीकानेर ।
- ४१ श्रीकृष्ण रुक्मणीजी री वेलि, पत्र ३१ पद्य ३०३ लिपि स० १७२२, बडा उपाश्रय रागडी चौक बीकानेर, ग्रन्थांक ३६ । ५७७ ।
- ४२ श्री प्रथोराज जी री वेलि (सटीक), पत्र ८२ (१५३ २३४), पद्य ३०१, लेखन स० १७६५, सरस्वती मण्डार उदयपुर, रचना स० १६४४, ग्रन्थांक ४१६ ।
- ४३ वेलि प्रथोराज री (मूल), पत्र ५४ (७३ १२६) पद्य ३०४, लेखन स० १६६६ सरस्वती मण्डार, उदयपुर ग्रन्थांक ५६५ ।
- ४४ किसन रुक्मणी री वेलि (मूल), पत्र ७ (२२४ २३०), पद्य ३००, लेखन स० १७२७ सरस्वती मण्डार, उदयपुर, ग्रन्थांक ५३२ ।
- ४५ वेलि (सचित्र सटीक) पत्र ६७ सरस्वती मण्डार उदयपुर, ग्रन्थांक ६४५ ।

४१ वेलि कृष्ण रकमणी री, लेखन स० १७०१, सररवती मण्डार उदयपूर,
ग्रन्थांक २९३ ।

४७ कृष्ण रकमणी गृण बल (सटीक), पत्र ३८, पद्य १०७, लेखन स० १८००
सररवती मण्डार, कोटा, ग्रन्थांक १५३ । १७ ।

४८ क्रिसन रकमणी वलि (सटवा सचित्र), पत्र ३६, पद्य ३०५, रचना स०
१६३७, मुनि श्री पुष्य विजयजी राप्रहू, महमदाबाद ।

८-वेलि की सस्तुति

७० ५ । कविहर पृथ्वीराज कृत "वैली क्रिसन रकमणी री" एक अल कवि की उल्लेख और सरस रचना है जिसकी प्रगल्भा में देश-विदेश के अनेक विद्वानों और भक्तजनों ने अपना उद्गार प्रगट किया है । पृथ्वीराज के समकालीन कवि दुःसा जी काटा न बाल की पंचमवैर और उनीसवाँ पुराण लिखत हुए पृथ्वीराज के कवनों की व्यास के समान बताया है—

गीत

रकमणि गुण लक्षण रूप गुण रचवण, वेलि तास कृष्ण करे बखाण ।
पाचमो वेद भाखियो पीथळ, पुणियो उगलीसमा पुराण ॥ १ ॥
केवल भगत प्रथाह कलावत, तै जु क्रिसन श्रीगुण तवियो ।
चिहु पाचमो वेद चालवियो, नव दूणम गति नीगमियो ॥ २ ॥
ये कहियो हरभगत प्रियोमल, अगम अगोचर अति अचड ।
व्यास तणा भाखिया समोवड, ब्रह्म तणा भाखिया बड ॥ ३ ॥ १

प० नरोत्तमदास जी स्वामी के लिखानुसार एक ह० प्र० में उक्त गीत गाश्च रामसिंह
कृत लिखा गया है । २

७१ ५ । कवि मोहनराम जी ने वेलि और पृथ्वीराज की रस्तुति में लिखा है कि
वेलि की रचना में पृथ्वीराज को समस्त देवी-देवतामा की प्रेरणा-शक्ति रही है—

गीत

रकमणी तणी वेलि पृथीमल रची, उदधि वास कीधी उदरि ।
बुधि गजमुख बोलिवे विदुखा, पुखिया वाइक व्यास परि ॥ १ ॥

१- राजस्थान भारती बीकानेर, भाग ७, अंक १-२, पृ० ५७ ।

२- स्व सम्पादित वेलि, सम्पादकीय प्रस्तावना, पृ० २५ ।

श्रवणे ब्रह्म सबद ततो सारिणी, नयण श्ररक इद उभै निवास ।
हरि कर मौलि ध्यान हरि समहरि, अत्रिन दोख तणो उजास ॥ २॥
त्रिस जागण ब्रह्म उरुनि ताइ वयो, बाहु हंगू भणिया ती बीर ।
रुति रवट अ गि उर मा () मुरतो, धरणो प्रखिर मेर स धोर ॥ ३ ॥
पडिवै गग प्रवाह प्रवाणा, सुखता अत्रिन पान समय ।
माड प्रभु रो मान अथ माखण, परगट काजो लता प्रथ ॥ ४ ॥ १

७२ ५ । भाऊक जाव ने पृथ्वीराज कृत्रवेलि का मपुत्र वेलि लिवा है—

वेन बीज जल वयण, सुकवि जडमडो सधर ।
पत दुहा गुण पुहप, वास भोग वइ लिखमीवर ॥
पसरो दीप पदोप, अधिक गहिरई आडम्बर ।
जे अपई मन सुधि, अब फल पामे अतर ॥
विस्तार कीध जुग जुग विमल धणो किमन कहिणार धन ।
अमृत वेलि पायल अत्रल, तई रोपो किणारण तन ॥ १ ॥
इति कलस ज्पादव कृत्रम् ॥ भौजक जादव कृत्रम वेलि को छई ॥ १ ॥

श्री राम सत्य २

७३ ५ । भक्त कवि नामादास जी ने अपने भक्तनाम नामक ग्रथ में पृथ्वीराज को नर
घोर देव दोनों भावार्थों में निरुण बताने हुए श्लोक, सवैया, गीत, दोहा गौर वैलि के रूप में
नव रसों का निरमाता लिखा है । भक्तनाम के टीकाकार प्रियानाम ने नामादास कृत्र पद्य के
भावार्थ पर पृथ्वीराज को परोक्षिक लोनाओं का वणन किया है —

मूल — (नरदेव उभै भाषा निपुन, पृथ्वीराज कविराज हुव ।)

सवैया गीत श्लोक वेलि, दोहा सुन नव रस ।
पिंगल काश्य प्रमान विविध, विधि गायो हरिजस ।
पर दुव विदुव श्लाघ्य, वचन रचना जु विचारै ।
अरय कवित्त निरमोल, सवे सारग उर धारै ।
रुचिमनोलता वरनन अनूप वागीश वदन कल्याण सुव ।
नर देव उभै भाषा निपुन, पृथ्वीराज कविराज हुव ॥

दोहा — मारवाड देम बोकानेर को नरेम बणै,
पृथ्वीराज राम भक्तराज कविराज हैं ।

१ - राजस्थान मारवाड, भाग ७, पृष्ठ १-२, पृष्ठ ५८ ।

२ - अभय जन प्र पाचय, बीकानेर, स० १६६६ वाली प्रति के अनुसार २ ।

सेवा प्रनुराग और विपै वैराग यशो,
 १ १ राती है पहिचानी नाहि मानो देखि प्राजु हैं ।
 गयो हो विदेश तहां मानसी प्रवश कियो,
 या नही घुषी कसे सरन काजु है ।
 १ बीते दिन तीन प्रभु मन्दिर न दीठ परै,
 १ पीछे हरि देखि भयो मुल को समाजु हैं ।
 लिखि के पठायो देश सु दर सदेव इहै,
 मन्दिर न देखे हरि बीते दिन तीन हैं ।
 लिख्यो आयो साच बाचि अनि ही प्रसन भयो,
 लगे राज बैठे प्रभु बाहर प्रवीन हैं ।
 सुनो एक आउ यो प्रतिशा करी हिये धरो,
 मथुरा शरीर स्वाग करै रस लीन है ।
 पृथ्वीपति जानि के मुहिम दई काबिल को,
 बल अधिकई नही कालके अधीन हैं ।
 १ जीवन प्रबधि रहे निपट अल्प दिन,
 कल्प समान बीते पल न बिहात हैं ।
 आगम जनाय दियो चाहे इहें साचो कियो,
 लियो भक्ति भाव जाके छायो गात गात हैं ।
 चलयो चडि साठनी पै लई मजुुरी प्रानी,
 करिके सनान प्रान तजे सुनो बात हैं ।
 जे जे धुनि भई व्यापि गई चहु और,
 अहो भूपति चकोर जम चद दिन रात हैं ।^१

७४ १ । मुशो देबोत्रसाद ने लिखा है कि कृतिाय सोमो ने वैनी के पृथ्वीराज रचित होने में स ३६ प्रगट किया मतएव इस विषय में निर्णय के लिए समकालीन चार प्रसिद्ध चारण कवियों को मायमित्र क्रिया गया — (१) दुरसा प्राडा, (२) सादु माला (३) केशो दास गाडण, और (४) मात्रोत्त दग्गाडिया । इनमें से दुरसा प्राडा और सादु माला ने पृथ्वीराजके विरोध में और केशोत्त तथा मात्रोत्त ने पृथ्वीराज के पक्ष में निर्णय दिया । कहते हैं कि पृथ्वीराज ने दोनों विरोधी कवियों की निगा में एक और समर्पन करने वाले कवियों की प्रशंसा में दो गेहे लिखे^२ । दोहे इस प्रकार हैं —

बाई बारे खाळिया, काई कही न जाय ।
 ऊदे मालो ऊपनो मेहे दुरसा पाय ॥१॥

१ - भविष्य-विधि नीहा २० का० सप्त १७६९, काजुन बरी १०, प्रतापन
 राजस्थान प्राण्यविद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

२ - राजस्थानी भाषा और साहित्य, डा० होरानाच माहेश्वरी, पृ० १५६ ।

केगो गोरखनाथ कवि, खेलो कियो चकार ।
सिधरूपी रहता शवद, गाडण गुणा भडार ॥१॥
चू डे चत्रभुज सेवियो, ततफल लागो तास ।
चारण जीवो चार जुग, मरो न माघोदास ॥२॥

७५ ५ । कहत हैं कि दुरसा जी माडा भी बाद मे पृथ्वीराज क और वेलि क प्रगमक हो गये । पृथ्वीराज, तानमन और बारबल की मृत्यु पर कहत है कि मुगल सम्राट अकबर ने यह दोहा कहा —

पीथळ सो मजलिस गई तानसेन सो राग ।
रीक वोल हस खेलवो गयो वीरबल साय ॥

७६ ५ । कनल जम्स टॉड ने पृथ्वीराज की प्रगसा मे लिखा है— पृथ्वीराज अपने युग के वीर सामंतों में एक श्रेष्ठ वीर थे और पश्चिमीय द्वारहार राजकुमारों की भांति अपनी भोजस्थिती कविता के द्वारा किसी भी वायु का पक्ष उन्नत कर सकत थे तथा स्वयं तनवार लकर लड भी सकते थे ” ।^१ साथ ही कनल टाड ने पृथ्वीराज की कविता में दस हजार घोडा का बल बताया है । श्री सूयकरण पारीक ने वेलि क पद्य सख्या ११३-१३७ की इस कथन के प्रमाण में प्रस्तुत किया है ।^२

७७ ५ । वेली के प्रथम सपादक डॉ० एन० पी० तस्सीतारी ने लिखा है —

राठीड पृथ्वीराज वीकानेर द्वारा रचित, 'वेलि क्रिसन रक्मणी रो' राजस्थानी साहित्य रूपी रत्नगर्भा खान के अत्यंत देदीप्यमान रत्नों में एक श्रेष्ठ रत्न है । हिमाल साहित्य की यह सवाग सम्पूर्ण कृति है । काव्य कला की दक्षता का एक विचक्षण नमूना है, जिसमें आगरे के ताजमहल की तरह, भावों की एकाग्र सहजता के साथ अनेकानेक काव्य गुण विस्तार का सुखद सम्मिश्रण हुआ है और जो रस तथा भाव का सर्वोत्कृष्ट सौंदर्य और काव्य के वाह्य आकार की निष्कलक शुद्धता को जाज्वल्यमान रूप में प्रदर्शित करता है ।”^३

७८ ५ । वेली के काव्य सौष्ठव और धार्मिक माहात्म्य पर कवि श्वय मुग्ध है । कवि ने वेलि का माहात्म्य विस्तार से वर्णित किया है ।^४

१ - क-एनरस एण्ड एंटीक्विटिज आफ राजस्थान ।

ख-राजस्थानी भाषा और साहित्य, प० मोतीलालजी नेनारिया, पृ० १२१ ।

२ - स्व सपादित वेलि, मूमिका पृ० १६ ।

३ - वही, पृ० ५० ।

४ - वेलि क्रिसन रक्मणी रो, पद्य सख्या २७८-२८१ ।

कवि ने यहाँ धारम प्रगटा नहीं कर भारतीय धार्मिक काव्यों की माहात्म्य वर्णन परम्परा का अनुसरण मात्र किया है। कवि ने प्रारम्भ में अपनी प्रथमध्यायी और अंत में विनय पूर्वक अपने दोष^१ भी स्वीकार किये हैं। डॉ० तेस्तातोरो ने वेनी में कवि की धारम दलाया की स्वीकार करत हुए भी उसको प्रशंसनीय कहा है— यह जानकर कि महाराज पृथ्वी राज का प्राय सब प्रकार से भद्रूपित है हम उनका धारम विद्यास के उत्साह की शतध्व समझते हैं। सत्त्व और दूसरे धारकार में यह वही धारम-नीरव का भाव है जिनने मायकल ए जेली^२ नामक प्राचीन पादचाय कलाविग की अपनी बनाई हुई सगमरमर की मोजिज^३ की मूर्ति के घुटने पर प्रहार कर धारवैग पूर्वक यह कहने की प्रेरित किया, 'बोल'।^४

७६ ५। वेनि के प्रत्येक सपाक और मानाचक ने इसके काव्य सौष्ठव पर मुग्ध होकर मुक्त कंठ से प्रशंसा की है—

धी सूर्यकरण पारीक ने जिला है— 'जिस प्रकार सस्कृत साहित्य में महाकवि भवभूति ने धीर, श्रु गार और कृष्ण, तीन पृथक पृथक रसों और दालिया में महावीर चरित मानती माधव और उत्तर-रामचरित जस उत्तम दृश्य-काव्यों की रचना करके अपनी प्रत्तर प्रतिभा का परिषय दिया और जिस प्रकार हिन्दी साहित्य के वर्तमान काल की प्रगतिया के विधायक और धारवाय भारते दु बाबू हरिश्चंद्र ने साहित्य के सब अगा का भरे पूरे करके साहित्य में धारमर यग कमाया, उसी प्रकार महाराजा पृथ्वीराज ने भी पृथक पृथक शैलियों, विषया और रसा में काव्य रचना करके राक्षसानी और हिंदा साहित्य का मुक्त उज्ज्वल किया।'^५

८० ५। डॉ० मानन्द प्रकाशजी दीक्षित का मत है— वेनि की यह अपनी विनोयता है कि पुरान प्रसंगों पर भी कवि ने नवीन काव्य प्रसाद के निमाण की अपूर्व प्रतिभा प्रदर्शित की है। नये प्रसंगों और कल्पनामा के साथ साथ कवि ने पुरानी वस्तुओं की अपनी नवनवीन-मेयगामिनी काव्य प्रतिभा से भास्वर कर दिया है, उज्ज्वल बना दिया है। अस्तु वेनि अपनी बाह्य तथा आंतरिक छवि में ऐसी छविमय है कि इतर भाषामा के अष्ट काव्यों के साथ इसकी भी गणना की जा सकती है।^७

१ - पद्य सख्या २-६।

२ - पद्य सख्या ३०१-३०३।

३ - एक इतालवी कलाकार (मस १४७५-परवरी १५६४) एनसाइक्लोपीडिया आफ अमेरिका पृ० १४-१७।

४ - विक्वोली (रोम) की सेनपेट्रो चर्च में स्थापित मूर्ति वही पृ० १६।

५ - डॉ० तेस्तातोरो की सम्पादित वेनि भूमिका से थी सूर्यकरण पारीक द्वारा अनुवित, यलि का हिंदुस्तानी एक्वेडमो संस्करण, भूमिका, पृ० सख्या १००।

६ - स्व संपादित वेनि की भूमिका, पृ० ४।

७ - स्व सम्पादित वेनि भूमिका, पृ० १७३।

८१ ५ । प० नरोत्तम दास जी स्वामी ने इस विषय में लिखा है — “कवि का भाषा पर अपूर्व अधिकार है । वह अपनी चाहे जिन प्रकार सहज ही मोड़ सकता है । शब्द माना उसकी जिह्वा पर खेलते हैं जो भावश्यकता हाते ही तुरन्त उपस्थित हो जाते हैं ।”^१

८२ ५ । वस्तुतः कविवर पृथ्वीराज की प्रवाध भाव धारा एवं काव्य चातुर्य से प्रसारित “बेलि” हमारे साहित्योद्योग में मद्दति दी है और भक्ति श्रृंगार तथा वीरता के सफल समन्वय के साथ ही कला पक्ष का पूर्ण रूपेण निर्वाह करते हुए भाव सौन्दर्य की चरम परिणति ही इसकी प्रधान विशेषता है ।

(३) सायाजी भूजा कृत “रुखमणी हरण”

८३ ५ । भक्त कवि साया जी भूजा की काव्यात्मक रचनाएँ मुख्यतः दो हैं — ‘नागदमण’ और ‘रुखमणी हरण’ । इनकी कतिपय स्फुट पद्य रचनाएँ भी बतलाई जाती हैं ।^२ नागदमण और रुखमणी हरण दोनों ही काव्य कृष्णाख्यान पर आधारित हैं । नागदमण में श्रीकृष्ण की बान लीला कालिय मर्दन का और रुखमणी हरण में प्रमगानुसार समस्त बाल लीला का मक्षिण वर्णन के साथ रुखमणी हरण प्रसंग का काव्यात्मक निरूपण हुआ है । नागदमण और रुखमणी हरण के विषय में आलोचना के मत परस्पर विरोधी हैं । अधिकतर आलोचकों ने रुखमणी हरण में नागदमण को श्रेष्ठ माना है—

“‘रुखमणी हरण’ एक साधारण श्रेणी का वर्णनात्मक ग्रंथ है । साया जी का दूसरा ग्रंथ ‘नागदमण’ है । ग्रंथ में विषयों के वर्णन की जो शैली कवि ने अपनाई है, उसमें इनकी विनोदता अधिक बढ़ गई है । कवि ने कृष्ण की बान लीला का वर्णन नागदमण के साथ सवाद तथा कालिय मर्दन का सजीव चित्रण उपस्थित किया है” ।^३

“‘रुखमणी हरण’ में काव्य का कही पना भी नहीं है । यह एक बहुत साधारण श्रेणी का वर्णनात्मक ग्रंथ है । रुखमणी हरण की अपेक्षा साया जी का नागदमण पर्याप्त सजीव और पुष्टता लिए हुए है” ।

डिगल की प्रासादिकता और भोज का यह ग्रंथ एक अच्छा नमूना है ।^४

‘नागदमण’ का विनोद महत्त्व उसके वर्णनों और सवादों के कारण है । ये बहुत ही पुष्ट और सजीव बन पड़े हैं । वर्णन ऐसे हैं कि जिनसे सारा का सारा दृश्य अपने

१ — स्व सम्पादित बेलि, भूमिका पृ० ५६ ।

२ — श्री हनुवर्तसिंह देवडा, “सायुक राजख्यान”, प्रगस्त १९५६, सांख्यिक सम्पत्त कार्यालय जयपुर ।

३ — श्री सीताराम जी लालस, रामखानी गद्य शोध, भाग १, राजखानी गीय सख्यान, जोधपुर, भूमिका पृ० १४४ ।

४ — श्री मोतीलाल जी मेनारिया, राजखानी भाषा और साहित्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृ० सख्या १३३ ।

भाव प्राप्त के ज्ञानावरण ने मात्र मातार ही जाना है। एतन्ना हरण वार रसगुण एव वणुनात्मक वाच्य है, गीण एव म योम न रम वा वर्णन भी मिवता है। इसमें रमातुलून ग० - योचना प्रौर चित्रमय वगन स्वान स्वान पर पाये जान है।^१

“यह (हलमजी हरण) प्रार वैलि तानों प्रय एव साय बागगाह प्रफवर को निरीक्षणार्थ भेजे गय। बागगाह ने पहन वैलि को मुनहर हरण का मुता। म न म हरण को रचना को श्रेष्ठतर निर्णोत करके श्वेय प्रौर व्यंग्य में पृथ्वीराज से कहा ‘पृथ्वीराज। तुम्हारी वैल को चारण बाधा का हरण कर गया’^२।

८४ ५। इस प्रकार ‘हवनगुण हरण’ एक प्रौर ता प्रफवर सम्बन्धी प्रसा क मनु सार महाराज पृथ्वीराज कृत “वैलि क्रियन रचनणो रो” न भी अ प्ट कहा गया प्रौर दूमरी प्रार विद्वाना ने इसे सामा य वणुनात्मक कृति माना। हमारे प्र य भण्डारा में सायानी कृत “हलमणी-हरण” की प्रतिपा बहुत कम मिलती हैं इमलिपे पात्रोचका की धारणाए इस विषय म स्पष्ट नहीं हो सता। नागमणु’ प्रौर ‘हवनगो-हरण’ को रचना मे कवि का समान रूप म सकनता मिली है। ‘नागमणु’ का मतक प्रतिपा प्रय भण्डारा में मिवनी हैं प्रौर इनका प्रकाशन भा बहुत पने हा चुका है।^३ साया जा कृत ‘हवनगुण हरण’ का प्रकाशन भी प्राप्य पाठा तरा महिन लेवक क सम्पादन म हा चुका है।^३

८५ ५। कवि ने प्रारम्भ म मगलावरण देने हुए हा मरनी का य प्रतिभा का परिचय दे दिया है। कवि ने मरने काय काक का भव सागर नरने हेतु तु वा जाना कहा है। कवि भक्त के नान ईश्वर से रायता करता है कि म य कवियो ने तो ग = हरी जहाजा का आश्रय लेकर भवसागर पार किया कि तु उमने तो एक तु वा जानो का ही निमाण किया है। ईश्वर समुद्र मे डाले गये पत्थरो का तराने प्रौर उस पर से सना पार उतारने मे भी मपनी विनम्रता उक्ति वचिष्य, मार्मिक मभियजना एव का यगत कोशन का परिचय देते हुए सच्चे भक्त के नाने ईश्वर के प्रति पपना मधिकार प्रकट करते हुए विरसास पहित निवा है— “तु वे बठा वेम न तारे ?”^४ तदुपरा न श्रीकृष्ण चरित्र का वणन है। कवि ने राजा भोष्मक प्रौर रचमया के सवा म आकृष्ण के प्रति प्रनूठे भाव व्यक्त किये हैं। कवि ने मरनी प्रौर से श्रीकृष्ण को उपासन्म न देन हुए रचमया द्वारा ‘जरो खागे’ मुनाई हैं। इस प्रकार कवि ने मपनी भक्ति की एक विचित्रता प्रकट की है।^५

१ - वैलि क्रियन रचिमणी रो, सम्पा० डा० प्रान व प्रकाश जो क्षोक्षिन, विश्वविद्यालय प्रकाशन गौरखपुर सूमिका पृ० ३५।

२ - क- सम्पादक श्री हमीरदान जो मोतीसर पालणपुर, सन् १९३३ ई०।

ख-सम्पादक मूलचन्द्र‘प्राणेश’ भारतीय विद्या मन्डिर गोन प्रतिष्ठान, बीकानेर।

३ - प्रका० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर प्रायिक ७४।

४ - पद्य स० १-३।

५ - पद्य स० ५-५१।

८६ ५। वैश्वि वर्ता महाराज पृथ्वीराज ने उक्त प्रथम के स्थान पर कविमण्डो व नल गिप्त वर्णन मोर वय सधि वर्णन की प्रायोजन की है। पृथ्वीराज मोर सायाजी की काव्य रचना में उद्देश्य भिन्नता स्वयं ही दृष्टिगोचर हानो है। कविद्वार का स्थान भक्तिमय शृंगार की ओर है किन्तु सायाजी का लक्ष्य श्राद्ध गु वरिन्त निकाल्य मोर वोर रम की धर्मशक्ति है।

८७ ५। सायाजी ने कर्मया के गानों में श्रीकृष्ण लीला का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण की मालोचना भी की है —

लपण बत्रोस तेत्रोसभो ए लपण ।
घरा घर चारेउ पसु नवेनन धण ।
प्रथम दहो दूध मापण तणी पन गली ।
आगळी आपना माह एले गली ।
तात ने मात वीवाह पड भड टली ।
मलमा घणा घरबाम आया मली ।
सार्क सूर उगमण तात महतारोया ।
पुत्र सोभयो मने घाट पगहारोया ॥ १

कवि को इस विषय में प्रथम भा मर्कया मनुकुन प्राप्त हुआ है क्योंकि कर्मया श्राद्धण का कृष्ण रम बना कर उतने कविमण्डो का विवाह तूने करने के लिए घने वित्त को महमन करवा चाहुत्रा है मोर तिनो श्रीकृष्ण को प्रणसा करने हुए वामया को समझाना चाहते हैं।

८८ ५। कविद्वार साया जी ने प्रस्तुत का प में श्रीकृष्ण की घनेक मीनामों का निकाल्य किया है। यथा— पूजना वन^२, चोर हरण चीना^३, दान लीना^४, मोलन व बत^५ नादनन^६ मोर गावदन धारण^७ आदि। श्रीकृष्ण के परब्रह्म विष्णु रूप की मोर सकन करते हुए कवि ने नार मयन मोर लक्ष्मी वरण, का भी उल्लेख किया है। इनो प्रकार कवि ने राम मोर कृष्ण को एकता भी गुण के मनुकून धनूठे रूप में प्रतिपादित का है।^८ कवि ने राजा प्रोभनर क गानों में तीना लोका की पवित्र करने वानो गया मोर नवना का घननरण भी श्राद्धण के वरणों में बताया है।^९

८९ ५। कर्मया राजा नाभनरु की वाना को धार स्थान नही देना हुआ कविमण्डो के विवाह हेतु गिगुमान को नम्रानिका प्रेषित कर जाता है।^१ माने कवि ने शिशुपाल द्वारा विवाह हेतु प्रस्थान करते समय के मोर माग के मपशकुना का वर्णन किया है,^२ जिससे

१ - पद्य सं० ७-८।

२ - पद्य सं० ९।

३ - पद्य सं० १।

४ - पद्य सं० १०।

५ - पद्य सं० १७।

६ - पद्य सं० १६।

७ - पद्य सं० ३६।

८ - पद्य सं० ४०।

९ - पद्य सं० ४६।

१० - पद्य सं० ५२।

११ - पद्य सं० ४३-६२।

प्रकट है कि कवि को शत्रुन गारुड का विशेष ज्ञान था। सुपरगत कवि ने दक्षिणी की विपत्तिकाश्या वतान हुए रविमणी की घोर से ब्राह्मण द्वारा श्रीकृष्ण को पवित्रा भेजने का वर्णन किया है।^१ ब्राह्मण द्वारिका जाना हुआ राक्षस म सो जाता है घोर जागने पर घरने प्रापको द्वारिका में पाता है तो उसकी प्रसन्नता का पार नहा रहता। इस प्रसंग में देव प्रसात् ब्राह्मण को दवाधिरेव प्रयात् भीकृष्ण द्वारा स्नान देने का उक्ति सौम्य दृष्ट्य है।^२ प्रागे कवि ने श्रीकृष्ण के प्रति रविमणी का विन्ती पत्र प्रस्तुत किया है जिसमें श्रीकृष्ण क परम ब्रह्म स्वरूप का वर्णन भी है।^३

६० ५। कृष्ण रविमणी क पत्र में 'निमपरो बिनदरो नाथ भवसर नयी' पठने ही रथ मगवा कर कुन्दनपुर की घोर खन दिये।^४ ब्राह्मण का श्रीकृष्ण सहित भागमन जान कर रविमणी प्रस न हुई। रविमणी ने लक्ष्मी के रूप में ब्राह्मण क प्रागे नमन किया तो ब्राह्मण को किस बात की कमी हा सजती थी।^५

६१ ५। बलदेव को श्रीकृष्ण के जाने की सूचना मिली तो वे पूण सैनिक सैयारी के साथ श्री कृष्ण की सहायता हेतु पहुंचे। पाडे समय के लिए भा भयग नहीं होने वाले हलधर और गिरिधर कुन्दनपुर में पुन मिले तथा इनका भागमन सुनकर राजा भाधमक को प्रम नता हुई।^६ प्रागे कवि ने श्रीकृष्ण के कुन्दनपुर में स्वागत सरहार और विभिन्न पन्ना की चितवृत्तिग का बणन किया है। कुन्दनपुर में एक रत्नमैया के बिना सभी श्रीकृष्ण के भागमन से प्रस न हुए और उनके स्नान हेतु लानायित हुए।^७ श्रीकृष्ण के स्वागत में सज्जनों के मुख 'राजीव जिम सरद ऋतु' की भांति विकसित हो गये, और कृष्ण रविमणी परिणय की कामना हेतु अपने सुकृत प्रपित करने लगे।^८ राजा भीधमक ने कृष्ण को भवितव्यक सात खण्डे महल में ठहराया।^९ इस भवसर पर शिशुपाल भी अपने सहयोगी राजाभा और सैनिकों सहित रविमणी से विवाह करने हेतु पहुंच जाता है। 'क्या हेक ने घर दोग चडोया कडे।'^{१०} के कारण दोनों पत्नी को घोर से युद्ध की सैयारी होती है क्योंकि भव युद्ध प्रवश्यभावी हो चुका था।

६२ ५। रविमणी अपनी सहेलियों के साथ भम्बिका पूजन के लिए जाती है तो शिशुपाल और जरासंध पूण सावधानी से रविमणी की रत्न क समान रक्षा का प्रव घ करत हैं—

अपे जरासिंध ए घात जो सेंघणी।

रापीये रतन जिम जतन कर रपमणी ॥^१

१ - छन्द स० ६३ से ६६। २ - छन्द स० ६६। ३ - छन्द स० ७४।

४ - छन्द स० ७७। ५ - छन्द स० ७८ ८०।

६ - छन्द स० ८१ से ८०। ७ - पद्य स० ६१।

८ - पद्य स० ६३। ९ - पद्य स० ६८। १० - पद्य स० १०६।

६३ ५। गिणुपाल के सैनिका न सुरक्षा हतु रुक्मिणी और सहेलिया सहित मन्दिर के चारो ओर घेरा डाल दिया और — 'चालती कोट चौकेर लीघो चुणी ।'

रुक्मिणी न ज्योंही अम्बिका का पूजन कर श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा की तो आकाश माग स श्रीकृष्ण ने पहुच कर रुक्मिणी को अपने रथ म बैठा लिया और समस्त सैनिक मूर्छित हो गये ।^१

६४ ५। रुक्मिणी हरण का एक प्रमुख अंग युद्ध वर्णन है। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण कर ज्याही गल नाद किया, समस्त सैनिक लटने हेतु उद्वल ही गये ।^२ कविवर साया जी भक्त हान व साथ ही एक कुशल यादा भी ये इसलिए 'रुक्मिणी हरण' मे मध्य कालीन भारतीय युद्ध पद्धति का विस्तृत एवं यथार्थ वर्णन उपलब्ध होता है ।^३ युद्ध-वर्णन प्रस्तुत काव्य का एक प्रमुख और महत्वपूर्ण भाग है, जिसस काव्य वार रस प्रधान हो गया है। इस युद्ध वर्णन के अतगत शत्रु सेना के युद्ध प्रयाण का, विभिन्न प्रकार के मध्यकालीन आयुधों का, विविध वाहना का वीरों के सिंहनाद का, कायर का भाग दौड और घायलो की कराहट का हृदयस्पर्शी चित्रण है ।

६५ ५। सेना प्रयाण से आकाश मडल धूल से आच्छादित हो गया जिसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है —

चक्कवे चक्कवी पूर रयणी चिया ।
गेहणी छोड भरथार डूरें गिया ॥
मेंघ पुड ऊपडी पेह पेहा मली ।
आपरा बछा ने ना उलपे अनली ॥^४

६६ ५। युद्ध सम्बन्धी वादा और आयुधो की गर्जना का प्रभाव भी कवि ने यत्न किया है ।^५ युद्ध में श्रीकृष्ण द्वारा किये गये शस्त्र प्रभाव और उसके प्रहार का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है ।^६

६७ ३। श्रीकृष्ण और बलदेव के सामने युद्ध में गिणुपाल, जरासंध और रुक्मिणी तीनों ही पराजित हुए। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को बाध लिया कि तु फिर रुक्मिणी के निवेदन पर उसकी माधी मू छ और मस्तक मुण्डित करवा कर मुक्त कर दिया। तदुपरांत कवि ने युद्ध स्थल में प्रवाहित हान वाली लोहू की भारामा हापिया, घोडों और घोडाओं की बटी हुई शोया और पलचरों की प्रसन्नता आदि का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण की विजय सूचित की है ।

१ - पद्य सं० ११८-११९।

३ - पद्य सं० १२३-१२४।

५ - पद्य सं० १५०, १५१, १५४

२ - पद्य सं० १२०-१२२।

४ - पद्य सं० १३०।

६ - पद्य सं० १७३, १७४।

दृष्टव्य है कि कवि ने श्रीकृष्ण को पूर्णब्रह्म परमेस्वर और दुष्टो का विनाश कर पृथ्वी का भार उतारने वाले लिखा है एव रविमणी को सीता मयवा लक्ष्मी कहा है ।^१

कवि ने रामे श्रीकृष्ण ने रविमणी सहित द्वारिका लौटने, द्वारिका की सजावट और जनता द्वारा किये गये उनके स्वागत का चित्रण किया है ।^२ तदुपरांत कवि ने ज्योतिषियों द्वारा श्रीकृष्ण रविमणी के विवाह की लग्न देला निश्चित करने, श्रीकृष्ण क वस्त्रामूर्खों द्वारा सज्जित होने और विधि पूर्वक विवाह होने का वर्णन किया है ।^३ कवि ने विवाह वर्णन के बाद श्रीकृष्ण रविमणी की रति प्रीडा क विषय में यही लिख कर मोन धारण कर लिया है—

रूपमणी किसन रे रग पूगा रथण ।

रग रम कहत जो सेस देतो रसण ॥^४

६८ ५ । कवि न वाक्य को पूर्ण वरत समय श्रीकृष्ण की राज्य सभा का वर्णन करते हुए उनकी महानता उदारता पसाप्रियता, पाप भावना और दुख ग्राह्यता को और संकेत किया है ।^५

६९ ५ । हरण में वीर रस का प्राधान्य है । इसके वर्ता एक चारण कवि के जिससे वाक्य में वीर रस का हाना सवथा उचित है ।

हरण' का वीर रस युद्ध विषयक है, जिसके धालम्बन शिशुपाल, एकमेवा घोर जरा सि घादि शत्रु, उद्दीपन इन शत्रुआ की शक्ति मत्कार और ललकार, अनुभाव श्रीकृष्ण बलदेवादि की युद्ध में स्थिरता और रोमाचादि तथा सचारी भाव युद्ध में विभिन्न योद्धाओं का गर्व दूत, तक और भावेग भावि हैं जिनका निरूपण का य में यथास्थान सफलता पूर्वक हुआ है । गीत, शृ गार और वीभत्सादि रसों का भी कतिपय स्थलो में वर्णन हुआ है । हरण' के वर्ता एक सिद्ध महात्मा माने गए हैं जिनकी दास्य भक्ति का निरूपण मुख्यतः का य के प्रारम्भ में और अन्त में हुआ है । "हरण का य में श्रीकृष्ण और रविमणी क विवाह का वर्णन है इसलिए शृ गार वर्णन का कवि के लिये पर्याप्त अवसर था कि तु कवि न रविमणी क बाल रूप वर्णन वय साथ वर्णन शृ गार वर्णन, समय पट्टशतु वर्णन छोड़ दिया है । सम्बंधित कथानक में शृ गार रस के अनुकूल मनक तत्त्व उपलब्ध है कि तु कवि ने इनकी ओर मात्र लडाकर भी नहीं देखा है । इसके विपरीत युद्ध वर्णन में उसी पूर्णता और विस्तार हरण' में है, उसका वेलि' में अभाव है । वेलि में शृ गार, गीत और वीर रसों क त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है तो हरण म शा त और वार रस का रूपल कम वय हुआ है ।

१०० ५ । गीत रस के अंतगत हरण' म कवि का भाक्त स्वरूप निराला ही है क्योंकि इसमें दारद भाक्तजनित विनम्रता, बालरूप चित्रण और माधुर्य व साथ ही श्रीकृष्ण की कटु पालोचना का भी समावेश हुआ है ।

१ - पद्य संख्या १६४ । २ - पद्य सं० १६७ । ३ - छंद सं० २०३—२१४ ।

४ - पद्य सं० २१५ ।

५ - पद्य सं० २१८—२१९ ।

अनुप्रास, श्लेष, यमक और रूपवादि सामान्य प्रचलित भलकार तो इस काव्य में यत्र तत्र दृष्टिगोचर होन ही हैं किन्तु मध्यकालीन राजस्थानी काव्य में प्रचलित 'वैणु सगाई' भलकार का निर्वाह प्रायः समस्त छन्दों में हुआ है। मध्यकालीन राजस्थानी कवियों की ऐसा भावना रही है कि 'वैणुसगाई' का निर्वाह हाने पर काव्य में किसी प्रकार का दोष नहीं रहता —

आवे इण भाषा अमल वैणु सगाई वेस ।

दग्ध अगण वद दुगुण रा लागे नह लवलेस ॥

पारस्परिक वैर अथवा दाप मिटाने हेतु परिवारों में विवाह सम्बन्ध निश्चित कर लिये जाते थे पर्यान्तु वाग्दान सम्बन्ध स्थापित किया जाता था। 'वयणु सगाई' का अर्थ वाग्दान और वयणु सम्बन्ध दोनों सही हैं। इस विषय में लिखा गया है —

वयणु सगाई वेस, मिल्या साच दोषणु मिटे ।

किए हिक समै कवेस, थपियो सगपणु उथपै ॥

खून किया जाणे ललक, हाड वैर जो होय ।

वैणु सगाई वेस तो कलपत रहै न कोय ॥

—रघुनाथ रूपक गीता रो ।

इस प्रकार मध्यकालीन राजस्थानी काव्य में वयणु सगाई' भलकार का निर्वाह छन्द के प्रत्येक चरण में अनिवार्य हो गया था। इसके अभाव में काव्य कलापूर्ण बहुत से छन्द भी श्वयन्तर्गता द्वारा ही नष्ट कर दिये गये। सब प्रथम राजस्थानी भाषा के समर्पण कवि महाकवि सूर्यमल ने 'वयणु सगाई' के अर्थ को सिद्धित करते हुए लिखा —

वैणु सगाई वाळिया पपीजे रस-पोस ।

वीर हुतासण वोल म, दीप हेक न दोस ॥ —धीर सतसई

सूर्यमल का मत था कि वयणु सगाई के प्रयोग से रस का पोषण देखा जाता है किन्तु वीर रस पूरा काव्य में कोई दोष नहीं होता ।

१०१ ५। 'वयणु सगाई' तीन प्रकार की मानी गई है —

वरण-मिस्त जू धरण विध, कवियणु तीन कहत ।

आद अघिक सममध अवर यून अक सो अत ॥

उत्तम, मध्यम और अल्पम तीन प्रकार में उत्तम वैणु सगाई के तीन उपभेद हैं जिनके उदाहरण शक्तिमणी हरण में इस प्रकार हैं —

१ आदिमल- धरण में प्रथम शब्द क आदि वयणु की आवृत्ति उसी चरण क अन्तिम शब्द के आदि में हो, यथा —

भल भला राय हर राय कु अरी भली । २२
वात बीमाहरो साच कोज बली । २४

२ मध्यमेन- चरण में प्रथम ग के प्राण वरुण की प्राकृति उसी चरण के प्रतिम ग के मध्य म हो —

वमल पत मात कुल छात जणाविषी । १२
चोहटे चाल ज्यु कडू ये राचना । १२५

३ मत्तमेन- चरण में प्रथम ग के प्राण वरुण की प्राकृति उसी चरण के प्रतिम ग के मत्त मे हो —

दूसरा दुरमठ तनकाल कोया तये । २५६
तवेँ जरासव समपाल रह सायती । १३६४३

मध्यम काटि की वण सगाई ' असमान स्वरा, स्वर और 'य' अथवा 'व' का मेल होने पर कही जाता है जिसके कविषय उदाहरण इस प्रकार हैं —

अरु अरुगेग यथा राजवस एतला ।
ऊपजे आहीन मन मुधपण आवए ।
ओलपीया चरण वावरण वेवसा ॥

प्रथम कोट की वण सगाई विभिन्न वर्णों जैसे 'ट' वग और 'त' वग अथवा अल्प प्राण और महा प्राण वर्णों का मेल होने पर मानी जाती है । यथा —

सात ने मात चौवाह पड मड टली । ८४
चौकरा आय कुमर रा छोडीया । १७७१

'हरण' के अनेक छं में 'वैण सगाई' का निर्वाह नहीं भी देखा जाता, है जिसका कारण यही हो सकता है कि सब तक वण सगाई की राजस्थाना काव्य में विशेषता अथवा हो गई या किन्तु उसका निर्वाह प्रतिबन्ध नहीं हो पाया था । हरण की प्राप्त सभी प्रतिया में का म में प्रयुक्त प्रयुक्त छं का नाम अज्ञान मिलना है । अज्ञान का प्रयोग ३ गाहा ओसर और दूहे के पंक्तियों में ही है ।

समाद और सूक्तिया

१०२ ५ । 'हरण' में समाद और सूक्तिया की छं अनेक प्रथम म विनेय सूक्तिकर हो गई है । समाद में समादित पदों के चरित चरण और प्रथम निरुण में समादकारपूर्ण

१ - प्रथम अट छं सख्या का और द्वितीय अट छं सख्या का सूचक है ।

स्वभाविकता का समावेश हो जाता है, प्रस्तुत काव्य में मुख्यतः निम्नलिखित सवाः दर्शनीय हैं —

- १ भीष्मक और रुक्मैया सवाद, छन्द स० ३५१ ।
- २ श्री कृष्ण और विप्र (सन्देश वाहक) सवाद छन्द स० ७०-७१ ।
- ३ जरासन्ध और शिशुपाल सवाद छन्द स० १३६, १४० ।
- ४ जरासन्ध और बलदेव सवाद, छन्द स० १७६, १७६ ।

१०३ ५ । काव्यगत अनेक सूक्तियां सम्बन्धित वातावरण के सर्वथा अनुकूल होती हुई पात्रों का ध्यान आकर्षित करने में सफल हुई हैं । ऐसी सूक्तियां से काव्यगत प्रसंग, प्रभाव पूरा बन गये हैं । हरण का कतिपय सूक्तियां निम्नलिखित हैं —

- १ आगली आपता बाह एणे गली । — छन्द स० ७ पृ० स० ४
- २ हेतरा जुगत सु जगत वैकुण्ठ हूवे । — छन्द स० ६७, पृ० २२
- ३ कया हृष ने वर दीय चढीया कडे । — छन्द स० १०३, पृ० ३२
- ४ हरि तणी जाणीयो सोइ आपर हुसे । — १०४ ३३
- ५ राणीये रतन जिम जतन कर रूपमणी । — १०६ ३३
- ६ चालतो कोट चोफेर लीघो चुणी । — ११७ ४७
- ७ क्रुद ग्या कायरा बाजता काहली । — १५१ ४७
- ८ किसन कारज बने पथ हेकण कीया । — १६६ ५५ भादि ।

१०४ ५ । भक्त कवि सायाजा भूला का 'दशमस्त्री हरण' राजस्थानी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण रत्न है । 'हरण' की रचना में कवि का लक्ष्य भक्ति और वीरता का समन्वय रहा है । कवि द्वारा प्रदर्शित भक्ति का स्वरूप भी अनूठा है । 'हरण' का प्रवाचन से सदिया से प्रवाद रूप में प्रचलित मुगल सम्राट की उक्ति 'पृथ्वीराज ! तुम्हारी बेल की चारण बाबा का 'हरण' घर गया' के सत्य का निर्णय भी सुविन पाठक कर सकेंगे । 'हरण' का युद्ध वरण बेल से अधिक विस्तृत और सम्पूर्ण है, कि तु बेल की अनुपम भाव-योजना, अनूठे उक्ति वैचित्र्य और मौलिक बल्पनाओं की ऊंचाई तक 'हरण' छलांग नहीं लगा सका है ।

१-क- हरण दशमस्त्री की बेल, हि दुस्तानी ऐकेडेमी, इलाहाबाद, भूमिका पृ० ४६ ।

ख- राजस्थानी भाषा और साहित्य प० मोतीलाल जो सेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद पृ० १७६ ।

ग- डॉ० ध्यानप्रकाश जो बोधित, स्व-संपादित बेल की भूमिका, पृ० १४ और राजस्थान-भारती धीकानेर, भाग ६ अंक १-२, पृ० ६ ।

घ- राजस्थानी गद्य कोष, श्री सीतारामजी सालस, राजस्थानी शोध संस्थान, श्रीवास्तनी, जोधपुर, भूमिका पृ० १४४ ।

भल मला राय हर राय कु भरो भली । २२
वात बीमाहरी साच कोज वली । २४

२ मध्यमेन- हरण मे प्रथम ग के घांति वर्ण की प्राप्ति उदाहरण के प्रतिम ग के मध्य मे हो —

वमल पत मात कुल द्यात जणावियो । १२
चोहटे चाल ज्यु कहे ये राचना । १२५

३ म तमेन- हरण मे प्रथम ग के घांति वर्ण की प्राप्ति उदाहरण के प्रतिम शब्द के म त में हो —

दूसरा दुरमड तलकाल कोमा तरे । २१६
तवे जरासन समपाल रह सावती । १३६४३

मध्यम काटि की 'वण सगाई' प्रथमान स्वरा, स्वर और 'य' प्रथवा 'व' का मेल होने पर कही जाती है जिसके कविरय उदाहरण इस प्रकार हैं —

अर अरोग यथा राजवस एनला ।
ऊपजे आहीन मन बुधपण आवए ।
ओलपोप्रा चरण वावरण वेवसा ॥

प्रथम कोट की वण सगाई विभिन्न वर्णों जैसे 'ट' वर्ण और 'त' वर्ण प्रथवा प्रत्य प्राण और महा प्राण वर्णों का मेल होने पर मानी जाती है । यथा —

तात ने मात वीवाह पड मड टली । ५४
चोकरा आय कुमेर रा छोडोया । १७७१

'हरण' के अनेक छन्दों में 'वण सगाई' का निर्वाह नहीं भी देखा जाता, है जिसका कारण यही हो सकता है कि जब तक 'वण सगाई' की राजस्थानी काव्य में विशेषता अवरय हो गई या किन्तु उसका निर्वाह अनिवार्य नहीं हो पाया था । हरण की प्राप्त सभी प्रसिया में काय में प्रयुक्त प्रमुख छन्द का नाम 'कान्ताच' मिलता है । कान्ताच का प्रयोग ३ पाहा चौसर और दूहे के पदवान् म त तन हुआ है ।

सनाद और श्रुतिया

१०२ ५ । 'हरण' में सवांग और सूक्तियों की छग अनेक प्रयोगों में विनेय रुचिकर हो गई है । सवांग से सम्बन्धित पात्रों के चरित्र चित्रण और प्रतग निरूपण में चमत्कारपूर्ण

१ - प्रथम अक्षर छन्द सव्या का और द्वितीय अक्षर पृष्ठ संख्या का सूचक है ।

स्वभाविकता का समावेश हो जाता है, प्रस्तुत काव्य में मुख्यतः निम्नलिखित सवा दार्शनिक हैं —

- १ भीष्मक और रुक्मिणी सवाद छन्द स० ३५१ ।
- २ श्री कृष्ण और विप्र (सन्देश वाहक) सवाद, छन्द स० ७०-७१ ।
- ३ जगसन्ध और शिशुपाल सवाद छन्द स० १३६, १६० ।
- ४ जरासन्ध और बलदेव सवाद, छन्द स० १७९, १७६ ।

१०३ ५ । काव्यगत प्रत्येक सूक्तिया सम्बन्धित वातावरण के साथ अनुकूल होती हुई पाठकों का ध्यान आकर्षित करने में सफल हुई है । ऐसी सूक्तिया में काव्यगत प्रसंग, प्रभाव पूरा बन गये हैं । हरण का कतिपय सूक्तिया निम्नलिखित हैं —

- १ आगली आपता बाह एणे गली । — छन्द स० ७, पृ० स० ४
- २ हेतरा जुगत सु जगत बैवृण्ठ हृवे । — छन्द स० ६७, पृ० २२
- ३ क्या हेक ने दर दीय चढीया वहे । — छन्द स० १०३, पृ० ३२
- ४ हरि तणो जाणीयो सोड आपर हुसे । — १०४ ३३
- ५ रापीये रतन जिम जतन कर रुपमणी । — १०९ ३३
- ६ चालतो कोट चोफेर लीघो चुणी । — ११७ ४७
- ७ हूद ग्या कायरा बाजला काहली । — १२१ ४७
- ८ किसर कारज बने पथ हेकरा कीया । — १६४ ५५ मादि ।

१०४ ५ । भक्त कवि सायाजी भूला का रचमणी 'हरण' राजस्थानी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण रत्न है । 'हरण' की रचना में कवि का लक्ष्य भक्ति और वीरता का सम्मिश्रण रहा है । कवि द्वारा प्रदर्शित भक्ति का स्वरूप भी अनूठा है । 'हरण' के प्रकाशन से सदियों से प्रवाद रूप में प्रचलित मुगल सम्राट की उक्ति 'शुद्धीराज । तुम्हारी बेल को चारण बरबा का 'हरण' चर गया,' का सत्य का निराण भी सुविन पाठक कर सकेंगे । 'हरण' का युद्ध वर्णन बलि से अधिक विस्तृत और सम्पूर्ण है, किन्तु बेल की अनुपम भाव योजना, झूठे उक्ति वैचित्र्य और मौलिक बल्पनाओं को ऊर्ध्व तक 'हरण' खनाम नहीं लगा सवा है ।

१-ब- कृष्ण रचिमणी की बेल, हि दुस्तानो ऐवेडेमी, इलाहाबाद, भूमिका पृ० ४६ ।

स- राजस्थानी भाषा और साहित्य प० मोतीलाल जी मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद पृ० १७६ ।

ग- डा० धानवप्रकाश जी दासित, रस-सपादित बेल की भूमिका, पृ० १४ और राजस्थान-भारती, बीकानेर, भाग ६ अंक १-२, पृ० ६ ।

घ- राजस्थानी शब्द कोष, श्री सीतारामजी तालत, राजस्थानी शोध संस्थान, बीकानेर,

(४) मूर कृत-रुमणी-हरण

१०५ ५। मूर कृत 'रुमणी हरण' १८ छन्दो म पूर्ण हुमा है। इसमें कवि, छप्पय दूहा और वेमण्वरी नामक छन्दों का प्रयोग हुमा है। इसकी प्रति राजस्थान प्राकृत-विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर के संग्रहालय में है।^१ यह प्रति संवत् १६०४ म चतुस्र शुभवार सोमवार वा १० कौन्तिकुमल गणि द्वारा गुजानव * और रमणा क निण मातुषा नामक स्थान मे लिखी गई है। रचना क सोमरे छंद स प्रारंभ होता है कि यह रचना मूर कृत है। कवि ने प्रारम्भ मे सरस्वती-वादा की है —

॥ कवित्त छप्पय ॥

तो प्रशाद सरसति मात पूरण गुणमाला,
तो परनात् सरसति कीर्णा काश्य कवि काला।
तो प्रशाद सरसति माध गम भ्रमम विचार
ता प्रशाद सरसति सुमति सुखदेव समारे।
हरि कहण सोभ समरय ह्रीमो व्दारुण जैन वागो वणी
लघु हक अपर दधि पलवै तो प्रमाद ब्रह्मा तणी।

१०६ ५। कवि ने द्वाका वणुन प्रसंग में काश्य क प्रारम्भ म ही अपने उक्ति वैशिष्ट्य और काव्य कौशल का परिचय दिया है —

वसहिं घर घर वेहल वाहि हरि दीध वहेलो,
हुकम आप जदि हूमा हलाकरि करा ह्वलो।
वनक घात कट्टोइ नाम थट्टोइ निहचवल,
पटसारा पट्टोइ तग जट्टोइ अति निरमल।
मलीइ उलि समरण महो थभे थम पलैपीइ,
मूर कहे नरलाक मे दूजी देपीइ ॥३॥

१०७ ५। तदुपरा त कवि ने बताया है कि एक दिन श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ रथ में बैठकर नरकासुर के द्वार पर गये। कृष्ण और नरकासुर दोनों ही लडे किंतु किसी की हार जीत नहीं हुई।^२ तब सत्यभामा ने 'कान मार जो बाला कथा और नरकासुर के प्राण उड गये।^३ कृष्ण ने इस प्रकार नरकासुर का सहार कर सोनठ हज्जार तारिया का उदार किया और उन्हें अपने महन मे ल धाये।^४ आगे कवि ने राजा भीष्मक उसकी राजधानी कुन्तपुर और राजकुमारी रुक्मिणी का वर्णन किया है।^५ राजा, रानी और राजकुमार रुक्मया रुक्मिणी

१ - प याक ८७५।

२ - छंद स० ६।

३ - छंद स० ६।

४ - छंद स० ७।

५ - छंद स० ६।

के विवाह की चिन्ता करते हुए योग्य वर के विषय में विचार करते हैं ।^१ राजा भीष्मक कृष्ण की रुक्मिणी के योग्य वर बताते हुए कृष्ण का महत्व बताते हैं ।^२

१०८ ५ । रुक्मिणी ने उत्तर देते हुए राजा से कहा 'हे राजा! वृद्धावस्था में प्राणों की बुद्धि नष्ट हो गई है । कृष्ण जाति का धीर है । कर्म पर कर्म का डानकर पराई स्त्रियों के साथ दही का स्वाद लेना रहा है । वह काने बण का है और दा विताप्रा का पुत्र है । प्राणों की बुद्धि बना गई है जो आप उसका अपना जामाता बनाना चाहते हो'^३ । राजा ने अपने पुत्र को सम्मान हुए कहा— "शिव, इन्द्र और ब्रह्मा भी परमेश्वर श्री कृष्ण की चरण सेवा की इच्छा करते हैं । इमलिये कृष्ण को ही तारण पर जाना चाहिये ।^४ श्री कृष्ण वास्तव में मारायण हैं । नू शनि की तरह बठा है, इमलिये अज्ञान को बाते करता है"^५ । रुक्मिणी का धित होता हुआ राजा के सामने बैठ गया । रुक्मिणी ने शिशुमान को रुक्मिणी के विवाह हेतु ज्ञान प्रवृत्ति भेजी ।^६ शिशुमान को धरान रवाना हुई तब अनेक प्रकार के प्रपञ्चन हुए जिसका वर्णन कवि ने विस्तार पूर्वक किया है ।^७

१०९ ५ । कवि ने रुक्मिणी विवाह के पारपर पर कुत्तर की हुई मन्त्रावली का वर्णन करते हुए रुक्मिणी के उमा और रुक्मिणी के उमा का उल्लेख किया है । इसी अवसर पर एक ब्राह्मण रुक्मिणी के पास आया जिसको रुक्मिणी ने भाई कहकर सम्बोधित किया ।^८ रुक्मिणी ने अपने काञ्चनयुक्त वामुद्रा की स्वाहा और नवा की लेखनी द्वारा कृष्ण के नाम पत्र लिखा । रुक्मिणी ने लिखा 'हे कृष्ण ! मैं मरना नही भूना सगी हूँ कि तु मारने मुझे भुना रखा है । जब कोई मुझे हाथ पकड़ विवाह कर ले जायेगा तो आपका क्या सम्मान रहेगा ।^९ ब्राह्मण ने कुन्दनपुर से द्वारका के लिए प्रस्थान किया । रात होने पर माग में सो रहा । प्रातःकाल जागने पर द्वारका में उठा ।^{१०} ब्राह्मण ने प्रमत्तता पूर्वक कृष्ण के पास पहुँच कर रुक्मिणी का पत्र समर्पित किया और कहा— " राजा भीष्मक की राजकुमारी ने मुझे भजा है, उसी महादुःखिन होकर पत्र लिखा है ! यह पढ़िये !"^{११} रुक्मिणी का पत्र देखकर कृष्ण की भाँसे में आसू आये तब कृष्ण ने पढ़कर सुनाने के लिए पत्र ब्राह्मण को दिया —

अपर देवि अपिथा आप आसू भराया,
तदि वागद निहा दीपा सन्नद द्विज वाचि सुराया ।
हूँ बाद राउली राज साहिब मा हुदा,
हूँ सदा सुहागण नारि साप भरे नाग सुरिदा ।
ससपान जान सकी आ यका कही आइ चडोमी कडे ।
कोई न कहे आज आवे कृसन प्राण छोडि रुपमणि पडे ॥^{१२}

१ - छंद स० १०-१२ ।

२ - छंद स० ११ ।

३ - छंद स० १४ ।

४ - छंद स० १५ ।

५ - छंद स० १७ ।

६ - छंद स० १८ ।

नाग तणी नागिणी परणि नें जाइ परउ को,
 सीह तणी सीहणी जोर ले जाइ जयु को ।
 हसी तणी हंसीणी मयक लेया ओ मये,
 जोरु आ हदी जोडि राक तोतर विम रये ।
 महाराज जुद्ध करता मेहर कहा अछछ न करी कही ।
 महणार मयन न भलो मुनै तो तिमप प्राण रणु नही ।^१

११० ५ । कृष्ण १ मेघ-पवन रथ मगा कर उसमे वेगवाग धाडे जुवावाये । ब्राह्मण को साथ बैठाया । धनुष बाण सजाया और कुशापुर में भाकर अपना टहनाव किया ।^२ ब्राह्मण ने रथ से उतर कर रुक्मिणी को कृष्ण क भागमन को सूचना दी । राजा भीष्मक न कृष्ण का भागमन जाकर प्रसन्नता प्रकट की और ब्राह्मण का श्लिष्टा दी ।^३ बलदेव भी कृष्ण से सा मिल । भीष्मक को बहुत सुख हुआ ।^४

१११ ५ । रुक्मिणी क निष्ठ देवी पूजन के अवसर पर ही श्रीकृष्ण म मिलने का अवसर था इसलिए रुक्मिणी न अपने माता पिता से देवी पूजन क लिए आना मागी ।^५ प्रस्तुत था य क इस प्रसंग म एक विचिन्ता है कि राजा भीष्मक देव पूजन क विषय में शिशुपाल से भी अनुमति प्राप्त कर लत हैं —

भीमक चाकर भेजीउ पूछेजा ससपाल ।
 देवी पूजण दीकरी करि आवै ततकाल ॥ ३४ ॥

११२ ५ । रुक्मिणी अम्बिका-पूजन के लिए चली तो शिशुपाल ने सुरक्षा का भारी प्रबध किया ।^६ सुरक्षा का ऐसा प्रबध देखकर रुक्मिणी चिन्तित हुई कि इतने मोटा कय मारे जावेंगे और कब यह कृष्ण का वरण कर सकगी ।^७ कृष्ण न सेना के बीच में स होकर रुक्मिणी का हाथ पकड़ कर उसको अपने रथ में ल लिया ।^८ शिशुपाल देखता ही रह गया और दुहित को यादव ले गये । बरात में हडबडी मच गई और क या पक्ष मे खलबली मच गई ।^९

आगे युद्ध का वरण मुख्यत बभ्रूपरी छंद के अंतगत किया गया है । यह वरण रुद्रिगत हान हुए भी यथाथ लगता है ।

१ - छंद स० १७ ।

२ - छंद स० २८-२९ ।

३ - छंद स० ३०-३१ ।

४ - छंद स० ३३ ।

५ - छंद स० ३६ ।

६ - छंद स० ३७ ।

७ - छंद स० ४० ।

८ - छंद स० ४२ ४३ ।

९ - छंद स० ४७ ५५ ।

॥ कवित छप्पय ॥

भले लोह घमसाण पाण अमुरा पहाड ।
जोगाण डाहण जरप अमप भप लेमण आहार ।
यु का काल जूक भून भैरव इम मापे ।
सामल पुत्र जे मग एम आमीम ज मापे ।
गिरजगु अंत ले गई गगन लगस परन बागी लरत ।
सुण तान तणा सामलि सत्रद गिवरी कय हुउ गिरत ॥ १

११३ ५ । श्री कृष्ण ने स्वयं का उमक सिर के वस्त्र से रण में बाध लिया ।
निगुवान और जरासंध भी कृष्ण ने परास्त हो गये ।^१ रुक्मिणी ने अन्न भ्रा^२ की बंधना
वस्था में कृष्ण प्रकट किया और वन^३ न श्रीकृष्ण का इस विषय में उपासना दिया ता
श्रीकृष्ण ने स्वयं की मुक्त कर दिया ।^३

११४ ५ । रुक्मिणी के माय यात्रा द्वारिका पहुँचे ।^४ कवि ने श्रीकृष्ण के लिए
रघुसाई का भी प्रयोग किया है । द्वारिका में श्रीकृष्ण सैनिका सहित पहुँचे और वमुद्देव
देवकी से मिले ।^५ देवकी ने राजाणा को बुनाकर श्रीकृष्ण रुक्मिणी के विवाह का मुहूर्त
पूछा तो राजाणा ने कहा "हरि ने रुक्मिणी का हान परुडा तनी पाणिग्रहण-नस्कार हो
गया ।"^५

११५ ५ । विवाह में वही प्रयोग म हू^६ अ है ।^६ राजाणा ने पाणिग्रहण मन्त्र की
उत्तर के बिना ही पुन पाणिग्रहण नस्कार करवाया है ।^७ विवाह के बाद रुक्मिणी के
शृंगार का वर्णन इस प्रकार किया है ।

कृसन मलण कारणे कीआ ग्राम्पण केहा,
भमरा भामिवा भमर अघर प्रजाली एहा ।
हरीआ लक गति हय कमल ज्यु कमल विकासे,
दसण बीज दाडिम्म सीस मफि चद प्रकासे ।
नामिका कीर सोभै विकट बेणी सेस विराजियो ।
सिएगार हार सुन्दर सभे सेज रमेजा सभोयो ॥^८

१ - छंद सं० ५७ ।

३ - छंद सं० ५९ ।

५ - छंद सं० ६१ ।

७ - छंद सं० ६५ ।

२ - छंद सं० ५८ ।

४ - छंद सं० ६० ।

६ - छंद सं० ६२-६४ ।

८ - छंद सं० ६५ ।

११६ ५ । काव्य क कृत मं श्रीकृष्ण रत्नमण्डा का समाप्त वर्णन किया गया है
जिसमें कवि न मर्दाना का पूर्ण रूपण पालन किया है —

बिहुँ मोहोला छत्रि बणो यणो तद तदन वागा,
महा रूप रपमणी आइ ऊभी मुह आगा ।
जदि आप उटिया तूटाआ दिमण दिलापा,
एव रूप हाइ अधिब विहद अण करण मिलागा ।
सास्त्र गरय जायो सहा कहो सुखी दोठा बणी,
चतुर स साम सजा चढे एह सुग जाणो तु ही ॥ १

इस प्रति का पुष्पिका लेख इस प्रकार है —

इति श्री रपमणी हरण सपूरण ॥ १८०४ । त्रै सुदि साम लिखत पा कोति
कुशल गणि वाचनाथ चिरजीवी गुनाश्रचद तथा रग जी श्री मानजूआ मध्ये । श्री ॥

(५) मुरारीदान वारहठ कृत “त्रिजय-त्रिमाह”

११७ ५ । कवि ने प्रारम्भ में गणेश स्तवन करत हुए सरस्वती की वन्दना की है ^२
तदुपरांत कवि न रत्नमणी हरण सम्बन्धी कथा का महत्व बताया है । ^३ कवि ने कुन्दनपुर
का वणन विस्तार से किया है । जिसमें कवि का वस्तु वणन प्रतिभा प्रकट होता है । द्वारिका
वर्णन में पेड़ पीथा क नाम भी विस्तार से बताये गये हैं —

कुनणापुर भीसम राज करे । धर सारीय उपर छत्र धरे ॥
तिणारै सह मिदर हेम तणा । घणा मोलाय नग जडाव घणा ॥
जालिया विच हीर पना जडिया । परटा जरिबाफ तणा पडिया ॥
अन गध मुगध रा वी अतरा । कसतूर कतूर कुम कुमरा ॥
बिच बाग बडा कसता वणिया । इस ऊजल सोनल ऊफणिया ॥
छडकाव कुम कुमरा छडके । कुसमाद गुलाब कला तडके ॥
राय बैल चबेलिय मालसरी । केवडा केसकी कषारिघा केसरी ॥
जिहा पाउल चपका जाय जुही । साया गुल नोरग रग सही ॥ ५

११८ ५ । कवि ने राजा भीष्मक के ऐश्वर्य काय दण्डविधान और काव्य प्रेम
आदि का भी वणन किया है । ^४ तदुपरांत कवि न भीष्मक की स तानो का संक्षिप्त वणन

१ - छंद स० ६८ ।

२ - छंद स० १-२ ।

३ - छंद स० ४ ।

४ - छंद स० ६-६ ।

५ - छंद स० १४-२३ ।

करते हुए रुक्मिणी का वरण किया है। रुक्मिणी के वरण को कवि ने थोड़े ही शब्दों में लिखा है।^१ राजा भीष्मक श्रीकृष्ण से रुक्मिणी का विवाह करना चाहते हैं तो स्वमैया स्पष्ट शब्दों में उनकी निंदा करता है—

किण भात अहीर सगा करिये । श्रीछी मत नीच तो आदरिय ॥

माय जैणा जसोदाय बृज म । है नदराय पिता नृप जाणत है ॥^२

कहिंसा पण तात खिमा करजो । धर धीरत भयान हिंदै धरजो ॥

आणिया ओलमा उण जवान इसा । दुख दायक मा पिता बाल दिसा ॥^३

राजा श्रीकृष्ण को महिमा बलानत हुए स्वमैया को समझाने का प्रयत्न करते हैं कि कृष्ण विष्णु का अवतार हैं और सच्चे भक्तिय के रूप में द्विजा और दीना का सहायक हैं। स्वमैया बहकार में अपने ज्ञान को भूल गया है।^४ यदुपति कृष्ण के समान प्रयत्न का ही वीर नहीं है।^५ आगे स्वमैया बहता है, कृष्ण ने अपने मामा कस को मार कर उसके वध का उच्छेद कर दिया, दामो की ओर चित्त लगाया इनकी बहिन ने एक साथ पांच पुत्रों से विवाह किया और लोक सज्जा का कोई विचार नहीं किया। ऐसे कृष्ण से राजकुमारी का विवाह करना सन्धा अनुचित होगा।

११६ ५। भीष्मक श्रीकृष्ण के परम ब्रह्म स्वरूप का वरण करत हुए कहते है कि कृष्ण वास्तव में विष्णु हैं और रुक्मिणी के रूप में साक्षात् लक्ष्मी ने अवतार लिया है^६ जिसने अघासुर शकटासुर देनदासुर जम दैत्यो का विनाश किया, कालिय नाग का दमन किया गोवधन पर्वत को धारण किया वह कृष्ण सा रात विष्णु ही है।^७ राजा ने अनेका अवतारों का वरण करत हुए कृष्णावतार की महिमा बताई है।^८ स्वमैया न शिशुपाल जस राजा से ही रुक्मिणी के विवाह का निश्चय प्रकट करते हुए एक ब्राह्मण के द्वारा विवाह का मुद्दत निश्चित कर शिशुपाल के पास लग्नपत्रिका भेज दी।^९ ब्राह्मण ने च देरी पहुँच कर लग्नपत्रिका शिशुपाल को दी।^{१०} शिशुपाल ने उत्साहपूर्वक विवाह की सयारी की और यथासमय कुन्दनपुर के लिए प्रस्थान किया। कवि ने शिशुपाल के माम में होने वाले अपमान का भी वर्णन किया है।^{११}

१ - छंद सं० २५-२६।

३ - छंद सं० ३९।

५ - छंद सं० ४२।

७ - छंद सं० ५२-५३।

९ - छंद सं० ९१-९२।

११ - छंद सं० ७२-७४।

२ - छंद सं० ३१।

४ - छंद सं० ४०-४१।

६ - छंद सं० ४८-५०।

८ - छंद सं० ५५-५६।

१० - छंद सं० ६२-६६।

१२० ५। कुन्तपुर में उरगाहूर्णक दक्षिण की दिशा का सपारा होती है। दक्षिण की सलिया प्रसन्न है किन्तु उनका बीच दक्षिण बिलग रहा है। दक्षिणों ने किता तरह पत्र लिख कर ब्राह्मण का दिवा घोर कृष्ण की मन्दर सुरंग यहा लीगे। ब्राह्मण ने विचार किया, दूर जाना है और मृत हो गया है —

सह यत करे इण भात सली, विच हेक जाय दामा बिनली ॥
 लिखमी क्खिण भात मू ले लिखिया, दिज हेकण कागद हाय दीपी ॥
 जगपति जदपति जाहि जठे, अति आतुर वेग ले भाव घटे ॥
 कर कागद ले दुज सोच कीपी, अलगी घर मुरज सायमापी ॥ १

१२१ ५। ब्राह्मण रात में सो रहा किन्तु प्रातः काल हात ही उसरो द्वारका का दर्शन हुए। कवि ने दक्षि पूर्वक द्वारका का वर्णन किया है। २ श्रीकृष्ण की उगारता राजसो रूप और मु दरता का वर्णन भा कवि ने विस्तार से किया है। ३ ब्राह्मण ने पागार्या कर दक्षिण की पत्र श्रीकृष्ण को समर्पित किया। दक्षिणों का पत्र ५ पत्र ही हरि कुन्तपुर के लिए रवाना हो गये। श्रीकृष्ण धनुष बाण सजा कर और कुन्तपुर का नाम जानन का पुरोहित को साथ लेकर अपने रथ का घाटा को तजो से घनात हुए मुरत ही कुन्तपुर में पहुँचे गए। ५

१२२ ५। बलदेव ने श्रीकृष्ण को ब्राह्मण सहित कुन्तपुर का भोर गया हुआ सुना तो वे भी सैनिक सहित युद्ध की तयारी कर श्रीकृष्ण से जा मिले। श्रीकृष्ण और बलदेव ने सैनिको सहित कुन्तपुर का नर नारिया को बहन प्रभाविन किया। नर नारियो ने यही मनोकामना की कि दक्षिणों का विवाह कृष्ण से हो। ५

१२३ ५। राजा भद्रक ने श्रीकृष्ण बलदेव का पूणरूपेण स्वागत-सत्कार किया। श्रीकृष्ण का आगमन सुनकर शत्रु दहल गये। दक्षिणों ने अपने परिवार वालो से पूछकर देवी मन्दिर में पूजन के लिए अपनी सहेलिया सहित प्रस्थान किया। ७

१२४ ५। अमवास्या से प्रस्तुत काश्य में दुर्गा पूजन का रसग से एक भिन्नता है कि मन्दिर में मिलने का सकेत दक्षिणों के पत्र में नहीं दिया गया है। विरोधी पक्ष ने दक्षिणों का सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध किया। ८ किन्तु कृष्ण ने इसी अवसर को हरण के

१ - छन्द स० ७८-७९।

२ - छन्द स० ८०-९०।

३ - छन्द स० १०१-१०७।

४ - छन्द स० ११०-११३।

५ - छन्द स० ११४-११५।

६ - छन्द स० ११६-१२१।

७ - छन्द स० १२२।

८ - छन्द स० १२६-१२९।

लिए सर्वथा उपयुक्त जान कर रुक्मिणी का हरण कर लिया " हरि आप री लख हरि रे
रि " । १

१२५ ५ । कृष्ण के द्वारा रुक्मिणी का हरण जानकर गिशुपान युद्ध के लिए
उत्पन्न हो गया ।^२

कवि ने युद्ध का वर्णन विस्तार से किया है ।^३ युद्ध में गिशुपान और रुक्मिणी की
राज्य हुई । श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का बाध लिया तब रुक्मिणी ने दसो ऊ गलिया मुह में देते हुए
प्रायना की । राजस्थान में दसो ऊ गलिया मुह में दकर क्षमा प्रार्थना करन की
प्रथा है जिसका 'आडिया खाना' कहा जाता है । रुक्मिणी ने मृगया क बहाने जगन
ही निवास किया और कुन्दनपुर में नही जा कर एक नया नगर बसाया ।^४

१२६ ५ । कृष्ण द्वारा हुई विजय का समाचार जानकर द्वारका वासियों में उत्साह
और मान-द की लहर दौड़ गई और वे आगे जा कर श्रीकृष्ण से मिले ।^५ पावतो और
मसा मारती करती हुई आई ।^६ श्रीकृष्ण और रुक्मिणी १ वसुदेव और देवकी के समीप
जाकर अभिवादन किया ।^७

१२७ ५ । कवि ने आगे कृष्ण रुक्मिणी के विवाह का वर्णन किया है ।^८ तदुपरांत
कवि ने रुक्मिणी के शिख-नख शृंगार का वर्णन करने हुए लिखा है^९ जिसके कतिपय
उदाहरण इस प्रकार है —

त्रिवली त्रिव प्राण त्रिणी वनिता लहरी महरी रसरी सलता ॥
कटि केहर जाए जघा जुगली फबिया तिक उलट भोणाफली ॥
महाते तजे हृद एम लसे मण सौटीय मगल धाम भसे ॥
वनिता इम नूपरीया वणीया, जाणे जेहडीया बचडा जणीया ॥
पद पकज वानचलै पगरा, मडी पग मह प्रभू मगरा ॥
अण बट निपट अनोप मय, नख चलता हूत मय नमय ॥ १

१२८ ५ । कवि ने रुक्मिणी के प्रद्युम्न नामक महाराजकुमार को उत्पन्न होने और
उपरांत होने का एव कृष्ण रुक्मिणी की रति श्रीडा का भी संक्षेप में वर्णन किया है —

१ - छंद स० १३२ ।

२ - छंद स० १३५-१७० ।

५ - छंद स० १८६ ।

७ - छंद स० १८६ ।

८ - छंद स० २०१-२१६ ।

२ - छंद स० १३४ ।

४ - छंद स० १८० ।

६ - छंद स० १८८ ।

८ - छंद स० १६३-१६६ ।

१० - छंद स० २१७-२१६ ।

रगराग सुणे अनुराग रता, तर जाण तयाच कनक लता ॥
 नित रति करे सट रित नई, मग तन हुमा मिल एक मई ॥
 निज पूत हुमा प्रमन जिसा पातरा प्रकटे अनुरध इसा ॥
 महाराणीय पाटतणा रगमा, मुख घेद रटे घवनार रमा ॥ १

१२६ ५। कवि ने मत्त मे श्रावण क परम परमवर रूप का प्रीर सक्त करते हुए उनकी महिमा का बणन किया है । ३

विजय विवाह' का धार नाम 'गुण विजे व्याह' है ३ प्रस्तुत रचना २४२ छन्दो मे है जिनमें माहा, त्रोटक प्रीर छन्द कविता का सनावण हया है । इस रचना का परिचय डा० धानद प्रकाशजी दाक्षित क एक निबंध मे प्राप्त हाता है । ४ इस वृत्ति का २० वा० वि० सं० १७७५ है । श्री भगवत्चंद जी गहगा द्वारा प्रेषित जिस प्रति क आधार पर श्री दीक्षित जी ने भवना मध्यमन प्रस्तुत किया है उसमें कता का नाम उदयचंद्र नहा है कि तु भव्य प्रतियो म कर्ता का नाम सट है । स्व० रामचरणजी घासोपा, जोधपुर के सग्रह म प्राप्त प्रति म रचना के मत्त में कता मुरारामन जी का नाम इस प्रकार है —

कवित्त

तू गुण मागर परम तुही निरगुण परमेश्वर ॥
 तू अकरण श्रम करण करम तु ही कटणाकर ॥
 तू निरञ्जण निराकार तु ही रजन रत्नमा रे ॥
 तू निकलक निरधार तु ही आधार हमारे ॥
 वृजराज कवर हिक विनता, अरज राज साभल दूती ॥
 सुरार देल मुरारि दिस प्रेम भगती दयो जगपती ॥ ५

सम्पूर्ण विजे व्याह मुरारदान वृत्त

१३० ५ रचना मे पृथ्वीराज वृत्त 'वैलि' जैसा काव्य भी ५ नहीं है कि तु युद्ध, शिक्ष नक्ष निरूपण प्रीर नगर बणन प्रादि की दृष्टि से कवि ने अपने मनोदान प्रीर स्वतंत्र विचारा का परिचय दिया है ।

१ - छन्द सं० २२१-२२४ ।

२ - छन्द सं० २२७-२३४ ।

३ - रामस्वामि भाष्य विद्या प्रतिष्ठान प्रीर रामस्वामी शोध संस्थान, जोधपुर की प्रतियां ।

४ - गुण विजे व्याह, मधुमारती, पिलानी, वष ८ अक्ष २, पृ० १६ ।

५ - छन्द सं० २३५ ।

(६) विट्ठलदाम कृत रुक्मिणी-हरण

१३१ ५। विट्ठलदाम कृत रुक्मिणी हरण के प्रारम्भ में कवि ने मगलाचरण में सरस्वती वदना की है।^१ मगलाचरण के उपरान्त कवि ने कृष्णप्रसाद का रचना का उद्देश्य बताने हुए विदर्भदेश राजा भीष्मक और राजकुमारी रुक्मिणी का उत्पन्न किया है। रुक्मिणी के विवाह के सम्बन्ध में राजा चिन्ता प्रकट करता हुआ कृष्ण को बर बनाने का प्रस्ताव रखता है। राजकुमार दमैया के विरोध प्रकट करने पर भी भीष्मक विभिन्न अवतारों का वर्णन करता हुआ श्रा कृष्ण को साक्षात् विष्णु का अवतार बताता है। दमैया गिणुगान को सग्न पत्रिका भेज देता है ता रुक्मिणी रोती हुई खान-पान छोड़ देती है।

१३२ ५। गिणुगान विवाह के लिए तैयारी करता है। वाराण में भक्त म्लेच्छ घोर नामक एकत्रित हो जाते हैं—

छन्द-भुजगी

मिने म्लेच्छ घोर जिके अग मोटा मिने दाणवा वम दाठीक दोटा ।
मिने वन अनेक अनेक वैमा मिने, काल बाणा जिके लउ केसा ॥२६॥
मिले भाभडा भूत भाडग भला मिले माण मयद एकल मला ।
मिले माहजादा जिके माथ सूगा, मिलेहेह बाणी जिके अ गगुरा ॥३०॥
मिले कोटि नाद मिले कोटि प्यादी मिले कोड बाजा मिले कोडवादी ।
मिले काड पैकवरा काड बाजी, मिले काड गोरवश कोड गाजी ॥३१॥

१३३ ५। विट्ठलदाम के रुक्मिणी हरण में राजा भीष्मक स्वयं ब्रह्मण को बुला कर उसका द्वारा कृष्ण के नाम पत्र भेजते हैं।^२ पत्र में कृष्ण रुक्मिणी का सम्बन्ध में मीन और जन, चन्द्र और चकार तथा चातक और मेघ का बताया गया है।^३

१३४ ५। कवि ने ब्राह्मण के माग में सा जाने प्राण द्वारका में जागने द्वारका क हृदयों से चकित होने और कृष्ण के पास पहुंचने आदि का सक्षिप्त वर्णन करते हुए कृष्ण के प्रति विप्र द्वारा रुक्मिणी के विषय में विस्तृत प्रायना करवाई है।

१३५ ५। कृष्ण और बलदेव सैनिक तैयारी कर विन्धु पहुंचते हैं। दम प्रसंग में कवि ने यह ध्यान नहीं रखा कि कृष्ण के पास सेना सम्बन्धी तैयारी का समय नहीं था।

१ - छन्द स० १-४।

२ - डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित " रुक्मिणी हरण विट्ठलदाम रो कह्यो " गोध पत्रिका उदयपुर, भाग ११, अंक १।

- यही, छन्द स० ४८, ४९।

विदर्भ पहुंचने पर कृष्ण का स्वागत हुआ और बाह्यण की दक्षिणा प्राप्त हुई। कवि ने तदुपरांत कृष्ण और शिशुपाल की तुलना करते हुए दोनों को क्रमशः बाणर और निशा, समुद्र और सरावर तथा दश और असुर बताया है।^१

१३६ ५। मन्विना पूजन के प्रथम पर कृष्ण से भेंट होने की सम्भावना निश्चित मानती हुई रुक्मिणी शृंगार धारण करती है।^२

१३७ ५। श्री कृष्ण मन्विना पूजन के पदचान् रुक्मिणी का हरण करते हैं। हरण का समाचार शिशुपाल को मिलता है। नगर में और शिशुपाल व निबिर में श्यामुवता व्याप्त हो जाती है। युद्ध प्रवश्यमाची हो जाता है।^३

कवि ने युद्ध वर्णन में अपनी विनोद रुचि प्रकट की है। युद्ध पाशों का नाच कामरा का कपन शस्त्रों का चलना, वीरों का ललकारना आदि चित्रण भावपूर्ण हुए हैं। शिशुपाल पक्ष के समुर 'मञ्जा' का उच्चारण करते हुए बताये गये हैं।^४

१३८ ५। कृष्ण के मागे शिशुपाल, जरास र और रुक्मणा की सेनाएं पशास्त हो जाती हैं। श्रीकृष्ण रुक्मिणी की प्रार्थना पर रुक्मिणी को विरूप कर रण से बांध लेते हैं।^५

१३९ ५। विशाह वणन में भोजन, नृत्य और संगीत का चित्रण है। पाठ होता है कि कवि को संगीत और नृत्यादि का विशेष ज्ञान था।^६ कवि ने अंत में 'रुक्मिणी हरण' का पाठ का माहात्म्य बताया है।^७

१४० ५। विद्वान् एव कृत "रुक्मिणी हरण" में द्रुहा, गाहा कुण्डलिया, मोतियदाम नाराच, भुजगी, चोटक गाहा चौसर मु डेल, अडित्त कवित्त, पदरी, डमलाड, प्रद नाराच हणूकाल कामधी, कामली मोहन, मेणावला, डोहो मोतियदाम रसावली वे प्रक्षरी, चौपाई साटक तथा पाण्यत नामक १९८ छंदों का समावेश हुआ है। कवि ने शिशुपाल के पक्ष वाली को स्पष्ट रूपेण मुसलमान लिखते हुए उनके विरोध में कृष्ण की विजय बताई है। कवि का लक्ष्य रुक्मिणी के रूप में भारत लक्ष्मी का दुष्ट दल शहारक श्री कृष्ण द्वारा उद्धार की ओर रहा है।

१ - डॉ० धानंद प्रकाश दीक्षित, 'रुक्मिणी हरण विद्वत्तयास रो कह्यो,' गोप पत्रिका, उदयपुर, भाग ११, अंक १।

२ - वही, अंक स० १०४-१०५।

४ - अंक स० १२३।

६ - अंक स० १६०।

३ - अंक स० ११२-११३।

५ - अंक स० १७६-१७९।

७ - अंक स० १६८।

७ किशन-किलोल

१४१ ५। कृष्ण कविमणी विवाह विषयक 'किशन किलाल' नामक काव्य राजकीय अभिलेखागार बीकानेर में पुराने रिकार्ड के साथ उपलब्ध हुआ है।^१ इस काव्य की रचना वि० सं० १७८७ द्वितीय भाद्रपद शुक्ला ११ शुक्रवार को हुई है और इस काव्य का कर्ता श्री भगरचन्द नाहटा द्वारा प्राप्तदास लिखा गया है।^२ किंतु काव्य कर्ता का नाम रुपराम भी संभव है—

रुपराम हिरदे रटो रटो धरम सू रग ।
प्रास दास सू उच्चरै सदा मिले सतसग ॥३

१४२ ५। अथ का रचना काल इस प्रकार बताया है—

अथ अथ सवत् वरणण—

समत् १८८७ रा भाद्रवा दुतीक सुद ११ शुक्रवार
सतरा से सितियासिये दुती भाद्रवो देख ।
दिवस धुक एकादशी पख उजवालो पेल ॥४

१४३ ५। कवि ने काव्य में छन्द सख्या का परिमाण बताया हुए लिखा है—

अथ दाहा गुण सरया वरणण—

छहु छन्द गाहो गिणो, तव दोहा इक्तीस ।
कवित एक अटकल कहा कीजा माफ कवीस ॥

१४४ ५। कवि ने राजस्थानी गद्य में वष्य विषयों के शीपक भी लिखे हैं—

- १ अथ ससिपाल नु लगन लिखियो तिए वेला ग्रह वरणण, पद्य ४ ।
- २ अथ ससिपाल नु अपशकुन हुवा मृ लिख्यते ।
- ३ श्रीकृष्ण रथ अतवार हुआ ने शुभ शकून हुवा-ते लिख्यते छ द भूपताली ।
- ४ अथ ऊठा रो धरणण रग, रूप गुण अवगुण रोग आदि ।
- ५ अथ सावत वरणण, सावता रा सिएगार ।
- ६ अथ छतीस आवध वरणण ।

१ - डिगल का एक मजात कृष्ण काव्य, किशन किलोल, श्री भगरचन्द नाहटा, मधु भारती, वर्ष १०, प्रक २ पृ० ७२-७३ ।

२ - वही ।

३ - वही ।

४ - वही ।

- ७ अथ अक्षोहिणी सेना तत्र चतुरंग सेना वरणण ।
 ८ अथ कुन्दनपुर रे गोरखे पैसता शुभ शुक्ल हुवा मो लिग्यते ।
 ९ अथ कृष्णजी रो शृ गार वरणण ।
 १० अथ श्रीरुकमणी जी सोलह सिणगार करे सो वरणण ।
 ११ अथ किसनजी सू रुकमणीजी वु मिलण रा शुभ शुक्ल हुवासो लिसै छै ।
 १२ अथ सिसपाल जुध समे अपसुगुन आपरी हार रा मुणिया पर मानिया नही सु
 लिरयते ।
 १३ अथ रुकमणी विवाह वरणण जुध सम छै ।
 १४ इति श्री छन्द भपताल युद्ध कथन सम्पूर्ण पद्याक ३५० तक ।
 १५ अथ द्वारका से सामेली वरणण ।
 १६ अथ वाजा छतीस जात री बिगत छ द जात भुजगी ।
 १७ अथ छतीस राग रागणी वरणण ।
 १८ अथ कवर प्रद्युमन । वार्ता सेवा करे छै प्रद्युम्न जिसा मास ४ सम्ब इतरे घरे
 रसा जीवन अवस्था नु प्राप्त हुपा छै ।
 १९ अथ बतीस लक्षण वरणण छ द मोती दाम ।
 २० अथ चवदह विद्या वरणण ।
 २१ अथ कवर प्रद्युमन विवाह वरणण ।
 २२ अथ छत्र ऋतु वरणण ।

१४५ ५ । कवि न कथा निर्वाह क साथ ही का पगत अनेक विषयो का वरण
 मनायोग पूवक किया है । वस्तु वरण मे कवि को सफल कहा जा सकता है —

अथ उठी रो वरण

सनावाल आवियार बारी रथ का पु जाले सभाले प्रीत कर पायका ।
 प जानग नट पाकेट बट पिडरा मोरवा मुचे नह मारकी मडरा ॥१॥
 वेवढे बाहुव मुडाना मिघरा, कूतर कथ ज्यों कसे यध कधरा ।
 टामकी कगन ने चुवे मद चाबडी कदेई न पाके न चाहे कावडी, ॥२॥
 निघोडी नली म ताकरो तलोरा, घू व गिरमेर ज्यू नीपना धलीरा ।
 भाक नय हाय करडी निजर भाक्ता, नेस कढ़ गाठ गढ़ रोय बह
 नाक्ता ॥३॥

अथ द्वातीस प्रायश्च वरणण—

सजरा बाहू बाधी खगा स्रिया, पूठ ठाला पडी जडी लोह पत्रिया ।
भूवालो भोड भूयाण विण भीडिया, बाध बुगदा छुरा राधरा वीडिया ॥१॥

अथ रुक्मिणी जी सोलह श्रु गार कर सो वरणण—

मजिया मजने अगो अग आजरा ओपिया प्रागणे जाए रितराजरे ।
पा रा नगा जिम इसा नव ओपोया, रूपरो रुखडी लाल फल रोपिया ॥
तुपरे ऊपरे सनूरे नाम रा जग घर जाणिया काम रे काम रा ।
पान पग ऊपरे मींगुली पचरे, सोभारे सरोवर काछवा सचरे ॥
जाभरा ह जगत पगा ले पागरे कूकिया मीरिया काम र कागरे ।
रग रा रग ले गाघरे घेरिया, फरहरा कामरे कामरे प्रागले फेरिया ॥
ओपिया मुहारा ओपमा अकिया बिराजे कामरे रथ रा बाकिया ।
कुकमी बिदका मय भू हो कथी, सोहियो रूप रा रथ रो सारथी ॥
नासका नथ पर कीर भरीर नागियो, आपरो पास ले काम उपामियो ।
ऊजली बतीसी मोह भाले इसी, हम रा बच्चा रो पात हुसे इसी ॥
नेहणी धरा ह नाग गन नीसरे बेसता पालकी कालकी बीसरे
हीडोली पालकी कहार ले हालिया । महादल पायदल वे वली हालिया ॥

१४६ ५ । प्रस्तुत काव्य में नाम की ही नहीं वर्णन की भी विवेचना है । किशन किनोन व वर्णन मे प्रत्येक विषय की पूणता है । प्रति म वर्णित विषयो के शीर्षका से ज्ञात होना है कि इसमें २२ विषया का वर्णन है । सम्बन्धित विषय के अध्ययन हेतु काव्य की पूण प्रति की प्रतीक्षा रहेगी ।

१४७ ५ । श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी प्रबंध काव्यो के प्रतिरिक्त चारण अथवा चारण श्रवो से प्रभावित कवियों के स्फुट छन्द भी उल्लेख हाते हैं । चारण गीत नामक छन्द का एक भेद व्याहरी भी है ।^१ व्याहरी गीत के उदाहरण में श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह वर्णन दिया गया है । लक्षण सहित व्याहरी गीत का उदाहरण इस प्रकार है —

अथ व्याहलो (गीत)

दोहा— कल नल मित तिथ करी, विसम व्रत प्रस्तार ।
सो भणिये कवि व्याहलो, वरणा चरण विचार ॥

वार्ता—

इस भावन रा ने व्याहना रा च्यार द्वाला होई तन पूण गीत नहीज । छ द्वाला दाणी
कहीजे घाठां दूणी, सोला द्वाला रो होई सो सोहलो गीत नहीज । यथा —

द्विच बेठी रकमणि नारी, हथलैवै राजकु वारी,
ग्राए कार्तिकेय गण ईसौ, ग्राए ब्रह्मा सहित महेसो ।
दीनी हो ब्रह्मा गाठ खुलाई, डोरडी नही छूटे,
वसुदेव थारो पिता बुलाई, याने कह्ये न छूटसी ॥१॥
देवकी हो थारी माई बुलाई, नदजी थारो बाबो बुलाई,
जसोदा थारी घाई बुलाई, ब्रजवासी लोक बुलाई ।
गोमुल का सहि ग्वाल बुलाई, थारे कह्ये न छूटसी,
जीतयो जीतयो द्वारका रो राव, वसुदेव घरा बधामणी ॥२॥

इति व्याहलो

षष्ठ अध्याय

श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी चारणोत्तर काव्य

प्रारम्भिक परिचय

१. पद्मदास कृत “ रुक्मिणी मंगल ”
२. रुलीराम पुजारी कृत “ रुक्मिणी नारा मामा ”
३. करुणा रुक्मिणी जी
४. बनीधर शर्मा कृत रयाल रुक्मिणी मंगल
५. श्री कृष्ण जी रो विवाहलो
६. कवि नन्दलाल कृत रुक्मिणी रास
७. रुक्मिणी हरण (बडा)
८. रुक्मिणी हरण (छोटा)
९. रुक्मिणी विवाहलो
१०. कान्ह जी विवाहलो

षष्ठ-अध्याय

श्री कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी चारणंतर काव्य

१ ६। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी चारणंतर काव्यकर्ताओं में मुख्यतः दो वर्ग हैं — १ जैन कवि और २ जैनतर कवि । दोनों ही वर्गों ने अपना रचनात्मक रूप से और पूरक धार्मिक दृष्टि से की है । इस प्रकार की रचनाओं का आधार लोक प्रचलित गायन है जिनसे कवियों ने अपनी रुचि और धार्मिक भावतानुसार गेय रूप प्रदान कर दिया है । लोक प्रचलित रीति व्यवहारों, विचार धाराओं, वैषम्य और छान-पान आदि का इन रचनाओं में विस्तृत विवरण हुआ है । इस प्रकार का रचनात्मक जनता में मौखिक परम्परानुसार प्रचलित रहो है फलस्वरूप इनमें परिवर्तन भी हाव रहे है ।

(१) पद्मदास कृत रुक्मिणी-मंगल

२ ६। राजस्थानी जनता में पद्मदास कृत रुक्मिणी मंगल बड़े भाव से गाया और सुना जाता है । रुक्मिणी-मंगल का अरार नाम "किसनजी रो व्यावला" है । जिन प्रकार श्रीमद्भागवत का सप्ताह आयोजित होता है उसी प्रकार 'व्यावला' का भी भक्त द्वारा सप्ताह आयोजित किया जाता है । राजस्थान में धनक ब्राह्मण और जागी आदि 'व्यावला' गाय का काम करते हैं । व्यावले के प्रधान गायक के प्रति जनता में बहुत सम्मान होता है । वह भक्ति पूर्वक उच्च स्वर में व्यावला गाता है । उसके सहयोगी सारंग, ढोलक और करताल आदि बजाते हुए गाने में उसकी सहायता करते हैं । जैसे २ 'व्यावला' की कथा चलती है जनता की उपस्थिति भी उत्साहपूर्वक परिवर्द्धित होती है । जनता व्यावले का पूरक पर यथाशक्ति धन, वस्त्र और धन प्रधान गायक एवं व्यावले की पुस्तक का भेंट कर अपने भावों को उद्घुष्ट समझती है ।

३ ६। पद्मदास के 'रुक्मिणी मंगल' की प्राचीनतम दृष्टान्तिक प्रति संवत्

विषय में रत्नमया रानी व समीप विचार करन पहुँचा तब रानी ने भा शिशुपाल का हा समर्पन किया। रत्नमया ने अपनी माता की आज्ञा स गुप्त रूप में ब्राह्मण व द्वारा शिशुपाल को लगन पत्रिका भेज दी।

९ ६। कवि ने रत्नमया के सरोवर स्नान नामक प्रसंग का समावेश करते हुए बताया है कि कृष्ण ने जब मे दूबना हुई रत्नमया का उद्धार किया और स्वयं रत्नमया से विवाह करने का यत्न दिया।^१

१० ६। महान में लोटकर रत्नमया ने सरोवर स्नान का वृत्ता न अपनी माता से कह सुनाया। माता ने कहा — राजा भाष्मक की व आ हा कर तुमन प्रहोर म बातचीत कर उचित नहीं किया। रत्नमया न कहा कि उ हाने मुझे जब में दूबते हुए बचाया है।

११ ६। रत्नमया ने शिशुपाल व लगन पत्रिका भेजना का समाचार सुना तो बहुत दुखी हुई। ब्राह्मण और भाट लगन पत्रिका लेकर च रेरी रवाना हुए ता माग म अपने प्रहार व भ्रमराजुन हुए^२। शिशुपाल व दरबार म रत्नमया की लगन पत्रिका पहुँची ता शिशुपाल को बहुत प्रसन्नता हुई। शिशुपाल ने यह सम्बन्ध स्वीकार कर लिया। शिशुपाल व जागी पीषा ने शिशुपाल को समझाया कि रत्नमया का विवाह कृष्ण म होगा तुम यह सम्प्र म स्वीकार मत करो।^३ शिशुपाल न दूसरे “गरजू जागी को बुलाकर उस विषय में पूछा तब उसने विवाह का समयन कर दिया। गरजू जगा ने मोवा “यदि मैं शिशुपाल की इच्छा के विरुद्ध कृष्ण तो शिशुपाल मुझे नगरी से बाहर निकलवा दगा और मेरी दाईं दक्षिणा चनी जावेगी”।^४ शिशुपाल को भाभी न शिशुपाल को समझाया कि रत्नमया सहमी की भवनार हैं। उसका विवाह कृष्ण से ही होना उचित है। तुम यह सम्प्र म स्वीकार करो।^५ शिशुपाल न भाभी की बात नहीं मानी।

१२ ६। शिशुपाल जरासन्ध क पाम गया और बु इनपुर म भाये हुए टोक के विषय में बातचीत की। जरासन्ध ने कहा कि यह सम्प्र म अवश्य स्वीकार करा और मित्र राजाओं को सेना सहित बरात म भाने का निमन्त्रण भेज दो शिशुपाल ने ककण, बगाला, कछुभुज, मरहठा, माहू मेवाड, मालव, विंध, तारातम्बोल लाठ कावुन, बुखारा, उज्जवक, दिल्ली काशी, नवल और हस्तिनापुर देशा व राजाओं का निमन्त्रण भेजे। उक्त सभी लगे व राजा अपनी सेनाओं सहित च रेरी में एकत्रित हो गये। शिशुपाल उत्साहपूर्वक विवाह की तयारी करने लगा।^६ शिशुपाल को भाभी और अन्य रानिया ने रत्नमया से विवाह के लिए

१ - पत्र स० ७, पद स० १।

२ - पत्र स० २०।

३ - पत्र स० २२ पद स० ३।

४ - पत्र स० २२।

५ - पत्र स० २४।

६ - पत्र स० ३५ ३६।

१६६। काष्ठन कृष्णा दण्ड की निमित्त उपवास हुई है । यह रविमणी मगन ने ही की है ।
 वामा तर में परिवर्द्धित होता रहा । रविमणी मगन व परिवर्द्धित का प्रकाशित ही गुण है ।^२

४ : ६। पदमग्न कृत 'रविमणी मगन' का प्रारम्भ गणपति व नाना म किया गया है ।^३ मगन लिखने का कारण कवि ने यह लिखा है कि रविमणी ने कवि को मगन लिखकर प्रकट करने की आज्ञा दी थी ।^४

५ : ६। कवि ने माने पूरा गणपति व नाना लिखी है । तदुपरा त सरस्वती-वन्दना लिखत हुए गुरु व नाना का है ।^५ तदुपरा त कवि ने रौतिल व रोड टवताया का स्मरण करते हुए प्रजा वि गु धीर महेश को व नाना की है । तमा नैयताया से रविमणी मगन के निमाण म वृषापूर्णा सहयोग की याचना की है । कवि ने मूल कथा का प्रारम्भ कुम्भपुर नगर वर्णन से किया है । तदुपरा त राजा भीष्मक धीर उत्तमी सत्तानो का वर्णन है ।

६ : ६। एक समय नारद मुनि कुम्भपुर म आण । राजा भीष्मक ने उत्तमी स्वागत सत्कार किया । रविमणी ने इस अवसर पर नारद को व नाना की । नारद जी ने न नाना कृष्ण को वर के रूप म प्राप्त करने का वरदान दिया । राजा भीष्मक न नारदजी से रविमणी के योग्य वर बताने व लिये निवृत्त किया । तब नारद जी ने श्रीकृष्ण का मुखाव दिया ।^६

७ : ६। राजा भीष्मक की रानी ने रविमणी व वर के विषय म नारद जी से जिज्ञासा प्रकट की तब नारद जी ने शिशुपाल को ही रविमणी व योग्य वर बताया । इस प्रकार नारदजी ने राजा रानी धीर रविमणी व हृष्य म विरोधी विचारा को जन्म देकर काव्यगत सघप को ज म दिया ।

८ : ६। राजा भीष्मक धीर उनके राजकुमार रविमणी के योग्य वर निश्चित करने हेतु विचार करने लगे तो राजा न कृष्ण का प्रस्ताव रखा । इसके विपरीत रविमणी ने शिशुपाल की प्रार्थना करते हुए एकमात्र शिशुपाल को ही रविमणी के योग्य वर बताया । इस

१ - (क)-नागरी प्रचारिणी सभा, वार्षिक खोज रिपोर्ट, १९०० हृष्यी ।

(ख)-अभय जन प्र घालय बीकानेर मे सुरक्षित प्रति ।

(ग)-राजस्थानी साहित्य समिति विसाउ द्वारा प्रकाशित ।

२ - (क)-हरिप्रसाद भागीरथ जी कालका देवी रोड रामबाड़ी, बम्बई ।

(ख)-गाह शिखरण रामरतन दरक, इन्दौर ।

(ग)-दयाम साल हीरा लाल, दयामकानी प्रेस मथुरा ।

३ - पद स० १ प्रका० हरिप्रसाद भागीरथ जी बम्बई पत्र स० १ ।

४ - वही ।

५ - पद स० ४, पत्र स० २ ।

६ - पद स० १, पत्र स० ६ ।

पय में रखमैया रानी क समीप विचार करन पहुँचा तब रानी ने भा गिणुपान का हा मर्दन किया। रखमैया ने अपनी माता की आज्ञा मं गुप्त रूप में ब्राह्मण क द्वारा गिणुपान १ लाम पत्रिका भेज दी।

६ ६। कवि ने रक्मिणी के सरोवर स्नान नामक प्रमग का समाचार करत हुए पाया है कि कृष्ण ने जन म दूहना हुई रक्मिणी का उद्धार किया और स्वयं रक्मिणी ने ब्याह करने का वचन दिया।^१

१० ६। महन म लोटकर रक्मिणी ने सरोवर स्नान का वृत्ता त अपनी माता स तह सुनाया। माता ने कहा— राजा भाष्यन को वंशा हा कए तुनन प्रशेर म बातचान कर उचित नहीं किया। रक्मिणी न कहा कि उ हाने मुके जन में दूवते हुए बचाया है।

११ ६। रक्मिणी न गिणुगल क लग्न पत्रिका भवन का समाचार सुना तो बहुत दुखी हुई। ब्राह्मण और भाट लग्न पत्रिका नकर च श्रेरी रवाना हुए ता माग में घने प्रकार म अशकुन हुए^२। गिणुगल के दरबार म रक्मिणी को लग्न पत्रिका पहुँचा ता गिणुगल को बहुत प्रम नता हुई। गिणुगल न यह सम्बन्ध स्वीकार कर लिया। गिणुगल क जाशी शीपा ने गिणुगल को समझाया कि रक्मिणी का विवाह कृष्ण म हागा तुम यह सम्बन्ध स्वीकार मत करो।^३ गिणुगल ने दूसरे "गरजू जोशो को बुलाकर उस विषय मे पूछा तब उसने विवाह का समर्थन कर दिया। गरजू जशी ने मोवा "यदि मैं गिणुगल का इच्छा के विरुद्ध कृष्ण तो गिणुगल मुके नगरी से बाहर निकलवा दगा और मरी आई दक्षिणा चली जावेगी"।^४ गिणुगल को भाभी ने गिणुगल को समझाया कि रक्मिणी लक्ष्मी की भवनार हैं। उसका विवाह कृष्ण मे हो होना उचित है। तुम यह सम्बन्ध स्वीकार करो।^५ गिणुगल ने भाभी की बात नहीं मानी।

१२ ६। गिणुगल जरासन्ध के पाम गया और बुन्देलखण्ड मे पाये हुए टाक क विषय मे बातचीत की। जरासन्ध ने कहा कि यह सम्बन्ध अवश्य स्वीकार करा और मित्र राजाओं को सेना सहित बरात म जाने का निमन्त्रण भेज दो। गिणुगल ने कृष्ण, बगाना, कृष्णुन, मरहठा, मालु मेवाड, माचव, विध तारातम्बोल लाठ काबुल बुलारा, उज्जवक सिन्हा काशी, नखल और हस्तिनापुर देश के राजाओं का निमन्त्रण भेजे। उक्त सभी राजा अपनी सेनाओं सहित च श्रेरी मे एकत्रित हो गये। गिणुगल उसाहपूर्वक विवाह की तयारी करने लगा।^६ गिणुगल को भाभी और अन्य रानिया ने रक्मिणी म विवाह क विरु

१ — पत्र स० ७, पद स० १।

३ — पत्र स० २२, पद स० ३।

५ — पत्र स० २५।

२ — पत्र स० २०।

४ — पत्र स० २२।

६ — पत्र स० ३५ ३६।

गिगुरान का माना दिया । १

१३ ६। गिगुरान की बरतन रवाना हुआ ही घोड़ा घबराहुन जाने मगे, उसकी भावने ने बहुत घमझाया, लेकिन वह नहीं मारा। उसकी बरतन ने कुन्नापुर पहुँचकर नगर के पास डेरा दिया। दसमवा ने गिगुरान की बरतन का भली प्रकार से घाँवर लफार दिया। २ दक्किली की माना 'गागडे' चढ़कर दक्किली में बानी —

दोहा — गोपे चढी दत्त जोवती, राजा भीम री नार ।
पर दिसालाऊ बार्द मारा, आबो म्हारी राजकुमार ॥

१४ ६। दक्किली ने कृष्ण को पत्र लिखने का विचार किया और पत्र लिखने बड़ी ३। दक्किली कृष्ण के विनाय तिवी का नाम तक भी गुनना नहीं चाहती थी। माना ने घाँवर उसकी शृंगार करने और तैयार होने के विचार कहा तो हृष्य पर रसिया बनने लगी और वह कहने लगी —

मरू मली विस राय कर, मुम्हळा न देमू दुष्ट का ।
दुष्ट का मुम्हळा नही देमू, दुख सहा न जाय री ॥

१५ ६। माता के बहुत समझाने पर भी दक्किली नहीं मानी तक दसमवा ने गिगुरान को बुलाया और कहा फेरे की सब तैयारी करो। ४ दसमवा घबरे पाँडे पर सवार होकर और पाँच लाख सवारों को घपन साथ लेकर गिगुरान के डेरे की ओर रवाना हुआ। ५ ऊपर दक्किली ने अपने से देखा कि कृष्ण उससे विवाह करने नहीं चाहे हैं। उसने मुवह बिना बुनय और पत्र लेकर दारवा जाने को कहा। ६

१६ ६। पत्रिका लेकर ब्राह्मण दारवा की ओर रवाना हो गया। रास्ते में अपने हाकुन हण विप्र बन कर एक एकटिक शिवा पर सो गया। ७ जब विप्र की आँख खुली तो उसने स्वयं की दारवा में पाया। कृष्ण उसकी बालक रूप धारण कर म०ल तक से गये। यहाँ पर कवि दारवा की सुन्दरता का वर्णन करता है। विप्र सभा में पहुँचकर कृष्ण के हाथ में पत्र देता है। कृष्ण दक्किली का पत्र पढ़ि पूछते हैं। ब्राह्मण का स्वागत सत्कार दिया जाता है। भाँति भाँति के पकवान बराने जाते हैं नारिया मगनावार गाती हैं। कृष्ण का भी शृंगार होता है। पीठा पढ़ि हाती है। दारवा में नौशत नगाडे आदि बजने लगते हैं। कृष्ण की पारती उतारी जाती है। पाण्डवा ने भी नियत समय पर पदार्पण किया। कृष्ण

१ — पत्र स० ३८-३९ ।

२ — पृष्ठ स० ४४ ।

३ — पत्र स० ४८-४७ च २ स० ४, ५ ।

४ — पत्र सख्या ४८, छत्र सख्या ३ ५ ।

५ — पत्र सख्या ४९, पद सख्या ६ ।

६ — पत्र सख्या ५३ ५४, पद सख्या ८ ।

७ — पत्र सख्या ६१, पद सख्या ६ ।

को कुन्ती ने प्राशावी^२ दिया। प्रसा कराड यादव इकट्ठे हो गये। बरात सजने लगी। द्वारका में मगजगान होन लगे। गहनाईया बजन लगी^१। शिव इद्र, ब्रह्मा, दुर्गा, सब देवी देवता अपने गणों सहित आ गये लकिन गणेशजी का कही पता न था। तब नारणजी ने जा कर गणेशजी को बुलाया^३।

१७ ६। कृष्ण न गणपति जी म कहा कि आप वहा जाकर क्या करेंगे, धार तो गड को रखवानो क्षत्रि^४। गणेश जा वृत्त रखन हुए क हा प्रागे जाकर क्या करेंगे, वहा तो बहुत लडाईया होगी। नारणजी ने जाकर गणपतिजी को भडकाया^३।

कृष्ण ने बलराम को भज कर गणेश जी का मनाया। बलराम ने कहा कि पहले प्राप की गानी होगी बाद म कृष्ण की। बरात सजाकर गणेश जी श्रद्धि सिद्धि से ब्याह कर ले प्राये। प्रब बरान कु^५नपुर पहुँची। नगरवासिया ने कहा यह दूसरी बरात फिर कौन सी प्राई है। लेकिन जब उ ज्ञान देवा कि यह तो कृष्ण की बरात है तब सब नगरवासी बहुत प्रसन हुए। कृष्ण ब्राह्मण का रथ में बैठाकर नगर में चले। ब्राह्मण रथ से उतरकर मीधा महल में रुक्मिणी क पाम गया। जब शिशुपाल और जरासध को मालूम हुआ तो वे मन ही मन ये वृत्त डर गये स्वमेया न उनको धीरज चधाया और कहा कि शिशुपाल की शादी रुक्मिणी से हो होगी। इधर माता ने वग परम्परा के अनुसार रुक्मिणी को गौरी पूजन के लिए भेजा।^४

शिशुपाल और जरासध ने अपना सगहन सना को रुक्मिणी की रक्षा हतु भेजा। रथ में बैठे हो रुक्मिणी के मुभग अग फडकने लगे। वह मन हा मन भगवान् कृष्ण स विनती करने लगी कि मुझे आकर इम विपति से उबारो।^५

१८ ६। श्रीकृष्ण धनुष बाण हाथ मे लेकर रथ म बैठे हुए प्राए और भरी सना के बीच म से रुक्मिणी का हाथ पकड कर रथ म बैठा लिया। जब यह सूचना शिशुपाल और जरासध का मिली ता वे सेना सहित कृष्ण का पीछा करने लगे। इती म ही बलराम भी सेना सहित आकर कृष्ण से मिल गये। भयकर युद्ध होने लगा^६। शिशुपाल और जरासध युद्ध के मैदान से अपने प्राण बचा कर भाग गये। हकमैया क्रोध में भरकर अपनी सेना सजा कर कृष्ण के ऊपर चढ प्राया तब बलरामजी को क्रोध प्राया। उ होन कहा कि प्राय कहे तो मैं इसको हल से पकड मूसती से मार। तब कृष्ण ने स्वमेया को पकड उसकी मूर्छे और मस्तक भूड कर तोड दिया^७ स्वमेया ने उनसे क्षमा मागी।

१ - पत्र स० ७३, पद स० ३।

२ - पत्र स० ७५, पद स० ३।

६ - पत्र स० ७६, पद स० १०।

४ - पत्र स० ९०, पद स० ५।

५ - पत्र स० ९५ पद स० १७।

६ - पत्र स० ९७, पद स० १८।

७ - पत्र स० १०८, पद स० २३।

उधर जब गिगुराल खाली हाथ उन्नास मुह चररी पहुँचा तो उसकी भाभी ने उसका मजाक उड़ाया। जब कु नरुर यह खबर पहुँची कि कृष्ण रत्निमणा का प्रण कर ले गये है तब राजा भाष्मक और उसकी रानी ने अपने पुत्र को भ्रजा और बारात की भ्रजना की। नगर में बलश और तारण बनने लगे। नगर की स्त्रियाँ मंगलाचार के गान गान लगी। कृष्ण घोड़े पर चढ़कर आये और तोरण ता छूँकर घर प्रवेश किया। फरे धारम हान के दर का विशुण कवि ने कवि पूवक किया है।^२

१६ ६। सखिया दिन मिल कर कृष्ण रत्निमणा का जुमा चलन का ल गई। जुमा खलते समय वर बधु के उन्नास मोर वर के हारन का वर्णन भा मनुराम है।^३

२० ६। पहरावणी के पश्चात् बारात खाना हाता है। रत्निमणीजा की भाषों भर आनी है। वह माता पिता भाई भोजाई न गल मिल कर रोने लगी —

म्हारो मिभल्यो म्णभण्या भुग्भुर पित्रर हाय ।
रुक्मण चाली बाइ सासरे मिलणा कव होय ॥
माय मिलू बाबल मिलू मिल मामा भूसाल ।
भुवा भतोज्या रिल मिलू मासी बाल गुपाल ॥
मिल मिल के सब सँ मिलू मामू भोज्या जी चोर ।

आवो सखी सहेलिया मिला भुजा पसार ।
अवका विछुड्या कत्र मिला दूर बसेगे जाय ॥

२१ ६। रुक्मणी जी डोले में जा बैठी। बारात द्वारका आई। देवकी, सुभद्रा, वसुदेव आदि ने वर बधु का भली प्रकार स्वागत किया। मांगलिक कार्य किये गये। रत्निमणी की श्रवका द्वारा मुह निखाई हुई।^४

२२ ६। आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी। वर बधु की जोड़ी शोभायमान हो रही थी। इसके पश्चात् कृष्ण का स्तुति गान है।^५

दस दस पुत्र येक येक कथा यह नरुणी वर दीना ।

२३ ६। अंत में कवि ने 'मंगल' का महात्म्य लिखा है —

१ — पत्र सं० ११६ पद सं० ६ ।

२ — पत्र सं० १२१-१२५ ।

३ — छंद सं० ५ पत्र सं० १३२ ।

४ — छंद सं० ४ पत्र सं० २८८ ।

५ — छंद सं० ३, पत्र सं० २६० ।

जो या मगल को गावे, ज्याका पाप प्रले होय जावे ।
जा या मगल का मुनिहै, जा के कोट जनम के पुन है ॥
द्वारावति आनन्द भयो, मुर नर देत असीस ॥
वह पदमइयो वैश्य बदी सिंहासन जगदीश ॥

२४ ६ । आगे मगल के सशोधकों की प्रशस्ति इस प्रकार है —

रच्या वैश्य पदमाल यह, रक्मणि मगलसार ।
सुद्ध कियो शिवकरा जन तुष सब दई सुधार ॥
विजय भाव श्रीकृष्ण को रक्मणि 'ल्या' वण ॥
रामरतन निज करे लिख्यो गुद्ध कियो शिवकरा ॥
कत्रु पद नये बनाय के, टुटक सधि मिलाय ॥
कियो सकनाबद सब अरथा अक्षर लाय ।
मूलचन्द सुत शिवकरण दग्क म् डव बास ।
मुग्धर डीङ्ग महेस्वरी, इ द्रपुरी सुख वासु ॥^१

२५ ६ । काव्य के सनाधक एक सम्पादक न उक्त प्रशस्ति में कवि पत्र को बन्द्य कहा है किन्तु रचना से उनका तनी होना प्रकट होता है —

- १ इवडो अतर हरि हरि सिसिपालइ भणइ पदमीयो तेली ।^२
- २ थाका पाय पलोटण हो, पदमो तेली माधि देस्या ।^३

२६ ६ । पदम भक्त कृत 'रुक्मिणी मगल' एक लौकिक काव्य है जिसमें राजस्थानी सरल सरस ग्राम्य जीवन की अनुपम छटा वर्णित है । रचना की मूल कथा श्रीमद्भागवत से ली गई है किन्तु कतिपय नवीनताएं भी हैं । यथा— काव्य में मद्य के मूल कारण नारदजी हैं । राजा भीष्मक की रानी रक्मिणी के पक्ष में होती है । शिशुपाल की भाभी कृष्ण के पक्ष में शिशुपाल को समझाने का प्रयत्न करती है आदि । प्रस्तुत मगल की प्रधान विशेषाएं प्रसंगोचित हासिक भावनाओं की गेय रूप में सरल वाक्यात्मक अभिव्यक्ति और राजस्थानी सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुसार विवाह सम्बन्धी सम्पूर्ण विधियां का सांगोपांग चित्रण है । प्रकरणका ने "मगल" में मनमानी जाह तोड़ कर इसको विकृत कर दिया है अतएव प्राचीन प्रतिया के आधार पर इसका विधिवत् सम्पादन परम आवश्यक है ।

(२) रुलीराम पुजारी कृत रुक्मिणी-नारामासिया

२७ ६। वृष्ण रुक्मिणी विवाह क विषय म एफ वारामासिया रुलीराम पुजारी कृत उपन ग हुया है।^१ वारामासिया का स्थायी पद 'गोवरधन धारी रामो परतता दासी प्रायकी है और इसके प्रागर रर बारह मासके बारह गेय पत्र निवे गये हैं। प्रत्येक गेय पद क मत मे एक दोहा है। प्रारम्भ मे भगलाचरण क मतगत दुर्गा-वचना है। चैन मास वर्णन मे राजा भीष्मक का परिचय भी है।^२

२८ ६। वशात माम क वरण मे नारद मुनि का राजा भीष्मक क पास प्रागमन और रुक्मिणी के वर के रूप मे श्रीकृष्ण के सुभाव का वरण है।^३ ज्येष्ठ मास के वर्णन में वक्रमया प्रपनी माना स परामग कर च नेरी नगर म गिणुपाल का लग्नपत्रिका भेजता है। शिशुपाल ६६ राजाप्रो सहित वारात और सना सजाकर कुन्पुर पहुँचता है।^४ मापाङ्क क वरण मे रुक्मिणी की माता रुक्मिणी के प्रति गिणुपाल उसके काका जरासथ और उसके भाई दत्ताधर की प्रशंसा करती है।^५ श्रावण वरण मे राजा भीष्मक चि ता प्रकट करते हुए श्रीकृष्ण से आने की प्रायना करते हैं कि रुक्मिणी का विवाह गिणुपाल से होगा तो बटारी खाकर मर जाऊगा।^६ भाद्रपद मास के वर्णन में राजा भीष्मक कृष्ण की स्तुति करते हुए रामावतार मे किये गये धनुष भग की स्तुति करवाते है।^७ आश्विन मास क वर्णन में श्रीकृष्ण के सरोवर में नहात समय दिये गये वचन का उल्लेख है और उस समय डूबती हुई रुक्मिणी के उद्धार करने की और सकेत किया गया है।^८ कार्तिक मास के वरण मे रुक्मिणी द्वारा शुक्रेण को पत्रिका भेजने का वरण है।^९ मगहन मास मे जोशी रुक्मिणी की पत्रिका क साथ द्वारिका पहुँचता है और रुक्मिणी के समाचार कृष्ण को सुनाता है, साथ ही कृष्ण स शास्त्र ही आने को प्रायना करता हैं।^{१०}

२९ ६। पीप मास न जना कुन्पुर मे लोट घाता है और श्रीकृष्ण के आने का समाचार सुनाता है। रुक्मिणी पम्बिका-पूजन क लिए माता की धनुषलि लेती है और नारदजी के वचना को चरिताय होता हुमा जानकर प्रसन्नता व्यक्त करता है।^{११} माघ मास के वरण

- १ - क - रुक्मिणी मगल, श्याम काशी प्रस मयुरा क मत म पृ० २६२-२६६।
 ल - दासका भजन-सग्रह, पहला भाग, धानू भगवती प्रसाद दासका, हिंदी पुस्तक एजेंसी २०३ हरीसन रोड कलकता, लोसरा स० १६६१ पृ० ३३ से ३७।
- २ - पद्य स० १।
 ३ - पद्य स० २।
 ४ - पद्य स० ३।
 ५ - पद्य स० ४।
 ६ - पद्य स० ५।
 ७ - पद्य स० ६।
 ८ - पद्य स० ७।
 ९ - पद्य स० ८।
 १० - पद्य स० ९।
 ११ - पद्य स० १०।

में दुर्गा के वर्णन, श्रीकृष्ण के प्रागमन और कृष्ण द्वारा गन्धुमा की पराजय का वर्णन है।^१ फाल्गुन मास के वर्णन में राजा भाष्मक द्वारा भ्रान्तपूर्वक कृष्ण रुक्मिणी का विवाह करने का उल्लेख है।^२

३० ६। हमारा साहित्य में बारहमासा वर्णन की सुशोभ परम्परा रही है।^३ श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह विषयक रचनाओं में बारहमासा साहित्य के प्रसन्नगत रुक्मीराम पुजारी की रचना सक्षिप्त होत हुए भी सरस है।

(३) कुरुणा रुक्मिणी की

३१ ६। कुरुणा रुक्मिणी की नामक कृति में किसी अनान कवि ने सन्नेप में कृष्ण रुक्मिणी विवाह का वर्णन किया है। इस रचना में मुख्यतः रुक्मिणी का भाव व्यक्त 'कये गये है इसलिए इस कृति का नाम 'कुरुणा रुक्मिणी की' दिया गया है। इसमें रुक्मिणी ने अपनी कुरुणा जनक भवस्था का वर्णन किया है। रुक्मिणी ने अपने भाषकी कृष्ण की पूज जन्म की दामो बताया है और रामावनार का और मन्त करते हुए सीताहरण प्रसंग का वर्णन किया है। रुक्मिणी कहती है— 'तब आपन मर लिए इतन कष्ट उठाये, अब विलम्ब क्यों कर रहे हो?' इस कृति में रुक्मिणी का मन्त्र मौखिक ही है एवं रुक्मिणी द्वारा कृष्ण को पत्र नहीं लिखा गया है।^४

(४) वशीधर शर्मा कृत स्याल रुक्मिणी मंगल

३२ ६। किशनगढ़ निवासी वशीधर शर्मा प्राधुनिक काल में राजस्थानी स्याल के मुख्य लेखक हैं। इन्होंने पात्रुजी राठीड सत्यनारायण तेजाजी पूरणमल जी डोला मारु, निहाने सुतान पवकूना रानी आदि अनेक स्याल की रचनाएँ का हैं। पं० वशीधर शर्मा के अनेक स्याल प्रकाशित हो चुके हैं और इनका प्रदर्शन अतिपूर्वक किया जाता है। शर्मा जी कृत एवं स्याल "रुक्मिणी मंगल" भी है।

३३ ६। स्याल का प्रारम्भ में कवि ने सरस्वती और गणेश जी की स्तुति की है। तदुपरांत राजा भाष्मक रगमच पर प्रवेश करते हुए अपना परिचय देते हैं।^५ भाष्मक की रानी कमनादे मंगल, गारुण और गौरी का स्तुति करनी हुई अपना परिचय देती है तथा रुक्मिणी के विवाह के विषय में चिन्ता प्रकट करती है। इसी समय नारद जी अपना

१ - पृष्ठ सं० ११।

२ - पृष्ठ सं० १२।

३ - प्राचीन काव्यों का रूप विधान, श्री अमरचन्द नाट्टा।

४ - लेखक के निजी संप्रह में।

५ - पृष्ठ सं० ४-५।

परिषद देत हुए मज पर प्रवेश करत है, १ वराम दे राजराजाना रक्षा करेगा । का समाज भी विद्या गया है ।^२ नाराज रक्षित की हताशता य रूप करत है ।

३४ ६ । राजा नाराज ने रक्षित की वर व विषय म पुण्याय करत है । नारद जी श्रीकृष्ण व पुण्या का वरण करत हुए रक्षित की विद्या कृष्ण म ही करने का घोष करत है । नाराज व बिना पान पर राजा अपने पापा पुत्र और मंत्रियों का पुत्र वर रक्षिमणी व विवाह व विषय म बातचीत करत है ।

३५ ५ । रक्षमया पुण्या की वर घोषणा करता हुआ सिन्धुपाल ने रक्षिमणी के विवाह की वरणा प्रकट करता है । रक्षमया अपने विताजा को बुझायाया व कारण बुझान बताता है ।^३ प्रागे रक्षमया सिन्धुपाल व पास एक माट व द्वारा मज पत्रिका भजना है । माट सिन्धुपाल व पास पहुँचकर सम पत्रिका दता है और रक्षमया व समाचार बताता है । सिन्धुपाल विवाह का तैयारी करता है ।

३६ ६ । रक्षिमणी मज पर प्रवेश कर गणना और सरस्वती की व दना करती है तथा दुर्गा स मज कामना करती है । रक्षिमणी और रक्षमया तथा रक्षिमणी और रक्षमया रानी व सवाग में रक्षिमणी की कृष्ण व प्रति दृढ प्रस्था बताई गई है ।^४ रक्षिमणी जोगी द्वारा श्रीकृष्ण व पास पत्र भजती है । जादा जी सत्तर बय व बुद्ध है इसलिए शास्त्र में ही भक्त कर बैठ जात है और ईश्वर से द्वारिका जल्दी पहुँचान की प्रार्थना करते हैं । प्रागे जोगी जा मोकर उठत है तो अपने घरको द्वारिका म पात है । जोगी जी कृष्ण का महल पुष्कर कृष्ण स मिलत है । कृष्ण जागी का स्वागत म कार वर पत्रिका प्रकट है और यथा समय पहुँचने का आश्वासन दत है ।

३७ ६ । प्रागे सिन्धुपाल और उसकी भोजाई मूरजदे व सवाग हैं । भोजार् सिन्धुपाल को रक्षिमणी से विवाह करन से रोकती है और श्रीकृष्ण का पक्ष लता है ।^५ सिन्धुपाल भोजार् से विवाह सम्ब धी गीत गान का मनुरोध करता है । सिन्धुपाल की वरात मे मनक राजा एकत्रित होत है । सिन्धुपाल सनिको सहित सज कर प्रस्थान करता है तो उसको मपगकुन हाते है ।

३८ ६ । रक्षिमणी रूपनी सहेली चम्पा और माता से बातचीत करती हुई कृष्ण के प्रति अपने प्रेम प्रकट करती है । रक्षमया अपने बहिन को समभाता है कि तु रक्षिमणी अपने मत पर दृढ़ रहती है ।^५

१ - पृष्ठ ६ ।

२ - पृष्ठ १६-१७ ।

३ - पृष्ठ ७ ।

४ - पृष्ठ ६, ११ ।

५ - पृष्ठ ३२-३३ ।

३६ ६ । मागे रविमण्णी स्वगत रूप में माती हुई कृष्ण का प्राह्वान करती है । परधरानुमार रविमण्णी को उडाती है और निश्चय प्रकट करती है कि यदि कृष्ण ने प्राङ्ग विवाह न किया तो वह बटारी धारर भर जायेगी ।^१

४० ६ । उपमेन और बलदेव व सवाद में कृष्ण की सहायता के लिए सनिक तयारी का उत्पन्न है । नारदजी और बलदेवजी व मवा में सभा देवताओं का विवाह में प्राम्प्रित करने का उत्पन्न किया गया है । कृष्ण की भोजार्थ विवाह की तयारी करता है ।

४१ ६ । कृष्ण की बारात तयार होती है जिसमें प्रसिद्ध सैनिक, समस्त यादव, पाण्डव और द्रवता एकत्रित होते हैं । रणत भवर (रणथमीर) स गणेशजी भी प्रपन्न वाहन मूपक सन्निभ जात है । नारदजी कृष्ण से कहते हैं कि गणेशजी व जलन में बारात की गोभा नहीं हांगी २ प्राङ्गण गणेशजी में प्रनुरोध कर उन्हें पीछे महलों की निगरानी के लिए छोड़ देन हैं । गणेशजी भी कहते हैं—

सुखी आरकी बात कृष्णजी म्हाके लागी दाय ।
मोटी तू द खणा तन भारी चलया न म्हा में जाय ॥
दुग्न वरात में पावस्यासजी चलकर करस्या काय ।
न्यायो माचो एक द्वारा पर देवा अठे विद्याय ॥^३

४२ ६ । नारदजी ने गणेशजी का प्रपन्न विद्या में प्रभावित किया । नारदजी ने कहा - ' गणेशजी तुम तो बहुत भान हो । तुमको साथ उन स कृष्ण का लज्जा घाता है । बारात में पावका रू रग अचत्र नहीं लगेगा, इसलिए कृष्ण ने बालाकी कर आपकी यहा छोड़ दिया है ।'^४

४३ ६ । नारद जी के वचन सुनकर गणेशजी का क्रोध घायी और उ हाने चंग के द्वारा बारात का माग पुन्वा दिया । कृष्ण के रथ के पहिए मार्ग में फस गये । कृष्णजी ने गणेशजी का स्मरण कर बलदासजी को क्षमा याचना के लिए भेजा । बलदासजी ने गणेशजी के समीप आ कर क्षमा याचना की और धारा नगर में पाप राजा व घर ऊट्टि-सिद्धि से गणेश जी के विवाह की व्यवस्था की । विवाह कर गणेशजी बारात में सम्मिलित हुए । कृष्ण की बारात रात रात कु दवनुर पहुँच गई ।

४४ ६ । कवि ने मागे रविमण्णी के यथा वर्णन के लिए 'पलवाडो' [पक्ष] की योजना भी की है ।^५

४५ ६। ब्राह्मण कृष्ण क घागमन का समापन रविमण्डी की मुताना है तो रविमण्डी का प्रयत्न का वारावार नही रहना। रविमण्डी इसी ब्राह्मण क द्वारा कृष्ण की सूचन करती है कि दूसरे दिन व० २० पूजन क लिए वाटिका में जावेगी। कृष्ण वहा पहुच कर उसका हरण करे।

४६ ६। प्रस्तुत रविमण्डी मंगल में हास्य की याजना शुभामन्दिह नामक चरित क द्वारा की गई है।^१

४७ ६। शिशुवान और जरासध कृष्ण का घागमन जानकर चारा और घने पुतलवरी और सनिकों की व्यवस्था करन है। वाटिका में देवी के मन्दिर के चारा और रविमण्डी की सुरक्षा का विनय व्यवस्था की जाता है। रविमण्डी शृंगार मत्ता कर अपनी सन्धियों क साथ शेषा मन्दिर में पूजन क चित्र पहुँचती है। देवी क सम्मुख पञ्च कर रविमण्डी कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करन का वागमना करती है।^२

४८ ६। इसी प्रकार पर कृष्ण रथ लेकर मन्दिर क समीप पहुँच जात हैं। रविमण्डी २० के घागे नमन कर रथ के समीप पहुँचती है और कृष्ण उसकी रथ में रडा पत हैं। रथ नवी में चनता है। रथ चवन पर मिराहियो और रविमण्डी का सखिया का हाँग घाता है। शिशुवान और जरासध की रविमण्डी-हरण की सूचना मिलती है तो वे मेनिका के साथ कृष्ण का पाव्वा करने हैं। कृष्ण और शिशुवान के बीच युद्ध होता है जिनमें शिशुवान पराजित हा जाता है। शिशुवान की २० गी पूत्र पूड ली जाती हैं और वह भागता है। जरासध भी बन्देव स हार कर भाग जाता है।

४९ ३। स्वमया रविमण्डी हरण का सम चार सुनवर काधित होता है और कृष्ण का पीछा करता है। कृष्ण स्वमया को समझाने हैं कि देवी ने रविमण्डी का मेरे साथ किया है। कु बरजी प्रार हमार सान हो। स्वमया कहता है— “कृष्ण। तू चोर है, रविमण्डी को हरण कर लाया है”। कृष्ण कहते हैं— “तुम्हारी बहिन रविमण्डी लम्पी का भवता है।” स्वमया काधित होकर कृष्ण पर तार चलाता है। कृष्ण प्रहार का बवाकर स्वमया का भद्रुप ताड दानत हैं। स्वमया तलवार निकानता है तब कृष्ण उसको पकड कर बाध देत हैं।

५० ६। स्वमया और रविमण्डी क सत्ता में स्वमया शमा प्रार्थना करता हुआ धरती मुक्ति के लिए धनुरोध करता है। रविमण्डी कृष्ण से प्राधना करती है। बलगाऊजी स्वमया की मुक्ति प्रप्त करती है।

५१ ६। स्वमया मुक्त हा कर कृष्ण ने विवाह हेतु कु २० नपुर चवन का घामह

करना है। कृष्ण उसकी प्रार्थना स्वीकार कर अपनी सेना को कुन्दनपुर की ओर ले चलत है। कुन्दनपुर में कृष्ण रुक्मिणी के विवाह की तैयारी हाती है।

५२ ६। प्रागे शिशुपाल-भोजार्थ क सवाणों में भोजार्थ के उपालम्भ का वर्णन किया गया है।^१

५३ ६। कुन्दनपुर में कृष्ण रुक्मिणी का विधि पूर्वक विवाह होता है।^२ स्त्रियां मगल गीत गाती हैं। ध्यान क अ न म स्त्रियो क गानो गान का चित्रण किया गया है।^३

५४ ६। उक्त विवरण स प्रकट है कि ध्यान के कथानक में अनक नवीनताओं का सम वष है। यथा— श्री गणेश प्रसंग, स्वमया के सदेशवाहक के रूप में भाट की याजना, श्रीकृष्ण की बरात में लवताओं का प्राना, श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह कुन्दनपुर में होना। स्थान गेय और अभिनेय है अत इसमें सवादा की विद्यपता है।

(५) श्री कृष्ण जीरो जिनाहलो

५५ ६। बोक नेर क महिमा भक्ति भण्डार और अभय जैन ग्रन्थालय में 'श्रीकृष्णजी रा विवाहलो' की प्रतिपा प्राप्त हुई हैं। रचना क प्रारम्भ में श्री जिनदर जी की व दना की गई है। तदुपरान्त देवकी यगोदा का सवाण किया गया है, देवकी कस द्वारा अपनी सत्तान मारे जाने में दुःख प्रकट करती है। तब यशादा कहती है कि प्रागे हान वाली सत्तान देवकी उसक हाथ सोप द।^४ निरत समय पर देवकी कृष्ण को जन्म देती है। उधर यगोदा के लडकी का जन्म हागा है। वमुन्व कृष्ण का लकर जमुना तट भान हैं। जमुना उफान पर होती है किन्तु वमुनेव उसको पार कर जात हैं।^५ वमुदेव यगोदा की लडकी की लेकर मधुरा प्रात हैं। कृष्ण का जन्म मगलवार को बताया गया है।^६

५६ ६। रुक्मिणी कृष्ण की स्तुति और ध्यान करती हुई गणपति से यही प्रार्थना करती है कि खाता क गापाल हां उसक पति हो।^७ किन्तु स्वमया शिशुपाल क साथ ही रुक्मिणी का विवाह चाहता है। कृष्ण का और शिशुपाल की बरात का वर्णन रुचिपूर्वक किया गया है।^८ इसक प्रागे रुक्मिणी क शृंगार का वर्णन है।^९

५७ ६। शिशुपाल और कृष्ण क मशाम का वगन बहुत सक्षेप में किया गया है।^{१०}

१ - पृ० स० ६१।

२ - पृ० स० ७१-७२।

५ - छन्द स० १६-१८।

७ - छन्द स० ३-७।

८ - छन्द स० १८-१९।

२ - पृ० स० ७०।

४ - छन्द स० १-६।

६ - छन्द स० ३१-३२।

८ - छन्द स० १०-१३।

५८ ६। तदुपरा त श्राकृष्ण रुक्मिणी व विवाह श्रीर जुष्ठा जुई खेलेने का वगन है। स्त्रियों क गानो गाने का भी वगन है।^१

५९ ६। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह कर द्वारका प्राते हैं, उस समय का वगन भी सरस है।^२

६० ६। प्रागे वर ब्रह्म विनो का प्रसग है श्रीर घ त म कृष्ण रुक्मिणी सवा है।

६१ ६। सवत् १७८६ वि० की लिखित प्रति से ज्ञात होता है कि इम विवाहन की रचना इस सवत् से पूर्व हुई है। इमका रचना जान १८ बी सगे निर्गारित होता है।

६२ ६। श्री भगरव "जो नाहटा क सोजय से प्राप्त प्रति का प्रगस्तिलेव इम प्रकार है —

“इति श्रीकृष्णजी विवाहनी सपूर्ण। सवत् १७८६ वर्ष मिति चैत्र सुदी १५ तिने लिखत जीवन जो सर्वोपमालायक साध्वी रतनमाला वाचनार्थ। इति श्रेय श्रेणाय मगल मालिका वालिका श्रेयम्नात्र। शुभभवतु। जिसो दीठो विसो लिखियो। खोटी खगे लिखण वाला रो दोम न छइ। महा असुद्ध परत खोटी छइ सही।”

६३ ६। प्रस्तुत रचना मे श्रीकृष्ण ज म से श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह तक का वगन है। कता जन धर्मानुपायी है कि तु इमम जिनेस्वर व दना के प्रतिरिक्त जन धर्म का कोई प्रभाव नहीं है।

(६) कवि नन्दलाल कृत रुक्मिणी रास

६४ ६। रुक्मिणी रास की रचना कवि न दलान ने जैन सिद्धा तानुमार की है। कवि ने धीमद्भागवत म भिन्न पात्रा श्रीर घटनाया का इस रचना मे समावेग कर अपनी मौलिक सूभ ब्रूक का परिचय दिया है। कवि की कल्पनाए काव्य सो दय की अपेक्षा धार्मिक प्रचार मे अधिक सहायक है।

६५ ६। यह रचना भजना राम की गेय गली में लिखी गयी है श्रीर काव्य का घरर नाम 'रुक्मिणी छ द' रिया गया है।^३ काव्यगत कथा का प्रारम्भ द्वारिका वगन से होता है।^४

१ - छद स ३०-३२।

२ - छद स १७-२७।

३ - छद स १।

४ - छद स १-४।

६६ ६। काश्य में सधर्म का समावेश श्रीकृष्ण के घात पुर में नारद मुनि के प्रागे
श्री सत्यभामाजी की गर्वोक्ति से होता है ।^१

६७ ६। नारदजी सत्यभामा से प्रतिज्ञाध लेने का विचार करत हैं। नारी क लिये
सोत म बढ कर भय काई दुख मसार म नहीं होता और ' सौक तो गारा रो ही चोखी
नी" विचार कर नारद जो श्री कृष्ण क विवाह क लिये श्रेष्ठ सु दरी की साज मे निकत
पहत हैं ।^२ तदुपरा त ' उद्यम किया सरे सगला जी काज तो" ^३ क अनुमार नारदजी
विमान मे बठकर कु दनपुर मे राजा भाष्मक क दरवार मे घात हैं। राजा ने नारद जी
का यथोचित प्रार्थन-सम्भार किया। सभा में नारदजी ने रुक्मिणी का रूप देखकर उसकी प्रशसा
की और रुक्मिणी क विषय म जानने का उत्कण्ठा प्रकट की। रुक्मिणी की सगाई रात
शिशुपाल ने निश्चित हो जान की सूचना राजा ने नारदजी को दी। नारदजी राजा की
प्रनुमति प्राप्त कर घात पुर में गये और रुक्मिणी के मस्तक छुनने पर प्राणीप दी —

कृस्न बल्लभ तुम रुक्मिणी याय तो ।^४

६८ ६ रुक्मिणी की भुषा न श्रीकृष्ण को प्रशसा करने हुए नारदजी का पक्ष
लिया। भुषा द्वारा श्रीकृष्ण के रूप और ऐश्वर्य का वरण सुन कर रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को
ही वरण करने की प्रतिज्ञा करनी।

६९ ६। नारद जा कु दनपुर मे चल कर द्वारिका श्रीकृष्ण के समीप पहुँचे। यहा
उन्होने रुक्मिणी क रूप सीत्य का वरण किया और बताया कि ऐसी राजकुमारी शिशुपाल
क नहीं श्रीकृष्ण क ही योग्य है।

७० ६। नारदजी रुक्मिणी क प्रति श्रीकृष्ण का प्रेम जापृत कर शिशुपाल क यहा
पहुँचे। इस समय पुरी में शिशुपाल क विवाहोत्सव की तैयारिया हा रही थी। नारदजी ने
इसी धवसर पर लभपत्रिका देखकर विघ्न बाधाया की भविष्यवाणी की ।^५ शिशुपाल के
विवाह हेतु सिपिल होने पर नारदजी पुन उसको उत्साहित करत हैं ।^६ शिशुपाल ने क्रुद्ध
होकर युद्ध क लिये सनिक तैयारी का ।^७ इस प्रकार नारदजी ने अपनी विद्या का प्रयोग कर
युद्ध की भूमिका तैयार करनी।

७१ ६। विवाह-लभ का तिन समीप होने पर रुक्मिणी को चिन्ता हुई। उसन
अपनी भुषा क समक्ष श्रीकृष्ण क प्रति निष्ठा-वक्त करते हुए उनसे ही विवाह करने का हृद

१ - दाल स ५-८ ।

२ - दाल स २७ ।

५ - दाल स० ४६ ।

७ - दाल स० ५३ ।

२ - दाल स ६-७ ।

४ - दाल स० ३५ ।

६ - दाल स० ५१ ।

निश्चय प्रकट किया।^१ रुक्मिणी का भ्रष्टा ने रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के विषय में दास्य
किया —

मूला बड्याई सू इम कठै, एहवा दीन तू काई बीने बान ता ।
द्वारका ताथ हाजर करु पारो सर्य ता मेलसू जाग ता ।^२

७२ ६। प्रस्तुत कृति में रुक्मिणी की भ्रष्टा का सबक का भाग श्रीकृष्ण का
विवाह का सत्त भेजना है और सबक ऊट पर सत्त हाजर द्वारका पहुँचता है ।
पत्निका पद कर प्रारम्भ में श्रीकृष्ण हपित हा घोः फिर यह विचार कर उगम हो गये वि
में विवाह के लिये जाना हू तो गिगुवान मारा जाना है और नहा जाता हू तो रुक्मिणी
सरना है ।^३ बन्धुजा के प्रापट पर श्रीकृष्ण ने दून के द्वारा विवाह के विषय मान का
उत्तर भेजा । श्रीकृष्ण न यह भी सूचना से —

प्रमदा नाम उद्यान मे, तिहा छै कामदेव ना एक चेत्य तो ।
तिहा मदर हम आवस्यां, म्हारे ध्वजा निसानी छै म्वेत ता ।^४

कवि ने मेवक को प्रागे 'मिसरजा' लिखा है ।^५ विवाह की लगन तिथि पर गिगुवान
बड़े बड़े भूरनियो सहित आ गया —

माघ सुदी धुर धण्टमी, लगन ना दिन कीधी परमान तो ।
शिशपाल राय सजि आबिया, रयाबियो बडे बडे भूपति जाण तो ॥^६

राजा भीष्मक ने गिगुवान और बरातियो का स्वागत सत्कार किया और सभी प्रसन्न
हुए कि तु रुक्मिणी का मन क्विनि मात्र भी प्रसन्न नहीं हुआ ।^७ गिगुवान का सेनिका
ने नारद के बधनो स प्रभावित हान हुए नगर का सभी द्वारों पर प्रवेश सम्बन्धों प्रतिब र

७३ ६। श्रीकृष्ण यथा समय युद्ध रथ को सज्जित कर बलदेव सहित उद्यान के चैत्य में पहुँच जाते हैं।^१ इधर भुष्मा रुक्मिणी की सहायता में अपना उपाय करती है।^२

७४ ६। शिशुपाल ने प्रसन्न हो कर रुक्मिणी का चैत्य में जाने का आदेश दे दिया।^३ रुक्मिणी प्रसन्नता पूर्वक प्रमदा नामक उद्यान में पहुँची और वहाँ कामदेव की प्रतिमा का प्रणाम किया। रुक्मिणी ने दक्कीन इन वर मांगा और फिर चारों ओर अपने नाय श्रीकृष्ण का देखन लगी।^४ इतने में श्रीकृष्ण प्रकट हुए और उहाने रुक्मिणी का हाथ पकड़ कर रथ में बठाया^५ इसी समय श्रीकृष्ण ने भाग जान की इच्छा से रथ चला लिया तो नारद जा ने आकर उहें युद्ध के लिये प्रेरित किया।^६ नारद के वचन सुनकर श्रीकृष्ण न भ्रमता रथ रोज लिया। तब नारद जी ने शिशुपाल और राजा भीष्मक के समीप जाकर उहें युद्ध के लिये प्रेरित किया।

७५ ६। भीष्मक और शिशुपाल ने क्रोधित हो हाथी घाडे और पदल सैनिका को साथ ले प्रमदा उद्यान को जा घेरा। ऐसी अवस्था में रुक्मिणी की मनोऽशा विलीन हो गई। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का आश्वासन किया।^७ कृष्ण ने रुक्मिणी को रथ से उतार कर मंदिर के एकान्त में बैठाया और युद्ध करने वाले पुतनी को प्रस्तुत किया —

पूतली सख्या बतीस छै, पुरुष आकार जे जुद्ध सजोग तो।

शब्द तेहनों जिम बीजली, अरिदल देपी मन ऊपज सोग तो।^८

७६ ६। जन कवि नालाल की प्रवृत्ति युद्ध व्रतन में नही रम सकी क्योंकि वह जन धर्म के अहिंसा सिद्धांत में विश्वास रखता है। इसलिये नाम मात्र का युद्ध वर्णन करते हुए कवि ने रुक्मिणी हरण के प्रसंग एवं युद्ध वर्णन को पूरा कर दिया है।^९ श्रीकृष्ण न द्वारिका में रुक्मिणी से विधि पूर्वक विवाह किया। श्रीकृष्ण की रानियों में रुक्मिणी को अपने रूप और शूणा के कारण विशेष सम्मान प्राप्त हुआ जिसमें सत्यभामाजी को विशेष दर्शा हुई —

एक कण आख माही पडे, ताही सू वेदना होय अपार तो।

यह सोकण कही जगत म, तिहि थी भामा ने चेतन सार तो।^{१०}

७७ ६। प्रागे कवि ने क्या पर जन सिद्धांत का आरोपण किया है। रुक्मिणी

१ - ढाल स० ७३।

२ - ढाल स० ७५-७६।

३ - ढाल स० ७७।

४ - ढाल स० ७९।

५ - ढाल स० ८०।

६ - ढाल स० ८१।

७ - ढाल स० ८९।

८ - ढाल स० ९५।

९ - ढाल स० ९८-१००।

१० - छंद स० ८ (१०८)।

गर्भवती होती है ता उम चौह स्वप्नो म मे पट्ट स्वप्न दिखाई देता है ।^१ जब कृष्ण स्वप्न का विवरण सुनते हैं तो व उसको कहत है कि पुत्र विख्यात होगा । वारहवें स्वप्न से राय मधु का जीव काम कुमार रुक्मिण्या क गभ म प्रवश करता है । ज म क उपरान्त उसका नाम प्रद्युम्न कुमार होता है ।

७८ ६ । एक दिन प्रचानक ही प्रद्युम्न लुप्त हो जात हैं । तब कृष्ण रुक्मिणी को आश्वासन देते हैं कि सोलह वर्ष म वह पुन मिल जायेगा । नारदजी उसको दू डने का आश्वासन देते हैं । प्रद्युम्न का विद्याधर राय और रानी बनकमाला के पास पालन होता है ।^२ प्रद्युम्न पाडे समय मे सब बनाए सोख जाते हैं । सोतेली माताए और सोतेले भाई उनको मारन का प्रयत्न करते हैं । रानी बनकमाला भी पूव ज म क पति पत्नी सम्बन्ध के वारण प्रद्युम्न से अपकट रूप मे प्रेम करता है । एक दिन रानी कामानुर होती हुई हाव भाव प्रदर्शित करती है । तब प्रद्युम्न उसको समझते हैं ।^३ उसके म मानने पर वे जगल मे चले जाते हैं । वहा एक मुनिराज स उनकी भेंट होती है । मुनि उनका यह बतलाते है कि किस कारण उनको मातृ विद्याग सहना पड रहा है ।^४ मुनि उनको यह भी कहते हैं कि बनकमाला से नो विद्यायें जा दीप है , वे भी सीख लो । कामाध होकर बनकावती दोना विद्यायें सिखा देती है । फिर उनके सामने वासनाजनक प्रस्ताव रखती है । प्रद्युम्न उस प्रस्ताव का ठुकरा कर चले जात हैं । रानी राजा स गिकायत करती है कि प्रद्युम्न ने उसक सामने लज्जापूर्ण प्रस्ताव रखा । तब राजा अपने पाव सी पुत्रा का प्रद्युम्न से युद्ध की आज्ञा देता है किंतु प्रद्युम्न उन सबको मार दत हैं । राजा रानी के पाम विद्या लन जाता है ता उसको जात होता है कि वे विद्यायें रानी न प्रद्युम्न को दे दी तब राजा की वास्तविकता जात हाता है और वह पश्चाताप कर प्रद्युम्न से मिलता है । प्रद्युम्न अपनी विद्या स उसक पुत्रा का पुन जावित कर दते हैं ।

७९ ६ । रुक्मिणीजी का पुत्र विद्याग सहन सालह वर्ष व्यतीत हो गये तो नारदजी प्रद्युम्न से मिले और उनका सम्पूर्ण वृत्तांत सुनावा । प्रद्युम्न मुनि वेग धारण कर और विमान म बैठ कर द्वारिका की ओर चले ।^५

८० ६ । मुनि वेग में जाने म उनको कोई नही पहिचान सका । यहा पर वे रुक्मिणी को पुत्र प्राप्ति का आश्वासन दत हैं और उसको अपना चमत्कार बतात हैं । रुक्मिणी की विमान में बैठा कर कृष्ण के पाम पहुँचन हैं और उनम कहते हैं— “रुक्मिणी का हरण करवे जा रहा है । तब कृष्ण का और प्रद्युम्न का युद्ध हाता है । नारदजी काकर वास्तविकता प्रकट करत हैं । कृष्ण और प्रद्युम्न प्रसन्न होकर गने मिलत हैं ।

१ - दाल स० ११ (१११) ।

२ - दाल ५१ (१५१) ।

३ - दाल स० ७७ (१७७), ७८ (१७८), ७९ (१७९) ।

४ - दाल ३० (१३६) ।

५ - दाल स० ९९ (१९९) ।

८१ ६। प्रागे कवि प्राट करता है कि पूर्व जम का मधु तो प्रद्युम्न के रूप में विमली के गभ से उत्पन्न हुआ कि तु उसका पूर्व जम का भाई केटक अभी बारहवें स्वर्ग में ही था। जब केटक ने ध्वन भविष्य जम क विषय में श्री सीमधर देव से पूछा ता वे उसको यह आश्वासन दते हैं कि वह श्रीकृष्ण की जम्भावती के गभ से जम लेगा और उसका नाम सबुक होगा। तदुपरांत स्वर्ग से एक देव श्रीकृष्ण की मोतिया का हार देता है और कहता है कि इस हार को पहिनने वाली क गभ स बारहवें स्वर्ग का देवता भवतार लेगा। श्रीकृष्ण वह हार सत्यभामा को देना चाहते हैं किंतु विमली छल द्वारा वह हार अपनी बहिन जम्भावती का प्रद्युम्न की सहायता से देती है। जम्भावती के गर्भ से समय पूर्ण होने पर देवकुमार जम लता है। इसी समय सत्यभामा क भी पुत्र हाता है जिसका नाम सुभानु कुमार हाता है।

८२ ६। एक बार प्रद्युम्न ने श्रीकृष्ण को ध्वनबद्ध कर जम्भावती के पुत्र सबू के लिए छ महिने तक द्वारिका का राज्य माग लिया। वह अनाचार करने लगा। तब कृष्ण ने उसकी परीक्षा लेकर उसको देग निकाला द दिया कि तु प्रद्युम्न के समझाने पर यह कहा कि अगर सत्यभामा अपने हाथ से स्वागत सत्कार कर उसे राजमहल में लं घाए तब वह देश निकाले के दण्ड के मुक्त हो सकना है। सम्बू छल किया से सु दरी बनकर सुभानु की बन्ने रूप में सत्यभामा क साथ महल में आ जाता है। सत्यभामा का जब वास्तविकता ज्ञात होती है तो वह बहुत पश्चाताप करती है।

८३ ६। कर्मियों को इच्छा थी कि कर्मियों को क या वैश्वी का विवाह प्रद्युम्न से स पान हो जाय। जब वह कर्मियों क पास यह स देग भेजती है तब कर्मियों स देश को ठुकरा देता है। तब प्रद्युम्न उन विधियों से कुम्नपुर जाकर वैश्वी से विवाह कर पुन सम्बू सहित द्वारिका आ जाते हैं।

८४ ६। प्रागे दूसरी ढाल प्रारम्भ होती है— गाफिल मति रह रे' एक समय द्वारिका में व्यापारियों ने प्राकर 'रत्न कमल दिलाये जि हे यादव कुमारा ने मोन लिया। उन कमलों को मगध में किसी ने नही लिया तब वे व्यापारी मगध की बुराई करते हैं। इससे कुपित होकर जरामध ने द्वारिका पर चढाई की कि तु परास्त हुआ।

८५ ६। प्रागे पुन ढाल अजना रास की चलती है। इसमें नमिनाथ के अठारह हजार साधुमा सहित द्वारिका आने, कृष्ण के छोटे भाई राजसुकुमाल को दीशा देने, अन्त में स्वयं कृष्ण और प्रधान यात्रियों को तप करने का उपदेश देने पच महाव्रत का पालन और मांस मदिरा को त्यागने आदि का वचन है।

८६ ६। यात्रु कुमार एक दिन क्रीडा हेतु नगर के बाहर जाते हैं वे एक सरोवर

का मानक जल पीकर मस्त हो जाते हैं और एक तपस्वी को कष्ट देते हैं जिसे वह तपस्वी द्वारिका के विनाश का श्राव देना है। देवदूत जब द्वारिका का विनाश करने आते हैं तो कृष्ण यह घोषणा करवाते हैं कि जो समय धारण कर तपस्या करेगा उसका उदार होगा। कृष्ण की रातिया भी दीक्षा ले ली है। देवदूत द्वारिका में आग लगा देते हैं। कृष्ण भाग बुझाने का प्रयत्न करते हैं पर निष्फल होने पर बलदेव के साथ नगर छोड़ कर चले जाते हैं। प्रद्युम्न और समू कुमार भी रविमणी सहित दीक्षा लेकर तप आरम्भ कर देते हैं।

८७ ६। प्रस्तुत रचना में श्रीकृष्ण का चरित्र अनुदात्त ही रहता है। कवि ने अपनी मनक कल्पनाओं के आधार पर जैन धर्म का महत्व बताया है। रचना का कला पक्ष भी सवया अधिकृत रहता है।

८८ ६। कृति का अपर नाम 'रविमणी मंगल' है और इसकी रचना वि० स० १८७६ में होगियारपुर में वनुर्मास काल में हुई है —

'श्रुय रतीराम परशाद थी कवि नदलालजी कीधा गुण ग्राम तो।
सम्बत् अठारह सो द्विमतरया, नगर हाशियारपुर कीधो चामास तो।'

जब लग मेरु अचल ह जब लग शनी अरु सूर।

जब लग यह पीपी सदा, रह्यो गुण भरपूर।।

इति रविमणी मंगल सम्पूर्ण।

८९ ६। रचना की एक प्रति जिन चरित्र सूरी पुस्तकालय बड़ा उपायरा बीकानेर में है।

(७) रविमणी हरण (गडा)

९० ६। यह रविमणी हरण गेय रूप में ^१। रचना के आरम्भ में कवि गणपति की कान्ता करता है और रविमणी हरण के गायन में मनुन वागा की कामना करता है।

९१ ६। तदुपरान्त कवि राजा भाष्मक और उसकी पत्नी का वरण करता है। राजा मोहन के अवन परिवार के साथ अज्ञान में बैठकर रविमणी के विवाह के विषय में विचार करते हैं। वर के रूप में शत्रुघ्न का प्रस्ताव माने पर स्वमेया के प्रतिरिक्त सभी प्रसन्न होते हैं। स्वमेया काय कर कृष्ण का बुराई करता है। ^२

९२ ६। स्वमेया विवाह माने निकलकर शत्रुघ्न के द्वारा शत्रुघ्न को भेजता है और शत्रुघ्न विवाह माने राजा के राजा भाष्मक का प्रणाम और स्वमेया का उद्धार

सूचित करता है । ^१

६३ ६ । गिणुपाल नीलाख हाथा और दस लाख घोड़े तथा महसू लाख ऊट सजा कर विवाह हेतु पहुँचता है । रत्नमैया उसका स्वागत करता है । महल में बैठी हुई राजकुमारी रत्नमयी श्री कृष्ण से ही विवाह करने की कामना करती है । ^२ तदुपरांत रत्नमयी का दुख प्रकट किया गया है — रत्नमयी रुदन करे नैना मु नीर भरै" । ^३

६४ ६ । एक वृद्ध ब्राह्मण का रत्नमयी द्वारिका भेजना चाहती है । ब्राह्मण अपनी वृद्धावस्था बतला कर जान की अनिच्छा प्रकट करता है । रत्नमयी प्रचुर द्रव्य भेंट करती है, तब ब्राह्मण जाने के लिए तैयार होता है । रत्नमयी को कृष्ण के लिए पत्र लिखन में एक प्रेरण लगता है । वृद्ध ब्राह्मण धरुद्री तरह से भाजन कर चला तो माग में उस नींद घा गई । ब्राह्मण की आख खुली तो उसने अपने आपको द्वारिका में पाया । ^४ तदुपरांत द्वारिका बरण करत हुए ब्राह्मण द्वारा कृष्ण को रत्नमयी का पत्र देने और गरुड सवारी से कृष्ण गारा विभ्रम पहुँचने का बर्णन किया गया है । ^५

६५ ६ । ब्राह्मण दरबार में पहुँच कर राजा भीष्मक और रत्नमयी के भाग्य की सराहना करता है और दान प्राप्त करता है । ^६ द्वारिका में सुभद्रा और बलदेव कृष्ण को अपने स्थान पर नहीं लेखन हैं तब अपनी माता से कृष्ण के विषय में पूछने हैं । माता ब्राह्मण के द्वारा पत्र लाने और कृष्ण के प्रस्थान करने का बर्णन करती है । ^७

६६ ६ । श्रीकृष्ण की वर-यात्रा में हाथी-ऊट सहित साना समुद्रों, वन वनस्वतिया, पहाडा, गंगा गंगा-गामता नवकुच नाग और चामठ योगिनिया के भा सम्मिलित होने का बरण है । ^८

६७ ६ । विदम नगर में पहुँच कर श्रीकृष्ण ने गल बजाया जिससे शिशुपाल भयभीत हो गया । राजा भीष्मक ने श्रीकृष्ण का स्वागत किया और उनके परा लयकर कुपान दोष पूछी । रत्नमयी अपनी सहूलिया सहित शृंगार कर अम्बिका पूजन के लिए चली । गिणुपाल ने रत्नमयी का राजा ता उसका मूल कहा गया । रत्नमयी ने स्पष्ट रूपसे कृष्ण से विवाह करने की कामना प्रकट की । गिणुपाल ने क्रोधित होकर सहारा डाल दिया तो वह वासुकि नाग हो गया । ^९

६८ ६ । कृष्ण ने गरुड जी को भेज कर रत्नमयी का हरण करवाया और रत्नमयी को गरुड पर बठा कर ले चला । अपनी बहिन के हरण का समाचार जानकर रत्नमैया ने कृष्ण का पीडा किया । रत्नमैया कृष्ण की वुराई करता हुआ उन पर बाण वर्षा

१ - टेर २० २, पद २० १-१० ।

३ - टेर ३, पद २० १-६ ।

५ - टेर ६, पद २० ५-८ ।

७ - टेर ८, पद १-५ ।

२ - टेर ३ पद २० १-६ ।

४ - टेर ५ पद २० १-१६ ।

६ - टेर ७ पद २ १-४ ।

८ - टेर ६, पद २० १-६

करने लगा । तब कृष्ण ने रत्नमया को रथ में बांध लिया । ^१ रुक्मिणी ने रथ से उतर कर अपने भाई को बंधन में बंधा हुआ देखा तो उसने कृष्ण में प्रार्थना कर उसे मुक्त करवा दिया । ^२

९९ ६ । कृष्ण ने पहाड़ों में चबूती बनाकर भीर साहान को तोरण बनवा कर रुक्मिणी में विवाह किया । ब्रह्माजी ने वे मन्त्र का उच्चारण करते हुए भीर सावित्री ने धवल मगन गाने हुए कृष्ण रुक्मिणी का विवाह सम्पन्न किया । ^३

१०० ६ । प्रस्तुत रचना विवाह व भवसर पर गेय रूप में प्राप्त हुई है । ^४ इसमें श्रीकृष्ण गडग मवार होकर कुन्वर पुरुषने है भीर मन्त्र म स्वयं नहा जाकर गण्ड को भेज कर रुक्मिणी का हरण करवाने हैं । श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह माग के पहाड़ो प्रदेश में ब्रह्माजी सम्पन्न कराते हैं ।

(८) रुक्मिणी-हरण (छोटा)

१०१ ६ । प्रस्तुत रुक्मिणी हरण विवाह में वरवधु का नाम लेते हुए भीर सरस्वती तथा गणपति की वन्दना करते हुए गाया जाता है । ^५

१०२ ६ । रुक्मिणी के विवाह के विषय में परिवार विचार करने लगता है तब रत्नमया कृष्ण का विरोध करता है और गौरवण ब्राह्मण को परामश हेतु बुलाता है । ^६ कृष्ण की बारात घराने पर ऊट बन हाया और घोडों के खिलाने दिलाने का विनय वरण है । ^७ तदुपरांत विवाह की विधिया सम्पन्न होने का वरण है —

सेवरा रा पाट अणावी ने सपट घी सू भराव्या जी ।

सपट घी सू भरावी ने मधुपर्क अणावी जी ॥

मधुपर्क वाटकी अणावा ने, लीलडा लू ग बटाडयाजी ॥

लीलडा लू ग बटाडीने, हाय जीडाव्या जी ॥

हाय सू हाय जाडावि ने कयारू दान दीघा जी ।

तेडोनी बाप लाडो तणु, देवु छे कयारो दान जी । ^८

१०१ ६ । गीत क प्रत में कया दान के साथ दिये जाने वाले हाथी, घोडा, जमीन वस्त्र आदि का वर्णन किया गया है ।

१ - टेर ९, पद स० ७-९ ।

२ - टेर नी (९), पद स० ९-११ ।

३ - टेर ९ पद स० ११-१३ ।

४ - लेखक के निजी सग्रह में ।

५ - पद स० १ ।

६ - पद स० ३ ।

७ - पद स० ४-६ ।

८ - पद स० १४ ।

(६) रुक्मिणी-विवाहलो

१०४ ६। रुक्मिणी विवाहलो एक प्रज्ञात कवि की रचना है। कवि प्रारम्भ में गणपति की स्तुति करता है। तदुपरांत राजा भीष्मक को राजकुमारी रुक्मिणी का वरदान करता है।^१

१०५ ६। रुक्मिणी का विवाह राजा वसुदेव के पुत्र कृष्ण से करने का प्रस्ताव राजा भीष्मक की रानी की ओर से होता है। रानी अर्पण पति से एकमत होने की ओर कृष्ण जी से सम्बन्ध जाह सपुत्र से साक्षात्कारी करने की प्रार्थना करती है —

गढ मथुरा में श्री राजा वसुदेव राज करे ।
जहाँ घरे कुम्हारो आ कवर क हैया ।
राज कवर ने खीनमू ।
एक विद्याओ भगजो स्वामी दीय जणा ।
सीर कीजो नी समुद्र नु ।^२

१०६ ६। रुक्मिणी कृष्ण का विरोध करता हुआ उन्हें फाला, कुवर्ण, म्वालिपा और नट वेपथारी बताता हुआ शिशुपाल की धन सम्पत्ति की प्रशंसा करता है।^३

१०७ ६। रुक्मिणी शिशुपाल को लग्न पत्रिका भेज देता है। शिशुपाल प्रसन्न होता हुआ विवाह की तैयारी करता है —

जामो सिवडावे श्री शिशुपालो हरख करे ॥
कसू बल पारा, केमरिया जामो, सीस विराजे वारे सेवरो ।^४

१०८ ६। शिशुपाल को विवाह हस्तु लाने पर श्री कृष्ण रुक्मिणी को मारने लगने हैं तब रुक्मिणी श्रीकृष्ण से निवृत्त कर उनका मुक्त कराती है —

दश कोसा माही गोडर तारिणा, बीस कोसा में वीरदही ॥
सहरा में बैठा श्री, बाईं रुक्मिणी रुदन करे ।
वीरा जो सालो कई बतलावो जो राखो पिहरिया रो पथोजी ।^५

१०९ ६। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को साक्षात् कहकर छोड़ दिया और रुक्मिणी ने रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से कर दिया। ग्रह्याजो और सावित्री ने मिलकर विवाह विधि सम्पन्न की।

१ - पद सं० १-३ ।

२ - पद सं० ४ ।

३ - पद सं० ५-६ ।

४ - पद सं० ७ ।

५ - पद सं० ८ ।

(१०) कान्ह जी विवाहलो

११० ६। 'काह जी विवाहलो' एग प्रजात कवि की रचना है और नीति वाता की गली में गेय है। इस विवाहल का प्रारम्भ रविमणी की बालकुमारी बताने हुए और श्रुष्टि की बरात की उसके द्वारा प्रतीक्षा करना बताने हुए किया गया है।^१

१११ ६। प्रस्तुत विवहले में श्रीकृष्ण का गणनाय कहा गया है और उनका साथ जान में बलभद्र का घाना सूचित किया गया है। विवाह में गुरुरान क मैत्रिका पार ममया से श्रीकृष्ण का कोई सम्प नहीं बताया गया है। श्रीकृष्ण को सीधे तारण पर पहुंचने हुए और वहीं पर विवाह की विधि पूर्ण करके बताया गया है।

११२ ६। श्रुष्टि रविमणी में विवाह कर डारिका लीटते हैं तब उन्हें समुरान में किये गये भोजन और दोजे खादि क विषय में पूछा जाता है। श्रीकृष्ण इस विषय में यथोचित उत्तर देते हैं।^२

११३ ६। श्री कृष्ण रविमणी विवाह सम्बन्धी चारखेतर रचनाओं की विवदताए इस प्रकार हैं —

- १— अधिकांग रचनाए लघुरूप में हैं। बड़ी रचनाओं में पद्य भक्त कृत रविमणी मगल और न गान कृत रविमणी रास मुख्य हैं।
- २— समस्त रचनाए लौकिक शाली में गेय हैं।
- ३— कथा का मूल स्रोत श्रीमद्भागवत ही है कि तु कवियों ने प्रसंगानुसार नवीन कल्पनाए भी की हैं।
- ४— रचनाओं का कला पक्ष पूरा रूपेण विवसित नहीं है। भाव पक्ष प्रवश्य ही पद्य भक्त कृत रविमणी मगल में प्रबल है।
- ५— वस्तु वर्णन प्रक रचनाओं में विस्मृत है। यथा — पद्य भक्त कृत रविमणी मगल में नगर वर्णन भोजन वर्णन प्राप्ति।
- ६— वीर रस की प्रतीक्षा ना त रस और शृंगार रस का प्राधान्य है।
- ७— श्री कृष्ण रविमणी विवाह वर्णन की जैन कवियों की परम्परा भिन्न है जिसका परिचय न दलाल कृत रविमणी रास से उपलब्ध होता है। ऐसी रचनाओं में प्रचुरम्न सम्बन्धी प्रसंगों पर कविता का विशेष ध्यान गया है और जन सिद्धांत का महत्व प्रतिपादित किया गया है।

★

सप्तम अध्याय

उपसहार

१ ७। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने हिंदी-हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज का कार्य सन् १८६६ ई० में प्रारम्भ किया, जिसके परिणाम स्वरूप अनेक ग्रन्थ रत्न प्रकाश में आये। सभा का काय-क्षेत्र मुख्यतः उत्तरप्रदेश तक ही सीमित रहा किन्तु यह काय प्रयत्नों के लिए परम प्रयत्न और अनुकरणीय बन गया। राजस्थान के राजपूत राजाओं की गौरवशाली पण्डित परिवारों और दलस्थानों में उपलब्ध भारी ग्रन्थों की और भी अनेक विद्वानों और साहित्यिक संस्थाओं का ध्यान आकर्षित हुआ।

२ ७। राजस्थानी साहित्य का महत्त्व कनल जेम्स टाड (सन् १७८२-१८३५ ई०) ने "एनल्स एण्ड ऐंटिक्विटीज-ऑफ राजस्थान नामक ग्रन्थ" द्वारा और महामहोपाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्री (सन् १८५३-१९३१ ई०) ने "प्रिलिमिनरी रिपोर्ट ऑन दि प्राइमरी इन्स ऑफ राजस्थानी साहित्य के विविध अन्वेषण का कार्य एगियाटिक सोसाइटी कलकत्ता का प्रारंभ से डॉ० एल० पी० तेस्सीतोरो द्वारा १९१४ ई० में प्रारम्भ हुआ। डॉ० तेस्सीतोरो ने अपने चार वर्षों के कार्यकाल में ही अनेक राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थों के विवरण^३ तयार किये और छद्म राज जननी रत्न, बबनिका राठोड रतनसिंह जी महेशदासोत्तरी तथा वेनि क्रिमन हविमणीरी नामक तीन महत्वपूर्ण काव्य-कृतियों का सम्पादन किया तथा कई भाषापूर्ण निबंध प्रकाशित किये।^४ डॉ० तेस्सीतोरो ने इतालियन होते हुए भी राजस्थानी साहित्य सम्बन्धी अन्वेषण कार्य हेतु राजस्थान का अपना निवास स्थान बनाया और मृत्यु पय तक कायम रहने हुए भावी अन्वेषणकर्त्ताओं के सामने कायम रूप में उच्च मार्ग प्रस्तुत किये। डॉ० तेस्सीतोरो के पश्चात् मुनी देवीप्रसाद (१८४८-१९२३ ई०) के कवि

१ - कुरु मिनहोड लन्दन १८२६ ई०।

२ - १९३३ ई०, एगियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता।

३ - ए इटिक्रिप्टिय कटलाग ऑफ बाइबिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स।

४ - जनरल ग्राफ एगियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता।

'रत्नमाला' 'महिला मृदुवाणी', 'राजस्थानमृत' और राजस्थान में हस्तलिखित पुस्तक की खोज, ठाकुर भूरसिंह शेखावत (१८६२-१९३० ई०) व 'विविध गद्य और महाराष्ट्र-महा प्रकाश' प० रामकरण जी सासोपा या मारवाड़ी व्याकरण, डॉ० गीरा लाल हीराचंद मोभा (१८६३-१९४७ ई०) की प्राचीन लिपि भाषा, प० नरोत्तमराव जो स्वामी का 'राजस्थान रा दूहा' (१९३४ ई०) प० मोतानान जी मेनारिया वृत्त राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा' (१९३६ ई०) ^१ और 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' (१९४६ ई०), ^२ श्री अमरचंद जी भवरलाल जी नाहटा का ऐतिहासिक जैन वाक्य संग्रह' (१९३७ ई०) श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई वृत्त जन गुजर कविप्रो ३ भाग' (१९२६-१९४४ ई०), मुनि जिन विजय जी का प्राचीन गुजराती गद्य स दम' (१९२६ई०) डॉ० व हैया लाल जो सहन द्वारा सम्पादित मद्र-भारती' ^३ श्री कस्तूर चं कामलौवान द्वारा 'राजस्थान व जैन शास्त्र भण्डारा का ग्रंथ-सूचा' ^४ श्री सीताराम जी लाल का राजस्थानी-हिंा का कोष' ^५, चौपासनी शिक्षण संस्थान व परम्परा' प्रकाशन, ^६ 'प्राचीन राजस्थानी गीत' ^७ मद्रवाणी स० राधत जी सारस्वत ^८ आदि ग्रन्थ प्रकाशन हुए हैं। इस प्रकार विगत अठ सताब्दी में हुए संशोधन-कार्यों से राजस्थानी साहित्य की एक रूपरेखा स्पष्ट हो चुकी है। प्रति वर्ष राजस्थान और सलग्न प्रदेशों में प्राप्त होने वाले हस्तलिखित ग्रंथों में नवीन पाठ्य उपलब्ध होते रहते हैं और अभी यथात य प्रकाराच्छान्ति कोना में राजस्थानी साहित्य के अनेक ग्रंथ धूलि धूसरित अवस्था में दबे हुए पड़े हैं। राजस्थान के विभिन्न भागों में ही रहे प्रयत्नों से ज्ञात होता है कि निकट भविष्य में भी कतिपय वर्षों तक हस्तलिखित ग्रंथ निरंतर उपलब्ध होने जायेंगे। ऐसी अवस्था में राजस्थानी साहित्य के काव्य-विभाजन का प्रभावित होना सवथा स्वाभाविक होगा।

३ ७। प्रस्तुत विनम्र प्रयत्न में राजस्थानी भूमि (४१-८१) जन-जीवन (६१-१५१), भाषा (१६१-४८१) और ललित कलाओं (४६१-९७१) का पारस्परिक सम्बन्ध बताते हुए नवीन रूप में राजस्थानी साहित्य का काल विभाजन (६२-८२) कर प्रत्येक काल की प्रवृत्तियों और साहित्यिक रचनाओं का विवरण (६२-२४४२) दिया गया है। साहित्य का प्रस्तुत काल विभाजन ऐतिहासिक परिस्थितियों पर आधारित है। अतएव भविष्य में उपलब्ध होने वाली नवीन साहित्यिक रचनाओं का भी इही कालों में समावेश हो जायेगा।

- १ - छात्र हितकारी पुस्तक माला, प्रयाग।
- २ - हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
- ३ - राजस्थानी शोध विभाग पिलानी।
- ४ - जैन अतिशय क्षेत्र महावीरजी जयपुर।
- ५ ६ - राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर।
- ७ - राजस्थान विद्यापीठ साहित्य संस्थान, उदयपुर।
- ८ - राजस्थान भाषा प्रचार सभा, जयपुर।

४ ७ । राजस्थानी साहित्य अनेक रूप में उपलब्ध होता है । (१३-४६३) जिसमें एक रूप "विवाह मंगल" सनक रचनाओं का भी है । विवाह भारतीय जीवन का एक विशेष संस्कार माना गया है (४७३-५२३) । 'विवाह मंगल' सनक रचनाएँ भी अनेक प्रकार की प्राप्त होती हैं (५३३-५७३) । अनेक भारतीय भाषाओं में मंगल-काव्य-लेखन की सुदीर्घ परम्परा रही है (५८३-७३३) और राजस्थानी विवाह मंगल काव्यों (८०३-८६३) में कृष्ण रविमणी विवाह-सम्बन्धी रचनाएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं ।

५ ७ । भगवान् श्रीकृष्ण का चरित्र विविधताओं से पूरा है और साहित्यकारों के लिए विशेष प्रेरक रहा है । (१४-१३१४) । श्रीकृष्ण-चरित्र के अन्तर्गत श्रीकृष्ण रविमणी विवाह-सम्बन्धी प्रसंग का विस्तृत निरूपण श्रीमद्भागवत में हुआ है (१४४-३१४) । 'विष्णुपुराण', 'हरिवंशपुराण' और अनेक संस्कृत काव्यों में भी श्रीकृष्ण रविमणी विवाह सम्बन्धी प्रसंग है । राजस्थानी काव्यों की रचना में अथर्वशास्त्र और अज भाषा में लिखित रचनाएँ भी प्रेरक रही हैं (३८-१२४४) । मध्यकालीन राजस्थानी इतिहास की परिस्थिति उक्त प्रकार की काव्य रचना में सवधा सहायक सिद्ध हुई हैं (१२५४-१३३४) । श्रीकृष्ण रविमणी विवाह विषयक काव्यों का २१ भाग में विभक्त किया जा सकता है —

१ चारण काव्य और २ चारणोत्तर काव्य ।

चारण काव्यों में चारणों द्वारा रचित काव्यों के साथ ही अथर्व कवियों के चारण गीतों में रचित काव्यों भी उपलब्ध हुए हैं (१५-१४७५) । इस प्रकार की रचनाओं में महाराज पृथ्वीराज कृत "बलि क्रिसन रविमणी रो" का स्थान सर्वोच्च है (१५२-८२५) । श्रीकृष्ण रविमणी विवाह सम्बन्धी चारणोत्तर रचनाओं में पद्मनाभ कृत "रविमणी मंगल" एक महत्त्वपूर्ण कृति है (२६-२६६) । इस प्रकार की अन्य कृतियाँ कथानक संगठन की विविधता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं (२७६-११३६) ।

६ ७ । श्रीकृष्ण-रविमणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों की कथावस्तु को निम्नलिखित रूप में विभाजित किया जा सकता है —

१ प्रारम्भ कार्यावस्था और बाज अथर्व प्रकृति —

रविमणी और श्रीकृष्ण का एक दूसरे के रूप, गुण और शील की प्रशंसा मुनिकर एक दूसरे के प्रति भावपित होना ।

२ मत्त नामक कार्यावस्था और बिन्दु अर्थ प्रकृति —

रविमणी द्वारा श्रीकृष्ण के प्रेम में बन्धीभूत होकर श्रीकृष्ण को सन्देश भेजना और विवाह के लिए मर्म त्त करना । श्रीकृष्ण द्वारा यथावयम पहुँच कर रविमणी का हरण कर लाने का निश्चय प्रकट करना ।

३ प्राप्तिनामा नामक कार्यावस्था और पताका नामक अर्थ प्रकृति —

श्रीकृष्ण द्वारा रविमणी हरण के लिए यथा समय कुन्दनपुर पहुँचना । बलदेव द्वारा सैनिकों सहित श्रीकृष्ण की सहायता के लिए जाना ।

४ नियताग्नि नामक कार्यात्म्या और प्रकरा नामक अर्थ प्रकृति—

श्रीकृष्ण द्वारा ययागमय न्वा मन्त्र में वर्णन कर रश्मिणी का हरण करता । श्रीकृष्ण द्वारा बलदेव और मय या नव सनिको की सहायता से शिशुपाम, जरासंध और स्वमेधा आदि शत्रुओं को परास्त करना ।

५ फलागम नामक कार्यात्म्या और कार्य नामक अर्थ प्रकृति —

श्रीकृष्ण और रश्मिणी का विवाह । रश्मिणी क प्रद्युम्न नामक पत्र उत्पन्न होना ।

७ ७ । महाराज पृथ्वाराज कृत श्री क्रिमन् रश्मिणा रो वेति में रश्मिणी क वान रुद्र बलान से प्रद्युम्न नामक व क प्रमग वणित है और प्रत्येक प्रसंग का उद्देश्य की दृष्टि से स तुलित चित्रण हुआ है । कवि न श्रीमद्भागवत स कथानक प्रदण करते हुए भी उसमें अपनी मौलिक कल्पनाओं और काव्यात्मक रूपों का समावेश किया है । श्रीकृष्ण रश्मिणी विवाह सम्बन्धी चारखोतद रचनाओं में इनके लोक प्रचलित प्रमगा का समावेश हुआ है कि तु इन रचनाओं की कथावस्तु भी श्रीमद्भागवत पर ही आधारित रही है ।

८ ७ । श्रीकृष्ण रश्मिणी विवाह सम्बन्धी काव्य भक्त कविता की रचनाएँ हैं । सम्बन्धित कवियों ने श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार और पूणप्रसन्न परमेश्वर तथा रश्मिणी को लक्ष्मी का अवतार माना है जिससे इन काव्या में भक्ति का स्वर प्रधान हो गया है ।

९ ७ । भरत मुनि ने शृंगार, रोद्र और प्रभक्त नामक रसा को प्रधान मानते हुए इन रसों से क्रमशः हास्य, कण्ठ, अद्भुत और भयानक नामक गौण रसों की उत्पत्ति बताई है ।^१ भरत मुनि ने पीछे से सात रस का उल्लेख कर उनमें स्वामी भाव को प्रथम सभी भावों में प्रधानता दी है । काव्य प्रकाश में भी निर्वेद प्रधान सात रस को नवम् रस माना गया है ।^२

१० ७ । भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में सात रस की महत्ता प्रकट करते हुए सात रस स ही रति आदि आठ स्वामी भावों का उत्पत्ति बताई है ।^३

११ ७ । आचार्य अभिनव गुप्त ने तत्त्वज्ञान को ही सात रस का स्वामी भाव सिद्ध किया है । इनके मतानुसार जिस प्रकार काम कवि और नट द्वारा रति आदि से अभिहित होकर रस रूप में आस्वाद्य होता है उसी प्रकार मोक्ष भी विज्ञेय चित्त वृत्ति के योग से सात रस के रूप में प्रकट होता है । निर्वेद नामक चित्त वृत्ति की उत्पत्ति और सकट और तत्रज्ञान से होती है । तत्त्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद सभी स्वामी भावों को दबा देने वाला होता है । अग्नि पुराण (१५वीं शती ई०) में सात रस की उत्पत्ति रति के अभाव से, आचार्य श्रद्ध (१५वीं शती ई०) ने सम्पूर्ण ज्ञान से और आनन्दवधनाचार्य (१५वीं शती ई०) ने तुल्यार्थय सुख से मानी है ।

१२ ७ । सम्बन्धित काव्यों में विवाह प्रसंग प्रधान रहा है इसलिये नायक नायिका-
निरूपण, वय सन्धि वर्णन शृंगार-वर्णन और सयोग वियोगादि शृंगारिक भवस्यासो
का वक्ष्य विशेष रूप में हुआ है। शृंगार का रसरत्न माना गया है क्योंकि शृंगार की
भावना व्यापक होती है। यह प्रत्येक कान और जाति में सदा विद्यमान रहती है। महा
राजा भारत ने शृंगार को ही एक मात्र रस माना है। अथ रसो को रस को सदा देना
इन्होंने परस्पर पालन मात्र बताया है। 'अग्नि पुराण' में शृंगार रस से ही अथ रसा की
उत्पत्ति मानी गयी है। भरत मुनि ने शृंगार रस की व्याख्या करते हुए लिखा है —

मसार में जो कुत्र उत्तम, शुचि, उज्ज्वल और दर्शनीय है वही शृंगार है।^१

१३ ७ । शृंगार रस का देवता श्याम वरा विष्णु माने गये है। विष्णु अनंत
शक्ति रसा के साथ रमण करते हुए लोक के पालनकर्ता हैं। शृंगार का स्थायी भाव रति
आलम्बन विभाव नायक और नायिका, उद्दीपन विभाव हृति, सखा, परिहास, उपानम्भ, वन,
उपवन, ऋतु पुष्प, भ्रमर कीर्तिन संगीत आदि हैं, अनुभाव नायक नायिका की कार्यावक,
वाचिक और मानसिक भवस्थाएँ और क्रियाएँ, प्रति क्रियाएँ यथा— भ्रूभंग, मुजाक्षेप, परस्पर-
प्रवलीकन, स्नेह और रोमांच आदि हैं तथा सचारी भाव हृष्य, माह, चिंता, लज्जा आदि हैं।
शृंगार रस के दो भेद हैं — सयोग और वियोग। सयोग शृंगार में मान-दास्याक सचारी
भावों की तथा वियोग शृंगार में कर्तृलोपादक सचारी भावों की प्रधानता रहती है। श्रीकृष्ण
हृदिमणी विवाह प्रसंग उक्त प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए सवया उपयुक्त रहा है।

१४ ७ । श्रीकृष्ण को हृदिमणी की प्राप्ति के लिए युद्ध कर शिशुपान, जराभध और
हृकेश्यानि शत्रुणा का परास्त करना पडा था। सम्बन्धित काव्यों में युद्ध सम्बन्धी प्रसंग
का कवियों की हृदि के अनुसार विभिन्न रूपों में समावेश हुआ है। युद्ध दया धर्म और दान
आदि कार्यों में अत्यधिक उत्साह प्रकट होना वीर रस की उत्पत्ति माना गयी है। वीर रस
का स्थायी भाव उत्साह है। वीर रस का देवता इंद्र और वर्ण हंस रूपों माना गया है।^२
भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में चार रस का सम्बन्ध उत्तम प्रकृति वाला से मानत हुए
इसका स्थायी भाव उत्साह बताया है।^३ वीर रस के चार भेद माने गये हैं—

(१) युद्ध वीर, (२) दान वीर (३) दया वीर और (४) धर्म वीर।^४

वीर रस के आलम्बन विभाव नायक शत्रु नायक और तार्क्ष्यानादि है, उद्दीपन
विभाव शत्रु का प्रदान, अस्त्र, चारण वाली नायक की दीनदत्ता प्रणसा-श्रवण आदि,
अनुभाव स्वर्ग रोमांच, सत्कार आदि, सचारी भाव गव धृति, तर्क, स्मृति हर्ष, दया,
असूया, भावेग आदि हैं।

१ — शृंगार प्रकाश, प्रथम प्रकाश ६-७।

२ — नाट्य शास्त्र, अध्याय ६।

३ — चन्द्रालोक।

४ — नाट्य शास्त्र ६। ६६ ग।

५ — साहित्य दर्पण ६। १३४।

१५ ७। उल्लसनीय है कि कविवर पृथ्वीराज ने "वेनि" में शृ गार का विानृत निरूपण करते हुए भी भवित घोर घोरता का महत्व प्रगण किया है। चारण कवि सायोजी भूना ने 'द्विमणी हरण' म युद्ध सम्बन्धी प्रसंग का विस्तृत निरूपण करते हुए श्रीकृष्ण क वार चरित्र पर ही अपनी दृष्टि बंदित्र की है तो पद्म भक्त ने "द्विमणा मंगल" म प्रसंगानुसार अनेक रसों से जन मानस को आन्वाहित करने का प्रयत्न किया है।

१६ ७। श्रीकृष्ण द्विमणी विवाह सम्बन्धी चारण काव्या में संस्कृत घोर हि ती काव्या म सामा य रूपेण प्रचलित धलकारा क साध ही मध्यकालीन राजस्थानी काव्या में प्रचलित 'वैणसगाई' धलकार का निर्याह प्राय समस्त छंन में किया गया है। "वैण सगाई" का विवरण चारण का यो क प्रसंग में प्रस्तुत किया गया है (१०१ ५)। वैणसगाई स तात्पर्य वल सम्ब ध से है घोर इनका एक प्रकार का अनुमान धनकार भी कह सकत है। सम्बन्धित काव्या मे छ द की दृष्टि से विविधता दृष्टिगोचर हाती है। राजस्थानी छ द शास्त्र के अनुसार "गोत" नामक छंन में कम से कम ३ "द्वाना हात हैं। पृथ्वीराज इन वेली ३०५ द्वानो क एक ही छंद मे पूण हुई है।

१७ ७। श्रीकृष्ण द्विमणी विवाह काव्य सम्बन्धी चरित्रों को दो भागों में विभाजन किया जा सकता है —

(१) पुरुष चरित्र और (२) स्त्री चरित्र। पुरुष चरित्र इस प्रकार है—

श्रीकृष्ण, राजा भीष्मक, बलदेव, हनुमैया, शिशुपाल, जरासंध सभे वाटक ब्राह्मण, नारद मुनि प्रद्युम्न, सम्बाधुर, घोर नेमिनाथ आदि। स्त्री पात्र द्विमणी, राजा भीष्मक की रानी, शिशुपाल की भाभी घोर जनकावती आदि। कवियों की दृष्टि नायक श्रीकृष्ण घोर नायिका श्री द्विमणी के चरित्र की घोर ही अधिक रही है।

१८ ७। श्रीकृष्ण सभी काव्या मे नायक रूप मे चित्रित किय गये हैं। भरतमुनि न नायको के प्रकार निम्नलिखित बताये हैं —

(१) घीरोदात्त (२) घीरललित, (३) घीर प्रशा त और (४) घीरोद्धत।^१

भोज ने घीरादात्त को धमशृ गार का नायक घीरललित को कामशृ गार का नायक घीर प्रशा त को माक्ष शृ गार का नायक और घीरोद्धत का अर्थ शृ गार का नायक लिखा है^२

१९ ७। भोज ने कथानक के आधार पर नायक प्रतिनायक उपनायक तथा अनुनायक का विभाजन किया और चरित्र की मूल प्रकृति क अनुसार सात्विक राजस घोर तामस तीन प्रकार के नायक बताये। अभिनुराण के अनुसार मनुहुल, दक्षिण, शठ और धूट

प्रकार के नायक होते हैं। प्रकृति के अनुसार नायक को उत्तम मध्यम और प्रथम कोटि में लिया जा सकता है। परिस्थिति के अनुसार नायक को समांग, वियोगी और अपराधी की श्रेणियों में लिया जा सकता है।^१

२० ७। जैन कविता के अतिरिक्त अथ सभी कविता ने श्रीमद्भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण की पूरा ब्रह्म परमेश्वर विष्णु का अवतार अमुर सहारक लीला परायण, कुशल यादव, नातिग और रतिक गिरोमणी एव घोरदात नायक के रूप में चित्रित किया है। पृथ्वीराज कृत बलि के श्रीकृष्ण श्रीमद्भागवत के अनुसार राजस्थानी नायक के रूप में चित्रित है।

२१ ७। इतिमणी सम्प्रथित समस्त काव्या में नायिका रूप में चित्रित गई है। हमारे साहित्य में नायिका भेद और उनके लक्षणों के विषय में विस्तृत विवेचन किया गया है। भरत मुनि ने कुलजा वैद्या और कयका नामक भेद किया है। सामान्यतः नायिकाओं के भेद स्वकीया, परकीया और मामा या किये गये हैं। प्राचाय रुद्रट ने स्वकीया के मुग्धा, मध्या और प्रीड़ा (प्रगल्भा) नामक उपभेद बताये हैं। भानुज ने मुग्धा के अनात योत्रना और नात योत्रना तथा नवात्ता और विश्वध नवात्ता नामक रूप बनाये हैं।^२

२२ ७। प्रकृति के अनुसार भी नायिकाओं के तीन भेद हैं —

- १ उत्तमा — नायक की दूसरे के प्रेम में रजित देखकर भी उनका अहित न सोचना।
- २ मध्यमा — नायक के अनुसार हित अहित चाहने वाली, और
- ३ अधमा — नायक के हित करत हुए भी उसका अहित चाहने वाली।

२३ ७। स्वभाव के अनुसार नायिका भेद इस प्रकार है—

- १ अय सभोग दुःखिता — नायक की अय नायिका के प्रेम में फसा देखकर दुःख करने वाली।
- २ अक्रोक्ति गर्विता — नायक के रूप और गुणों का गर्व करने वाली, और
- ३ मानवनी — अय नायिका से नायक की प्राप्त देख मान करने वाली।

२४ ७। इतिमणी विष्णु के परम भक्त कुन्दनपुर-नरेण भोष्मक की इकलीती राजकुमारी है। इतिमणी उच्चकुल में उत्पन्न श्रेष्ठ प्रकार की नायिका है। इतिमणी कमला का अवतार मानी गई है किंतु श्रीकृष्ण के प्रति इतिमणी का प्रेम दय परक हो गया है। श्रीकृष्ण की गुणावनी का अवलोकन कर वह कृष्ण से प्रेम करने लगती है और इसका भाई

१ - हिंदी साहित्य बोध, भाग १ पृष्ठ ३२८-४००।

२ - वही पृ० ४०१-४०२।

एकमेवा रुक्मिणी का विवाह गिणुपाल से करना चाहता है तो यह श्रीकृष्ण का विवाह का सपना भेजती है। श्रीकृष्ण यथागम्य पदुंध कर रुक्मिणी का हरण करत है। रुक्मिणी श्रीकृष्ण की पत्नी बनती है और कृष्ण क प्रति प्रेम में निष्ठावती सिद्ध होता है।

२५ ७। रुक्मिणी का चरित्र घनेक कविया ने विदित किया है जिनमें बलम सम्प्रदाय क कवि मुख्य हैं। भगवान श्रीकृष्ण क एवर्ष परक रूप चित्रण क लिय रुक्मिणी का प्रयोग प्रावश्यक हुआ है। निम्बर्क, पतय राधा शून्यभिय और हरिणामी सम्प्रदायगत कविया न रुक्मिणी का चरित्र उपशित कर दिया, जिनका कारण कृष्ण चरित्र में राधा का प्राधान्य दना है।

२६ ७। रुक्मिणी का चरित्र 'भारत-सदमी क रूप में है जिसका उद्धार भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा होना है। रुक्मिणी भगवत्, भक्त का प्राणा क्षेत्र रही है और भक्त जनता का अरु उद्धार की प्राणा बंधी है।

२७ ७। चारणोत्तर काव्यों में नारद-लीला को सपर्यं का कारण प्रकट करते हुए नारद चरित्र का भविष्यवक्ता के रूप में समावेश हुआ है। गणेश और सपना गहक विप्र का चित्र पद्य कृत 'रुक्मिणी भगल' में हास्य की दृष्टि से हुआ है।

२८ ७। प्राणा है कि विवाह मान काव्य द्वारा के म तगत श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह विषय का य रूप जिसका बाजारापण अजभाषा में विष्णुदास द्वारा हुआ जिसको महाकवि मूर और न दास ने अपनी प्रमृतमयी वाणी से अभिसिंचित किया और जिसमें रस युक्त अनेक भगवत् पत्र उल्लेख हुए अब हमारे विद्वज्जगत् में अधिक समय तक उपशित नहीं रहेगा। महाराज पृथ्वीराज कृत क्रिसन-रुक्मिणी की बलि' प्रपर नाम 'रुक्मिणी भगल' का स्वान सम्बन्ध का या में कथानक संगठन, रमनिष्पत्ति प्रलकार सौन्दर्य, प्रकृति निरूपण, मौलिकता, काय रूप, वस्तु वसान चरित्र चित्रण, गद चयन, भाषा सौष्ठव, भक्ति भावना और उद्देश्य निर्वाह की दृष्टि से अत्यन्त है अतएव साहित्य क्षेत्र में इस काव्य रत्न का समुचित रूप में मूल्यवान् उपशित है।

परिशिष्ट

[हस्तलिखित ग्रंथों का विवरण यथा स्थान प्रस्तुत किया जा चुका है और इस सूची में उनका निर्देश नहीं है ।]

- (१) आवसफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वी० ए० स्मिथ, १९२३ ई० ।
- (२) आर्थियोनोजिकल मम ग्रंथ, आर्थियोलोजिकल डिपार्टमेंट, नई दिल्ली ।
- () आपणा कविग्रो, केशवराम काशीराम शास्त्री ।
- (४) आश्वलायन सूत्र, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी ।
- (५) इण्डियन एण्टिक्वेरी ।
- (६) इण्डियन आर्थियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट, आर्थियोलोजिकल डिपार्टमेंट, नई दिल्ली ।
- (७) उदयपुर राज्य का इतिहास, डा० गौरीशंकर हीराचंद श्रोत्रा ।
- (८) ऋग्वेद संहिता, सायणाचार्य ।
- (९) ऋग्वेद संहिता, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी ।
- (१०) ए डिस्क्रेटिव कंटलांग ऑफ वार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मेयूम्ब्रिफ्टस, डॉ० एल० पी० तेस्सीतोरी, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता ।
- (११) ए ट्रेड बुक ऑफ फोक लार सोफिया वर्ग ।
- (१२) एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज आफ राजस्थान, जेम्स टॉड, विलियम ब्रुक द्वारा सम्पादित संस्करण लन्दन ।
- (१३) एनसाइक्लोपीडिया आफ सोशियल साइंसेज, राबर्ट एच लावी ।
- (१४) ऐतिहासिक काल में पूर्व का राजस्थानी जन जीवन, डॉ० सत्यप्रकाश, ग्रमरज्योति, जयपुर ।
- (१५) ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, भगरचंद भवरलाल नाहटा, बीकानेर, सवत् १९९४ ।
- (१६) ऐतिहासिक रास संग्रह सशोधक विजय धर्म सूत्रि ।
- (१७) आभा निबंध संग्रह डॉ० गौरीशंकर हीराचंद श्रोत्रा, राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य-संस्थान उदयपुर ।
- (१८) ग्रोरिजिन एण्ड डेवलपमेंट आफ बगाली लेंग्वेज, डॉ० मुनीति कुमार चाटुर्ज्या, कलकत्ता ।
- (१९) कन्वरल सोनियोलोजी, निनिन और गेनिन ।
- (२०) कवि चरित्र, केशवराम काशीराम शास्त्री ।

- (२१) बनि प्रिया, बन्दर पयाग ती गण्ड १, ०० विद्यापीठमिय हि दुग्तामी
गण्डणी, प्रयाग ।
- (२२) कात्यायन गृह सूत्र, षोडश्या संस्कृत पुस्तकालय वाराणसी ।
- (२३) कात्यायन । ईश्वर भट्टारकर धारियटल रिगम इ प्रोडम पुना १९३८ ई० ।
- (२४) काहृदये प्रवचन वदुगाम राजस्थान प्रायविद्या प्रतिष्ठान नागपुर ।
- (२५) कुमार सम्भव कानिनाग, षोडश्या संस्कृत पुस्तकालय वाराणसी ।
- (२६) कुशलमाला, उद्यान गुरि धारियटल रिगम इ प्रोडम, विद्यापीठमिय
बन्दीदा ।
- (२७) गुजराती माहिरगती रचना, डॉ० मन्मथान र० मन्मथान ।
- (२८) गुह गोवि इगिट, विविग नाटक एगम् प्रम ।
- (२९) गामिनीय गृह सूत्र, षोडश्या संस्कृत पुस्तकालय वाराणसी ।
- (३०) इगल इन्द वा उपास, श्री उन्मराज उग्रव ।
- (३१) इगल साहित्य डॉ० जगन्मोप्रमाण हि दुग्तामी गण्डणी इसाहाबा ।
- (३२) इटेट्ट रिपाट माव ए दूर इन सार्थ माव संस्कृत मन्मथप्रम मन् इन
काश्मीर राजपूताना, मन्मथ इगिद्या, डॉ० जो० मन्मथ ।
- (३३) छात्रोप्य उपनिषद्, षोडश्या संस्कृत पुस्तकालय वाराणसी ।
- (३४) जनल माफ एगियाटिक सासायटी माफ बग ल, कलकत्ता ।
- (३५) जनल एण्ड प्रातिदिभ्त माफ एगियाटिक सासायटी माफ बगल, कलकत्ता ।
- (३६) जैन गुर्जर कविमा माहलाल दलीपन् प्रसाई ।
- (३७) जैन सत्यप्रकाश, वय १२, मन्मथ ५६ ।
- (३८) ज्ञाना मारू रा दूहा (सूर्यकरण पारीक रामनिह पीर गरोतमदाग द्वारा
सम्पादित) काणे नागरी प्रचारिणी सभा, वि०स० १९६०, वाराणसी ।
- (३९) दयालदास जी रो र्वात, सादू न धारियटल सिरोज, बीकानेर ।
- (४०) दाह्या भजन सग्रह, बाबू भगवती प्रसाद दाह्या हि नी पुस्तक एजेन्सी,
कलकत्ता ।
- (४१) दी पाजोगन माफ वीमन इन हिन्दू सिविलाइजगन डॉ० ए० मन्मथकर १९५६ ।
- (४२) दी सोशियल इ स्टडीयून्स इन ए मीएट इण्डिया श्री व० एल० दपनरी ।
- (४३) दी हिस्टी माफ ह्यूमन मेरिज वी० १, वेस्टर माफ ।
- (४४) दी केटलाग माफ दी गुजराती एण्ड राजस्थानी मेन्सिक्प्टस इन दी इण्डिया
ओफिस लायब्रेरी, लन्दन ।
- (४५) दी माइयोलोजी माफ दी आदन नेशन्स रेवरेण्ड, सर जी० डबल्यू कायम ।
- (४६) हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्था की लीज रिपोट नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
- (४७) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
- (४८) नाट्य-शास्त्र, भरतमुनि, गायकवाड ओरियटल सिरोज, बन्दीदा ।

- (४६) नृत्य रत्न कोश, सम्पा० रसिकलाल पारीख और डॉ० प्रियबाला शाह, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।
- (४७) परम्परा, स० नारायण सिंह भाटी, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर ।
- (४८) पात्र प्रकाश, मोडजी ।
- (४९) पार्वती-मंगल, तुलसी कृत ।
- (५०) रिगल गिरामणी, परम्परा प्रकाशन, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर ।
- (५१) पुरानो राजस्थानी, डॉ० एल० पी० तेम्सीतोरी, डॉ० नामवरसिंह कृत हिन्दी अनुवाद, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
- (५२) पुराने प्रबन्ध संग्रह विधी जैन ग्रन्थ माला, सम्पा० मुनि जिन विजयजी, भारतीय विद्या भवन, अम्बई ।
- (५३) पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता, मोहनलाल विष्णुलाल पडया उदयपुर ।
- (५४) प्राकृत सर्वस्व मार्कण्डेय, स० भट्टनाथ स्वामी, विजयापट्टम, सन् १८१२ ।
- (५५) प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, श्री सी० डी० दलाल ।
- (५६) प्रिलिमिनेरी रिपोर्ट ग्रान दो प्रापरेगन इन सर्च आफ मे यूस्किट्टस आफ बारडिक क्रोनिकल्स, डॉ० हरप्रसाद शास्त्री, कलकता ।
- (५७) बाकीदास ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
- (५८) बाकानेर राय का इतिहास डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओम्का सन् १९६६ ।
- (५९) ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन डॉ० सत्येन्द्र, साहित्य रत्न भंडार आगरा ।
- (६०) ब्रजनिधि ग्रन्थावली, स० हरिनारायणजी पुरोहित, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी ।
- (६१) बेसिक स्टेटिस्टिक्स आफ राजस्थान, जन सम्पद कार्यालय जयपुर १९५७ ई० ।
- (६२) बाघायन धर्मसूत्र, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी ।
- (६३) भक्तमाल, नाभादास स० श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९५२ ।
- (६४) भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, एस०आर० शर्मा ।
- (६५) भारतीय विद्या, स० मुनि जिन विजय जी भारतीय विद्या भवन, अम्बई ।
- (६६) भारतीय लोक साहित्य, डॉ० श्याम परमार राजगण प्रकाशन, दिल्ली ।
- (६७) भारतीय लोककला ग्रन्थावली, सम्पा० पुस्तोत्तमलाल मेनारिया भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर ।
- (६८) भाषा विज्ञान डॉ० मोलानाथ तिवारी, किताब महल इलाहाबाद, १९६१ ।
- (६९) मनुस्मृति चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी ।
- (७०) मह-भारती सम्पा० डॉ० कश्यपलाल सहल, राजस्थानी शोध विभाग, पिलानी ।
- (७१) महाभारत, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी ।

- (७५) मध्यकालीन भारतीय सस्कृति, डॉ० गौरीशंकर हीराचंद गोत्रभा, हिंदुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद ।
- (७६) महाराणा कुम्भा डा० हरदिलास शारदा, अजमेर ।
- (७७) महाकवि माधव, उनका जीवन और कृतियां, डा० मनमोहन लाल शर्मा, नवयुग प्रकाशन दिल्ली-६ ।
- (७८) मारवाड का मूल इतिहास व० रामकर्म जी आसोपा जोधपुर, सन् १९३१ ।
- (७९) माधवानन्द काम कदला प्रबंध, गंगापति विरचित, मजूमदार संपादित ।
- (८०) मिश्र बंधु विनोद, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ ।
- (८१) निलिटी मेमोअस आफ जाज टामस, विलियम फ्रेकलिन, लंदन, १८०५ ।
- (८२) मीराबाई का जीवन चरित्र मुंशी देवीप्रसाद ।
- (८३) मीरा-माधुरी श्रीब्रजरत्नदास, स० २०१३ ।
- (८४) रघुनाथ रूपक गोता रो, कवि मधुवृत्त महतावध द खारेड, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, वि० स० १९६७ ।
- (८५) राजस्थान भारती, शादूल राजस्थानी रिमर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर ।
- (८६) राजस्थान में प्रागैतिहासिक व सिंधु सभ्यता का युग, श्री रत्नचंद अग्रवाल शोध पत्रिका उदयपुर वर्ष १२, अंक २ ।
- (८७) राजस्थान का लोक संगीत, श्री देवीलाल सामर भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर ।
- (८८) राजस्थान स्वर-लहरी, भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर ।
- (८९) राजस्थान की रम्य नारा पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, संस्कृति परिषद् जयपुर १९५४ ई० ।
- (९०) राजस्थान रा दूहा म० श्री नरात्मदास ज स्वामी प्रथम संस्करण १८३३, हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस नई दिल्ली ।
- (९१) राजस्थान सम्बन्धी प्रकाशित साहित्य सम्पा० परपात्तम लाल मनारिया, सावजनिक सम्पर्क कार्यालय राजस्थान सरकार, जयपुर १९५६ ई० ।
- (९२) राजस्थानी साहित्य, परम्परा और प्रगति डा० सरनाम सिंह गर्मा हिन्दी साहित्य संसार लिहो ।
- (९३) राजस्थानी लोक गीत साहित्य संस्थान, उदयपुर ।
- (९४) राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग २, स० परपात्तम लाल मनारिया, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ।
- (९५) राजस्थानी हिन्दी शब्द कोष श्री सीताराम लालस, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर ।
- (९६) राजस्थानी भाषा और साहित्य, ल० मातीलाल जी मनारिया हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद ।

- (६७) राजस्थानी भाषा और साहित्य, श्री हीरालाल जी माहेश्वरी ।
- (६८) राजस्थानी साहित्य का आदिवाल, स० श्री नारायण सिंह माटी, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर ।
- (६९) राजस्थानी साहित्य एक परिचय, श्री नरोत्तमदास जी स्वामी, नवयुग ग्रंथ कुटीर, बीकानेर ।
- (१००) राजस्थानी, त्रैमासिक, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता ।
- (१०१) राजस्थानी लोक नाट्य, श्री देवीलाल सामर, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर ।
- (१०२) राजस्थानी भाषा, डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, राजस्थान विद्यापीठ शोध संस्थान, उदयपुर, १९४९ ई० ।
- (१०३) राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, परपोत्तम लाल मेनारिया, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी १९५३ ई०
- (१०४) राजपूताने का इतिहास, डॉ० गौरीशंकर हीराचंद श्रीभा, अजमेर ।
- (१०५) राजपूताने का इतिहास, जगदीश सिंह गहलोत, जोधपुर सन् १९६० ।
- (१०६) रास पञ्चाध्यायी, नन्ददास ।
- (१०७) लोक कला, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर ।
- (१०८) लिब्रिस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया डॉ० आज प्रियर्सन ।
- (१०९) वचनिका राठीश रतनसिंह जी महेशदासोतरी, खिडिया जग्गा री कही, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता ।
- (११०) वरदा, सम्पा० श्री मनोहर शर्मा, राजस्थानी साहित्य समिति, बिसाऊ ।
- (१११) वसन्त विलास, कांतिलाल बलदेवराम व्यास, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।
- (११२) वन भास्कर, महाकवि सूर्यमल मिश्रण, प्रताप प्रेस, जोधपुर, स० १९५६ ।
- (११३) वाचस्पत्यय, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी ।
- (११४) विक्रमाकदेवचरित, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी ।
- (११५) बीसल देव रासो, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
- (११६) बीर सतसई, सूर्यमल मिश्रण, सम्पा० डॉ० कन्हैयालाल सहल, पतराम गौड और डा० ईश्वरदास आशिषा, बंगाल हिंदी मंडल, कलकत्ता स० २००५ ।
- (११७) बेलि क्रिसन रविमणी री, एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता सन् १९१९, सम्पा० डॉ० एल० पी० तेस्सीतौरी ।
- (११८) बेलि क्रिसन रविमणी री, सम्पा० सूर्यकरण पारीक और डा० रामसिंह, हिंदू दुरतानी एकेडेमी, प्रयाग
- (११९) बेलि क्रिसन रविमणी री, डॉ० धानन्द प्रकाश दीदित, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर १९५३ ।

- (१२०) वेलि किमन रुक्मिणी रो, सम्पा० नरोत्तमदास जी स्वामी, श्रीराम मेहरा एण्ड सन्स, प्रागरा ।
- (१२१) वेलि किसन रुक्मिणी रो, सम्पा० श्री कृष्ण शंकर शुक्ल, साहित्य निवेदन, बानपुर ।
- (१२२) वेलि किसन रुक्मिणी रो, सम्पा० नटवर साल इन्द्राराम देसाई फार्बस गुजराती समा, बम्बई, १९५५ ई० ।
- (१२३) वैष्णवीज्म, शैवीज्म एड भाइनर रिलिजियस सिस्टम्स, धार० जी०भट्टारकर ।
- (१२४) वैष्णव धर्म पताका, स० श्री बसन्तराम दास्त्री ।
- (१२५) सरस्वती, इलाहाबाद ।
- (१२६) सम्मेलन पत्रिका, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
- (१२७) सलेक्शंस फ्राम हिन्दी लिटरेचर, लाला सोताराम ।
- (१२८) सगीत राज, सम्पा० सो० कुहन राजा अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर ।
- (१२९) साहित्य, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, हिन्दी ग्रंथ रचनाकर कार्यालय, बम्बई ।
- (१३०) साहित्य सदेश, प्रागरा ।
- (१३१) साहित्य-दपण, विश्वनाथ, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई सन् १९१५ ।
- (१३२) सर्गात रुक्मिणी मंगल, कृष्णानन्द व्यास, कलकत्ता ।
- (१३३) सुथत सूत्र स्वान चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी ।
- (१३४) सूरज प्रकाश कविता करणीदान कृत, सम्पा० श्री सीताराम सालस, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।
- (१३५) सूर पूव ब्रजभाषा श्रीर उसका साहित्य डॉ० शिव प्रमाद सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी ।
- (१३६) सूर सागर, स० नन्ददुलारे बाजपेयी, ना० प्र० सभा, काशी स० २००७ ।
- (१३७) सेटिनरो रिब्यु भाव दी एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता ।
- (१३८) शतपथ ब्राह्मण, चौखम्बा संस्कृत-पुस्तकालय, वाराणसी ।
- (१३९) शिख नख केशव कृत ।
- (१४०) शोध पत्रिका राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर ।
- (१४१) श्राद्धविवेक, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी ।
- (१४२) हमारा राजस्थान, पृथ्वीसिंह मेहता, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, १५५० ई० ।
- (१४३) हरिरस ग्रंथ, ईसर बारहठ कृत, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता ।
- (१४४) हिन्दी काव्य धारा, राहुल सांकृत्यायन, किताबमहल, इलाहाबाद १९५५ ई० ।
- (१४५) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा, रामनारायण लाल, प्रयाग चतुर्थ संस्करण, १९५८ ई० ।

- (१४६) हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, डॉ० बडधवाल ।
(१४७) हिन्दी शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
(१४८) हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिषद, इलाहाबाद ।
(१४९) हिन्दी साहित्य कोश, प्रधान स० डॉ० धीरे द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल, वाराणसी ।
(१५०) हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
(१५१) हिन्दुई साहित्य का इतिहास गार्सीद तासी अनु डा० लक्ष्मी सागर बापण्ये ।
(१५२) ज्ञान-शब्द कोष, ज्ञान मण्डल वाराणसी वि० स० २०१३ ।



डॉ० पुरुषोत्तम चाल मेनारिया, एम० ए०, (पी-एच. डी.), साहित्य-रत्न
निदेशक, राजस्थान साहित्य प्रकादमी (समम), उदयपुर
का संक्षिप्त परिचय

१ जन्म —

दिनांक ५ नवम्बर, १९२३ ई० को उदयपुर में मालवीय श्रीगौड ब्राह्मण
कुल में हुआ ।

२ शिक्षा —

- १ एम० ए० हिन्दी, द्वितीय श्रेणी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ।
- २ साहित्य रत्न, द्वितीय श्रेणी, हिन्दी विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।
- ३ मध्यमा (विद्यारत्न) द्वितीय श्रेणी, हिन्दी विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।
- ४ जोधपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी एच० डी० से सम्मानित ।

३ अनुभव —

- १ पूर्व संचालक और मंत्री, राजस्थान विद्यापीठ बोध संस्थान, उदयपुर, क्रियात्मक प्रशासन का अनुभव १० वर्ष, १९४१ से १९५० ई० ।
- २ संस्थापक और सम्पादक, बोध-पत्रिका, साहित्य संस्थान, उदयपुर । छत्तीसवें वर्ष में प्रकाशन चालू है ।
- ३ प्रिंसिपल और प्राध्यापक, राजस्थान विद्यापीठ वानेज, उदयपुर । स्नातक और स्नातकोत्तर अध्यापन का अनुभव ८ वर्ष, १९४१ से १९४८ ।
- ४ रिसेच स्कालर, सम्पादन-समिति, भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, १९५५ ई० ।
- ५ सदस्य माड्रु समिति, राजस्थान सरकार, १९५२ ई० ।
- ६ पर्यवेक्षक और अधिवक्ता, २६ वां अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्य विद्या सम्मेलन, १९६४ ई० ।
- ७ विभागीय सचिव, प्रखिल भारतीय संस्कृत शिक्षा सेमिनार, १९६४ ई० ।
- ८ हिं दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की राजस्थान समिति के सदस्य ।
- ९ सदस्य महासमिति, राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, १९६६ ई० ।
- १० अनेक शिक्षण संस्थाओं की कार्य समिति के सदस्य ।
- ११ सहायक संचालक, शोध सहायक और उप निदेशक राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, राजस्थान सरकार, जोधपुर । प्रतिष्ठान में अनुसंधान और प्रशासन पम्ब-धी कार्यों का क्रियात्मक अनुभव १७ वर्ष, १९५१ से ।
- १२ निदेशक राजस्थान साहित्य प्रकाशनी (सगम) उदयपुर ।

४ विशेष दिवरण —

- १ रेडियो से हिन्दी तथा राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति पर प्रसारित वार्ताएँ, लगभग सवा सौ (१९४८ से) ।
- २ राजस्थान के सांस्कृतिक भागों में और पूना, बम्बई, कलकत्ता आदि की यात्राएँ कर हस्तलिखित ग्रन्थ और साहित्य सम्बन्धी विस्तृत खोज, संग्रह, अध्ययन और प्रकाशन कार्य ।
- ३ राजस्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज का निदेशन १९४१ से १९५० ई० ।
- ४ गुजराती और मराठी आदि में अनेक रचनाएँ अनुदित और प्रकाशित ।
- ५ देश विदेश व अनेक प्रमुख विद्वानों द्वारा साहित्यिक कार्यों और प्रकाशनों का प्रशासनात्मक उत्प्रेषण ।

- ६ व्यक्तिगत साहित्य संकलन— राजस्थानी लोक-गीत, दस हजार, राजस्थानी लोक-कथाएँ, एक हजार आदि ।
- ७ राजस्थान सरकार द्वारा साहित्यिक कार्यों के लिए दो बार पुरस्कृत ।
- ८ हिन्दी, राजस्थानी अंग्रेजी, संस्कृत, गुजराती आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान ।

५ प्रकाशित साहित्य —

- १ राजस्थान की रस धारा राजस्थान संस्कृति परिषद्, जयपुर, १९५४ ई० ।
- २ राजस्थानी भाषा की रूपरेखा हि दो प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५३ ई० ।
- ३ राजस्थान की लोक कथाएँ, आत्माराम एण्ड सस दिल्ली । पुस्तक के तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं । प्रथम संस्करण १९५४ ई० ।
- ४ राजस्थानी वाता, (तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं) प्रथम संस्करण १९५४ ई०, प्रकाशक— स्टुडेन्ट्स बुक क०, जयपुर ।

लोक कथा सम्बन्धी उक्त दोनों पुस्तकें राजस्थान सरकार द्वारा पुरस्कृत हैं ।

- ५ राजस्थानी लोक कथाएँ, प्रथम संस्करण १९५४ ई० । [अप्राम्य]
- ६ राजस्थानी लोक गीत, प्रथम संस्करण १९५४ ई० ।
- ७ राजस्थान सम्बन्धी प्रकाशित साहित्य, भाग १, सार्वजनिक सम्पदा कार्यालय, जयपुर १९५४ ई० ।
- ८ राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग २ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर १९६० ई० । उपाधि परीक्षा के पाठ्य-क्रम में स्वीकृत ।
- ९ राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची, भाग २ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, १९६१ ई० ।
- १० ऋषिमण्डी हरण, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर १९६४ ई० ।
- ११ साहित्य मरिचा, जय भन्वे प्रकाशन, जयपुर । प्रथम संस्करण १९५१ ई०, तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं ।
- १२ पद्यतरंगिणी, सख्स्वती पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५६ ई० ।
- १३ नवीन गीत, जन सम्पर्क कार्यालय, राजस्थान सरकार, जयपुर १९५७ ई० ।
- १४ लोक कला निबन्धावली, भाग १ (१९५४ ई०) ।
- १५ लोक कला निबन्धावली भाग २ (१९५६ ई०) ।

- १७ राजस्थानी लोक कथाएँ (राजस्थानी संस्कृति परिषद् जयपुर) ।
- १८ राजस्थानी पुरातन भाषा, प्रकाशित पुस्तकें ३ ।
- १९ भारतीय लोक-कथा संग्रहावली, प्रकाशित भाग ८ ।
- २० नैमातिर शोध पत्रिका, प्रथम और द्वितीय भाग, १९४६-४७ ई० ।
- २१ लोक कथा व नैमातिर शोध पत्रिका भाग १-६ ।
- २२ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्यिक निबन्ध छांटि संग्रहण १-२ (१९४६)
- २३ राजस्थानी साहित्य का इतिहास, १९६८ ई० ।
- २४ ईसात पूर्व-विगतिका, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६८ ।

